DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DTATE	SIGNATURE

भारतेन्दु ग्रन्थावली

दूसरा खण्ड

भक्त-सर्वस्व

अर्थात्

श्रीचरण-चिन्ह-वर्णन

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यंति सूरयः'

सं० १९२७

भक्त-सर्वस्व

मेडिकल हाल के छापेखाने में
१८७० ई० में छपा

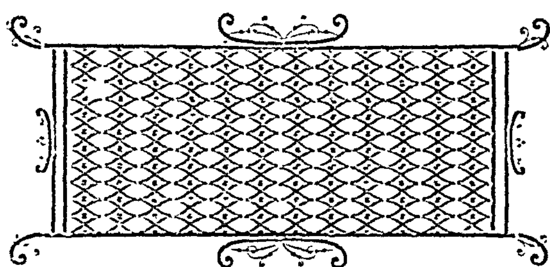
प्रस्तावना

इस छोटे से ग्रंथ में श्रीयुगल स्वरूप के श्रीचरण के अगाध चिह्नों के मति अनुसार कुछ भाव लिखे हैं। यद्यपि इसकी कविता काव्य के सब गुणों से (सत्य ही) हीन है, तथापि इसका मुझे शोच नहीं है, क्योंकि यह ग्रंथ मैंने अपनी कविता प्रगट करने और कवियों को प्रसन्न करने को नहीं लिखा है, केवल (अपनी) वाणी पवित्र करने और प्रेम-रंग में रँगे हुए वैष्णवों के आनन्द के हेतु लिखा है।

इसमें श्री भागवत के अनुसार बहुत से भाव लिखे हैं, इस कारण से श्री भागवत जाननेवालों को इसका स्वाद विशेष मिलेगा।

अनुप्रासों की संकीर्णता से इसमें पुनरुक्ति बहुत है, जिसको रसिक लोग (भगवन्नामांकित जान कर) क्षमा करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करें, वह मेरे (इस) बाल-चापल्य को क्षमा करें और (जहाँ तक हो सके) इस पुस्तक को कु-रसिकों से बचावें और अनुग्रहपूर्वक सर्व्वदा मुझ से दीन को (अपना दास जान कर) स्मर्ण रक्खें।

श्रीहरिश्चन्द्र।



भक्त-सर्वस्व

अथ चरण-चिन्ह-वर्णन

दोहा

जयति जयति श्री राधिका चरण जुगल करि नेम ।
जाकी छटा प्रकास तें पावत पामर प्रेम ॥ १ ॥
जयति जयति तैलंग-कुल रत्नद्वीप-द्विजराज ।
श्री वल्लभ जग-अघ-हरन तारन पतित-समाज ॥ २ ॥
नमो नमो श्री हरि-चरण शिव-मन-मंदिर रूप ।
वास हमारे उर करौ जानि पर्यौ भव-कूप ॥ ३ ॥
प्रगटित जसुमति-सीप तें मधि व्रज-रतनागार ।
जयति अलौकिक मुक्त-मणि व्रज-तिय को शृंगार ॥ ४ ॥
दक्षिन दिसि चन्द्रावली श्री राधा दिसि वाम ।
तिन के मधि नट रूप-धर जै जै श्री घनश्याम ॥ ५ ॥
हरि-मन-कुमुद-प्रमोद-कर व्रज-प्रकासिनी वाम ।
जयति कापिसा-चन्द्रिका राधा जाको नाम ॥ ६ ॥
चंद्रभानु नृप-नंदिनी चंद्राननि सुकुवाँरि ।
कृष्णचंद्र-मन-हारिनी जय चंद्रावलि नारि ॥ ७ ॥

जै जै ब्रज-जुवती सबै जिन सम जग नहिं कोइ।
मगन भईं हरि-रूप में लोक-लाज-भय खोइ ॥ ८ ॥
जसुदा लालित ललनवर कीरति-प्रान-अधार।
श्याम गौर द्वै रूप धर जै जै नंद-कुमार ॥ ९ ॥
जै जै श्री वल्लभ विमल तैलँग कुल द्विजराज।
भुव प्रगटित आनंदमय विष्णु स्वामि पथ-काज ॥१०॥
तम पाखंडहिं हरत करि जन-मन-जलज-विकास।
जयति अलौकिक रवि कोऊ श्रुति-पथ करन प्रकास ॥११॥
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम।
जयति कोऊ सो केसरी वृन्दावन वन धाम ॥१२॥
गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु विट्ठलनाथ।
जयति जुगल वल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुन-गाथ ॥१३॥
श्री गिरिधर गोविंद पुनि बालकृष्ण सुख-धाम।
गोकुलपति रघुपति जयति जदुपति श्री घनश्याम ॥१४॥
जै जै श्री शुकदेव जिन समुझि सकल श्रुति-पंथ।
हम से कलिमल ग्रसित हित कह्यौ भागवत ग्रंथ ॥१५॥
वंदौं पितु-पद जुग जलज हरन हृदय-तम घोर।
सकल नेह-भाजन विमल मंगलकरन अथोर ॥१६॥
कविजन-उडुगन-मोद-कर पूरन परम अमंद।
सुत-हिय-कुमुद-अनंद-भर जयति अपूरब चंद ॥१७॥
जुगल चरन जग-तम-हरन भक्तन-जीवन-प्रान।
बरनत तिन के चिन्ह के भाव अनेक विधान ॥१८॥
बरनन श्री हरिराय किय तिनको आसय पाइ।
चरन-चिन्ह हरिचंद कछु कहत प्रेम सों गाइ ॥१९॥
भक्तन को सर्वस्व लखि बरनन या थल कीन।
प्रेम-सहित अवलोकिहैं जे जन रसिक प्रवीन ॥२०॥

कहँ हरि-चरन अगाध अति कहँ मोरी मति थोर ।
तदपि कृपा-बल लहि कहत छमिय ढिठाई मोर ॥२१॥

छप्पय

स्वस्तिक स्यंदन संख सक्ति सिंहासन सुंदर ।
अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अमलतर ॥
बाजी बारन बेनु बारिचर वज्र बिमलवर ।
कुंत कुमुद कलधौत कुंभ कोदंड कलाधर ॥
असि गदा छत्र नवकोन जव तिल त्रिकोन तरु तीर गृह ।
हरिचरन चिन्ह बत्तिस लखे अग्निकुंड अहि सैल सह ॥ १ ॥

स्वस्तिक चिन्ह भाव वर्णन

दोहा

जे निज उर मैं पद धरत असुभ तिन्हैं कहुँ नाहिं ।
या हित स्वस्तिक चिन्ह प्रभु धारत निज पद माँहिं ॥ १ ॥

रथ को चिन्ह वर्णन

निज भक्तन के हेतु जिन सारथिपन हूँ कीन ।
प्रगटित दीन-दयालुता रथ को चिन्ह नवीन ॥ १ ॥
माया को रन जय करन बैठहु यापैं आइ ।
यह दरसावन हेत रथ चिन्ह चरन दरसाइ ॥ २ ॥

शंख चिन्ह के भाव वर्णन

भक्तन की जय सर्वदा यह दरसावन हेतु ।
शंख चिन्ह निज चरन मैं धारत भव-जल-सेतु ॥ १ ॥
परम अभय पद पाइहौ याकी सरनन आइ ।
मनहुँ चरण यह कहत है शंख बजाइ सुनाइ ॥ २ ॥
जग-पावनि गंगा प्रगट याही सों इहि हेत ।
चिन्ह सुजल के तत्व को धारत रमा-निकेत ॥ ३ ॥

शक्ति चिन्ह भाव वर्णन

बिना मोल की दासिका शक्ति स्वतंत्रा नाहिं।
शक्तिमान हरि याहि तें शक्ति चिन्ह पद माँहिं ॥ १ ॥
भक्तन के दुख दलन की बिधि की लीक मिटाइ।
परम शक्ति यामें अहै सोई चिन्ह लखाइ ॥ २ ॥

सिंहासन चिन्ह भाव वर्णन

श्री गोपीजन के सुमन थापैं करैं निवास।
या हित सिंहासन धरत हरि निज चरनन पास ॥ १ ॥
जो आवै याकी शरण सो जग राजा होइ।
या हित सिंहासन सुभग चिन्ह रह्यो दुख खोइ ॥ २ ॥

अंकुस चिन्ह भाव वर्णन

मन-मतंग निज जनन के नेकु न इत उत जाहिं।
एहि हित अंकुस धरत हरि निज पद कमलन माँहिं ॥ १ ॥
याको सेवक चतुरतर गननायक सम होइ।
या हित अंकुस चिन्ह हरि चरनन सोहत सोइ ॥ २ ॥

ऊरध रेखा चिन्ह भाव वर्णन

कबहुँ न तिनकी अधोगति जे सेवत पद-पद्म।
ऊरध रेखा चिन्ह पद येहि हित कीनो सद्म ॥ १ ॥
ऊरधरेता जे भये ते या पद कों सेइ।
ऊरध रेखा चिन्ह यों प्रगट दिखाई देइ ॥ २ ॥
यातें ऊरध और कछु ब्रह्म अंड में नाहिं।
ऊरध रेखा चिन्ह है या हित हरि-पद माँहिं ॥ ३ ॥

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

सजल नयन अरु हृदय मैं यह पद रहिबे जोग।
या हित रेखा कमल की करत कृष्ण-पद भोग ॥ १ ॥

श्री लक्ष्मी को वास है याही चरनन-तीर।
या हित रेखा कमल की धारत पद बलवीर ॥ २ ॥
विधि सों जग, विधि कमल सों, सो हरि सों प्रगटाइ।
राधावर-पद-कमल में या हित कमल लखाइ ॥ ३ ॥
फूलत सात्विक दिन लखे सकुचत लखि तम रात।
या हित श्री गोपाल-पद जलज चिन्ह दरसात ॥ ४ ॥
श्री गोपीजन-मन-भ्रमर के ठहरन की ठौर।
या हित जल-सुत-चिन्ह श्री हरिपद जन सिरमौर ॥ ५ ॥
बढ़त प्रेम-जल के बढ़े घटे नाहिं घटि जात।
यह दयालुता प्रगट करि पंकज चिन्ह लखात ॥ ६ ॥
काठ ज्ञान वैराग्य मैं बँध्यो वेधि उड़ि जात।
याहि न वेधत मन-भ्रमर या हित कमल लखात ॥ ७ ॥

अष्टकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

आठो दिसि भूलोक कौ राज न दुर्लभ ताहि।
अष्टकोन को चिन्ह यह कहत जु सेवै याहि ॥ १ ॥
अनायास ही देत है अष्ट सिद्धि सुख-धाम।
अष्टकोन को चिन्ह पद धारत येहि हित स्याम ॥ २ ॥

घोड़ा के चिन्ह को भाव वर्णन

हयमेधादिक जग्य के हम ही हैं इक देव।
अश्व-चिन्ह पद धरत हरि प्रगट करन यह भेव ॥ १ ॥
याही सों अवतार सब हयग्रीवादिक देख।
अवतारी हरि के चरन याही तें हय-रेख ॥ २ ॥
वैरहु जे हरि सों करहिं पावहिं पद निर्वान।
या हित केशी-दमन-पद हय को चिन्ह महान ॥ ३ ॥

हाथी के चिन्ह को भाव वर्णन

जाहि उधारत आपु हरि राखत तेहि पद पास ।
या हित गज को चिन्ह पद धारत रमा निवास ॥ १ ॥
सब को पद गज-चरन में *सो गज हरि-पग माँहिं ।
यह महत्व सूचन करत गज के चिन्ह देखाहिं ॥ २ ॥
सब कवि कविता में कहत गजगति राधानाथ ।
ताहि प्रगट जग मै करन धर्‌यो चिन्ह गज साथ ॥ ३ ॥

वेणु के चिन्ह को भाव वर्णन

सुर नर मुनि नर नाह के बंस यही सों होत ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद में प्रगट उदोत ॥ १ ॥
गाँठ नहीं जिनके हृदय ते या पद के जोग ।
या हित बंसी चिन्ह पद जानहु सेवक लोग ॥ २ ॥
जे जन हरि-गुन गावहीं राखत तिनको पास ।
या हित बंसी चिन्ह हरि पद में करत निवास ॥ ३ ॥
प्रेम भाव सों जे बिंधे छेद करेजे माहिं ।
तेई या पद में बसैं आइ सकै कोउ नाहिं ॥ ४ ॥
मनहुँ घोर तप करति है बंसी हरि-पद पास ।
गोपी सह त्रैलोक के जीतन की धरि आस ॥ ५ ॥
श्री गोपिन की सौति लखि पद-तर दीनी डारि ।
यातैं बंसी चिन्ह निज पद में धरत मुरारि ॥ ६ ॥
आई केवल ब्रज-बधू क्यों नहिं सब सुर-नारि ।
या हित कोपित होइ हरि दीनी पद तर डारि ॥ ७ ॥
मन चोर्‌यो बहु त्रियन को इन श्रवनन मग पैठि ।
ता प्राछित को तप करत मनु हरि-पद-सर बैठि ॥ ८ ॥

---

* सर्वे पदाः हस्तिपदे निमग्नाः ।

वेणु सरिस हू पातकी शरण गये रखि लेत ।
वेणु-धरन के कमल-पद वेणु चिन्ह यहि हेत ॥ ९ ॥

मीन चिह्न का भाव वर्णन

अति चंचल वहु ध्यान सों आवत हृदय मँझार ।
या हित चिन्ह सुमीन को हरि-पद में निरधार ॥ १ ॥
जब लौं हिय में सजलता तब लौं याको वास ।
सुष्क भए पुनि नहिं रहत झप यह करत प्रकास ॥ २ ॥
जाके देखत ही बढ़ै ब्रज-तिय-मन में काम ।
रति-पति-ध्वज को चिन्ह पद यातें धारत स्याम ॥ ३ ॥
हरि मनमथ कौं जीति कै ध्वज राख्यौ पद लाइ ।
यातैं रेखा मीन की हरि-पद मैं दरसाइ ॥ ४ ॥
महा प्रलय मैं मीन बनि जिमि मनु रक्षा कीन ।
तिमि भवसागर कों चरन या हित रेखा मीन ॥ ५ ॥

वज्र के चिह्न को भाव वर्णन

चरण परस नित जे करत इन्द्र-तुल्य ते होत ।
वज्र-चिन्ह हरि-पद-कमल येहि हित करत उदोत ॥ १ ॥
पर्वत से निज जनन के पापहिं काटन काज ।
वज्र-चिन्ह पद मैं धरत कृष्णचंद्र महराज ॥ २ ॥
वज्रनाभ यासों प्रगट जादव सेस लखाहिं ।
थापन-हित निज वंश भुवि वज्र चिन्ह पद माहिं ॥ ३ ॥

वरछी के चिह्न को भाव वर्णन

मनु हरिहू अघ सों डरत मति कहुँ आवै पास ।
या हित वरछी धारि पग करत दूर सों नास ॥ १ ॥

कुमुद के फूल के चिह्न को भाव वर्णन

श्री राधा-मुखचंद्र लखि अति अनंद श्रीगात।
कुमुद-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद या हित प्रगट लखात ॥ १ ॥
सीतल निसि लखि फूलई तेज दिवस लखि वंद।
यह सुभाव प्रगटित करत कुमुद चरण नँदनंद ॥ २ ॥

सोने के पूर्ण कुंभ के चिह्न को भाव वर्णन

नीरस यामैं नहिं वसैं वसैं जे रस भरपूर।
पूर्ण कुंभ को चिन्ह मनु या हित धारत सूर ॥ १ ॥
गोपीजन-विरहागि पुनि निज जन के त्रयताप।
मेटन के हित चरन मैं कुंभ धरत हरि आप ॥ २ ॥
सुरसरि श्री हरि-चरन सों प्रगटी परम पवित्र।
या हित पूरन कुंभ को धारत चिन्ह विचित्र ॥ ३ ॥
कवहुँ अमंगल होत नहिं नित मंगल सुख-साज।
निज भक्तन के हेत पद कुंभ धरत ब्रजराज ॥ ४ ॥
श्री गोपीजन-वाक्य के पूरन करिवे हेत।
मुकुच कुंभ को चिन्ह पग धारत रमानिकेत* ॥ ५ ॥

धनुष के चिह्न को भाव वर्णन

इहाँ स्तब्ध नहिं आवहीं आवहिं जे नइ जाहि।
धनुष चिन्ह एहि हेतु है कृष्ण-चरन के माँहिं ॥ १ ॥
जुरत प्रेम के घन जहाँ दृग वरसा वरसात।
मन संध्या फूलत जहाँ तहँ यह धनुष लखात ॥ २ ॥

चन्द्रमा के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री शिव सों निज चरण सों प्रकट करन हित हेत।
चंद्र-चिन्ह हरि-पद बसत निज जन को सुख देत ॥ १ ॥

* रमणनस्तनेष्वर्पयाधिहन।

जे या चरनहिं सिर धरें ते नर रुद्र समान।
चंद्र-चिन्ह यहि हेतु निज पद राखत भगवान ॥ २ ॥
निज जन पै बरखत सुधा हरत सकल त्रयताप।
चंद्र-चिन्ह येहि हेतु हरि धारत निज पद आप ॥ ३ ॥
भक्त जनन के मन सदा यामैं करत निवास।
यातें मन को देवता चंद्र-चिन्ह हरि पास ॥ ४ ॥
बहु तारन को एक पति जिमि ससि तिमि ब्रजनाथ।
दक्षिनता प्रगटित करन चंद्र-चिन्ह पद साथ ॥ ५ ॥
जाकी छटा प्रकाश तें हरत हृदय-तम घोर।
या हित ससि को चिन्ह पद धारत नंदकिसोर ॥ ६ ॥
निज भगिनी श्री देखि कै चंद्र बस्यौ मनु आइ।
चंद्र-चिन्ह ब्रजचंद्र-पद यातें प्रगट लखाइ ॥ ७ ॥

तरवार के चिन्ह को भाव वर्णन

निज जन के अघ-पसुन कों बधत सदा करि रोस।
एहि हित असि पग मैं धरत दूर दरत जन-दोस ॥ १ ॥

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

काम-कलुख-कुंजर-कदन समरथ जो सब भाँति।
गदा-चिन्ह येहि हेतु हरि धरत चरन जुत क्रांति ॥ १ ॥
भक्त-नाद मोहिं प्रिय अतिहि मन महँ प्रगट करंत।
गदा-चिन्ह निज कमल पद धारत राधाकंत* ॥ २ ॥

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

भय दुख आतप सों तपे तिनको अति प्रिय एह।
छत्र-चिन्ह येहि हेत पग धारत साँवल देह ॥ १ ॥

---

* गदा का दूसरा अर्थ शब्द करनेवाली है।

अज राख्यो सुर-कोप ते भव-जल तें निज दास।
छत्र-चिन्ह पद मे धरत या हित रमानिवास ॥ २ ॥
याकी छाया में बसत महाराज सम होय।
छत्र-चिन्ह श्रीकृष्ण पद यातें सोहत सोय ॥ ३ ॥

नवकोण चिन्ह को भाव वर्णन

नवो खंड पति होत हैं सेवत जे पद-कंजु।
चिन्ह धरत नवकोन को या हित हरि-पद मंजु ॥ १ ॥
नवधा भक्ति प्रकार करि तब पावत येहि लोग।
या हित है नवकोन को चिन्ह चरन गत-सोग ॥ २ ॥
नव जोगेश्वर जगत तजि यामें करत निवास।
या हित चिन्ह सुकोन नव हरि-पद करत प्रकास ॥ ३ ॥
नव ग्रह नहिं बाधा करत जो एहि सेवत नेक।
याही तें नवकोन को चिन्ह धरत सविवेक ॥ ४ ॥
अष्ट सखिन के संग श्री राधा करत निवास।
याही हित नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद पास ॥ ५ ॥
यामैं नव रस रहत है यह अनंद की खानि।
याही तें नवकोन को चिन्ह कृष्ण-पद जानि ॥ ६ ॥
नव को नव-गुन लगि गिनौ नवै अंक सब होत।
तातें रेखा कहत जग यामैं ओत न प्रोत ॥ ७ ॥

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

जीवन जीवन के यहै अन्न एक तिमि येह।
या हित जव को चिन्ह पद धारत साँवल देह ॥ १ ॥

तिल के चिन्ह को भाव वर्णन

याके शरण गए बिना पित्रन कौं गति नाहिं।
या हित तिल को चिन्ह हरि राखत निज पद माँहिं ॥ १ ॥

त्रिकोण के चिन्ह को भाव वर्णन

स्वीया परकीया बहुरि गनिका तीनहु नारि।
सबके पति प्रगटित करत मनमथ-मथन मुरारि ॥ १ ॥
तीनहु गुन के भक्त कों यह उद्धरण समर्थ।
सम त्रिकोन को चिन्ह पद धारत याके अर्थ ॥ २ ॥
ब्रह्मा-हरि-हर तीनि सुर याही ते प्रगटंत।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धारत राधाकंत ॥ ३ ॥
श्री-भू-लीला तीनहू दासी याकी जान।
यातें चिन्ह त्रिकोन को पद धारत भगवान ॥ ४ ॥
स्वर्ग-भूमि-पाताल मैं विक्रम ह्वै गए धाइ।
याहि जनावन हेत त्रय कोन चिन्ह दरसाइ ॥ ५ ॥
जो याकै शरनहि गए मिटे तीनहूँ ताप।
या हित चिन्ह त्रिकोन को धरत हरत जो पाप ॥ ६ ॥
भक्ति-ज्ञान-वैराग हैं याके साधन तीन।
यातें चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन लखि लीन ॥ ७ ॥
त्रयी सांख्य आराधि कै पावत जोगी जौन।
सो पद है येहि हेत यह चिन्ह त्रिश्रुति को भौन ॥ ८ ॥
वृन्दावन द्वारावती मधुपुर तजि नहिं जाहिं।
यातें चिन्ह त्रिकोन है कृष्ण-चरन के माहिं ॥ ९ ॥
का सुर का नर असुर का सब पैं दृष्टि समान।
एक भक्ति तें होत बस या हित रेखा जान ॥१०॥
नित शिव जू वंदन करत तिन नैननि की रेख।
या हित चिन्ह त्रिकोन को कृष्ण-चरन मैं देख ॥११॥

वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

वृक्ष-रूप सब जग अहै बीज-रूप हरि आप।
यातें तरु को चिन्ह पग प्रगटत परम प्रताप ॥ १ ॥

जे भव आतप सों तपे तिनहीं के सुख हेतु।
वृक्ष-चिन्ह निज चरन मैं धारत खगपति-केतु ॥ २ ॥
जहँ पग धरैं निकुंजमय भूमि तहाँ की होय।
या हित तरु को चिन्ह पद पुरवत रस कों सोय ॥ ३ ॥
यहाँ कल्पतरु सों अधिक भक्त मनोरथ दान।
वृक्ष चिन्ह निज पद धरत यातें श्री भगवान ॥ ४ ॥
श्री गोपीजन-मन-विहँग इहाँ करैं विश्राम।
या हित तरु को चिन्ह पद धारत हैं घनश्याम ॥ ५ ॥
केवल पर-उपकार-हित वृक्ष-सरिस जग कौन।
तातें ताको चिन्ह पद धारत राधा-रौन ॥ ६ ॥
प्रेम-नयन-जल सों सिंचे सुद्ध चित्त के खेत।
वनमाली के चरन में वृक्ष चिन्ह येहि हेत ॥ ७ ॥
पाहन मारेहु देत फल सोइ गुन यामैं जान।
वृक्ष-चिन्ह श्रीकृष्ण-पद पर-उपकार-प्रमान ॥ ८ ॥

वाण चिन्ह वर्णन

सब कटाक्ष ब्रज-जुवति के बसत एक ही ठौर।
सोई बान को चिन्ह है कारन नहिं कछु और ॥ १ ॥

गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

केवल जोगी पावहीं नहिं यामैं कछु नेम।
या हित गृह को चिन्ह जिहि गृही लहैं करि प्रेम ॥ १ ॥
मति डूबौ भव-सिंधु मैं यामैं करौ निवास।
मानहु गृह को चिन्ह पद जनन बोलावत पास ॥ २ ॥
शिव जू के मन को मनहुँ महल बनाये स्याम।
चिन्ह होय दरसत सोई हरि-पद कंज ललाम ॥ ३ ॥

गृही जानि मन बुद्धि को दंपति निवसन हेत।
अपने पद कमलन दियो दयानिकेत निकेत ॥ ४ ॥

अग्निकुंड के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री वल्लभ हैं अनल-वपु तहाँ सरन जे जात।
ते मम पद पावत सदा येहि हित कुंड लखात ॥ १ ॥
श्री गोपीजन को विरह रह्यौ जौन श्री गात।
एक देस में सिमिटि सोइ अग्निकुंड दरसात ॥ २ ॥
मन तपि कै मम चरन मैं कथित धान सम होइ।
तब न और कछु जन चहै अग्निकुंड है सोइ ॥ ३ ॥
जग्य-पुरुष तजि और को को सेवै मतिमंद।
अग्निकुंड को चिन्ह येहि हित राख्यौ ब्रजचन्द ॥ ४ ॥

सर्प चिन्ह को भाव वर्णन

निज पद चिन्हित तेहि कियो ताको निज पद राखि।
काली-मर्दन-चरन यह भक्त-अनुग्रह-साखि ॥ १ ॥
नाग-चिन्ह मत जानियो यह प्रभु-पद के पास।
भक्तन के मन बाँधिबे हित राखी अहि पास ॥ २ ॥
श्री राधा के विरह मैं मति त्रि-अनिल दुख देइ।
सर्प-चिन्ह प्रभु सर्वदा राखत हैं पद सेइ ॥ ३ ॥
याकी सरनन दीन जन सर्पहि* आवहु धाय॥
सर्प-चिन्ह एहि हेतु पद राखत श्री ब्रजराय ॥ ४ ॥

सैल चिन्ह को भाव वर्णन

सत्य-करन हरिदास वर श्री गिरिवर को नाम।
सैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यो श्री घनस्याम ॥ १ ॥

* सर्प का अर्थ शीघ्र है।

श्री राधा के विरह में पग पग लगत पहार।
मैल-चिन्ह निज चरन मैं राख्यौ यहै विचार ॥ २ ॥

श्रीगोपालतापिनी श्रुति के मत से

चरण चिन्ह वर्णन

परम ब्रह्म के चरन मैं मुख्य चिन्ह ध्वज-छत्र।
ऊरध अध अज लोक सों सोई द्वै पद अत्र ॥ १ ॥
ध्वजा दंड सो मेरु है वन्यो स्वर्णमय सोय।
सूर्य्य-चन्द्र की कान्ति जो ध्वज पताक सो होय ॥ २ ॥
आत पत्र को चिन्ह जोइ ब्रह्मलोक सो जान।
येहि विधि श्रुति निरनै करत चरन-चिन्ह परमान ॥ ३ ॥
रथ विनु अश्व लखात है मीन चिन्ह द्वै जान।
धनुष बिना परतंच को यह कोउ करत प्रमान ॥ ४ ॥

मिलि कै चिन्हन को भाव वर्णन

दो चिह्न को मिलि कै वर्णन

तहाँ हाथी के और अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

काम करत सब आपु ही पुनि प्रेरकहू आप।
या हित अंकुश-हस्ति दोउ चिन्ह चरन गत पाप ॥ १ ॥

तिल और यव के चिन्ह को भाव वर्णन

देव-काज अरु पितर दोउ याही सों सिधि होइ।
याके बिन कोउ गति नहीं येहि हित तिल-यव दोइ ॥ १ ॥
देव-पितर दोउ रिनन सों मुक्त होत सो जीव।
जो या पद को सेवई सकल सुखन को सींव ॥ २ ॥

कमुद और कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

राति दिवस दोउ सम अहै यह तौ स्वयं प्रकास।
या हित निसि दिन के दोऊ चिन्ह कृष्ण-पद पास ॥ १ ॥

तीनि चिह्न को मिलि कै वर्णन

तहाँ पर्वत, कमल और वृक्ष के चिन्ह को भाव वर्णन

श्री कालिंदी कमल सों गिरि सों श्री गिरिराज ।
श्री वृन्दावन वृक्ष सों प्रगटत सह सुख साज ॥ १ ॥
जहाँ जहाँ प्रभु पद धरत तहाँ तीन प्रगटंत ।
या हित तीनहु चिन्ह ए धारत राधाकंत ॥ २ ॥

त्रिकोन, नवकोन और अष्टकोन के चिन्ह को भाव वर्णन

तीन आठ नव मिलि सबै बीस अंक पद जान ।
जीत्यौ बिस्वे बीस सोइ जो सेवत करि ध्यान ॥ १ ॥

चारि चिह्नन को मिलि कै वर्णन

तहाँ अमृत-कुंभ, धनु, वंशी और गृह के चिन्ह को भाव वर्णन

वैद्यक अमृत-कुंभ सों धनु सों धनु को वेद ।
गान वेद वंशी प्रगट शिल्प वेद गृह भेद ॥ १ ॥
रिग यजु साम अथर्व के ये चारहु उपवेद ।
सो या पद सों प्रगट एहि हेतु चिन्ह गत खेद ॥ २ ॥

सर्प, कमल, अग्निकुंड और गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

रामानुज मत सर्प सों शेष अचारज मानि ।
निंबारक मत कमल सों रविहि पद्म प्रिय जानि ॥ १ ॥
विष्णुस्वामि मत कुंड सों श्रीवल्लभ वपु जान ।
गदा चिन्ह सों माध्व मत आचारज हनुमान ॥ २ ॥
इन चारहु मत मैं रहै तिनहिं मिलैं भगवंत ।
कुंड गदा अहि कमल येहि हित जानहु सब संत ॥ ३ ॥

शक्ति, सर्प, बरछी, अंकुश को भाव वर्णन

सर्प चिन्ह श्री शंभु को शक्ति सु गिरिजा भेस ।
कुंत कारतिक आपु है अंकुश अहै गणेस ॥ १ ॥
प्रिया-पुत्र सँग नित्य शिव चरन वसत हैं आप ।
तिनके आयुध चिन्ह सब प्रगटित प्रबल प्रताप ॥ २ ॥

पाँच चिन्हन को मिलि कै वर्णन

तहाँ गदा, सर्प, कमल, अंकुश और
शक्ति के चिन्ह को भाव वर्णन

गदा विष्णु को जानिए अहि शिव जू के साथ ।
दिवसनाथ को कमल है अंकुश है गणनाथ ॥ १ ॥
शक्ति रूप तहँ शक्ति है एई पाँचौ देव ।
चिन्ह रूप श्रीकृष्ण-पद करत सदा शुभ सेव ॥ २ ॥
जिमि सब जल मिलि नदिन मैं अंत समुद्र समात ।
तिमि चाहौ जाकौ भजौ कृष्ण चरन सब जात ॥ ३ ॥

छ चिन्हन को मिलि कै वर्णन

तहाँ छत्र, सिंहासन, रथ, घोड़ा,
हाथी और धनुष के चिन्ह को भाव वर्णन

छत्र सिहासन बाजि गज रथ धनु ए पट जान ।
राज-चिन्ह मैं मुख्य हैं करत राज-पद दान ॥ १ ॥
जो या पद को नित भजै सेवै करि करि ध्यान ।
महाराज तिनको करत सह स्यामा भगवान ॥ २ ॥

सात चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेणु, मत्स्य, चन्द्र, वृक्ष, कमल, कुमुद, गिरि के चिन्ह को भाव वर्णन

आवाहन हित वेणु झप काम बढ़ावन हेत ।
चंद्र विरह-बरधन करन तरु सुगंधि रस देत ॥ १ ॥
कमल हृदय प्रफुलित-करन कुमुद प्रेम-दृष्टान्त ।
गिरिवर सेवा करन हित धारत राधा-कांत ॥ २ ॥
रास-विलास-सिंगार के ये उद्दीपन सात ।
आलंबन हरि संग ही राखत पद-जलजात ॥ ३ ॥

आठ चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वज्र, अग्निकुंड, तिल, तलवार, मच्छ, गदा, अष्टकोण और सर्प को भाव वर्णन

वज्र इन्द्र वपु, अनल है अग्निकुंड वपु आप ।
जम तिल वपु, तरवार वपु नैरित प्रगट प्रताप ॥ १ ॥
वरुन मच्छ वपु, गदा वपु वायु जानि पुनि लेहु ।
अष्टकोन वपु धनद है, अहि इसान कहि देहु ॥ २ ॥
आयुध वाहन सिद्धि झप आदिक को संबंध ।
इन चिन्हन सों देव सों जानहु करि मन संध ॥ ३ ॥
सोइ आठो दिगपाल मनु सेवत हरि-पद आइ ।
अथवा दिगपति होइ जो रहै चरन सिरु नाइ ॥ ४ ॥

पुनः

अंकुश, बरछी, शक्ति, पवि, गदा, धनुष, असि, तीर ।
आठ शस्त्र को चिन्ह यह धारत पद बलबीर ॥ १ ॥
आठहु दिसि सों जनन की मनु-इच्छा के हेत ।
निज पद में ये शस्त्र सब धारत रमा-निकेत ॥ २ ॥

नव चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेनु, चंद्र, पर्वत, रथ, अग्नि, वज्र, मीन, गज, स्वस्तिक चिन्ह को भाव वर्णन

वेनु-चन्द्र-गिरि-रथ-अनल-वज्र-मीन-गज-रेख ।
आठौ रस प्रगटत सदा नवम स्वस्तिकहु देख ॥ १ ॥
वेनु प्रगट शृंगार रस जो विहार को मूल ।
चरन कमल मैं चन्द्रमा यह अद्भुत गत सूल ॥ २ ॥
कोमल पद कहँ गिरि प्रगट यहै हास्य की बात ।
रन उद्यम आगे रहै रथ रस वीर लखात ॥ ३ ॥
निसिचर-तूलहि दहन हित अग्निकुंड भय-रूप ।
रौद्र सर्प को चिन्ह है दुष्टन-काल-सरूप ॥ ४ ॥
गज करुणा रस रूप है जिन अति करी पुकार ।
मीन चिन्ह वीभत्स है वंगाली-व्यवहार ॥ ५ ॥
नाटक के ये आठ रस आठ चिन्ह सों होत ।
स्वस्तिक सों पुनि शांत को रस नित करत उदोत ॥ ६ ॥
कर-पद-मुख आनंदमय प्रभु सब रस की खान ।
ताने नव रस चिन्ह यह धारत पद भगवान ॥ ७ ॥

दस चिन्ह को मिलि कै वर्णन

तहाँ वेणु, शंख, गज, कमल, यव, रथ, गिरि, गदा, वृक्ष, मीन को भाव वर्णन

वेनु बढ़ावत श्रवन को, शंख सुकीर्तन जान ।
गज सुमिरन कों कमल पद, पूजन कमल वखान ॥ १ ॥
भोग रूप यव अरचनहि, वंदन गिरि गिरिराज ।
गदा दास्य हनुमान को, सख्य सारथी-साज ॥ २ ॥

तरु तन मन अरपन सबै, प्रेम लक्षना मीन ।
दस विधि उद्दीपन करहिं भक्ति चिन्ह सत तीन ॥ ३ ॥

मत्स्य, अमृत-कुंभ, पर्वत, वज्र, छत्र, धनुष, बान, वेणु,
अग्निकुंड और तरवार के चिन्ह को एक में वर्णन

प्रगट मत्स्य के चिन्ह सों विष्णु मत्स्य अवतार ।
अमृत-कुंभ सों कच्छ है भयो जो मथती बार ॥ १ ॥
पर्व्वत सों वाराह भे धरनि-उधारन-रूप ।
वज्र चिन्ह नरसिंह के जे नख वज्र-सरूप ॥ २ ॥
बामन जू हैं छत्र सों जो है बटु को अंग ।
परशुराम धनु चिन्ह है गए जो धनु के संग ॥ ३ ॥
बान चिन्ह सों प्रगट श्री रामचन्द्र महराज ।
वेनु-चिन्ह हलधर प्रगट व्यूह रूप सह साज ॥ ४ ॥
अग्निकुंड सों बुध भए जिन मख निंदा कीन ।
कलकी असि सों जानिये म्लेच्छ-हरन-परवीन ॥ ५ ॥
भीर परत जब भक्त पर तब अवतारहिं लेत ।
अवतारी श्रीकृष्ण पद दसौ चिन्ह एहि हेत ॥ ६ ॥

ग्यारह चिन्ह को मिलि के वर्णन

तहाँ शक्ति, अग्निकुंड, हाथी, कुंभ, धनुष, चंद्र, जव, वृक्ष,
त्रिकोण, पर्वत, सर्प को भाव वर्णन

श्री शिव जू हरि-चरन में करत सर्व्वदा वास ।
आयुध भूषन आदि सह ग्यारह रूप प्रकास ॥ १ ॥
शक्ति जानि गिरि-नंदिनी परम शक्ति जो आप ।
अग्नि-कुंड तीजो नयन अथवा धूनी थाप ॥ २ ॥

गज जानौ गज को चरम धरत जाहि भगवान।
कुंभ गंग-जल को कहौ रहत सीस अस्थान ॥ ३ ॥
धनुष पिनाकहि मानिये सब आयुध को ईस।
चंद्र जानि चूड़ारतन जेहि धारत शिव सीस ॥ ४ ॥
श्रीतनु नवधा भक्तिमय सोइ नवकोन लखाइ।
वृक्ष महावट वृक्ष है रहत जहाँ सुरराइ ॥ ५ ॥
नेत्र रूप वा शूल को रूप त्रिकोनहि जान।
पर्व्वत सोइ कैलास है जहँ विहरत भगवान ॥ ६ ॥
सर्प अभूखन अंग के कंकन मैं वा सेस।
एहि विधि श्री शिव बसहिं नित चरन माँहिं सुभ वेस ॥ ७ ॥
को इनकी सम करि सकै भक्तन के सिरताज।
आसुतोष जो रीझि कै देहिं भक्ति सह साज ॥ ८ ॥
जिन निज प्रभु कों जा दिवस आत्म-समर्पन कीन।
चंदन-भूषन-वसन-भष-सेज आदि तजि दीन ॥ ९ ॥
भस्म-सर्प-गज-छाल विष परवत माँहि निवास।
तबसों अंगीकृत कियो तज्यौ सबै सुखरास ॥१०॥

अन्य मत से चिन्हन को रंग वर्णन

स्वस्तिक पीवर वर्ण को, पाटल है अठ-कोन।
स्वेत रंग को छत्र है, हरित कल्पतरु जौन ॥ १ ॥
स्वर्ण वर्ण को चक्र है, पाटल जव की माल।
ऊरध रेखा अरुण है, लोहित ध्वजा विसाल ॥ २ ॥
वज्र बीजुरी रंग को, अंकुश है पुनि स्याम।
सायक त्रय चित्रित वरन, पद्म अरुण अठ-धाम ॥ ३ ॥
अस्व चित्र रँग को वन्यौं, मुकुट स्वर्ण के रंग।
सिंहासन चित्रित वरन सोभित सुभग सुढंग ॥ ४ ॥

व्योम चँवर को चिन्ह है नील वर्ण अति स्वच्छ ।
जव अँगुष्ट के मूल मैं पाटल वर्ण प्रतच्छ ॥ ५ ॥
रेखा पुरुपाकार है पाटल रंग प्रमान ।
ये अष्टादश चिन्ह श्री हरि दहिने पद जान ॥ ६ ॥
जे हरि के दक्षिन चरन ते राधा-पद वाम ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह अव सुनहु विचित्र ललाम ॥ ७ ॥
स्वेत रंग को मत्स्य है, कलश चिन्ह है लाल ।
अर्ध चंद्र पुनि स्वेत है, अरुण त्रिकोन विसाल ॥ ८ ॥
स्याम वरन पुनि जंवु फल, काही धनु की रेख ।
गोखुर पाटल रंग को, शंख श्वेत रँग देख ॥ ९ ॥
गदा स्याम रँग जानिये, विंदु चिन्ह है पीत ।
खड्ग अरुन षटकोन, जम दंड श्याम की रीत ॥१०॥
त्रिवली पाटल रंग की पूर्ण चंद्र घृत रंग ।
पीत रंग चौकोन है पृथ्वी चिन्ह सुढंग ॥११॥
तलवा पाटल रंग के दोउ चरनन के जान ।
कृष्ण वाम पद चिन्ह सो राधा दक्षिन मान ॥१२॥
या विधि चौंतिस चिन्ह हैं जुगल चरन जलजात ।
छाँडि सकल भव-जाल को भजौ याहि हे तात ॥१३॥

श्री स्वामिनी जी के चरण चिन्ह के भाव वर्णन

छप्पय

छत्र चक्र ध्वज लता पुष्प कंकण अंवुज पुनि ।
अंकुश ऊरध रेख अर्ध ससि यव वाएँ गुनि ॥
पाश गदा रथ यज्ञवेदि अरु कुंडल जानौ ।
वहुरि मत्स्य गिरिराज शंख दहिने पद मानौ ॥
श्रीकृष्ण प्राणप्रिय राधिका चरण चिन्ह उन्नीसवर ।
'हरिचंद' सीस राजत सदा कलिमल-हर कल्याणकर ॥ १ ॥

छत्र के चिन्ह को भाव वर्णन

दोहा

सब गोपिन की स्वामिनी प्रगट करन यह अत्र ।
गोप-छत्रपति-कामिनी धर्‍यो कमल-पद छत्र ॥ १ ॥
प्रीतम-बिरहातप-शमन हेत सकल सुखधाम ।
छत्र चिन्ह निज कंज पद धरत राधिका बाम ॥ २ ॥
यदुपति ब्रजपति गोपपति त्रिभुवनपति भगवान ।
तिनहूँ की यह स्वामिनी छत्र चिन्ह यह जान ॥ ३ ॥

चक्र के चिन्ह को भाव वर्णन

एक-चक्र ब्रजभूमि मैं श्रीराधा को राज ।
चक्र चिन्ह प्रगटित करन यह सुन चरन बिराज ॥ १ ॥
मान समै हरि आप ही चरन पलोटत आय ।
कृष्ण कमल कर चिन्ह सो राधा-चरन लखाय ॥ २ ॥
दहन पाप निज जनन के हरन हृदय-तम घोर ।
तेज तत्व को चिन्ह पद मोहन चित को चोर ॥ ३ ॥

ध्वज के चिन्ह को भाव वर्णन

परम बिजय सब तियन सों श्रीराधा पद जान ।
यह दरसावन हेतु पद ध्वज को चिन्ह महान ॥ १ ॥

लता चिन्ह को भाव वर्णन

पिया मनोरथ की लता चरन बसी मनु आय ।
लता चिन्ह है प्रगट सोइ राधा-चरन दिखाय ॥ १ ॥
करि आश्रय श्रीकृष्ण को रहत सदा निरधार ।
लता-चिन्ह एहि हेत सो रहत न बिनु आधार ॥ २ ॥
देवी वृंदा बिपिन की प्रगट करन यह बात ।
लता चिन्ह श्रीराधिका धारत पद-जलजात ॥ ३ ॥

सकल महौषधि गनन की परम देवता आप ।
सोइ भव रोग महौषधी चरन लता की छाप ॥ ४ ॥
लता चिन्ह पद आपुके वृक्ष चिन्ह पद श्याम ।
मनहुँ रेख प्रगटित करत यह संबंध ललाम ॥ ५ ॥
चरन धरत जा भूमि पर तहाँ कुंजमय होत ।
लता चिन्ह श्री कमल पद या हित करत उदोत ॥ ६ ॥
पाग चिन्ह मानहुँ रह्यौ लपटि लता आकार ।
मानिनि के पद-पद्म में बुधजन लेहु विचार ॥ ७ ॥

पुष्प के चिन्ह को भाव वर्णन

कीरतिमय सौरभ सदा या सों प्रगटित होय ।
या हित चिन्ह सुपुष्प को रह्यो चरन-तल सोय ॥ १ ॥
पाय पलोटत मान में चरन न होय कठोर ।
कुसुम चिन्ह श्रीराधिका धारत यह मति मोर ॥ २ ॥
सब फल याही सों प्रगट सेओ येहि चित लाय ।
पुष्प चिन्ह श्री राधिका पद येहि हेत लखाय ॥ ३ ॥
कोमल पद लखि कै पिया कुसुम पाँवड़े कीन ।
सोइ श्रीराधा कमल पद कुसुमित चिन्ह नवीन ॥ ४ ॥

कंकण के चिन्ह को भाव वर्णन

पिय-विहार में मुखर लखि पद तर दीनो डारि ।
कंकन को पद चिन्ह सोइ धारत पद सुकुमारि ॥ १ ॥
पिय कर को निज चरन को प्रगट करन अति हेत ।
मानिनि-पद में वलय को चिन्ह दिखाई देत ॥ २ ॥

कमल के चिन्ह को भाव वर्णन

कमलादिक देवी सदा सेवत पद दै चित्त ।
कमल चिन्ह श्रीकमल पद धारत एहि हित नित्त ॥ १ ॥

अति कोमल सुकुमार श्री चरन कमल हैं आप ।
नेत्र कमल के दृष्टि की सोई मानौ छाप ॥ २ ॥
कमल रूप वृंदा विपिन बसत चरन मे सोइ ।
अधिपतित्व सूचित करत कमल कमल पद होइ ॥ ३ ॥
नित्य चरन सेवन करत विष्णु जानि सुख-सद्म ।
पद्मादिक आयुधन के चिन्ह सोई पद-पद्म ॥ ४ ॥
पद्मादिक सब निधिन को करत पद्म-पद दान ।
यातें पद्मा-चरन मैं पद्म चिन्ह पहिचान ॥ ५ ॥

ऊर्ध रेखा के चिन्ह को भाव वर्णन

अति सूधो श्री चरन को यह मारग निरुपाधि ।
ऊरध रेखा चरन मैं ताहि लेहु आराधि ॥ १ ॥
शरन गए ते तरहिंगे यहै लीक कहि दीन ।
ऊरध रेखा चिन्ह है सोई चरन नवीन ॥ २ ॥

अंकुश के चिन्ह को भाव वर्णन

बहु-नायक पिय-मन-सुगज मति औरन पै जाय ।
या हित अंकुश चिन्ह श्री राधा-पद दरसाय ॥ १ ॥

अर्ध-चन्द्र के चिन्ह को भाव वर्णन

पूरन दम ससि-नखन सों मनहुँ अनादर पाय ।
सूखि चंद्र आधो भयो सोई चिन्ह लखाय ॥ १ ॥
जे अ-भक्त कु-रसिक कुटिल ते न सकहिं इत आय ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह येहि हेत चरन दरसाय ॥ २ ॥
निष्कलंक जग-बंद्य पुनि दिन दिन याकी वृद्धि ।
अर्ध-चंद्र को चिन्ह है या हित करत समृद्धि ॥ ३ ॥
राहु ग्रसै पूरन ससिहि ग्रसै न येहि लखि वक्र ।
अर्ध-चन्द्र को चिन्ह पद देखत जेहि शिव-सक्र ॥ ४ ॥

यव के चिन्ह को भाव वर्णन

परम प्रथित निज यश-करन नर को जीवन प्रान।
राजस यव को चिन्ह पद राधा धरत सुजान ॥ १ ॥
भोजन को मत सोच करु भजु पद तजु जंजाल।
जव को चिन्ह लखात पद हरन पाप को जाल ॥ २ ॥

इति श्री वाम पद चिन्हम्।

पाश के चिन्ह को भाव वर्णन

भव-बंधन तिनके कटैं जे आवैं करि आस।
यह आशय प्रगटित करत पास प्रिया-पद पास ॥ १ ॥
जे आवैं याकी सरन कबहुँ न ते छुटि जाहिं।
पास-चिन्ह श्री राधिका येहि कारन पद माहिं ॥ २ ॥
पिय मन बंधन हेत मनु पास-चिन्ह पद सोभ।
सेवत जाको शंभु अज भक्ति दान के लोभ ॥ ३ ॥

गदा के चिन्ह को भाव वर्णन

जे आवत याकी शरन पितर सबै तरि जात।
गया गदाधर चिन्ह पद या हित गदा लखात ॥ १ ॥

रथ के चिन्ह को भाव वर्णन

जामैं श्रम कछु होय नहिं चलत समय वन-कुंज।
या हित रथ को चिन्ह पग सोभित सब सुख-पुंज ॥ १ ॥
यह जग सब रथ रूप है सारथि प्रेरक आप।
या हित रथ को चिन्ह है पग मैं प्रगट प्रताप ॥ २ ॥

वेदी के चिन्ह को भाव वर्णन

अग्नि रूप ह्वै जगत को किया पुष्टि रस दान।
या हित वेदी चिन्ह है प्यारी-चरन महान ॥ १ ॥

यग्य रूप श्रीकृष्ण हैं स्वधा रूप हैं आप।
यातें वेदी चिन्ह है चरन हरन सब पाप ॥ २ ॥

कुंडल के चिन्ह को भाव वर्णन

प्यारी पग नूपुर मधुर धुनि सुनिबे के हेत।
मनहुँ करन पिय के बसे चरन सरन सुख देत ॥ १ ॥
सांख्य योग प्रतिपाद्य हैं ये दोउ पद जलजात।
या हित कुंडल चिन्ह श्री राधा-चरन लखात ॥ २ ॥

मत्स्य के चिन्ह को भाव वर्णन

जल बिनु मीन रहै नहीं तिमि पिय बिनु हम नाहिं।
यह प्रगटावन हेत हैं मीन चिन्ह पद माँहि ॥ १ ॥

पर्ब्बत के चिन्ह को भाव वर्णन

सब ब्रज पूजत गिरिवरहि सो सेवत है पाय।
यह महात्म्य प्रगटित करन गिरिवर चिन्ह लखाय ॥ १ ॥

शंख के चिन्ह को भाव वर्णन

कबहूँ पिय को होइ नहि बिरह ज्वाल की ताप।
नीर तत्व को चिन्ह पद या सो धारत आप ॥ १ ॥

इति श्री दक्षिन पद चिन्हम्।

भक्त-मंजूषा आदिक ग्रन्थ सों अन्य वर्णन

जव बैंड़ो अंगुष्ठ मध ऊपर सुख को छत्र।
दक्षिन दिसि को फरहरै ध्वज ऊपर सुख तत्र ॥ १ ॥
पुनि पताक ताके तले कल्पलता के रेख।
जो ऊपर दिसि कों बढ़ी देत सकल फल लेख ॥ २ ॥

ऊरध रेखा कमल पुनि चक्र आदि अति स्वच्छ ।
दक्षिण श्री हरि के चरण इतने चिन्ह प्रतच्छ ॥ ३ ॥
श्री राधा के वाम पद अष्ट पत्र को पद्म ।
पुनि कनिष्ठिका के तले चक्र चिन्ह को सद्म ॥ ४ ॥
अग्र शृंग अंकुश करौ ताही के ढिग ध्यान ।
नीचे मुख को अर्ध ससि एड़ी मध्य प्रमान ॥ ५ ॥
ताके ढिग है वलय को चिन्ह परम सुख-मूल ।
दक्षिन पद के चिन्ह अब सुनहु हरन भव-सूल ॥ ६ ॥
शंख रह्यौ अंगुष्ट मैं ताको मुख अति हीन ।
चार अँगुरियन के तले गिरिवर चिन्ह नवीन ॥ ७ ॥
ऊपर सिर सब अंग-जुत रथ है ताके पास ।
दक्षिन दिसि ताके गदा वाँए शक्ति विलास ॥ ८ ॥
एड़ी पैं ताके तले ऊपर मुख को मीन ।
चरन-चिन्ह तेहि भाँति श्री राधा-पद लखि लीन ॥ ९ ॥

अन्य मत सों श्री स्वामिनी जू के चरन चिन्ह

वाम चरन अंगुष्ट तल जव को चिन्ह लखाइ ।
अर्ध चरन लौं घूमि कै ऊरध रेखा जाइ ॥ १ ॥
चरन-मध्य ध्वज अब्ज है पुष्प-लता पुनि सोह ।
पुनि कनिष्ठिका के तले अंकुश नासन मोह ॥ २ ॥
चक्र मूल में चिन्ह द्वै कंकन है अरु छत्र ।
एड़ी में पुनि अर्ध ससि सुनो अबै अन्यत्र ॥ ३ ॥
एड़ी में सुभ सैल अरु स्यंदन ऊपर राज ।
शक्ति गदा दोउ ओर दर अँगुठा मूल विराज ॥ ४ ॥
कनिष्ठिका अँगुरी तले वेदी सुंदर जान ।
कुण्डल है ताके तले दक्षिन पद पहिचान ॥ ५ ॥

तुलसी शब्दार्थ प्रकाश के मत सों युगल स्वरूप के चिन्ह

छप्पय

ऊरध रेखा छत्र चक्र जव कमल ध्वजावर।
अंकुस कुलिस सुचारि सथीयें चारि जंबुधर॥
अष्टकोन दश एक लछन दहिने पग जानौ।
वाम पाद आकास शंखवर धनुप पिछानौ॥
गोपद त्रिकोन घट चारि ससि मीन आठ ए चिन्हवर।
श्रीराधा-रमन उदार पद ध्यान सकल कल्यानकर॥ १॥

पुप्प लता जव वलय ध्वजा ऊरध रेखा वर।
छत्र चक्र विधु कलस चारु अंकुश दहिने धर॥
कुंडल बेंदी शंख गदा बरछी रथ मीना।
वाम चरन के चिन्ह सम ए कहत प्रवीना॥
ऐसे सत्रह चिन्ह-जुत राधा-पद बंदत अमर।
सुमिरत अघहर अनघवर नंद-सुअन आनंदकर॥ २॥

गर्ग-संहिता के मत सों चरण चिन्ह वर्णन

दोहा

चक्रांकुश यव छत्र ध्वज स्वस्तिक विंदु नवीन।
अष्टकोन पवि कमल तिल शंख कुंभ पुनि मीन॥ १॥
ऊरध रेख त्रिकोन धनु गोखुर आधो चंद।
ए उनीस शुभ चिन्ह निज चरन धरत नँद-नंद॥ २॥

अन्य मत सों श्रीमती जू के चरन-चिन्ह वर्णन

केतु छत्र स्यंदन कमल ऊरध रेखा चक्र।
अर्ध चंद्र कुश बिन्दु गिरि शंख शक्ति अति वक्र॥ १॥
लोनी लता लवंग की गदा बिन्दु द्वै जान।
सिंहासन पाठीन पुनि सोभित चरन विमान॥ २॥

ए अष्टादश चिन्ह श्री राधा-पद में जान।
जा कहँ गावत रैन दिन अष्टादसौ पुरान ॥ ३ ॥
जग्य श्रुवा को चिन्ह है काहू के मत सोइ।
पुनि लक्ष्मी को चिन्हहू मानत हरि-पद कोइ ॥ ४ ॥
श्रीराधा-पद मोर को चिन्ह कहत कोउ संत।
द्वै फल की बरछी कोऊ मानत पद कुश अंत ॥ ५ ॥

श्री मद्भागवत के अनेक टीकाकारन के मत सों
श्री चरण-चिन्ह को वर्णन

लाँबो प्रभु को श्री चरन चौदह अंगुल जान।
पट अंगुल विस्तार मैं याको अहै प्रमान ॥ १ ॥
दक्षिन पद के मध्य मैं ध्वजा-चिन्ह सुभ जान।
अँगुरी नीचे पद्म है, पवि दक्षिन दिसि जान ॥ २ ॥
अंकुश वाके अग्र है, जव अँगुष्ठ के मूल।
स्वस्तिक काहू ठौर है हरन भक्त-जन-सूल ॥ ३ ॥
तल सों जहँ लौं मध्यमा सोभित ऊरध रेख।
ऊरध गति तेहि देत है जो वाको लखि लेख ॥ ४ ॥
आठ अँगुल तजि अग्र सों तर्जनि अँगुठा बीच।
अष्टकोन को चिन्ह लखि सुभ गति पावत नीच ॥ ५ ॥
वाम चरन मैं अग्र सों तजि कै अंगुल चार।
विना प्रतंचा को धनुप सोभित अतिहि उदार ॥ ६ ॥
मध्य चरन त्रैकोन है अमृत कलश कहुँ देख।
द्वै मंडल को विंदु नभ चिन्ह अग्र पैं लेख ॥ ७ ॥
अर्ध चंद्र त्रैकोन के नीचे परत लखाय।
गो-पद नीचे धनुप के तीरथ को समुदाय ॥ ८ ॥
एड़ी पै पाठीन है दोउ पद जंबू-रेख।
दक्षिन पद अंगुष्ट मधि चक्र चिन्ह कों लेख ॥ ९ ॥

छत्र चिन्ह ताके तले शोभित अतिहि पुनीत।
वाम अँगूठा शंख है यह चिन्हन की रीत ॥१०॥
जहँ पूरन प्रागट्य तहँ उन्निस परत लखाइ।
अंश कला में एक द्वै तीन कहूँ दरसाइ ॥११॥
बाल-बोधिनी तोषिनी चक्र-वर्त्तिनी जान।
वैष्णव-जन-आनंदिनी तिनको यहै प्रमान ॥१२॥
चरन-चिन्ह निज ग्रंथ में यही लिख्यौ हरिराय।
विष्णु पुरान प्रमान पुनि पद्म-वचन कों पाय ॥१३॥
स्कंध-मत्स्य के वाक्य सों याको अहै प्रमान।
हयग्रीव की संहिता वाहू में यह जान ॥१४॥

श्री राधिका-सहस्र-नाम के मत सों चिन्ह को वर्णन

कमल गुलाब अटा सु-रथ कुंडल कुंजर छत्र।
फूल माल अरु बीजुरी दंड मुकुट पुनि तत्र ॥ १ ॥
पूरन ससि को चिन्ह है बहुरि ओढ़नी जान।
नारदीय के वचन को जानहु लिखित प्रमान ॥ २ ॥

श्री महाप्रभु श्री आचार्य्य जी के चरण चिन्ह वर्णन

छप्पय

कमल पताका गदा वज्र तोरन अति सुंदर।
कुसुमलता पुनि धनुप धरत दक्षिन पद में वर ॥
ध्वज अंकुश झष चक्र अष्टदल अंबुद मानौ।
अमृत-कुंभ यव चिन्ह वाम पद में पुनि जानौ ॥
तैलंग वंश सोभित-करन विष्णु स्वामि पथ प्रगट कर।
श्री श्री वल्लभ-पद-चिन्ह ये हृदय नित्य 'हरिचंद'धर ॥ १ ॥

श्री रामचन्द्र जी के चरण-चिन्ह वर्णन

स्वस्तिक ऊरध रेख कोन अठ श्रीहल-मूसल।
अहि वाणांवर वज्र सु-रथ यव कंज अष्टदल ॥
कल्पवृक्ष ध्वज चक्र मुकुट अंकुश सिंहासन।
छत्र चँवर यम-दंड माल यव की नर को तन ॥
चौवीस चिन्ह ये राम-पद प्रथम सुलच्छन जानिए।
'हरिचंद' सोई सिय वाम पद जानि ध्यान उर आनिए ॥ १ ॥

सरयू गोपद महि जम्वू घट जय पताक दर।
गदा अर्ध ससि तिल त्रिकोन षटकोन जीव वर ॥
शक्ति सुधा सर त्रिवलि मीन पूरन ससि वीना।
वंशी धनु पुनि हंस तून चन्द्रिका नवीना ॥
श्री राम-वाम-पद चिन्ह सुभ ए चौविस शिव उक्त सब।
सोइ जनकनंदिनी दक्ष पद भजु सब तजु 'हरिचंद' अब ॥ २ ॥

रसिकन के हित ये कहे चरन-चिन्ह सब गाय।
मति देखै यहि और कोउ करियो वही उपाय ॥ १ ॥
चरन-चिन्ह व्रजराय के जो गावहिं मन लाय।
सो निहचै भव-सिंधु कों गोपद सम करि जाय ॥ २ ॥
लोक वेद कुल-धर्म बल सब प्रकार अति हीन।
पै पद-बल व्रजराज के परम ढिठाई कीन ॥ ३ ॥
यह माला पद-चिन्ह की गुही अमोलक रत्न।
निज सुकंठ मैं धारियो अहो रसिक करि जत्न ॥ ४ ॥
भटक्यौ बहु विधि जग विपिन मिल्यौ न कहुँ विश्राम।
अब आनंदित ह्वै रह्यौ पाइ चरन घनस्याम ॥ ५ ॥
दोऊ हाथ उठाइ कै कहत पुकारि पुकारि।
जो अपनो चाहौ भलौ तौ भजि लेहु मुरारि ॥ ६ ॥

सुत तिय गृह धन राज्य हू या में सुख कछु नाहिं।
परमानंद प्रकास इक कृष्ण-चरन के माहिं ॥ ७ ॥
वेद भेद पायो नहीं भए पुरान पुरान।
स्मृतिहु की सब स्मृति गई पै न मिले भगवान ॥ ८ ॥
मोरौ मुख घर ओर सों तोरौ भव के जाल।
छोरौ सब साधन सुनौ भजौ एक नँदलाल ॥ ९ ॥
अहो नाथ ब्रजनाथ जू कित त्यागौ निज दास।
वेगहि दरसन दीजिये व्यर्थ जात सब साँस ॥१०॥
मरैं नैन जो नहिं लखैं मरैं श्रवन बिनु कान।
मरैं नासिका करहिं नहिं जे तुलसी-रस घ्रान ॥११॥
जीवन तुम बिनु व्यर्थ है प्यारे चतुर सुजान।
यासो ता मरिवो भलौ तपत ताप तें प्रान ॥१२॥
निज अंगीकृत जीव को दसा देखि अति दीन।
क्यों न द्रवत हरि वेगहीं करुना-करन प्रवीन ॥१३॥
निठुराई मत कीजिये नाहीं तौ प्रन जाय।
दया-समुद्र कृपायतन करुना-सींव कहाय ॥१४॥
तुमरे तुमरे सब कहै भे प्रसिद्ध जग माहिं।
कहो सु तुम कहँ छाँड़ि कै कृपासिन्धु कहँ जाहिं ॥१५॥
जद्यपि हम सब भाँति ही कुटिल क्रूर मतिमंद।
तदपि उधारहु देखि कै अपनी दिसि नँद-नंद ॥१६॥
कहूँ हँसै नहि दीन लखि मोहिं जग के नँदलाल।
दीन-बंधु के दास को देखहु ऐसो हाल ॥१७॥
श्रीराधे वृषभानुजा तुम तौ दीन-दयाल।
केहि हित निठुराई धरी देखि दीन को हाल ॥१८॥
मान समै करि कै दया देहु विलम्ब लगाय।
तौ हरि को मालुम परै आरत जन की हाय ॥१९॥

जौं हमरे दोसन लखौ तौ नहिं कछु अवलंब ।
अपुनी दीन-दयालता केवल देखहु अंब ॥२०॥
श्रीवल्लभ वल्लभ कहौ छोड़ि उपाय अनेक ।
जानि आपनो राखिहैं दीनबंधु की टेक ॥२१॥
साधन छाँड़ि अनेक विधि परि रहु द्वारे आय ।
अपनो जानि निवाहिहैं करि कै कोउ उपाय ॥२२॥
श्री जमुना-जल पान करु बसु वृंदावन धाम ।
मुख में महाप्रसाद रखु लै श्री वल्लभ नाम ॥२३॥
तन पुलकित रोमांच करि नैनन नीर बहाव ।
प्रेम-मगन उन्मत्त ह्वै राधा राधा गाव ॥२४॥
ब्रज-रज मैं लोटत रहौ छोड़ि सकल जंजाल ।
चरन राखि विश्वास दृढ़ भजु राधा-गोपाल ॥२५॥
सब दीनन की दीनता सब पापिन को पाप ।
सिमिट आइ मो में रह्यो यह मन समझहु आप ॥२६॥
ताहू पै निस्तारियै अपनी ओर निहारि ।
अंगीकृत रच्छहिं बड़े यह जिय धर्म विचारि ॥२७॥
प्राननाथ ब्रजनाथ जू आरति-हर नँद-नंद ।
धाइ भुजा भरि राखिये डूबत भव 'हरिचंद' ॥२८॥
मरौ ज्ञान वेदान्त को जरौ कर्म को जाल ।
दया-दृष्टि हम पै करौ एक नन्द के लाल ॥२९॥
साधुन को सँग पाइ कै हरि-जस गाइ बजाइ ।
नृत्य करत हरि-प्रेम में ऐसे जनम बिहाइ ॥३०॥
अहो सहो नहिं जात अब बहुत भई नँद-नंद ।
करुना करि करुनायतन राखहु जन 'हरिचंद' ॥३१॥

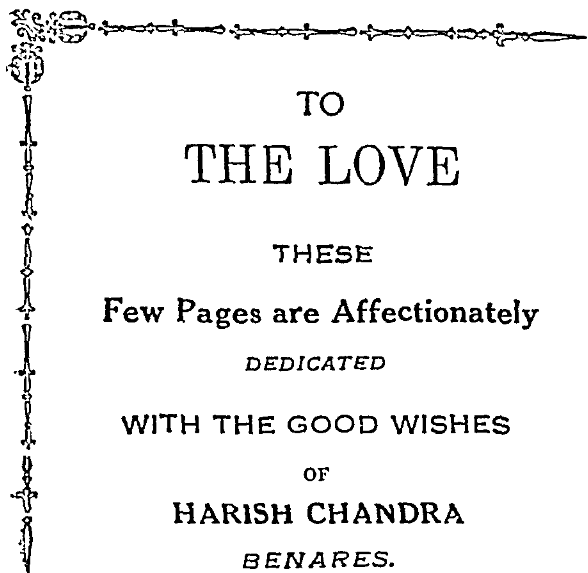
इति

"संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्द,
वज्रांकुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम् ।
उत्तुंगरक्तविलसन्नखचक्रवाल,
ज्योत्स्नाभिराहरमहद्धृदयान्धकारम् ॥१॥

यच्छौचनिसृतसरित्प्रवरोदकेन,
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोभूत् ।
ध्यातुर्मनश्शमलशैलनिसृष्टवज्रं,
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२॥"

प्रेम-मालिका

सं० १९२८



TO

THE LOVE

THESE

Few Pages are Affectionately

DEDICATED

WITH THE GOOD WISHES

OF

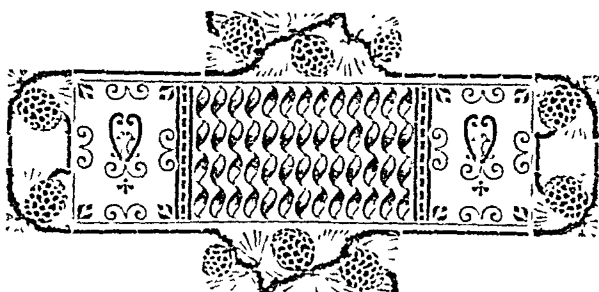
HARISH CHANDRA

BENARES.

विजयते जीवितेशः

इस छोटे से ग्रंथ में मेरे बनाए कीर्तनों में से कतिपय कीर्तन एकत्र किए गए हैं। इसमें कीर्तन तीन भाँति के हैं—एक तो लीला संबंधी, दूसरे दैन्य भाव के और तीसरे परम प्रेममय अनुभव के हैं। इसको एकत्र करना और छपवाना अप्रयोजन था, क्योंकि एक तो संसार में प्रायः अनधिकारी लोग हैं, दूसरे इसके द्वारा लोगों में अपनी प्रसिद्धि की इच्छा नहीं। तथापि परम प्रीति से यह प्रेम-पुष्प-ग्रथित मालिका उसी के श्रीकंठ में समर्पित है जो इसमें गाया गया है।

हरिश्चंद्र।



प्रेम-मालिका

राग यथा-रुचि

प्यारी छवि की रासि बनी।
जाहि बिलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु-जनी ॥
नंद-नँदन सों बाहु मिथुन करि ठाढ़ी जमुना-तीर।
करक होत सौतिन के छवि लखि सिंह कमर पर चीर ॥
कीरति की कन्या जग-धन्या अन्या तुला न वाकी।
वृश्चिक सी कसकत मोहन-हिय भौंह छबीली जाकी ॥
धन धन रूप देखि जेहि प्रति छिन मकरध्वज-तिय लाजै।
जुग कुच-कुंभ बढ़ावत सोभा मीन नयन लखि भाजै ॥
बैस-संधि-संक्रौन-समय तन जाके बसत सदाई।
'हरीचंद' मोहन बड़भागी जिन अंकम करि पाई ॥१॥

आजु तन नीलाम्बर अति सोहै।
तैसे ही केश खुले मुख ऊपर देखत ही मन मोहै ॥
मनु तम-गन लियो जीति चन्द्रमा सौतिन मध्य बँध्यो है।
कै कवि निज जिजमान जूथ में सुंदर आइ बस्यौ है ॥

श्री जमुना जल कमल खिल्यौ कोउ लखि मन अलि ललच्यौ है।
जीति तमोगुन को ताके सिर मनु सतगुन निवस्यौ है ॥
सघन तमाल कुंज में मनु कोउ कुंद फूल प्रगट्यौ है।
'हरीचंद' मोहन-मोहनि छवि बरनै सो कवि को है ॥२॥

राग सारंग

अहो पिय पलकन पै धरि पाँव।
ठीक दुपहरी तपत भूमि मैं नाँगे पद मत आव ॥
करुना करि मेरो कह्यौ मानिकै धूपहि में मति धाव।
मुरझानो लागत मुख-पंकज चलत चहूँ दिसि दाव ॥
जा पद को निज कुच अरु कर पै धरत करत सकुचाव।
जाको कमला राखत है नित कर मैं करि करि चाव ॥
जामैं कली चुभत कुसुमन की कोमल अतिहि सुभाव।
जो मम हृदय कमल पैं विहरत निसि दिन प्रेम-प्रभाव ॥
सोइ कोमल चरनन सों मो हित धावत हौ व्रजराव।
'हरीचंद' ऐसी मति कीजै सह्यौ न जात बनाव ॥३॥

नैना मानत नाहीं, मेरे नैना मानत नाहीं।
लोक-लाज-सीकर मैं जकरे तऊ उतै खिंच जाहीं ॥
पचि हारे गुरुजन सिख दै कै सुनत नहीं कछु कान।
मानत कह्यौ नाहिं काहू को जानत भए अजान ॥
निज चवाव सुनि औरहु हरखत उलटी रीति चलाई।
मदिरा प्रेम पिये पागल ह्वै इत उत डोलत धाई ॥
पर-बस भए मदनमोहन के रंग रँगे सब त्यागी।
'हरीचंद' तजि मुख-कमलन अलि रहैं किते अनुरागी ॥४॥

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी।
मनमोहन सुन्दर नट-नागर श्री वृषभानु-किसोरी ॥

कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वे साँवर यह गोरी ।
ये नीलाम्बर सारी पहिने उनको पीत पिछौरी ॥
एक रूप एक वेस एक वय वरनि सकै कवि को री ।
'हरीचंद' दोउ कुंजन ठाढ़े हँसत करत चित-चोरी ॥५॥

सखी री देखहु बाल-विनोद ।
खेलत राम-कृष्ण दोउ आँगन किलकत हँसत प्रमोद ॥
कबहुँ घुटुरुअन दौरत दोउ मिलि धूर धूसरित गात ।
देखि देखि यह बाल-चरित-छवि जननी बलि बलि जात ॥
झगरत कबहुँ दोउ आनँद भरि कबहुँ चलत हैं धाय ।
कबहुँ गहत माता की चोटी माखन माँगत आय ॥
घर घर तें आवत बृजनारी देखन यह आनंद ।
बाल रूप क्रीड़त हरि आँगन छवि लखि बलि 'हरिचंद' ॥६॥

राग केदारा चौताल

अरी हरि या मग निकसे आइ अचानक, हौं तो झरोखे रही ठाढ़ी ।
देखत रूप ठगौरी सी लागी, विरह-बेलि उर बाढ़ी ॥
गुरुजन के भय संग गई नहिं, रहि गई मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ।
'हरीचंद' बलि ऐसी लाज मैं लगौ री आग, हौं विरहा दुख दाढ़ी ॥७॥

अरी सखी गाज परौ ऐसी लोक-लाज पैं, मदनमोहन सँग जान न पाई ।
हौं तो झरोखे ठाढ़ी देखत ही कछु, आए इतै मैं कन्हाई ॥
औचक दीठ परी मेरे तन, हँसि कछु बंसी बजाई ।
'हरीचंद' मोहिं बिबस छोड़ि कै, तन मन धन प्रान लीनौ सँग लाई ॥८॥

राग बिहागरा

सखी मोरे सैंया नहिं आये बीति गई सारी रात ।
दीपक-जोति मलिन भई सजनी होय गयो परभात ॥

देखत बाट भई यह बिरियाँ बात कही नहिं जात ।
'हरीचंद' बिन बिकल बिरहिनी ठाढ़ी है पछितात ॥९॥

सखी मोहिं पिया सो मिला दे दैहौं गले को हार ।
मग जोहत सारी रैन गँवाई मिले न नंद-कुमार ॥
उन पीतम सों यों जा कहियो तुम बिनु ब्याकुल नार ।
'हरीचंद' क्यों सुरति बिसारी तुम तो चतुर खिलार ॥१०॥

नैन भरि देखौ गोकुल-चंद ।
श्याम बरन तन खौर बिराजत अति सुन्दर नँद-नंद ॥
बिथुरी अलकैं मुख पै झलकैं मनु दोउ मन के फंद ।
मुकुट लटक निरखत रबि लाजत छबि लखि होत अनंद॥
सँग सोहत बृषभानु-नंदिनी प्रमुदित आनँद-कंद ।
'हरीचंद' मन लुब्ध मधुप तहँ पीवत रस मकरंद ॥११॥

नैन भरि देखो श्री राधा बाल ।
मुख छबि लखि पूरन ससि लाजत सोभा अतिहि रसाल ॥
मृग से नैन कोकिल सी बानी अरु गयंद सी चाल ।
नख सिख लौं सब सहजहिं सुन्दर मनहुँ रूप की जाल ॥
बृंदावन की कुंज-गलिन मैं सँग लीने नँदलाल ।
'हरीचंद' बलि बलि या छबि पर राधा-रसिक गोपाल ॥१२॥

सखी हम कहा करैं कित जायँ ।
बिनु देखे वह मोहनि मूरति नैना नाहिं अघायँ ॥
कछु न सुहात धाम धन पति सुत मात पिता परिवार ।
बसति एक हिय मैं उनकी छबि नैननि वही निहार ॥
बैठत उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर ।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न एक पल और ॥

10798

हमरे तन धन सरवस मोहन मन वच क्रम चित माहिं ।
पै उनके मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं ।।
सुमिरन वही ध्यान उनको ही मुख में उनको नाम ।
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु मोहन घनश्याम ।।
नैना दरसन बिनु नित तलफैं वचन सुनन को कान ।
बात करन को रसना तलफै मिलबे को ए प्रान ।।
हम उनकी सब भाँति कहावहिं जगत-बेद सरनाम ।
लोक-लाज पति गुरुजन तजिकै एक भज्यौ घनश्याम ।।
सब ब्रज बरजौ परिजन खीझौ हमरे तौ हरि प्रान ।
'हरीचंद' हम मगन प्रेम-रस सूझत नाहिंन आन ।।१३।।

ठुमरी

तू मिलि जा मेरे प्यारे ।
तेरे बिना मनमोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे ।
'हरीचंद' मुखड़ा दिखला जा इन नैनन के तारे ।। १४ ।।

राग रामकली

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब सँग को बाल,
काहे हरि गए आजु बहुतै इतराई ।
सूधे क्यौं न दान लेहु, अँचरा मेरो छाँड़ि देहु,
जामैं मेरी लाज रहै करौ सो उपाई ।।
जानत ब्रज प्रीत सबै, औरहू हँसैंगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़े ही चवाई ।
'हरीचंद' गुप्त प्रीति, बरसत अति रस की रीति,
नेकहूँ जो जानै कोउ प्रगटत रस जाई ।।१५।।

छाँड़ो मेरी बहियाँ लाल, सीखी यह कौन चाल,
हा हा तुम परसत तन औरन की नारी ।

अँगुरी मेरी मुरक गई, परसत तन पीर भई,
भीर भई देखत सब ठाढ़ी बृज-नारी ॥
बाट परौ ऐसी बात, मोहिं तौ नहीं सुहात,
काहे इतरात करत अपनो हठ भारी।
'हरीचंद' लेहु दान, नाहीं तौ परैगी जान,
नेक करो लाज छाँड़ौ अंचल गिरिधारी ॥१६॥

राग सारंग

हमारे घर आओ आजु प्रीतम प्यारे।
फूलन ही की सेज बिछाई फूलन के चौबारे ॥
कोमल चरनन-हित फूलन के रचि पाँवड़े सँवारे।
'हरीचंद' मेरो मन फूल्यौ आउ भँवर मतवारे ॥१७॥

राग बिभास

आजु उठि भोर बृषभानु की नंदिनी,
फूल के महल तें निकसि ठाढ़ी भई।
खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली,
मधुप की मंडली मत्त रस ह्वै गई ॥
कछुक अलसात सरसात सकुचात अति,
फूल की बास चहुँ ओर मोदित छई।
दास 'हरिचंद' छबि देखि गिरिधर लाल,
पीत पट लकुट सुधि भूलि आनंद-मई ॥१८॥

अहो हरि ऐसी तौ नहिं कीजे।
अपनी दिसि बिलोकि करुनानिधि हमरे दोस न लीजे ॥
तुव माया मोहित कहँ जानै कैसे मति रस भीजे।
'हरीचंद' पहिलै अपनो करि फिरि काहें तजि दीजे ॥१९॥

राग सोरठ

बनी यह सोभा आजु भली ।
नथ मैं पोही प्रान-पियारे निज कर कुसुम-कली ।।
झीने वसन बिथुरि रहीं अलकैं श्री वृषभानु-लली ।
यह छबि लखि तन मन धन वाऱ्यौ तहँ 'हरिचंद' अली ।।२०।।

फबी छबि थोरे ही सिंगार ।
बिना कंचुकी बिनु कर कंकन सोभा बढ़ी अपार ।।
खसि रहि तन तें तनसुख सारी खुलि रहे सोंधे बार ।
'हरीचंद' मन-मोहन प्यारो रिझयो है रिझवार ।।२१।।

आजु सिर चूड़ामनि अति सोहै ।
जूड़ो कसि बाँध्यो है प्यारी पीतम को मन मोहै ।।
मानहुँ तम के तुंग सिखर पै बाल चंद उदयो है ।
'हरीचंद' ऐसी या छबि को बरनि सकै सो को है ।।२२।।

राग विभास

भोर भये जागे गिरिधारी ।
सगरी निसि रस बस करि बितई कुंज-महल सुखकारी ।।
पट उतारि तिय-मुख अवलोकत चंद-बदन छबि भारी ।
बिलुलित केस पीक अरु अंजन फैली बदन उज्यारी ।।
नाहिं जगावत जानि नींद बहु समुझि सुरति-श्रम भारी ।
छबि लखि मुदित पीत पट कर लै रहे भँवर निरुवारी ।।
संगम गुन मधुरे सुर गावत चौंकि उठी तब प्यारी ।
रही लपटाइ जँभाइ पिया उर 'हरीचंद' बलिहारी ।।२३।।

जागे माई सुंदर स्यामा-स्याम ।
कछु अलसात जँभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम ।।

अधखुले नैन प्रेम की चितवनि आधे आधे वचन ललाम।
विलुलित अलक मरगजे बागे नख-छत उरसि सुदाम॥
संगम गुन गावत ललितादिक बाजत बीन तीन सुर ग्राम।
'हरीचंद' यह छवि लखि प्रमुदित तृन तोरत ब्रज-बाम॥२४॥

राग देस

बेगाँ आवो प्यारा बनवारी म्हारी ओर।
दीन बचन सुनताँ उठि धावौ नेकु न करहु अबारी॥१॥
कृपासिंधु छाँड़ौ निठुराई अपनो बिरद सँभारी।
थाने जग दीनदयाल कहै छै क्यौं म्हारी सुरत बिसारी॥
प्राण दान दीजै मोहि प्यारा हौहूँ दासी थारी।
क्यौं नहिं दीन बैण सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी॥
तलफैं प्रान रहैं नहिं तन मैं बिरह-बिथा बढ़ी भारी।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तौ चतुर बिहारी॥२५॥

राग सारंग

जयति बेणुधर चक्रधर शंखधर,
पद्मधर गदाधर शृंगधर वेत्रधारी।
मुकुटधर क्रीटधर पीतपट-कटिनधर,
कंठ-कौस्तुभ-धरन दुखहारी॥
मत्स्य को रूप धरि वेद प्रगटित करन,
कच्छ को रूप जल मथनकारी।
दलन हिरनाच्छ बाराह को रूप धरि,
दन्त के अग्र धर पृथ्वि भारी॥
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छा-करन,
हिरनकश्यप-उदर नख बिदारी।

रूप बावन धरन छलन बलिराज को,
परसुधर रूप छत्री सँहारी ।।
राम को रूप धर नास रावन करन,
धनुपधर तीरधर जित सुरारी ।
मुशलधर हलधरन नीलपट सुभगधर,
उलटि करपन करन जमुन-वारी ।।
बुद्ध को रूप धर बेद निंदा करन,
रूप धर कल्कि कलजुग-सँघारी ।
जयति दश रूपधर कृष्ण कमलानाथ,
अतिहि अज्ञात लीला बिहारी ।।
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर
राधिका बाहु पर बाहु धारी ।
भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर
वल्लभाधीश द्विज बेपकारी ।।२६।।

राग कन्हरा

दोउ कर जोरे ठाढ़ो बिहारी ।
मान कह्यौ तजि मान मया करि सुनि चन्द्रावलि प्यारी ।।
ये बहु-नायक मिलत भाग्य सों यह लै चित्त बिचारी ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया वे तूँ चन्द्रावलि नारी ।।२७।।

राग बिहाग

आजु नव कुंज बिहरत दोऊ रस भरे
प्रिया ब्रजचंद सँग चतुर चंद्रावली ।
सुरति श्रम स्वेद मुख परस्पर बढ़्यौ सुख
टूटि रही उरसि मुकुतानि हारावली ।।
गिरत तन वसन नहिं थिरत बेसरि तनिक
खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली ।

सखी 'हरिचंद' लखि मूँदि दृग दोउ रहीं
पाइ आनँद परम बुद्धि भई बावली ॥२८॥

जयति राधिकानाथ चंद्रावली-प्रानपति
घोष-कुल-सकल-संताप-हारी।
गोपिका-कुमुद-वन-चंद्र साँवर वरन
हरन वहु विरह आनंदकारी ॥
त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु
विमल-वृन्दाविपिन-भूमिचारी।
गाय गिरिराज के हृदय आनँद करन
नित्य विह्वल-करन जमुन-वारी ॥
नंद के हृदय आनंद वर्धित-करन
भरनि जसुदा-मनसि मोद भारी।
बाल क्रीड़ा-करन नंद-मन्दिर सदा
कुंज मैं प्रौढ़ लीला विहारी ॥
गोप-सागर-रतन सकल गुन-गन भरे
कनित स्वर सप्त मुख मुरलिधारी।
मंजु मंजीर पद कलित कटि किंकिनी
उरसि वनमाल सुन्दर सँवारी ॥
सदा निज भक्त संताप आरति-हरन
करन रस-दान अपनो विचारी।
दास 'हरिचंद' कलि वल्लभाधीश है
प्रगट अज्ञात लीला विहारी ॥२९॥

राग देव

स्यामा जी देखो आवे छे थारो रसियो।
कछु गातो कछु सैन वतातो कछु लखिकै हँसियो ॥

मार मुकुट वाके सीस सोहणों पीतांवर कटि कसियो ।
'हरीचंद' पिय प्रेम रँगीलो थाके मन वसियो ॥३०॥

म्हारी सेजाँ आवो जू लाल विहारी ।
रंग रँगीली सेज सँवारी लागी छे आशा थारी ॥
विरह-विथा वाढ़ी घणी ही मैंसों नहिं जात सँभारी ।
'हरीचंद'सो जाय कहो कोउ तलफै छे थारे विन प्यारी ॥३१॥

राग असावरी

सुन्दर श्याम कमलदल लोचन कोटिन जुग वीते विनु देखे ।
तलफत प्रान विकल निसि वासर नैननहूँ नहिं लगत निमेखे ॥
कोउ मोहिं हँसत करत कोउ निंदा नहिं समुझत कोउ प्रेम परेखे ।
मेरे लेखे जगत वावरो मैं वावरी जगत के लेखे ॥
तापै ऊधव ज्ञान सुनावत कहत करहु जोगिन के भेखे ।
वलिहारी यह रीझ रावरी प्रेमिन लिखत जोग के लेखे ॥
वहुत सुने कपटी या जग मैं पै तुमसे तो तुमही पेखे ।
'हरीचंद' कहा दोप तुम्हारो मेटै कौन करम की रेखे ॥३२॥

राग विहाग

हम तौ श्री वल्लभ ही को जानैं ।
सेवन वल्लभ-पद-पंकज को वल्लभ ही को ध्यानैं ॥
हमरे मात पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आनैं ।
'हरीचन्द' वल्लभ-पद-बल सों इन्द्रहु को नहिं मानैं ॥३३॥

अहो प्रभु अपनी ओर निहारौ ।
करिकै सुरति अजामिल गज की हमरे करम विसारौ ।
'हरीचंद' डूवत भव-सागर गहि कर धाइ उवारौ ॥३४॥

हम तो मोल लिए या घर के ।
दास-दास श्री वल्लभ-कुल के चाकर राधा-वर के ।।
माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुन-कर के ।
'हरीचन्द' तुम्हरे ही कहावत नहिं विधि के नहिं हर के ।।३५।।

राग परज

तुम क्यों नाथ सुनत नहिं मेरी ।
हमसे पतित अनेकन तारे पावन की बिरुदावलि तेरी ।।
दीनानाथ दयाल जगतपति सुनिये बिनती दीनहु केरी ।
'हरीचन्द' को सरनहिं राखौ अब तौ नाथ करहु मत देरी ।।३६।।

राग विहाग

अहो हरि वेहू दिन कब ऐहैं ।
जा दिन में तजि और संग सब हम ब्रज-बास बसैहैं ।।
संग करत नित हरि-भक्तन को हम नेकहु न अघैहैं ।
सुनत श्रवन हरि-कथा सुधारस महामत्त ह्वै जैहैं ।।
कब इन दोउ नैनन सों निसि दिन नीर निरंतर बहिहैं ।
'हरीचंद' श्री राधे राधे कृष्ण कृष्ण कब कहिहैं ।।३७।।

अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ ।
दै अनुराग चरन-पंकज को सुत-पितु-मोह मिटाओ ।।
और छोड़ाइ सबै जग-बैभव नित ब्रज-बास बसाओ ।
जुगल-रूप-रस-अमृत-माधुरी निस दिन नैन पिआओ ।।
प्रेम-मत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि तन की सुधि बिसराओ ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ ।।
श्री वल्लभ-पद-कमल अमल में मेरी भक्ति दृढ़ाओ ।
'हरीचंद' को राधा-माधव अपनो करि अपनाओ ।।३८।।

रसने, रटु सुन्दर हरि-नाम ।
मंगल-करन हरन सब असगुन करन कल्पतरु काम ।।
तू तौ मधुर सलोनो चाहत प्राकृत स्वाद मुदाम ।
'हरीचंद' नहिं पान करत क्यों कृष्ण-अमृत अभिराम ।।३९।।

उधारौ दीनबंधु महराज ।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नाहिं और सों काज ।।
जौ बालक कपूत घर जनमत करत अनेक बिगार ।
तौ माता कहा वाहि न पूछत भोजन समय पुकार ।।
कपटहु भेष किए जो जाँचत राजा के दरबार ।
तौ दाता कहा वाहि देत नहिं निज प्रन जानि उदार ।।
जौ सेवक सब भाँति कुचाली करत न एकौ काज ।
तऊ न स्वामि सयान तजत तेहि बाँह गहे की लाज ।।
विधि-निषेध कछु हम नहिं जानत एक आस विश्वास ।
अब तौ तारे ही बनिहै नहिं ह्वैहै जग उपहास ।।
हमरो गुन कोऊ नहिं जानत तुमरो प्रन विख्यात ।
'हरीचंद' गहि लीजै भुज भरि नाहीं तो प्रन जात ।।४०।।

राग भैरव

लाल यह बोहनियाँ की बेरा ।
हौं अबहीं गोरस लै निकसी बेचन काज सबेरा ।।
तुम तौ याही ताक रहत हौ करत फिरत मग फेरा ।
'हरीचंद' झगरौ मति ठानो ह्वैहै आजु निबेरा ।।४१।।

रागिनी अहीरी

अरी यह को है साँवरो सो लँगर ढोटा ऐंड़ोई ऐंड़ो डोलै ।
काहू को कोहनी काहू को चुटकी काहू सो हँसि बोलै ।।

काहू की गहि कंचुकि छोरत काहू को घूँघट खोलै।
'हरीचन्द' सब लाज गँवाई बात कहै अनमोलै ॥४२॥

राग गौरी ताल चर्चरी

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढे भए
श्रवत सुभ सीस पै कलित कुसुमावली।
मनहुँ निज नाथ ससि भूमि-गत देखिकै
खसित आकास तें तरल तारावली ॥
बहत सौरभ मिलित सुभग त्रैविधि पवन
गुंजरत महारस मत्त मधुपावली।
दास 'हरिचंद' व्रजचंद ठाढ़े मध्य,
राधिका वाम दक्षिण सुचन्द्रावली ॥४३॥

राग केदारा।

फूलन के सब साज सजि गोरी कित बदन दुराए जात।
फूलन की तन सारी फूलनि की छवि भारी फूली न हृदय समात॥
फूल्यौ श्री वृन्दाबन फूलै तेरे अँग अँग काहे को सकुचात।
'हरीचंद' हम जानि पिय जू सों रति मानी प्रीति छिपे न छिपात ॥४४॥

राग सारंग चर्चरी

आजु ब्रजचन्द्र तन लेप चन्दन किए,
ठाढ़े अति रस-भरे जमुना तीरे।
फूल के आभरन बसन झीने बने,
खौर चन्दन दिए मीरे सीरे॥
तैसही संग वृषभानु-नृपनंदिनी,
धारि चन्दन के तन चोली चीरे।
दास 'हरिचन्द' वलि जात छबि देखि कै,
जयति वृजराज-सुत गोप बीरे ॥४५॥

राग सारंग

नटवर रूप निहार सखी री नटवर रूप निहार ।
गोहन लगी फिरत जाके हित कुल की लाज बिसार ।।
ललित त्रिभंग काछनी काछे अमल कमल से नैन ।
कर लै फूल फिरावत गावत मोहत कोटिक मैन ।।
जग उपहास सहे बहु भाँतिन जा दरसन के हेत ।
सो हरि नीके नैननि भरि के काहे देखि न लेत ।।
तुमरी प्रीति अलौकिक सजनी लखि न परै कछु ख्याल ।
'हरीचन्द' धनि धनि तुम दोऊ राधा अरु गोपाल ।।४६।।

राग हमीर

ठाढ़े हरि तरनि-तनैया-तीर ।
संग श्री कीरति-कुमारी पहिनि झीने चीर ।।
उरनि फूलन माल जा पै भँवर-गन की भीर ।
हाथ कमल लिए फिरावत राधिका बलबीर ।।
साँझ समय सोहावनो तहँ बहत त्रिविध समीर ।
वारने 'हरिचन्द' छवि लखि श्याम गौर सरीर ।।४७।।

राग केदारा

मेरेई पौरि रहत ठाढ़ो टरत न टारे नन्दराय जू को ढोटा ।
पाग रही भुव ढरकि छबीली जामै बाँध्यो है मंजुल चोटा ।।
चितवत मो तन फिरि फिरि हेरत कर लै बेनु बजावत ।
धरि अधरन वह ललन छबीलो नाम हमारोइ गावत ।।
सुन्दर कमल फिरावत चहुँ दिसि मो तन दृष्टि न टारै ।
'हरीचन्द' मन हरत हमारो हँसि हँसि पाग सँवारै ।।४८।।

मारग रोकि भयो ठाढ़ो जान न देत मोहिं पूछत है तू को री ।
कौन गाँव कहा नाँव तिहारो ठाढ़ि रहि नेक गोरी ।।

कित चली जात तू वदन दुराए एरी मति की भोरी।
साँझ भई अब कहाँ जायगी नीकी है यह साँकरी खोरी॥
बहुत जतन करि हारी ग्वालिनी जान दियो नहिं तेहि घर ओरी।
'हरीचन्द' मिलि विहरत दोऊ रैननि नन्दकुँवर वृषभानु किशोरी॥४९॥

राग गौरी

नैना वह छवि नाहिंन भूले।
दया भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरै॥
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरैं।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
पर-बस भए फिरत हैं नैना एक छन टरत न टारे।
'हरीचन्द' ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारे॥५०॥

बैठे लाल नवल निकुंजन माहीं।
अति रस भरे दोऊ अँग जोरि कै हिलि मिलि दै गलबाँही॥
तैसे श्री गिरिराज शिला मे फूले कुसुम अनेकन भाँती।
तैसी वै जमुना अति सोभित लहकि रही कमलन की पाँती॥
तैसेई भँवर गुँजार करत हैं तैसोइ त्रिविध बयार।
तैसेई सौरभ झरत अनेकन वृन्दावन तरु डार॥
कर लै कमल फिरावत दोऊ उर फूलन की माल।
'हरीचन्द' वलि वलि यह छवि लखि राधा और गोपाल॥५१॥

राग ईमन

तू तो मेरी प्रान-प्यारी नैन मैं निवास करै
तू ही जो करैगी मान कैसे कै मनाइहैं।

तू ही तो जीवन-प्रान तोहि देखि जीव राखैं
तू ही जो रहेगी रूसि हम कहाँ जाइहैं ।।
कियो मान राधे महरानी आजु पीतम सों
ऐसी जो खबरि कहूँ सौति सुनि पाइहैं ।
'हरीचन्द' देखि लीजो सुनतहि दौरि दौरि
निज निज द्वार पै बधाई बजवाइहैं ।।५२।।

प्यारे जू तिहारी प्यारी अति ही गरब भरी
हठ की हठीली ताहि आपु ही मनाइए ।
नैकहू न मानै सब भाँति हौं मनाय हारी
आपुहि चलिए ताहि बात बहराइए ।।
रिस भरि बैठि रही नेकहू न बोलै बैन
ऐसी जो मानिनि तेहि काहे को रिसाइए ।।
'हरीचन्द' जामे मानै करिए उपाय सोई
जैसे बनै तैसे ताहि पग परि लाइये ।।५३।।

आजु मैं देखे री आली री दोऊ
मिलि पौढ़े ऊँची अटारी ।
मुख सों मुख मिलाइ बीरी खात
रंग भरि नवल पिया प्रानप्यारी ।।
चाँदनी प्रकास चारु ओर छिरकाव भयो
सीतल चहुँ दिसि चलत बयारी ।
'हरीचन्द' सखीगन करत बिंजना
जानि सुरति-श्रम भारी ।।५४।।

राग विहाग

पौढ़े दोउ बातन के रस भीने ।
नींद न लेत अरुझि रहे दोऊ केलि-कथा चित दीने ।।

तैसइ सीतल सेज बिछाई सखि बिजन कर लीने।
'हरीचन्द' आलस भरि सोए ओढ़िकै पट झीने ॥५५॥

राग सारंग

मेरे प्यारे सों मँदेसवा कौन कहै जाय।
उर की बेदन हरे बचन सुनाय॥
कोऊ सखी देइ मोरी पाती पहुँचाय॥
जाइ कै बुलाय लावै बहुत मनाय।
मिलि 'हरिचन्द' मोरा जियरा जुड़ाय ॥ ५६ ॥

जमुना जू की तिवारी चलु सखि।
तेरो मग जोहत मनमोहन सुंदर गिरिवर-धारी॥
तेरे हित छिरकाव कियो है सुंदर सेज सँवारी।
बिजन चलत फुहारे छूटत खस परदे रुचिकारी॥
मृगमद चन्दन घोरि धरे हैं फूल-माल छवि भारी।
मिलि विहरो दोऊ आनँद भरि 'हरीचन्द' बलिहारी ॥५७॥

साँझ के गए दुपहरी आए।
साँची बात कहो नँद-नंदन भले बने मन-भाए॥
अब लौं बाट रही तुव हेरत साजि धरे सब साज।
बैठो हौं बीजना डुलाऊँ अब न जाहु ब्रजराज॥
आए मेरे नैन सिराए सीतल जल लै पीजै।
रैनि नाहि तौ दुपहरिया मैं 'हरीचन्द' सुख दीजै ॥५८॥

अरी कोऊ करिकै दया नेक ठाँव मोहिं दीजौ धूप लगै मोहि भारी।
पाँव तपै मेरो गो चारत मैं यह बोलत गिरिधारी॥

सुनि यह वचन उसीर महल मैं लै आई सुकुमारी ।
'हरीचन्द' येहि मिसि मिलि बिहरे नवल पिया अरु प्यारी ॥५९॥

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहिं मानत
दौरि दौरि बार बार धूप ही मैं जाय ।
सीरे खसखाने साजि सेजहू बिछाय राखी
भयो छिड़काव आइ नेकु तौ जुड़ाय ॥
छूटत फुहारो चारु देखि तौ कौतुक आइ
मोतिन सी बूँद झरै चित ललचाय ।
'हरीचन्द' मातु के वचन सुनि आइ पौढ़े
बिंजन करत सब सखि हरखाय ॥६०॥

राग केदारा

फूलि रही द्वै वेली श्री वृन्दावन ।
नव तमाल घनश्याम पिया श्री राधा पीत चमेली ॥
और फूल फूली सब सखियाँ फूलनि पहिरि नवेली ।
'हरीचन्द' मन फूल्यौ सब साज देखि भँवर भयो है हेली ॥६१॥

राग सोरठ

सखी मोहिं लै चलि जमुना-तीर ।
जहाँ मिले नटवर मनमोहन सुंदर श्याम शरीर ॥
नंद-द्वार सब बड़े गोप मैं हौं कैसे धँसि जाऊँ ।
भौन माहिं जसुदा जू के भय नीके लखन न पाऊँ ॥
गुरुजन की भय अटा झरोखाहू नहिं बैठन पावैं ।
राह बाट मैं लाज निगोड़ी कैसे नैन मिलावैं ॥
तू सब जिय की जाननिहारी तो सों कहा दुराऊँ ।
'हरीचन्द' जीवन-धन दै मोहिं नैना निरखि सिराऊँ ॥६२॥

राग सोरठ

नाव हरि अवघट घाट लगाई ।
हम ब्रज-बाल कहो कित जैहैं करिहैं कौन उपाई ॥
साँझ भई सँग मैं कोउ नाहीं देहु हमैं पहुँचाई ।
'हरीचन्द' तन मन धन जोबन सब दैहैं उतराई ॥६३॥

हमैं तुम दैहौ का उतराई ।
पार उतार देहिं जो तुम को करि कै बहुत खेवाई ॥
जोबन धन बहु है तुम्हरे ढिग सो हम लेहिं छोड़ाई ।
हम तुम्हरे बस हैं मन-मोहन जो चाहौ सो करौ कन्हाई ॥
निरजन बन मैं नाव लगाई करौ केलि मन-भाई ।
'हरीचन्द' प्रभु गोपी-नायक जग-जीवन ब्रजराई ॥६४॥

राग सारंग

आजु श्री राधिका प्रानपति-काज निज,
हाथ सो कुंज मैं कुसुम सज्जा सजी ।
परम सीतल पवन चलत सुंदर भवन,
देखि छवि उष्णता दूर कोसन भजी ॥
मोद भरि बिहरहीं दोउ अति सुख पगे,
काम को बाम लखि ललित सोभा लजी ।
दास 'हरिचन्द' धुनि करत किंकिनि चुरी,
मदन के सदन मनु नवल नौबत बजी ॥६५॥

आजु दुपहरी मैं स्याम के काम तू
बाम, छवि-धाम भई नवल अभिसारिका ।
अतिहि कोमल चरन तपित धरनी धरन,
गयो कुम्हलाय मुख-कमल सुकुमारिका ॥

उरसि मुक्ताहार स्वेत सारी वनी,
कहत कोमल वचन मनहुँ पिक सारिका ।
वदत 'हरिचन्द' छल-छन्द एतो कियो,
कहाँ सीखी नई कोक की कारिका ॥६६॥

वृज के लता-पता मोहिं कीजै ।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामैं सिर भीजै ॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्री राधे राधे मुख यह वर 'हरीचन्द' को दीजै ॥६७॥

राग आसावरी वा सारंग

· ऊधो जौ अनेक मन होते ।
तौ इक श्याम-सुँदर कों देते इक लै जोग सँजोते ॥
एक सों सव गृह-कारज करते एक सों धरते ध्यान ।
एक सों श्याम रंग रँगते तजि लोक-लाज कुल-कान ॥
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँदै नैन ।
हिये एक रस श्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन ॥
ह्याँ तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई ।
'हरीचंद' कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई ॥६८॥

राग भैरव (खंडिता)

श्याम पियारे आजु हमारे भोरहि क्यौं पगु धारे ।
विनु मादक ही आज कहो क्यौं घूमत नैन तुम्हारे ॥
दीपक जोति मलिन भई देखो पच्छिम चन्द सिधार्यौ ।
सूरज किरिन उदित उदयाचल पच्छिन शब्द उचार्यौ ॥
कुमुदिनि सकुची कमल प्रफुल्लित चक्रवाक सुख पायो ।
सीतल मरुत चलत उठि मुनियन निज निज ध्यान लगायो ॥

कहा कहौं कछु कहि नहिं आवै आज बनी जो सोभा।
पेंच खुले लटपटी पाग के देखत ही मन लोभा ॥
ऐसी को है सुघर सुनरिया जिन यह हार बनायो।
बिन नग जड्यौ हेम बिन निरमित बिन गुन दाम पोहायो ॥
मोहन तिलक महावर को सिर लीलाम्बर कटि धारे।
कौन सी चूक परी हरि हम सों नैन लाल क्यों प्यारे ॥
लै आरसी सामुहे राखी जल लाई भरि झारी।
'हरीचन्द' उठि कंठ लगाई हँसि कै गिरिधरधारी ॥६९॥

राग सारंग

सखी ए नैना बहुत बुरे।
तब सों भए पराए हरि सों जब सो आइ जुरे ॥
मोहन के रस-बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीत सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे ॥
जग खीझ्यौ बरज्यो पै ए नहिं हठ सों तनिक मुरे।
'हरीचन्द' देखत कमलन से विष के बुते छुरे ॥७०॥

राधिका पौढ़ी ऊँची अटारी।
पूरन चन्द ज्यों नभ-मंडल फैली वदन उजारी ॥
दोऊ जोति मिलि एक भई है भूमि गगन लौं भारी।
सो छबि देखि सखा तृन तोरत 'हरीचन्द' बलिहारी ॥७१॥

देखु सखी देखु आजु कुंजन में नवल केलि,
करत कृष्ण संग विविध भाँति राधिका।
तैसोइ बहै त्रिविध पौन तैसोइ नभ चंद उग्यो,
तैसी परछाहीं परत लाज बाधिका ॥
किंकिनि की धुनि सुनात पायन की खरखराव,
तैसी निसि सनसनात सुखहि साधिका।

तहँ अलि 'हरिचंद' आय विनवत ससि कों, मनाय
आजु रहो थिर है रथ यह अराधिका ।।७२।।

तुम्हैं तो पतितन ही सों प्रीति ।
लोकरु वेद-विरुद्ध चलाई क्यौं यह उलटी रीति ।।
सब विधि जानत हौ निश्चय करि तुम सों छिप्यौ न नेक ।
वेद-पुरान-प्रमान तजन को मेरो यह अविवेक ।।
महा पतित सब धर्म्म-विवर्जित श्रुतिनिन्दक अघ-खान ।
मरजादा तें रहित मनस्वी मानत कछु न प्रमान ।।
जानत भए अजान कहो क्यौं रहे तेल दै कान ।
तुम्हैं छोड़ि जग को नहिं जो मोहिं विगर्यौ करत बखान ।।
बलिहारी यह रीझि रावरी कहाँ खुटानी आय ।
'हरीचन्द' सों नेह निवाहत हरि कछु कही न जाय ।।७३।।

रावरी रीझ की बलि जैये ।
महा पतित सों प्रीति पियारे एक तुमहिं में पैये ।।
नेमिन ज्ञानिन दूर राखि कै हम से पास बिठैये ।
'हरीचंद' यह जग उलटी गति केवल कहा कहैये ।।७४।।

नाथ तुम प्रीति निबाहत साँची ।
करत इकंगी नेह जनन सों यह उलटी गति खाँची ।।
जेहि अपनायो तेहि न तज्यौ फिर अहो कठिन यह नेम ।
जेहि पकर्यौ छोड़त नहिं ताकों परम निवाहत प्रेम ।।
सो भूले पै तुम नहिं भूलत सदा सँवारत काज ।
'हरीचन्द' कों राखत हौ बलि बाँह गहे की लाज ।।७५।।

तुम्हारौ साँचौ हम मैं नेह ।
कबहूँ नाहिं छाँड़िहौ हमकों दृढ़ व्रत लीनो एह ।।

प्रेम सत्य तुमरो जग मिथ्या यामैं कछु न सँदेह।
'हरीचन्द' जो याहि न मानैं तिन के मुख में खेह ॥७६॥

नाथ तुम उलटी रीति चलाई।
सब शास्त्रन को बात बिगारी पतितन पास बिठाई॥
बिधि-निषेध तामैं नहिं राख्यौ जाहि लियो अपनाई।
नाहीं तो क्यौं 'हरीचन्द' सों इतनी प्रीति बढ़ाई ॥७७॥

बलिहारी या दरबार की।
बिधि-निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहिं जहाँ पुकार की॥
नेमी धरमी ज्ञानी जोगी दूर किये जिमि नारकी।
पूछ होत जहँ 'हरीचन्द' से पतितन के सरदार की ॥७८॥

हम तो दोसहु तुमपै धरिहैं।
व्यापक प्रेरक भाखि भाखि कै बुरे कर्म सब करिहैं॥
भलो करम जौ कछु बनि जैहैं सो कहिहैं हम कीनो।
निसि दिन बुरे करम को फल सब तुम्हरे माथे दीनो॥
पतित-पवित्र-करन तब तुमरो साँचो ह्वैहै नाम।
जब तारिहौ हठी कोउ जैसे 'हरिचन्द' अघ-धाम ॥७९॥

प्यारे अब तो तारेहि बनिहै।
नाहीं तो तुमकों का कहिहै जो मेरी गति सुनिहै॥
लोक वेद मैं कहत सबै हरि अभय-दान के दानी।
तेहि करिहौ साँचो कै झूठो सो मोहिं भाषो बानी॥
भले बुरे जैसे हैं तैसे तुम्हरे ही जग जानै।
'हरीचन्द' कों तारेहि बनिहै को अब औरहि मानै ॥८०॥

छिपाए छिपत न नैन लगे।
उघरि परत सब जानि जात हैं घूँघट मैं न खगे॥

कितनो करौ दुराव दुरत नहिं जब ये प्रेम पगे।
'हरीचन्द' उघरे से डोलत मोहन रंग रँगे ॥८१॥

लगौहीं चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति ॥
निज पीतम कों खोजि लेत हैं भीरहू मैं भरि रंग।
रूप-सुधा छिपि छिपि कै पीयत गुरु-जनहूँ के संग ॥
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिकहूँ अति ललचौंहीं बानि।
छिपत न क्योंहूँ 'हरीचन्द' ये अन्त जात सब जानि ॥८२॥

आजु हम देखत हैं को हारत।
हम अघ करत कि तुम मोहि तारत को निज बान बिसारत ॥
होड़ पड़ी है तुम सों हम सों देखैं को प्रन पारत।
'हरीचन्द' अब जात नरक मैं कै तुम धाइ उबारत ॥८३॥

कै तौ निज परतिज्ञा टारौ।
गीतादिक मैं जौन कही है ताकों तुरत बिसारौ ॥
दीनबन्धु प्रनतारति-नासन अपनो बिरद बिगारौ।
कै झट धाइ उठाइ भुजा भरि 'हरीचंद' को तारौ ॥८४॥

लगाओ बेदन पै हरताल।
जिन तुमको गायो करुनानिधि भक्तन के प्रतिपाल ॥
पतित-उधारन आरति-नासन दीनानाथ दयाल।
इन नामन को झूठ करौ पिय छाँड़ो सब जंजाल ॥
देहु बहाइ लोक-मरजादा तोरि आपुनी चाल।
नाहीं तौ 'हरिचन्दहि' तारौ बेगहि धाइ गुपाल ॥८५॥

कहौ तुम व्यापक हौ की नाहीं।
जौ तुम व्यापक हौ तौ अघ करि क्यौं हम नरकहिं जाहीं ॥

जो नहिं पूरन घट घट तो क्यौं लिख्यौ पुरानन माहीं।
तासो राखौ 'हरीचन्द' कौं चरन-छत्र की छाँहीं ॥८६॥

वही में ठाम न नेकु रही।
भरि गई लिखत लिखत अघ मेरे बाकी तबहु रही ॥
चित्रगुप्त हारे अति थकि कै बेसुध गिरे मही।
जमपुर में हरताल परी है कछु नहिं जात कही ॥
जम भागे कछु खोज मिलत नहिं सबही यही वही।
'हरीचंद' ऐसे को तारो तौ तुव नाम सही ॥८७॥

पियारे हम तो भक्त इकंगी।
सब छोड़यौ तुमरे हित मोहन लोक-लाज कुल संगी ॥
विधि-निषेध अरु वेद छाँड़ि कै होइ गई मनु नंगी।
'हरीचन्द' चाहै मति मानौ हम तौ तुव रँग रंगी ॥८८॥

छूट नहिं तुमको कोउ विधि प्यारे।
हम सब पाप करैंगे वनिहै ताहू पै पुनि तारे ॥
वेदन में निज क्यौं कहवायो पतित-उधारन नाम।
क्यौं परतिज्ञा यह कीनी कै तारहिंगे अघ-धाम ॥
सुवरन-चोर ब्रह्म-हत्यारो गुरुतल्पगहु सुरापी।
अबकी बेर निवाहि लेहु पिय 'हरिचन्द' सौं पापी ॥८९॥

हम नहिं अपुने कों पछितात।
यह सोचत कै बिनु मोहिं तारे बात तुम्हारी जात ॥
अजामिलादिक के तारन सों भई अतिहि विख्यात।
सो काहू बिधि अब लौं निबही जानी जगत जगात ॥
'हरीचन्द' तुमरो औ पापी यह दोऊ अति ख्यात।
तासों ताकहँ तारि कोऊ विधि राखौ अपनी बात ॥९०॥

राग असावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री विट्ठलनाथहि गावैं।
ते विनु श्रम थोरेहि साधन मैं भव-सागर तरि जावैं ॥
जिनके मात पिता गुरु विट्ठल और कतहुँ कोउ नाहीं।
ते जन यह संसार समुद्रहि वत्सचरन करि जाहीं ॥
जिनकों श्रवन कीर्तन सुमिरन विट्ठल ही को भावै।
ते जन जीवनमुक्त कहावहिं मुख देखे अघ जावै ॥
जिनके इष्ट सखा श्री विट्ठल और बात नहिं प्यारी।
जिनके वस में सदा सर्वदा रहत गोवर्द्धनधारी ॥
तिनके मन क्रम वच सव भाँतिन श्री विट्ठल-पद पूजो।
ते कृतकृत्य धन्य ते कलि मैं तिन सम और न दूजो ॥
जे निस-दिन श्री विट्ठल विट्ठल विट्ठल ही मुख भाखैं।
'हरीचन्द' तिनके पद की रज हम अपुने सिर राखैं ॥९१॥

राग असावरी (चीर-हरण)

जमुना-तट ठाढ़े नँदनंदन कोऊ न्हान न पावै हो।
जो कोउ जल पैठत मज्जन-हित ताको चीर चुरावै हो ॥
तोरत हार कंचुकी फारत चढ़त कदम पै धाई।
पुनि पाछे तें पीठ मलत है ऐसो ढीठ कन्हाई ॥
गारी देत कह्यौ नहिं मानत हाथ नचावत आई।
हम जल मैं नाँगी सकुचाहीं सुनहु जसोदा माई ॥
तुम निज सुत के गुन नहिं जानत कहत लाज अति आवै।
'हरीचंद' वरजति नहिं काहे नित नित धूम मचावै ॥९२॥

राग टोड़ी

विनती सुन नंद-वाल वरजो क्यौं न अपनो वाल
प्रातकाल आइ आइ अम्बर लै भागै।

भोर होत जमुन तीर जुरि जुरि सब गोपी भोर
न्हात जवै विमल नीर शीत अतिहि जागे ॥
लेत वसन मन चुराइ कदम चढ़त तुरत धाइ
ठाढ़ी हम नीर माहिं नाँगी सकुचाहीं ।
'हरीचंद' ऐसो हाल करत नित्य प्रति गोपाल
व्रज मे कहो कैसे वसैं अब निबाह नाहीं ॥९३॥

चलो सखी मिल देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख छवि पै वारौं मेरी नवल-किसोरी जू ॥
घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख मैं सिर पै मौरी मेरी दुलहिया भोली जू ॥
नकबेसर कनफूल बन्यौ है छवि का पै कहि आवै जू ।
अनवट विछिया मुँदरी पहुँची दूलह के मन भावै जू ॥
ऐसे बना बनी पै री सखि अपनो तन मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत 'हरीचंद' बलिहारी जू ॥९४॥

राग सारंग (रथ-यात्रा)

अटा पै मग जोवत हैं ठाढ़ी ।
यहि मारग हरि को रथ ऐहै प्रेम-पुलक तन वाढ़ी ॥
कोउ खिरकिन छज्जन पै ठाढीं कोउ द्वारे मग जोहैं ।
करि शृंगार श्यामसुंदर-हित प्रेम भरी अति सोहैं ॥
यह आयो वह आयो सजनी कहति सबै व्रज-नारी ।
लै लै भेंट सामुहे आईं भरि कै कंचन थारी ॥
बीरी देत करति न्यौछावरि लै आरती उतारैं ।
'हरीचंद' व्रजचंद पिया पै अपनो तन मन वारैं ॥९५॥

निविड़ तम-पुंज अति श्याम गह्वर कुंज
राधिका-श्याम तहँ केलि सुंदर रची ।

परम अँधियार मधि उदय मुख-चंद को
करत तम दूर सब भाँति सोभा सची ॥
हार हिय चमकि उडुगनन की छबि हरत
करत किंकिनि चुरी शब्द मनिगन खची ।
लखत 'हरिचन्द' सखि ओट ह्वै सुरति-सुख
काम-कामिनि-काम-गरब गति नहिं बची ॥९६॥

ठुमरी

सजन तेरी हो मुख देखे की प्रीत ।
तुम अपने जोबन मदमाते कठिन बिरह की रीत ॥
जहाँ मिलत तहँ हँसि हँसि बोलत गावत रस के गीत ।
'हरीचन्द' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ॥९७॥

राग असावरी

अरे कोऊ कहौ सँदेसो श्याम को ।
हमरे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ॥
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित प्रति वाही गाम को ।
कोऊ न लायो पिय को सँदेसो 'हरीचन्द' के नाम को ॥९८॥

राग सारंग

हम तौ मदिरा प्रेम पिए ।
अब कबहूँ न उतरिहै यह रँग ऐसो नेम लिए ॥
भई मतवार निडर डोलत नहिं कुल-भय तनिक हिये ।
डगमग पग कछु गैल न सूझत निज मन मान किए ॥
रहत चूर अपुने प्रीतम पै तिन पै प्रान दिए ।
'हरीचन्द' मोहन छैला बिनु कैसे बनत जिए ॥९९॥

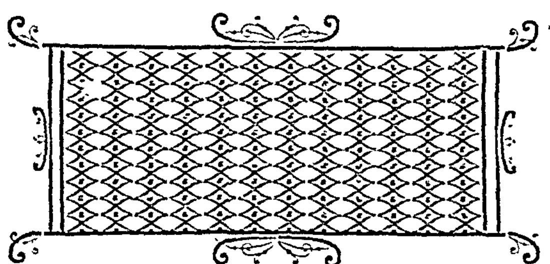
बैठी ही वह गुरुजन के ढिग पाती एक तहाँ लै आई ।
पाती लाय हाथ मैं दीनी कही श्याम यह तोहिं पठाई ॥

सुनतहि अति चकृत सी ह्वै रही मात-पितहि लखि बहुत लजाई।
नैन नचाइ भौंह टेढ़ी करि बोली तासों बुद्धि उपाई॥
अरी बावरी सी क्यों डोलव यह घर नाहीं क्यों घुसि आई।
सो तो आगे दूर रहत है जाके हित तू पाती लाई॥
कै तू नाम भूलि कै वाको ताहि पढ़ावन मों ढिग धाई।
औरहु ब्रज मे बाँचनहारे तिन सों क्यों न पढ़ावत जाई॥
जानि परी हमको याही मिस भेद लेन घर की तू आई।
जो चाहैं सो करैं डरैं नहि या ब्रज की अति कठिन लुगाई॥
बे-बातहि बदनाम करन की इनकी टेव परी मैं पाई।
इन बैरिन पाछे या ब्रज मे कैसे कै बसिये री माई॥
दूती समुझि बहुत पछितानी कहि भूली मैं भौन दुहाई।
'हरीचंद' अति चतुर राधिका यों मोहन की प्रीति छिपाई॥१००॥



कार्तिक-स्नान

सं० १९२१



अथ कार्तिक-स्नान

नील-हीर-दुति अति मधुर सब ब्रज-जन-चित-चोर।
जय जय विरहातप-समन राधा-नंदकिशोर ॥ १ ॥
जुगल जलद केकी जुगल दोऊ चन्द चकोर।
उभय रसिक रस रास जय राधा-नंदकिशोर ॥ २ ॥
जल तरंग बुधि ग्रान पुनि दीप प्रकाश समान।
जुगल अभिन्नहु दोय वपु जय राधा-भगवान ॥ ३ ॥
नलिन-नयन अमृत-बयन वेनु वाद्य-रत धीर।
राधा-मुख-मधु-पान-रत जय जय जय बलबीर ॥ ४ ॥
बिनु हरि-पद-राधा-भजन नाहिंन और उपाय।
क्यौं मन तू भटकत वृथा जगत-जाल फँसि धाय ॥ ५ ॥
मथिकै वेद पुरान बहु यहै लह्यौ इक सार।
राधा-माधव-चरन भजु तजु जप जोग हजार ॥ ६ ॥
भ्रमि मत तू वेदान्त-बन वृथा अरे मन मोर।
चलु कलिन्दजा-कुंज-तट लखु घनश्याम किशोर ॥ ७ ॥
शास्त्र एक गीता परम मन्त्र एक हरि-नाम।
कर्म एक हरि-पद-भजन देव एक घनश्याम ॥ ८ ॥

विधि-निषेध जग के जिते तिनको यह सिरमौर।
भजनो इक नँदलाल-पद तजनो साधन और ॥९॥
साधकगन सों तुम सदा छिपत फिरत ब्रजराय।
अति अँधियारो मम हृदय तहाँ छिपत किन आय ॥१०॥
वेद कहत जग विरचि हरि व्यापि रहत ता माहिं।
मम हिय जग बाहर कहा जो इत व्यापत नाहिं ॥११॥
तुमहिं रिझावन हित सज्यो लख चौरासी रूप।
रीझि देहु गति खीझि कै बरजहु मोहिं ब्रज-भूप ॥१२॥
कोऊ जप संजम करौ करौ कोइ तप ध्यान।
मेरे साधन एक हरि सपनेहु रुचत न आन ॥१३॥
नर्क स्वर्ग कै ब्रह्म-पद कै चौरासी माँहिं।
जहाँ रहौ निज कर्म-बस छुटै कृष्ण-रति नाहिं ॥१४॥
कृष्ण नाम मुख सो कहौ सुनौ कृष्ण-जस कान।
मन में कृष्ण सदा बसौ नयन लखौं हरि ध्यान ॥१५॥
चोरि चीर दधि दूध मन दुरन चहत ब्रजराय।
मेरे हिय अँधियार में तौ न छिपत क्यौं आय ॥१६॥
सुनत दूध दधि चीर मन हरत फिरत ब्रजराय।
तौ अब मेरे किन हरत यह मोहिं देहु बताय ॥१७॥
कृष्ण-नाम मनि-दीप जो हिय-घर में न प्रकाश।
दीप बहुत बारे कहा हिय-तम भयो न नाश ॥१८॥
जय जय श्रुति-पद-बन्दिनी कीर्तिनन्दिनी बाल।
हरि-मन परमानन्दिनी कन्दिनि भव-भय-जाल ॥१९॥

सोरठा

जय जय परमानन्द कृपाकन्द गोविन्द हरि।
जय जय जसुदा-नन्द नंदानंदन दुन्द-हर ॥२०॥

सवैया

पूजि के कालिहि सत्रु हतौ कोऊ लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ ।
सेइ सरस्वति पंडित होउ गनेसहि पूजिकै विघ्न नसाओ ॥
त्यों 'हरिचंद जू' ध्याइ शिवै कोऊ चार पदारथ हाथ ही लाओ ।
मेरे तो राधिका-नायक ही गति लोक दोऊ रहौ कै नसि जाओ ॥ १ ॥

सन्ध्या जु आपु रहौ घर नीकी नहान तुम्हैं है प्रणाम हमारी ।
देवता पित्र छमौ मिलि मोहिं अराधना होइ सकै न तुम्हारी ॥
वेद पुरान सिधारौ तहाँ 'हरिचंद' जहाँ तुम्हरी पतियारी ।
मेरे तो साधन एक ही है जग नंदलला वृषभानु-दुलारी ॥ २ ॥

भजन

जय वृषभानु-नन्दिनी राधा ।
शिव ब्रह्मादि जासु पद-पंकज हरि वस हेतु अराधा ॥
करुनामयी प्रसन्न चन्दमुख हँसत हरति भव-बाधा ।
'हरीचंद' ते क्यौं जग जीवत जिन नहिं इनहिं अराधा ॥ १ ॥

जय जय हरि नंद-नंद पूर्ण ब्रह्म दुख-निकंद,
परमानंद जगत-वंद सेवक सुखदाई ।
परम जस पवित्र गाथ दीनवन्धु दीनानाथ,
स्रवन दरस ध्यान सुखद गोवर्द्धन-राई ॥
गोप गोपिकादि-पाल सतत असुर-वंस-काल,
सकल कला-गुन-निधान कीरति जग छाई ।
'हरीचंद' प्राननाथ कीर्तिसुता लिए साथ,
पावनगुन अवलि विमल श्रुतिगन नित गाई ॥ २ ॥

मेरी गति होउ सोई महरानी ।
जासु भौंह की हिलनि विलोकत निसु दिन सारँगपानी ॥
खेलन मैं कबहूँ जौ आँचर उड़त बात-वस जाको ।

रिसि मुनि वंदित हू हरि मानत परम धन्य करि ताको ॥
परम पुरुष जो जोग जग्य जप क्योंहू लख्यौ न जाई ।
सो जा पद-रज बस निसि-बासर तुरतहि प्रगटत आई ॥
ग्राम बधूटी जा कटाच्छ-बल उमा रमाहि लजावैं ।
'हरीचंद' ते महामूढ़ जे इनहि न अनुछिन ध्यावैं ॥ ३ ॥

जय जय श्री वृन्दावन देवी ।
अखिल विश्वनायक पुरुषोत्तम जा पद-पंकज-सेवी ॥
जो निज दृष्टि कोर सों जग के जीवहिं नितहि जिआवै ।
परमानंद-घनहु पै जो निज आनँद-कन बरसावै ॥
जगत-अधार भूत परमातम जिय अधार सो ताकी ।
'हरीचंद' स्वामिनि अभिरामिनि तुल न जगत मैं जाकी ॥ ४ ॥

विपुल वृन्दा विपिन चक्रवर्ती-चतुर
रसिक-चूड़ा-रतन जयति राधा-रमन ।
गोप-गोपी सुखद भक्त नयनानंद
विरहिजन कोटि सन्ताप सन्तत समन ॥
जयति गिरिराज धृत वास अंगुरि नखन
जयति कृत वेनु-रव मत्त गज-गति-गमन ।
अघ बकी बक सकट पूतनादिक काल जयति
'हरिचंद' हित-करन कालिय-दमन ॥ ५ ॥

जय जय गोवर्द्धन-धर देव ।
जय जय देव राजमद-मर्दन करत सकल सुर सेव ॥
जय जय श्रुति जस गावत निसि-दिन पावत तऊ न भेव ।
जय जय 'हरीचन्द' रक्षण कृत दीन-उधारन देव ॥ ६ ॥

बाजी नैनन में लागी ।
रसिकराज इत उत श्री राधा परम प्रेम-रस-पागी ।।
दोऊ हारे दोऊ जीते आपुस के अनुरागी ।
'हरीचंद' निज जन-सुखदायक रहे केलि निसि जागी ।। ७ ।।

हम मैं कौन बड़ो री प्यारी ।
ठाढ़ी होउ बराबर नापैं बिहँसि कह्यो गिरिधारी ।।
सुनत उठी वृषभानु-नंदिनी खरी भई समुहाई ।
पद-अँगुरी-बल उचकि पिया सों बढ़वन चहत उँचाई ।।
सुन्दर मुख आपुहि ढिग आवत लखि चूम्यो पिय प्यारे ।
'हरीचन्द' लजि हँसि भुव निरखत पिया कह्यौ हम हारे ।। ८ ।।

राग बिहाग (दीपावली)

करत मिलि दीप-दान व्रज-बाला ।
जमुना सों कर जोरि मनावत मिलैं पिया नँदलाला ।।
स्नान दान जप जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला ।
इनके फल में 'हरीचन्द' गल लगै कृष्ण गुनवाला ।। ९ ।।

अरी तू हठ नहिं छाँड़त प्यारी ।
दीप-दान मैं मगन ह्वै रही भूलि गई गिरिधारी ।।
तेरे बिनु उत बिनहीं दीपक बिरह-अगिनि संचारी ।
'हरीचन्द' पीतम गर लगि कै करु त्यौहार दिवारी ।।१०।।

हमारे वृज के द्वै मनि-दीप ।
पुष्पराग श्रीराधा मरकत गोविंद गोप महीप ।।
सदा प्रकाश करत व्रज-मंडल वृन्दावन अवनीप ।
'हरीचन्द' सुमिरत वियोग-तम कहुँ नहिं रहत समीप ।।११।।

राग बिहाग चौताला

अरी हौं बरजि रही बरज्यौ नहीं मानत,
सबै छोरि कृष्ण-प्रेम दीप जोरि।
भरि अखंड दै सनेह एक लौ लगाइ वासों,
मन बाती राखु तामे नित्य बोरि॥
बिरह प्रगट करि जोति सों मिलाइ जोति,
करि पतंग नेम धरम लाज ओट डारि छोरि।
'हरीचंद' कह्यो मानि देखिहै तू प्रीति-पन्थ,
भाजैगो वियोग-तम मुख मोरि॥१२॥

राग बिहाग (दीपावली)

आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर,
परम शोभित भई दिव्य दीपावली।
मनहुँ नगराज निज नाम नग सत्य किय,
विविध मनि-जटित तन धारि हारावली॥
औषधी-गन मनहुँ परम प्रज्वलित भई,
किधौं ब्रज-वास हित बसी तारावली।
दास 'हरिचंद' मन मुदित छबि देखिकै,
करत जै जै बरपि देव कुसुमावली॥१३॥

आजु तरनि-तनया निकट परम परमा प्रगट,
ब्रज-बधुन मिलि रची दीप-माला।
जोति-जाल जगमगत दृष्टि थिर नहिं लगत
छूट छबि को परत अति बिसाला॥
खड़ी नवल बनिता बनी चार दिसि,
छबि-सनी हँसहिं गावहिं विविध ख्याला।

निरखि सखी 'हरीचंद' अति चकित सी है,
कहत जयति राधे जयति नंद-लाला ॥१४॥

आजु व्रजछवि की छूट परै ।
इत नँदलाल लाडिली उत इत दीपक ज्योति वरै ॥
उत सहचरी ललित ललितादिक मुरछल चँवर ढरै ।
इत जरतार तास वागो उत भूपण झलक भरै ॥
इत नवखण्ड सीसमहला उत दुगनित विंव परै ।
इत वादलन लपेटी झालर झलावोर झलरै ॥
उत सारी कोरन सों मुकुता मानिक हीर झरै ।
जमुना-जल प्रतिविंव सुहायो जल-छवि मिलि लहरै ॥
'हरीचन्द' मुख चन्द मिलो सव रवि ससि गरव हरै ॥१५॥

आजु सँकेतन दीपक वारे ।
निकट जानि गोवर्द्धन घटियाँ अपने हाथ सँवारे ॥
किए प्रकासित गह्वर गिरि थल कुंज पुंज व्रज सारे ।
'हरीचंद' अपनी प्यारी की वाट निहारत प्यारे ॥१६॥

अरी तू हठि चलि प्यारी दीप मण्डल ते क्यों शोभा हरि लेत।
तेरे मुख-प्रकास दीपक-गन मन्द दिखाई देत ॥
मंद परे आभा सव मेटी झिलमिलि झीने सेत ।
'हरीचंद' तू दूरि वैठि कै कर त्योहार सहेत ॥१७॥

ईमन

कविन सों साँचेहि चूक परी ।
दीप-सिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी ॥
वह दाहत यह अंग जुड़ावति वह चंचल थिर येह ।
वह निज प्रेमिन्न परम दुखद यह सदा सुखद पिय-देह ॥

या मे धूम स्वच्छ अति ही यह रैनि दिना इक रास।
वह परिछिन्न वात-बस यह निज-बस सर्वत्र प्रकास ॥
वह सनेह-आधीन और यह है सदेह भरपूर।
'हरीचन्द' दीपक प्यारी की नहिं कोउ बिधि सम तूर ॥१८॥

जमुना-जल बढ़ी दीप-छवि भारी।
प्रतिबिम्बित प्रतिबिंब लहरि प्रति तहँ राजत पिय प्यारी॥
तैसेही नभतर तारावलि तरल वायु गुन होई।
तैसेहि उठत गगन गुब्बारे छुटत दारुगति जोई॥
अवनि नीर आकास प्रकासित दीपहि दीप लखाईं।
मनु ब्रजमण्डल ज्योति-रूपता अपनी प्रगट दिखाई॥
सुख प्रकास रंजित सबही थल सोभा नहिं कहि जाई।
'हरीचंद' राधे मनमोहन रहे त्योहार मनाई ॥१९॥

तुव बिनु पिय को घर अँधियारो।
जदपि चहूँ दिसि प्रगटि स्वास मद बिरहानल संचारो॥
कछु न लखात ताहि अति व्याकुल दृग-झर लावत भारो।
प्रिये प्रिये कहि प्रति कानन में ढूँढ़ि रहत घर सारो॥
तू इत बैठी बदन बनाये उत वह विकल बिचारो।
'हरीचंद' उठि चलु री प्यारी लाउ गरे पिय प्यारो ॥२०॥

दीपन उलटी करी सहाय।
चली गई पिय पास प्रगट मग काहु न परी लखाय॥
अँधियारी मैं तो भय भारी मुख-ससि नाहिं दुराय।
इत प्रकाश में मिलि अलबेली एक भई चमकाय॥
जगमगे बसन कनक-मनि-भूषन एक भये सब आय।
'हरीचंद' मिलि कै वियोग मे दीनो तुरत नसाय ॥२१॥

दिपति दिव्य दीपावली, आजु दिपति दिव्य दीपावली।
मनु तम-नाश करन को प्रगटी कश्यप-सुत-वंसावली।।
मनु ब्रजमण्डल-कृष्ण चन्द्रमा तहँ तारन की मण्डली।
जीतन कों मनु राहु-सेन को अति सुवरन किरनावली।।
विगत भई सब रैनि-कालिमा सोभा लागति है भली।
'हरीचन्द' मनु रतन-रासि की उज्ज्वल ज्योति जुगावली।।२२।।

नेकु चलु पिय पै वेगहि प्यारी।
देखु करी तेरे हित कैसी मोहन आजु तयारी।।
पड़े पाँवड़े मग मखमल के दल गुलाब रुचिकारी।
छिरक्यो नीर गुलाब अतर मृगमद चन्दन घनसारी।।
परदे परे झालरैं झमकैं तने वितान सुतारी।
फरश गलीचन को अति राजत कोमल वहुरँग डारी।।
धरे साज ढिग अतर पान मधु फूल-माल जल झारी।
लगी मिठाई रासि दुहूँ दिशि दीपक धरे कतारी।।
विछी पलँग पय-फेनु मैनु-सम पोस पर्यौ रुचिकारी।
पास साज पालन के सोहत कहुँ सतरंज सँवारी।।
ठौर ठौर आरसी लगाई दूनी द्युति करि डारी।
प्रति खूँटिन हारावलि माला फूल वसन लै धारी।।
प्रति आले सुगंध सों पूरे पान मिठाई डारी।
जहँ तहँ अदव किये सब सखियाँ ठाढ़ीं साज सँवारी।।
मुरछल चँवर रुमाल अडानो पीकदान लै वारी।
चौंकि चौंकि पिय उठत विना तुव अगम संक वनवारी।।
'हरीचंद' प्रीतम गर लगिकै कर त्योहार दिवारी।।२३।।

रच्यो यह तेरेहि हित त्योहार।
दीप-दिवारी युक्ति निकारी तव हित नंदकुमार।।

तुव महलन की सुरति करन हित हठरी रुचिर बनाई।
तुव मुख चन्द्रप्रकाश लखन हित दीपावली सुहाई ॥
हाट लगाई तुव आवन हित और कछु न सन्देह।
'हरीचंद' विहरै किन भुज भरि प्रीतम सो करि नेह ॥२४॥

कार्तिक में साँझ के गाइबे को पद

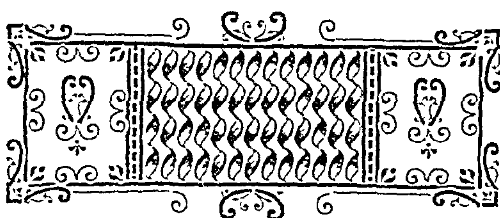
साँचहि दीपसिखा सी प्यारी।
धूमकेश तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी ॥
स्वयं प्रकाश अकुण्ठ सुहाई विनु असार छवि छाई।
सदा एक रस नित्य अधिक यह वासो चाल लखाई ॥
भरत सुगंधन ब्रज कुंजन मग शीतल तन कर धारी।
प्रीतम-तन को विरह मिटावत 'हरीचन्द' दुख जारी ॥२५॥

इति



वैशाख-माहात्म्य

सं० १९२९ (?)



वैशाख-माहात्म्य

दोहा

भरति नेह नव नीर सों बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मनमोर ॥



नित्य उमाधव जेहि नवत माधव अनुज मुरारि।
श्यामाधव माधव भजौ माधव मास विचारि ॥ १ ॥
रमत माधवी कुंज करि प्रेम माधवी पान।
माधव रितु सँग माधवी लै माधव भगवान ॥ २ ॥
वैशाखा-पति नहिं भजहिं जे वैशाप-मँझार।
ते वै शापामृग अहैं वा वैशाप-कुमार ॥ ३ ॥
गुरु-आयसु निज सीस धरि सुमिरि पिया नँदनन्द।
माधव की कछु विधि लिखत ग्रंथन लखि हरिचन्द ॥ ४ ॥
चैत्र कृष्ण एकादशी अथवा पूनो मान।
मेप संक्रमन सों करै वा अरंभ अज्ञान ॥ ५ ॥
ब्राह्मण-गन सों पूछि कै नियम शास्त्र को मान।
हरिहि नौमि संकल्प करि न्याय समेत विधान ॥ ६ ॥

(मन्त्र)

सकल मास वैशाष मे मेष रासि रवि मान ।
मधुसूदन प्रिय होहि लखि सनियम माधव-न्हान ॥ ७ ॥
मधु-रिपु के परसाद सों द्विज अनुग्रहहि जोय ।
नित वैशाख नहान यह विघ्न-रहित मम होय ॥ ८ ॥
माधव मेषग भानु मैं हे मधु-सत्रु मुरारि ।
प्रात-न्हान फल दीजिए नाथ पाप निरुवारि ॥ ९ ॥

इति

जा तीरथ मे न्हाइये लीजै ताको नाम ।
जहँ न जानिए नाम तहँ विश्नु-तीर्थ सुखधाम ॥१०॥
तुलसी स्यामा ऊजरी जो मधु-रिपु कों देत ।
सो नारायन होत है माधव मैं करि हेत ॥११॥
तुलसी-दल वैशाष में अरपहिं तीनों काल ।
जनम मरन सों मुक्त तेहिं करत नन्द के लाल ॥१२॥
जो सींचत पीपर तरुहि प्रात न्हाइ हरि मानि ।
करत प्रदक्षिन भाँति बहु सर्व्व देवमय जानि ॥१३॥
तरपन करि सुर पित्र नर सचराचर तरु मूल ।
मेटै अपने पित्र की नरक-कुंड की सूल ॥१४॥
जे सींचहि जल भक्ति सों पीपर तरु जड़ माहिं ।
तिन तार्यो निज अयुत कुल यामैं संसै नाहिं ॥१५॥
गऊ-पीठ सुहराइ कै न्हाइ तरुहि जल देइ ।
कृष्ण पूजि तजि दुर्गतिहि देवन की गति लेइ ॥१६॥
एक बेर भोजन करै कै तारा लखि खाइ ।
कै बिन माँगो पाइकै दै निसि नींद बिहाइ ॥१७॥
ब्रह्मचर्य्य धरनी-शयन अशन हविश्यन आन ।
श्रीगंगादिक मैं करै बिधि-विधान असनान ॥१८॥

पुन्य मास वैशाप में हरि सों राखि सनेह।
मन भायो ताको मिलै यामें कछु न सँदेह ॥१९॥
मधुसूदन पूजन करै तप व्रत सह दै दान।
पाप अनेकन जनम के दाहैं तूल-समान ॥२०॥
माधव थापै पौंसरा करै चटाई दान।
छत्र व्यजन जूता छरी अरु सूछम परिधान ॥२१॥
चन्दन जल-घट पुष्प ग्रह चित्र वस्तु अंगूर।
देवहिं दीजै प्रीति सों केला फल करपूर ॥२२॥
माधव में जो पित्र-हित करत अंबु-घट-दान।
सक्तु व्यजन मधु फल सहित प्रीति करत भगवान ॥२३॥
माधव-हित जे देत घट या माधव के माहिं।
भोजन के सह विप्र कों ते वैकुंठहि जाहिं ॥२४॥
होइ सकै नहिं मास भर जौ विधिवत् असनान।
करै अंत के तीन दिन तो फल होइ समान ॥२५॥

(अथ अक्षय तृतीया)

रोहिनि माधव शुक्ल पख तीज सोम बुध होय।
अति पवित्र दुरलभ बहुरि पाप नसावत सोय ॥२६॥
माघी पूनो भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशि जान।
माधव तृतिया कारतिक नवमी युग परमान ॥२७॥
इन चारहू युगादि में श्राद्ध करत जो कोय।
द्वै सहस्र संवत दिनन तृप्ति पित्र की होय ॥२८॥
तिथि युगादि में न्हाइ कै करै दान जप ध्यान।
ताकों शुभ फल देत श्री कृष्णचन्द भगवान ॥२९॥
माधव शुक्ला तीज को श्री गंगाजल न्हाय।
सर्व्व पाप सों छूटिकै विष्णु-लोक सो जाय ॥३०॥

जव ही को होमादि करि हरि को जव हि चढ़ाइ ।
दान देइ जव द्विजन कों पुनि आपहु जव खाइ ॥३१॥
दान करै जल कुम्भ को रस अन्नादिक साथ ।
चना और गोधूम को सक्तु देइ द्विज-हाथ ॥३२॥
दधि ओदन आदिक सबै ग्रीषम रितु के भोग ।
देइ तीज दिन विप्र को नासै भव-भय रोग ॥३३॥
शिवहिं पूजिकै तीज दिन शिव-हित दै घट-दान ।
शिवपुर सो नर पावई भाषत शिव भगवान ॥३४॥

(मन्त्र)

ब्रह्म विष्णु शिव रूप यह दियो धर्म घट-दान ।
पिता-पितामह आदि सब तृप्त होहिं परमान ॥३५॥
गन्ध उदक तिल फल सहित पित्रन जल-घट देत ।
अक्षय पावैं तृप्ति सब दान कियो एहि हेत ॥३६॥
ब्रह्म-विष्णु-शिव-रूप यह देत धर्म घट दान ।
या सों मेरे काम सब पुरवौ श्री भगवान ॥३७॥
वायु देवता को व्यजन नासन आतप-ताप ।
तासों याके दान सों प्रीति होहिं हरि आप ॥३८॥
सक्तु प्रजापति देवता मख-हित किय निरमान ।
होहिं मनोरथ पूर्ण सब या सतुआ के दान ॥३९॥

इति

चार युगादिक तिथिन में करि समुद्र असनान ।
सो फल पावत मनुज जो करिकै पृथ्वी-दान ॥४०॥
इन चारिहू युगादि में कछु नहिं खैये रात ।
रात खान सों दिवस को पुन्य नास ह्वै जात ॥४१॥
माधव शुक्ला तीज को श्रीमाधव को जौन ।
चन्दन चरचहिं पावहीं महा पुन्य नर तौन ॥४२॥

करपूरादि सुगंध सों सुन्दर चन्दन वासि ।
कृष्णहि देत जो पुन्य नर रहत पाप सो नासि ॥४३॥
चन्दन तन धारन किए कृष्णहिं जो लखि लेत ।
तीज दिवस सो मुक्त है पावत कृष्ण-निकेत ॥४४॥
शीतल जल नव घटन भरि माल-विजन वहु भाँति ।
देत हरिहि सो पावई पुन्य फलन की पाँति ॥४५॥
पुष्पमाल वहु भाँति अरु ग्रीषम के उपचार ।
जल यंत्रादि अनेक विधि करै बुद्धि-अनुसार ॥४६॥
कृष्ण-हेत जो कछु करै माधव तृतिया पाइ ।
सो अखंड ह्वैकै रहै पुन्य न कवहुँ नसाइ ॥४७॥
परशुराम को जन्म-दिन पुनि याही दिन जान ।
तिनके हित हू कीजिये दान वरत असनान ॥४८॥
छाता जूता आदि सव ग्रीषम सुख की वस्तु ।
द्विजन देइ या तीज को कहि कृष्णार्पणमस्तु ॥४९॥
सुकृत जौन यामें करै सो सव अक्षय होय ।
तासों अक्षय तीज यह नाम कहैं सव कोय ॥५०॥
चन्दन को वागो करै चन्दन ही की माल ।
चन्दन ही के भौन में वैठावै नँदलाल ॥५१॥
फूलन को मंदिर रचे फूलन सेज वनाय ।
तामें थापै कृष्ण कों फूल-माल पहिराय ॥५२॥
रितु-फल वहु सव भाँति के दधि-ओदन सुखधाम ।
पना धरै सव वस्तु को कहै लेहु घनश्याम ॥५३॥
दीपादिक की मुख्यता कातिक मैं जिमि जान ।
तैसेइ माधव मास मैं सीत वस्तु को मान ॥५४॥
चार वरन को दीजिए माधव मैं जल-दान ।
अंत्यज पशु पक्षीन को नीर-दान सुख-खान ॥५५॥

जे पशु-पक्षिन देत हैं ग्रीषम में जल-पान ।
ते नर सुरपुर जात हैं सुन्दर बैठि बिमान ॥५६॥
जे अति आतप सों तपे देहु तिन्हें विश्राम ।
छाया-जल बहु भाँति सो ह्वैहै पूरन काम ॥५७॥
गरमी के हित जे करत वापी कूप तड़ाग ।
तिनको पुन्य अखण्ड ते करत न सुरपुर त्याग ॥५८॥
साधुन को अरु द्विजन-गृह नदी-तीर हरि-धाम ।
जे छावत छाया तिन्हें मिलत श्याम अभिराम ॥५९॥

अथ श्री गङ्गा सप्तमी

माधव सुदि सप्तमि कियो क्रुद्ध जन्हु जल-पान ।
छोड़्यौ दक्षिण कर्ण तें तातें पर्व्व महान ॥६०॥
ताही सो जान्हवि भई ता दिन सों श्री गंग ।
तिनको उत्सव कीजिए ता दिन धारि उमंग ॥६१॥
तामें गंगा न्हाय कै पूजन कीजे चारु ।
गंगा नाम सहस्र जपि लीजै पुन्य अपार ॥६२॥

अथ वैशाख शुद्ध द्वादशी

सिंह राशि-गत होहि जौ मंगल गुरु इक ठौर ।
मेष राशि-गत दिवसपति शुक्ल पक्ष-जुत और ॥६३॥
द्वादशि तिथि में होइ पुनि वितीपात संयोग ।
हस्त होय नक्षत्र तौ होय महा यह जोग ॥६४॥
प्रात स्नान यामें करै सहित विवेक विधान ।
गो सुवरन अवनी वसन देइ द्विजन कहँ दान ॥६५॥
देव होइ सुरपति बनै नरपतिहू जग माहिं ।
जो मन इच्छित सो मिलै यामें संशय नाहिं ॥६६॥

अथ नृसिंह चतुर्दशी

माधव शुक्ल चतुर्दशी स्वाती पुनि शनिवार।
बनिज करन सिध जोग मैं नरहरि लिय अवतार ॥६७॥
जो सब जोग कहूँ मिले तौ पूरन सौभाग।
बिना जोगहू ब्रत करै करि हरि सों अनुराग ॥६८॥
सब लोगन को ब्रत उचित चौदस माधव मास।
पै वैष्णव जन तो करैं निश्चय ब्रत उपवास ॥६९॥
साँझ समै हरि को करै पंचामृत असनान।
शीतल भोग लगावई करि आनन्द विधान ॥७०॥
वा मृद गोमय आँवलनि करि मध्यान्ह स्नान।
पूछि द्विजन सों यह करे सुभ संकल्प विधान ॥७१॥

(मन्त्र)

देव देव नरसिंह जू जानि जनम को जोग।
आज करैं उपवास हम त्यागि सकल जग-भोग ॥७२॥

इति

यह पढ़ि नदी नहाइ के साँझ समै घर आइ।
लक्ष्मी सहित नृसिंह की सुवरन मूर्ति बनाइ ॥७३॥
रात पूजि जागरन करि प्रात पूजि पुनि श्याम।
पीठक विप्रहि दे करै यह विन्ती सुखधाम ॥७४॥

(मन्त्र)

नरहरि अच्युत जगतपति लक्ष्मीपति देवेस।
पूजौ पीठक-दान सों मन-कामना अशेस ॥७५॥
जे मम कुल में होयँगे होय गए जे साथ।
या भव-सागर दुसह तें तिनहिं उधारौ नाथ ॥७६॥
डूब्यौ पातक-सिन्धु मैं महादुःख के वारि।
दुखित जानि मोहि राखिए नरहरि भुजा पसारि ॥७७॥

जे पशु-पक्षिन देत हैं ग्रीषम मैं जल-पान ।
ते नर सुरपुर जात हैं सुन्दर बैठि बिमान ॥५६॥
जे अति आतप सों तपे देहु तिन्हैं विश्राम ।
छाया-जल बहु भाँति सों ह्वैहै पूरन काम ॥५७॥
गरमी के हित जे करत बापी कूप तड़ाग ।
तिनको पुन्य अखण्ड ते करत न सुरपुर त्याग ॥५८॥
साधुन को अरु द्विजन-गृह नदी-तीर हरि-धाम ।
जे छावत छाया तिन्हैं मिलत श्याम अभिराम ॥५९॥

अथ श्री गङ्गा सप्तमी

माधव सुदि सप्तमि कियो क्रुद्ध जन्हु जल-पान ।
छोड़्यौ दक्षिण कर्ण तें तातें पर्व्व महान ॥६०॥
ताही सों जान्हवि भई ता दिन सों श्री गंग ।
तिनको उत्सव कीजिए ता दिन धारि उमंग ॥६१॥
तामें गंगा न्हाय कै पूजन कीजे चारु ।
गंगा नाम सहस्र जपि लीजै पुन्य अपारु ॥६२॥

अथ वैशाख शुद्ध द्वादशी

सिंह राशि-गत होहिं जौ मंगल गुरु इक ठौर ।
मेष राशि-गत दिवसपति शुक्ल पक्ष-जुत और ॥६३॥
द्वादशि तिथि मैं होइ पुनि ब्रितीपात संयोग ।
हस्त होय नक्षत्र तौ होय महा यह जोग ॥६४॥
प्रात स्नान यामैं करै सहित विवेक विधान ।
गो सुवरन अवनी बसन देइ द्विजन कहँ दान ॥६५॥
देव होइ सुरपति बनै नरपतिहू जग माहिं ।
जो मन इच्छित सो मिलै यामैं संशय नाहिं ॥६६॥

अथ नृसिंह चतुर्दशी

माधव शुक्ल चतुर्दशी स्वाती पुनि शनिवार।
बनिज करन सिध जोग मैं नरहरि लिय अवतार ॥६७॥
जो सब जोग कहूँ मिले तौ पूरन सौभाग।
बिना जोगहू व्रत करै करि हरि सों अनुराग ॥६८॥
सब लोगन को व्रत उचित चौदस माधव मास।
पै वैष्णव जन तो करैं निश्चय व्रत उपवास ॥६९॥
साँझ समै हरि को करै पंचामृत असनान।
शीतल भोग लगावई करि आनन्द विधान ॥७०॥
वा मृद गोमय आँवलनि करि मध्यान्ह स्नान।
पूछि द्विजन सों यह करे सुभ संकल्प विधान ॥७१॥

(मन्त्र)

देव देव नरसिंह जू जानि जनम को जोग।
आज करैं उपवास हम त्यागि सकल जग-भोग ॥७२॥

इति

यह पढ़ि नदी नहाइ के साँझ समै घर आइ।
लक्ष्मी सहित नृसिंह की सुवरन मूर्ति बनाइ ॥७३॥
रात पूजि जागरन करि प्रात पूजि पुनि श्याम।
पीठक विप्रहि दे करै यह विनती सुखधाम ॥७४॥

(मन्त्र)

नरहरि अच्युत जगतपति लक्ष्मीपति देवेस।
पूजौं पीठक-दान सों मन-कामना अशेस ॥७५॥
जे मम कुल में होयँगे होय गए जे साथ।
या भव-सागर दुसह तें तिनहिं उधारौ नाथ ॥७६॥
डूब्यौ पातक-सिन्धु मैं महादुःख के वारि।
दुखित जानि मोहि राखिए नरहरि भुजा पसारि ॥७७॥

श्री नरसिंह रमेश जू भक्तन को भय टारि।
क्षीर समुद्र निवास तुव चक्रपाणि दनुजारि ॥७८॥
जय जय कृष्ण गुविन्द हरि राम जनार्दन नाथ।
या व्रत सों मोहिं दीजिए भक्ति मुक्ति दोउ साथ ॥७९॥

इति

या विधि सो व्रत जे करैं कृष्ण-जन्म दिन जानि।
ते चारहु फल पावहीं यह उर निश्चय मानि ॥८०॥
जिमि निकसे प्रभु खंभ ते राख्यौ जन प्रह्लाद।
तिमि तिनकी रक्षा करत जे राखत व्रत स्वाद ॥८१॥

अथ पूर्णिमा

माधव कातिक माघ की पूनो परम पुनीत।
ता दिन गंगा न्हाइयै करि केशव सों प्रीति ॥८२॥
एक मास जो नहिं बनै श्रीगंगा-असनान।
तौ पूनो दिन न्हाइयै अरु करियै जल-दान ॥८३॥
व्रत समाप्त या दिन करै देइ द्विजन को दान।
हाथ जोड़ि कै यह कहै लखि कै श्री भगवान ॥८४॥

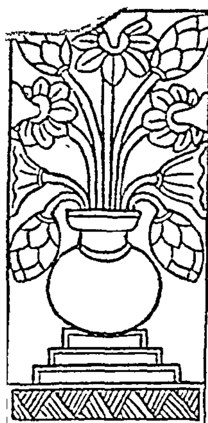
(मंत्र)

हे मधुसूदन, कृष्ण हरि राधा-जीवन-प्रान।
तव प्रताप पूरन भयो माधव त्रिधिवत स्नान ॥८५॥

इति

श्यामें मृगी के चर्म पै श्याम तिलहि दै दान।
सुवरन सह कहि होहिं प्रिय मधुसूदन भगवान॥८६॥
ब्राह्मण बहुत खवावई करि अनेक पकवान।
जौ बहु द्विज नहिं होइ तौ बारह सहित विधान ॥८७॥
एहि विधि माधव मे करै प्रेम सहित असनान।
ताकों सब कछु देहिं श्री मधुसूदन भगवान ॥८८॥

लखि कै निरनयसिंधु अरु भगवद्भक्ति-विलास ।
माधव की यह विधि लिखी 'हरीचन्द' हरिदास ॥८९॥
एक दिवस मैं यह लिखी माधव-विधि अभिराम ।
जेहि पढ़ि कै सुख पाइहैं कृष्ण-भक्त सुखधाम ॥९०॥
लीजौ चूक सुधारि कै कविगन सहित अनन्द ।
हौं नहिं जानत रचन-विधि नहिं पिंगल नहिं छन्द ॥९१॥
माधव-विधि माधव सुमिरि उर अति धारि अनन्द ।
परम प्रेमनिधि रसिकवर बिरच्यौ श्रीहरिचन्द ॥९२॥
प्रान-पियारे, प्रेमनिधि प्रेमिन-जीवन-प्रान ।
तिनके पद अरपन कियो यह वैशाख-विधान ॥९३॥




कीरये जल-दान ॥

प्रेम-सरोवर

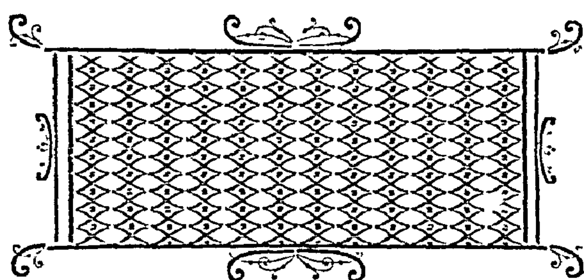
सं० १९३०

समर्पण

आज अक्षय तृतीया है, देखो जल-दान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जल-दान दोगे? कहाँ! वरंच जलांजलि दोगे; देखो मैं कैसा प्यासा हूँ और प्यास में भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियों तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुंड, वावली और झरनों को तुच्छ करके छोड़ दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर घन की ध्वनि भी न सुन पड़े तो कैसे प्रान बचे? देखो यह कैसी अनीति है, वही आनन्दघन जी का कहना 'सब छोड़ि अहो हम पायो तुम्हैं हमैं छोड़ि कहो तुम पायो कहा।' यह देखो कैसे संशय की बात है कि मैं तो दोनों लोक के यावत् पदार्थ छोड़ बैठा, उस पर भी आप न पिघले तो इससे तुम्हारे ही विषय में संशय होते हैं जो चित्त के धैर्य्यों को हिलाते हैं। पर चाहे तुम कुछ कहो, मैं तो व्रत नहीं छोड़ने का। यह बड़ा हठ कौन मिटा सकता है? जो कहो कि 'तुम कच्चे हो, घर बैठे ही यह सम्पत लूटा चाहते हो और संसार की वासनाओं से दूषित होकर भी हमें खोजते हो' तो हम कैसे भी हों, तुम तो अच्छे हो और हम कहाते तो तुम्हारे हैं, तो फिर तुमको इससे क्या? भले आदमी ही बनो 'सतां सप्तपदी मैत्री' इसी का निबाह करो, किसी भाँति समझो। ए मेरे प्यारे, कुछ तो मानो। जो कहो धर्म, तो तुम फल रूप हो। अब धर्म्म फिर कैसा? जो कहो कलंक, तो प्रथम तुमको कलंक ही नहीं, और जो होता भी हो तो हम तुमको ढिंढोरा पीटने तो कहते नहीं। केवल इस अपने दीन को आश्वासन दे दो कि निराश न हो और इन अनिवार्य्य अश्रुओं को

अपने अंचल से निवारण करो और भव-ताप से परम तापित इस दीन-हीन दुखी को अपने चरण-कल्पतरु की छाया मे विश्राम दो, क्योंकि वैशाख में छायादान का बड़ा पुण्य है। जो कहो कि वैशाख बड़ा पुण्य मास है, इसमें तुमने क्या किया ? तो मैंने देखो यह कैसा उत्तम तीर्थ प्रेम-सरोवर बनाया है। जो इस तीर्थ में स्नान करेंगे, जो इस तीर्थ की विधि करेंगे, जो इस तीर्थ का ध्यान धरेंगे, वे आप पुण्य-स्वरूप पावन होकर अपने शरीर के स्पर्श के वायु से तथा हवा से लोक को पवित्र करेंगे, क्योंकि सत्य प्रेम ऐसी ही वस्तु है। तो क्या इस सीतल सरोवर मे तुम न नहाओगे ? अवश्य नहाना होगा, आप नहाओ और अपने जनों को कहो कि इसमें स्नान करें। प्यारे, यह अक्षय सरोवर नित्य भरा रहेगा और इसमे नित्य नए कमल फूलेंगे और कभी इसमें कोई मल न आवेगा और इस पर प्रेमियों की भीड़ नित्य लगी रहेगी और प्रेम शब्द को विषय का पूजादिक कहनेवाले वा प्रेमाधिकारी के अतिरिक्त कोई भी इस तीर्थ पर कभी न आवेंगे (एवमस्तु-एवमस्तु)। तो तुम तो स्नान करो कि मेरा परिश्रम सार्थक हो और इसका तीर्थपना पक्का हो जाय, क्योंकि तुम्हारे वा हमारे वा तुम्हारे किसी सेवक के नहाने से जल मात्र गंगा हो जाते हैं। तो आओ, इधर आओ, इस उत्तम तीर्थ का मार्ग दिखानेवाला तुम्हारे आगे चलता है, जिसका नाम—

अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल ३ } केवल तुम्हारा
सं० १९३० मंगल } * * * * है



प्रेम-सरोवर

जिहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय ।
जयति जगत पावन-करन प्रेम बरन यह दोय ॥ १ ॥
प्रेम प्रेम सब ही कहत प्रेम न जान्यौ कोय ।
जो पै जानहि प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय ॥ २ ॥
प्राननाथ के न्हान हित धारि हृदय आनंद ।
प्रेम-सरोवर यह रचत रुचि सों श्री हरिचंद ॥ ३ ॥
प्रेम-सरोवर यह अगम यहाँ न आवत कोय ।
आवत सो फिर जात नहिं रहत वहीं के होय ॥ ४ ॥
प्रेम-सरोवर मैं कोऊ जाहु नहाय विचारि ।
कछु के कछु ह्वै जाहुगे अपनेहि आप बिसारि ॥ ५ ॥
प्रेम-सरोवर नीर को यह मत जानेहु कोय ।
यह मदिरा को कुण्ड है न्हातहि बौरो होय ॥ ६ ॥
प्रेम-सरोवर नीर है यह मत कीजौ ख्याल ।
परे रहैं प्यासे मरैं उलटी ह्याँ की चाल ॥ ७ ॥
प्रेम-सरोवर-पंथ मैं चलिहैं कौन प्रवीन ।
कमल-तंतु की नाल सों जाको मारग छीन ॥ ८ ॥

प्रेम-सरोवर के लग्यौ चम्पावन चहुँ ओर ।
भँवर विलच्छन चाहिए जो आवै या ठौर ॥९॥
लोक-लाज की गाँठरी पहिले देइ डुबाय ।
प्रेम-सरोवर पंथ मैं पाछें राखै पाय ॥१०॥
प्रेम-सरोवर की लखी उलटी गति जग माँहि ।
जे डूबे तेई भले तिरे तरे ते नाँहि ॥११॥
प्रेम-सरोवर की यहै तीरथ विधि परमान ।
लोक वेद कों प्रथम ही देहु तिलांजलि-दान ॥१२॥
जिन पाँवन सों चलत तुम लोक वेद की गैल ।
सो न पाँव या सर धरौ जल ह्वै जैहै मैल ॥१३॥
प्रेम-सरोवर पंथ मैं कीचड़ छीलर एक ।
तहाँ इनारू के लगे तट पैं वृक्ष अनेक ॥१४॥
लोक नाम है पंक को वृच्छ वेद को नाम ।
ताहि देखि मत भूलियो प्रेमी सुजन सुजान ॥१५॥
गहवर वन कुल वेद को जहँ छायो चहुँ ओर ।
तहँ पहुँचै केहि भाँति कोउ जाको मारग घोर ॥१६॥
तीछन विरह दवागि सों भसम करत तरुवृंद ।
प्रेमीजन इत आवहीं न्हान हेत सानंद ॥१७॥
या सरवर की हौं कहा सोभा करौं बखान ।
मत्त मुदित मन भौंर जहँ करत रहत नित गान ॥१८॥
कबहुँ होत नहिं भ्रम निसा इक रस सदा प्रकास ।
चक्रवाक बिछुरत न जहँ रमत एक रस रास ॥१९॥
नारद शिव शुक सनक से रहत जहाँ बहु मीन ।
सदा अमृत पीके मगन रहत होत नहिं दीन ॥२०॥
नंददास, आनंदघन, सूर, नागरीदास ।
कृष्णदास, हरिवंस, चैतन्य, गदाधर, व्यास ॥२१॥

इन आदिक जग के जिते प्रेमी परम प्रसंस ।
तेई या सर के सदा सोभित सुंदर हंस ॥२२॥
तिन बिनु को इत आवई प्रेम-सरोवर न्हान ।
फँस्यौ जगत मरजाद में बृथा करत जप ध्यान ॥२३॥
अरे बृथा क्यों पचि मरौ ज्ञान-गरूर बढ़ाय ।
बिना प्रेम फीको सबै लाखन करहु उपाय ॥२४॥
प्रेम सकल श्रुति-सार है प्रेम सकल स्मृति-मूल ।
प्रेम पुरान-प्रमाण है कोउ न प्रेम के तूल ॥२५॥
बृथा नेम, तीरथ, धरम, दान, तपस्या आदि ।
कोऊ काम न आवई करत जगत सब बादि ॥२६॥
करत देखावन हेत सब जप तप पूजा पाठ ।
काम कछू इन सों नहीं यह सब सूखे काठ ॥२७॥
बिना प्रेम जिय ऊपजे आनँद अनुभव नाँहि ।
ता बिनु सब फीको लगै समुझि लखहु जिय माँहि ॥२८॥
ज्ञान करम सों औरहू उपजत जिय अभिमान ।
दृढ़ निहचै उपजै नहीं बिना प्रेम पहिचान ॥२९॥
परम चतुर पुनि रसिकवर कैसोहू नर होय ।
बिना प्रेम रूखी लगै बादि चतुरई सोय ॥३०॥
जान्यो वेद पुरान भे सकल गुनन की खानि ।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं कहा कियो सब जानि ॥३१॥
काम क्रोध भय लोभ मद सबन करत लय जौन ।
महा मोहहू सों परे प्रेम भाखियत तौन ॥३२॥
बिनु गुन जोबन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि ।
शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रस-खानि ॥३३॥
अति सूछ्छम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर ।
प्रेम कठिन सब तें सदा नित इक रस भरपूर ॥३४॥

जग मैं सब कथनीय है सब कछु जान्यौ जात ।
पै श्री हरि अरु प्रेम यह उभय अकथ अलखात ॥३५॥
बँध्यौ सकल जग प्रेम मे भयो सकल करि प्रेम ।
चलत सकल लहि प्रेम कों बिना प्रेम नहिं छेम ॥३६॥
पै पर प्रेम न जानहीं जग के ओछे नीच ।
प्रेम जानि कछु जानिबो बचत न या जग बीच ॥३७॥
दंपति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान ।
इनसों परे बखानिए शुद्ध प्रेम रस-खान ॥३८॥
जदपि मित्र सुत बंधु तिय इनमैं सहज सनेह ।
पै इन मैं पर प्रेम नहिं गरे परे को एह ॥३९॥
एकंगी बिनु कारने इक रस सदा समान ।
पियहि गनै सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान ॥४०॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ सोय ॥४१॥



प्रेमाश्रु-वर्षण

'पर-कारज देह कों धारे फिरौ परजन्म जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सुंदरता सरसौ ॥
'घन आनँद' जीवन-दायक ह्वै कवौ मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवान कों लै बरसौ ॥'

सं० १९३०

समर्पण

कितव,

यह प्रेमाश्रु की वर्षा है। इससे नहाके तब मुझे छूओ, क्योंकि बहुत धूर्तता करने से तुम अशुद्ध हो गए हो। क्या कहूँ, बहुत कुछ कहने को जी चाहता है और लेखनी कहनी-अनकहनी सभी कहना चाहती है, पर क्या करे, अदब का स्थान है, इससे चुप है और चुप रहेगी। हाय हाय, कभी मैं इस दुष्ट लेखनी को अपने प्रान-प्यारे जीवितेश, मेरे सर्वस्व की कुछ निंदा कैसे लिखने दूँगा। और जो लिखा भी हो तो क्षमा करना।

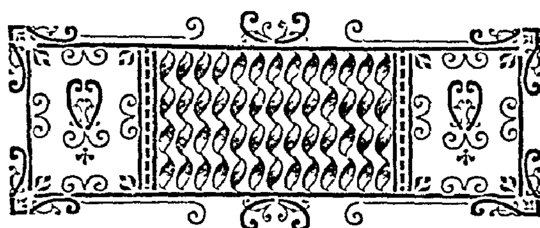
यह बखेड़ा जाने दो, आज क्यों नहीं मिले ?

ले इन्हीं लक्षणों से तो कुछ कहने को जी चाहता है
न कहूँगा, रूठने का डर तो सबसे बड़ा है न
जैसा कुछ हूँ, बुरा भला तुम्हारा हूँ
लो इस वर्षा से जी बहलाओ
पर प्यारे, तुम भी कभी बरसो।

बरसि नदी नद सर समुद पूरे करुना-भौन।
हम चातक लघु चंचु-पुट पूरन में श्रम कौन॥

सावन हरिआरी अमावस
गुरु पुष्य सं० १९३०

तुम्हारा चातक
हरिश्चंद्र



प्रेमाश्रु-वर्षण

भइ सखि साँझ फूलि रहि वन द्रुम वेली चलै किन कुंज कुटीर।
हरे तरोवर भए सुनहरे छिरकी मनहुँ अवीर॥
झुकि रहे रंग रंग के वादर मनु सुखए वहु चीर।
जानि वसेरा-समय कुलाहल करत कोकिला कीर॥
तन्यो वितान गगन अवनी लौं भयो सुहावन तीर।
जमुना-जल झलकत आभा मिलि लहरत रँग भरि नीर॥
धीर समीर वहत अँग सहरत सोभित धीर समीर।
"हरीचंद' इक तुव विनु फीको सव मानत वलवीर॥१॥

सखी री साँझ सहायक आई।
मेट्यो भय वैरी प्रकास को सव कछु दीन दुराई॥
अवनि अकास एक भयो मारग कहुँ नहिं परत दिखाई।
सूने भए सवै थल व्रजजन घर मैं रहे दुराई॥
गरजि वुलावत तोहि चंचला चमकत राह दिखाई।
औरन के चकचौंधा लावत तेरी करत सहाई॥
तैसेहि झींगुर झनकत नूपुर जासों नाहिं सुनाई।
वायु सुखद ता दिसि तोहिं भेजत तरु हिलि रहत वुलाई॥

बरसत नान्ही बूँद हरन श्रम कोकिल करत बधाई ।
'हरीचंद' चलि उत किन भामिनि रहु पिय अंकम लाई ।।२।।

साँझ भई री परम सुहावनि घिरि तम कीन बितान ।
भए अँधेरे कुंज लता-तरु दुखौ दुखद सो भान ।।
घर गए गोप गाय गई गोहर सून भए मग थान ।
पावस समय जानि सब वेगहि सोए नर-नारी पट तान ।।
अवनि अकास एक भयो देखियत परत नाहिं कछु जान ।
झनकत झिल्ली रट रहे दादुर कियो जात नहिं कान ।।
तारे चंद मंद भए सारे लखिहै कोउ न प्रयान ।
'हरीचंद' उठि चलु निधरक तू मति चूकै करि मान ।।३।।

जगावन ही मनु पावस आयो ।
भयो भोर पिय उठौ उठौ कहि मधुरे गरजि सुनायो ।।
बोले मोर कोकिला कुहके दादुर रोर मचायो ।
दामिनि दसकी मंगल बंदी-जन मनु नाच्यौ गायो ।।
छोटी बूँद बरसि चौंकाए आलस सबै मिटायो ।
'हरीचंद' पिय प्यारी कों इन वेगहिं आज जगायो ।।४।।

आजु प्रानप्यारी प्राननाथ सों मिलन चली
लखि कै पावस दास साजी है सवारी ।
तृन के पाँवरे बिछाय घन धुनि मंगल सुनाय
दामिनि दमकि आगे करै उँजियारी ।।
ठौर ठौर राह बतावत झिल्ली
बूँद बरसि हरै श्रम सुखकारी ।
'हरीचंद' समै को उचित उपचार करि
पावत न्यौछावर पिय उनहारी ।।५।।

आजु तन भींजे वसनन सोहैं ।
देखि लेहु भरि लोचन सोभा जुगल अरी मन मोहैं ॥
उघरे तन अनुरागहु उर के छिपे न जदपि लजोहैं ।
रति के चिन्ह जुगल तन वसनन ढँकेहु उघरि उलटौहैं ॥
अंग प्रभा मनु वसन रुको नहिं प्रगटि खुली सब सौंहैं ।
'हरीचंद' दृग भींजि रहे रुकि उड़ि न सकत ललचौंहैं ॥६॥

वात विनु करत पिया वदनाम ।
कौन हेतु वह लाज हरै मम विना वात वे-काम ॥
आजु गई हौं प्रात जमुन-तट आयो तहँ घनस्याम ।
पकरि मोहिं जल वीच हलोख्यो तोख्यो गर की दाम ॥
लरि कंकन को दियौ खरौटा मेरे मुख सुनु वाम ।
'हरीचंद' जाने जामैं सब छिपै न प्रीति मुदाम ॥७॥

विहरत रस भरि लाल विहारी ।
ज्यौं ज्यौं घन गरजत हैं त्यों त्यों लपटि रहत पिय प्यारी ॥
होड़ा-होड़ी घन दामिनि सों केलि करत सुखकारी ।
वोलत मोर दामिनी चमकत लखि उमगत रस भारी ॥
रहे सिहराइ भुजा भुज दीने राधा भानु-दुलारी ।
'हरीचंद' कवि-गन किए पावन कविता दोस निवारी ॥८॥

दामिनि वैर करै विनु वात ।
विघन वनत विनु वात कुंज मैं जब कवहूँ चमकात ॥
निधरक जुगल रहन नहिं पावत प्रगटावत रस-वात ।
'हरीचंद' आखिर तौ चपला सहि नहिं सकत सिहात ॥९॥

दामिनि वैरिनि वैर परी ।
जान न देत पिया प्यारे ढिग प्रगटत वात दुरी ॥

रैन अँधेरी स्याम वसन तन जद्यपि रहत धरी।
तऊ चमकि बिनु बात बैरिनी मेरी लाज हरी॥
घन गरजत बूँदन लखि घर नहिं रहियै धीर धरी।
'हरीचंद' तजि संक अकेली पिय-मारग निकरी॥१०॥

मंगलमय सखि जुगल-बिहार।
बड़े प्रात ही कुंज ओट तें क्यों चुपके नहिं लेत निहार॥
मंगल सेस भवन रस मंगल तहाँ जुगल मंगल की खानि।
मंगल बाहु बाहु मैं दीने मंगल वलि अलसौंहीं बानि॥
मंगल जागत आलस पागत मंगल नींद भरे जुग नैन।
मंगल लपटि लपटि कै पुनि पुनि कबहुँ उठत करि कबहूँ सैन॥
मंगल परिरंभन आलिंगन मंगल तोतरे शब्द उचार।
'हरीचंद' मंगल वल्लभ-पद जा बल बिहरत बिना बिकार॥११॥

आजु कछु मंगल घन उनए।
गरजत मंद मंद सोई मंगल मनव्रत कुंज छए॥
बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मंगल कलस लए।
चमकि मंगलामुखी दामिनी मंगल करत नए॥
मंगल बैरख बग की पंगत मंगल दादुर गान गए।
मंगल नाचत मोर मोरनी मंगल कुंज बितान ठए॥
मंगल ब्रज वृंदावन जमुना मंगल गिरिवर नाम लए।
'हरीचंद' मंगल वल्लभ-पद जा बल जुगल बिहार भए॥१२॥

सखि ये बदरा बरसन लागे री।
मोहिं मोहन पिय बिनु जानि जानि,
झुकि झुकि कै सरसन लागे री।
हम उन बिनु अति व्याकुल डोलैं, मुख सों हाय पिया कहि बोलैं,
प्रान आइ अटके नैनन में तेरे दरसन लागे री॥

सुनि सुनि कै सँजोग कुविजा को, करि कै याद विछुरिवो वाको,
लखि झमकनि बूँदनि की मेरे जियरा हरसन लागे री।
'हरीचंद' नहिं वरसत पानी, विरह अगिनि को घृत सम जानी,
कहा करैं कित जाइँ सेज सूनी लखि तरसन लागे री ।।१३।।

सखी मन-मोहन मेरे मीत ।
लोक वेद कुल-कानि छाँड़ि हम करी उनहिं सों प्रीत ।।
विगरौ जग के कारज सगरे उलटौ सवही नीत ।
अव तौ हम कवहूँ नहिं तजिहैं पिय की प्रेम प्रतीत ।।
यहै वाहु-वल आस यहै इक यहै हमारी रीत ।
'हरीचंद' निधरक विहरैंगी पिय वल दोउ जग जीत ।।१४।।

अरी सोहागिन तेरे ही सिर राजतिलक विधि दीनो ।
तोही कों फवै सेंदुर को टीको जिन पिय मन हरि लीनो ।।
नास्यौ दरप सुन्दरीगन को भोग-भाग सव छीनो ।
'हरीचंद' भय मेटि काम को राज अचल व्रज कीनो ।।१५।।

श्रीराधे सवको मान हर्‌यौ ।
अरी सुहागिन मेरी तू जव सेंदुर तिलक धर्‌यौ ।।
गिरे गरव-परवत जुवतिन के रूप गरूर गर्‌यौ ।
रीती सिद्धि भई रिपिगन की देविन दरप दर्‌यौ ।।
शिव समाधि छूटी शुक डोल्यौ रवि ससि तेज छर्‌यौ ।
फूलन रूप-रंग तजि दीनौ जग आनंद भर्‌यौ ।।
सवको भाग रूप अधरामृत इकलौ पान कर्‌यौ ।
'हरीचंद' हरि तोहि अंक लै ह्वै निसंक विहर्‌यौ ।।१६।।

सुरत-श्रम-जल विहरत पिय-प्यारी ।
चाव भरे दोउ सेज नाव पै वाहु वाहु मैं धारी ।।

करि आसरो पियारी को पिय पावत कोउ विधि पारो।
'हरीचंद' तहँ मौन बाँधि गल डूबे भयो सुखारी ॥१७॥

प्यारी-रूप-नदी छवि देत।
सुखमा-जल भरि नेह-तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत॥
नैन-मीन कर-पद-पंकज से सोभित केस-सिवार।
चक्रवाक जुग उरज सुहाए लहर लेत गल-हार॥
रहत एक-रस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेंटि।
'हरीचंद' बरसै साँवल घन बढ़त कूल कुल मेटि ॥१८॥

आजु तन आनँद-सरिता बाढ़ी।
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरंगनि काढ़ी॥
लोक वेद दोउ कूल तरोवर गिरे न रहे सम्हारे।
हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ कै नारे॥
बुझे दवानल परम विरह के प्रेम-परब भो भारी।
मीन-बान के जे प्रेमी जन जल लहि भए सुखारी॥
भई अपार न छोर दिखावै नीति-नाव नहिं चाली।
'हरीचंद' वल्लभ-पद-बल वै अवगाहत सोई आली ॥१९॥

हमारे नैन बहीं नदियाँ।
बीती जानि औधि सब पिय की जे हम सों बदियाँ॥
अवगाह्यौ इन सकल अंग ब्रज अंजन को धोयो।
लोक वेद कुल-कानि बहाई सुख न रह्यो खोयो॥
डूबत हौं अकुलाइ अथाहन यहै रीति कैसी।
'हरीचंद' पिय महाबाहु तुम आछत गति ऐसी ॥२०॥

खेमटा।

ए री मेरी प्यारी आजु पौढ़ि तू हिंडोरें।
ललित लतान मैं सेज फँसाई झरत फूल चहुँ ओरें॥

मंद पवन लगिहैं हालन मैं पीतम सों भुज जोरें।
'हरीचंद' सुख नींद सोइ तूँ अपने पिय के कोरें ॥२१॥

पिय की अँकोर रच्यो है हिंडोर ।
खंभ जाँघैं अंक पटुली मंद झुलनि झकोर ॥
हार झूमर पीत पट झालर लगी चहुँ ओर ।
सुक मोर पिक किंकिनि वदत तन स्वेद बरसत जोर ॥
तहँ रमकि झूलत प्रान-प्यारी उमगि थोरहिं थोर ।
'हरिचंद' सखि श्रम-हरन बीजन रहत है तृन तोर ॥२२॥

दोऊ मिलि झूलत कुंज वितान ।
चहुँ ओर एकन एक सों लगे सघन विटप कतार ।
तापैं लता रहिं लपटि घेरे मूल सों प्रति डार ॥
बहु फूल तिन मैं फूलि सोहत विविध बरन अपार ।
तिमि अवनि तृन अंकुर-मई भयो दसो दिसि इक सार ॥ दोऊ० ॥
इक सबल लखि कै डार डारयौ तहाँ ललित हिंडोल ।
तापैं लता चहुँघा लपेटीं झूमि झूमर लोल ॥
तहँ झमकि झूलत होड़ बदि बदि उमगि करहिं कलोल ।
खेलैं हँसैं गेंदुक चलावैं गाइ मीठे बोल ॥ दोऊ० ॥
झोटा बढ़्यो रमकत दोऊ दिसि डार परसत जाइ ।
फरहरत चंचल खुलत बेनी अंग परत दिखाइ ॥
टूटि मोती-माल मुक्ता गिरत भू पै आइ ।
मनु मुक्त जन अधिकार गत लखि देत धरनि गिराइ ॥ दोऊ० ॥
कसी कंचुकि होत ढीली खुलि तनी के बंद ।
सिथिल कबरी उड़त सारी गिरत करके छंद ॥
प्रगट बदन दुरात झूलत मैं तहाँ सानंद ।
मनु प्रेम-सागर मथत इत उत तरत कढ़ि बहु चंद ॥ दोऊ० ॥

इक डार पकरि हिलाइ बरसावत कुसुम बहु रंग।
इक नचत गावत इक बजावत बीन मधुर मृदंग॥
इक खींचि भाजत एक को पट हँसत भरी उमंग।
इक लपटि डोरी खात भँवरी प्रगटि अंग अनंग॥ दोऊ०॥
इक रीझि झूलनि पै रहीं इक रही बिरछन ओर।
इक होड़ दै झोटन बढ़ावत सौंह देत निहोर॥
इक थकित उतरत सिथिल बैठत नटत घूमरि घोर।
इक चढ़त झूलन हेत बदिकै दाँव लाख करोर॥ दोऊ०॥
इक भजत तेहि गहि रहत दूजी हँसत झगरत बात।
इक कहत हम नहिं झूलिहैं भई सिथिल सगरे गात॥
तेहि खैंचि कोऊ आपुने बल डोल मैं लै जात।
इक श्रमित बैठत ताहि दूजी करत अंचल बात॥ दोऊ०॥
कोऊ अंचल छोर कटि मैं बाँधि कसिकै देत।
कोऊ किए लावन की कछौटी चढ़त झोटा हेत॥
कोऊ दाबि अंचल दाँत सों सुख सों झकोरे लेत।
कोऊ बाँधि गाती हार सगरे भिरत रति रन-खेत॥ दोऊ०॥
इक श्रमित मुख करि अरुन स्वेदित लेत बिबिध उसास।
भए हाथ डोरी गहत राते मनहुँ राग प्रकास॥
पिंडुरि काँपत अंग थहरत लहरि कच मुख पास।
तन स्वेद-कन झलकत रहत कोउ चाहि मंद बतास॥ दोऊ०॥
इक डरत झोटा देत पिय के गल रहत लपटाइ।
इक बीनि सबके आभरन पोहत तहाँ मन लाइ॥
इक गिरत रपटत घन गरज सुनि डरि छिपत इक जाइ।
इक बसन डारन सों छुड़ावत रहे जे लपटाइ॥ दोऊ०॥
गए भींजि सबके बसन लपटे बिबिध अंबर गात।
तन दुति अभूखन सहित भइ तहँ सबन को प्रगटात॥

मनु प्रान-पिय के मिलन अंतर-पट दुरायो जात।
खुलि गई कलई दुखो फल भयो प्रगट प्रेम लखात ।। दोऊ० ।।
इत वदत सुक पिक भँवर चातक भेक मोर चकोर।
इत डार हहरनि होत प्रतिधुनि सचकि डोल झकोर ।।
इत हँसनि हाहा सी सराहनि किंकिनी की रोर।
उत गान तान बँधान वाजन मिलि तुमुल कल घोर ।। दोऊ० ।।
रँग रंग सारी रंग रँग के वहु अभूखन अंग।
रँग रंग फूले फूल चहुँ दिसि झालरैं रँग रंग ।।
रँग रंग वादर छए नभ तन रंग रंग अनंग।
मनु श्याम ससि लखि रंग सागर चढ़ि चल्यौ इक संग ।। दोऊ० ।।
जर-तार सारी वादला लै करत मोती पात।
तन स्वेद-कन घनश्याम जल हरि-प्रेम वरसत जात ।।
तरु सों पराग अमोद मधु-मद फूल वरसत पात।
मनु श्याम घन लखि उमगि चहुँ दिसि तें चली वरसात ।। दोऊ० ।।
तरु फूल फल महि रहि गमकि तपि धूप ठौरहिं ठौर।
मिंहदी सुगंध कुसुंभ सारी अतर वासित छोर ।।
मिलि केस सोंधे अरगजा कुच लेप मृगमद जोर।
मुख मोद मधु तँवोल स्वेद सुगंध लेत झकोर ।। दोऊ० ।।
घन तड़ित चमकनि तासु आभा पाइ जल चमकात।
तन विविध भूखन वसन चमकनि हँसनि मैं द्विजपाँत ।।
चौंकि चमकनि नारि की मुख-चंद चमकनि गात।
मिलि पीत पट के चमक मैं इक रंग सवै दिखात ।। दोऊ० ।।
तन भींजि सारी रंग रँग के वारि वहत उदोत।
सव रंग मिलि के वसन छापित मैं प्रगट मुख जोत ।।
पिय के निचोरत चूनरी मैं रंग दूनो होत।
मनु वहे मिलि रँग-समुद मैं इक संग वहु रँग सोत ।। दोऊ० ।।

मुख पै कसूंभी रंग सारी भींजि रही चुचाय।
लट सगवगी ह्वै तिमि रही गल कुचन में लपटाय॥
मनु बाल ससि ढिग लाल बादर सुधा बरसत आय।
तेहि पान करि अहि-पुच्छ सों सिव-सीस देत बहाय॥दोऊ०॥
तिनमें छबीली ललित श्री वृषभानुराय-कुमारि।
जापैं रमा रति उरवसी सी कोटि फेंकिय वारि॥
जगस्वामिनी जन-काम-पूरनि सहज ही सुकुँवारि।
कीरति-जसोमति-लाडली ब्रजराज-प्रान-पियारि॥दोऊ०॥
तन नील सारी मैं किनारी चंद-मुख परिवेख।
सिंदूर सिर दोऊ नैन काजर पान की मुख रेख॥
बड़े नैना चपल चितवनि श्याम हित अनमेख॥
गोरी किसोरी परम भोरी सहज सुन्दर भेख॥दोऊ०॥
ढिग बाँह जोरे जासु बैठे नंदराय-कुमार।
प्रति रमक चितवनि हँसनि लखि जीवन करत मनुहार॥
सुरझाइ अंचल केस हारन करत मधुर बयार।
रहे रीझि आपा भूलि बारंबार कहि बलिहार॥दोऊ०॥
सिर मोर-मुकुट सोहावनो गल गुंज-माल अनूप।
तन श्यामसुंदर पीत पट कटि सहजही नट रूप॥
मनु नीलगिरि पैं बाल रवि की ललित लपटी धूप।
प्रेमिन महा सुख देत अतिहि उदार श्री ब्रज-भूप॥दोऊ०॥
मुरछल चँवर बिजना अड़ानी लिए हाथ रुमाल।
पिकदान फूल ऍगिर भूखन बसन कुसुमन माल॥
झारी भरी जल डबा बीरा विविध बिंजन थाल।
ललितादि ठाढ़ी अनुचरी ढिग रूप की सी जाल॥दोऊ०॥
इक करत आरति इक निछावरि करत मनिगन छोरि।
इक आइ राई लोन वारत इक रहत तृन तोरि॥

इक भौंर निरवारत खरी इक रहत भूखन जोरि।
इक बूँद आड़त आइ इक पद पोंछि रहत निहोरि ॥दोऊ०॥
आनंद-सागर बढ़ो ताको कहूँ वार न पार।
डूबे करम कुल ज्ञान नेम विवेक काम-विकार ॥
पायो न क्यौंहूँ थाह शिव शुक रहे हारि विचार।
'हरिचंद' तेहि अवगाह किय वल्लभ-कृपा-आधार ॥२३॥

सखी लखि यह रितु वन की शोभा।
कुहकत कुंज कुंज में कोकिल लखि कै सब मन लोभा ॥
नए नए वृक्ष नए नए पल्लव नए नए सब गोभा।
नए नए पात फूल फल नए नए देत हिये में चोभा ॥
सीतल चलत समीर सुहायो लेत सुगंध झकोर।
तैसोइ सुख घन उमड़ि रह्यौ है जमुना जू लेत हलोर ॥
नाचत मोर सोर चहुँ ओरन गुंजत अलि बहु भाँति।
बोलत चातक सुक पिक चहुँ दिसि लखि कै घन की पाँति ॥
हरी हरी भूमि भरी सोभा सों देखत ही बनि आवै।
जहँ राधा अरु माधव विहरत कुंजन छिपि छिपि जावै ॥
वह सौदामिनि वह स्यामल घन वृंदा-विपिन-विहारी।
जुगल चरन कमलन के नख पै 'हरीचंद' वलिहारी ॥२४॥

आजु ब्रज-बधू फूलीं फूलन के साज सजि,
प्यारी को झुलावत फूल के हिंडोरें।
फूली ब्रज भूमि सब द्रुम लता रहे फूलि,
तैसोई पवन वहै फूल के झकोरें ॥
फूली सखी एक आई साँवरे सलोने गात,
फूली प्यारी कंठ लगी प्रेम के हलोरें।

'हरीचंद' बलिहारी फूलि फूलि जात वारी,
संगम गुन गावत सुर थोरें ॥२५॥

परज

सखी री मोरा बोलन लागे।
मनु पावस को टेरि बोलावत तासों अति अनुरागे ॥
किधौं स्याम घन देखि देखि कै नाचि रहे मद पागे।
'हरीचंद' बृजचंद पिया तुम आइ मिलौ बड़-भागे ॥२६॥

देखि सखि चंदा उदय भयो।
कबहूँ प्रगट लखात कबहुँ बदरी को ओट भयो ॥
करत प्रकास कबहुँ कुंजन में छन छन छिपि छिपि जाय।
मनु प्यारी मुख-चंद देखि के घूँघट करत लजाय ॥
अहो अलौकिक यह रितु-सोभा कछु बरनी नहिं जात।
'हरीचंद' हरि सों मिलिबे कों मन मेरो ललचात ॥२७॥

सखी अब आनँद को रितु ऐहै।
बहु दिन ग्रीसम तप्यो सखी री सब तन-ताप नसैहै ॥
ऐहैं री झुकि झुकि कै बादर चलिहैं सीतल पौन।
कोइलि कुहुकि कुहुकि बोलैंगी बैठि कुंज के भौन ॥
बोलैंगे पपिहा पिउ पिउ बन अरु बोलैंगे मोर।
'हरीचंद' यह रितु-छबि लखि कै मिलिहैं नंदकिसोर ॥२८॥

सखी री कछु तौ तपन जुड़ानी।
जब सों सीरी पवन चली है तब सों कछु मन-मानी ॥
कछु रितु बदलि गई आली री मनु बरसैगो पानी।
'हरीचंद' नभ दौरन लागे बरसा के अगवानी ॥२९॥

भोजन कीजै प्रान-पिआरी ।
भई बड़ी बार हिंडोले झूलत आज भयो श्रम भारी ॥
विंजन मीठे दूध सुहातो लीजै भानु-दुलारी ।
स्यामा-स्याम-चरन-कमलन पर 'हरीचंद' बलिहारी ॥३०॥

ऐरी आज झूलै छै जी श्याम हिंडोरें ।
वृंदावन री सघन कुंज में जमुना जी लेतीं हलोरें ॥
सँग थारे वृषभानु-नंदिनी सोहे छे रँग गोरे ।
'हरीचंद' जीवन-धन वारी मुख लखतीं चित चोरे ॥३१॥

आजु फूली साँझ तैसी ही फूली राधा प्यारी ।
तैसी ही जमुना फूली, भौंरन की भीर भूली,
तैसो ही समय भयो तैसी ही फूलीं फुलवारी ॥
तैसे ही झोटा बढ़े, अति ही अनंद मढ़े,
तैसोई अड़ानो राग गावैं सुकुँवारी ।
तैसोई वृंदावन, तैसोई आनंद मन, तैसोही
मोहन बनैं 'हरीचंद' तहाँ बलिहारी ॥३२॥

कहूँ मोर बोलै री घन को गरज सुनि दामिनी दमकै छतिया धरकै ।
पिय बिन विकल अकेली तड़पूँ विरह-अगिनि उठि भरकै ॥
वह सुख की रतियाँ नहिं भूलै सोई बात जिय करकै ।
'हरीचंद' पिय से कैसे मिलूँ छतियाँ सों विरह बोझ मेरे सरकै ॥३३॥

चौखडा

हिंडोरे झूलत कुंज कुटीर ।
हिंडोरे राधा औ बलवीर ॥
हिंडोरे सब गोपिन की भीर ।
हिंडोरे कालिंदी के तीर ॥

कालिंदी के तीर गहवर कुंज रच्यो है हिंडोर।
नव द्रुम लतन में ग्रंथि दै दै फूल हैं चहुँ ओर॥
तहँ निविड़ में शोभा भई अति ही सुगंध झकोर।
लखि हंस सारस भँवर गुंजत नचत बहु विधि मोर॥
सोभा अति झूलत भई आजु वृंदावन माँहि।
एक उतरहिं एक चढ़हिं पुनि एक आवहिं एक जाँहि॥

तैसी भूमि सबै हरियारी।
तैसी सीतल चलत बयारी।
डोलत कीर कतारी।
तैसी दादुर की धुनि न्यारी॥

दादुर की धुनि चहुँ ओर तैसी बीर-बधु छबि देत।
बग-पाँति तैसी श्याम घन में इंद्रधनुष समेत॥
जल बरसि नान्ही नान्ही बूँदन जिय बढ़ावत हेत।
कहुँ पंथ नहि सूझत तृनन सों जल हलोरा लेत॥
अब चमकत घन दामिनी प्यारी तबै तुरंत।
पिय के कंठन लागई बाढ़यौ मोद अनंत॥

तैसी झुकी रही लतारी।
तैसे सोभित नवल पतारी॥
तामैं अँटकि रहै सारी।
तेहि आप छुड़ावत प्यारी॥

प्यारी छोड़ावत आपु सारी फूल सखि खसि कै गिरैं।
सब हिलत द्रुम अरु डार सोभा लखत ही मन को हरैं॥
बेला चमेली कुंद मरुआ अरु गुलाबन के तरैं।
बहु रंग फूले फूल तापै भँवर बहु विधि गुंजरैं॥
अति आनँद बाढ़यौ तहाँ झूलत हैं ब्रजचंद।
सब ब्रजनारि झुलावहीं कबहुँ तरल कहुँ मन्द॥

सिर मोर मुकुट छवि छाजै ।
उनके सुरंग चूनरी राजै ॥
बिछुआ किंकिनि सब बाजै ।
मनु काम नृपति-दल गाजै ।
मनु काम नृप की सैन गाजै जीति सब संसार को ।
कियो अचल पूरन प्रेम पंथहि नासि ग्यान-विकार को ॥
नित एक रस यह ब्रज बसौ श्री श्याम नंदकुमार को ।
'हरिचन्द' का बरनै कहो या नित्य नवल बिहार को ॥३४॥

राग मलार

बोलै भाई गोवर्द्धन पर मोर ।
सावन मास घटा जुरि आई करत पपीहा सोर ॥
वृंदावन तरु पुंज कुंज मैं ठाढ़े नंदकिसोर ।
तैसिहि सँग वृपभानु-नंदनी तन जोरन को जोर ॥
सीतल चलत समीर सुहायो भरत सुगंधि अथोर ।
या बृज माहिं सदा चिरजीवै 'हरीचंद' चित-चोर ॥३५॥

सखि री कुंजन बोलत मोर ।
दामिनि दमकि दसो दिसि दावत छूटि छुवत छित छोर ॥
मंद मंद मारुत मन मोहत मत्त मधुपगन सोर ।
'हरीचंद' बृजचंद पिया बिनु मारत मदन मरोर ॥३६॥

जेंवत भींजत हैं पिय प्यारी ।
सावन मास घटा जुरि आई बैठे मोर कतारी ॥
मुरछल चँवर करत ललितादिक बैठे कंचन थारी ।
स्यामा-स्याम-बदन के ऊपर 'हरीचंद' बलिहारी ॥३७॥

घिरि घिरि घोर घमक घन धाए ।
बरसत बारि बड़ी बड़ी बूँदन बृज-मंडल पर छाए ॥
दादुर बक पिक मोर पपीहा चातक सोर मचाए ।
दामिनि दमकति दसहुँ दिसा सों बहु खद्योत चमकाए ॥
कुसुमित कुंज कुंद की कलिका केतकि कदम सुहाए ।
'हरीचंद' हरिचँद-नंदन-छबि लखि रति-काम लजाए ॥३८॥

चौताला

स्याम घटा मधि स्यामही हिंडोरो बन्यौ,
स्यामा स्याम झूलैं जामें अतिही अनंद सों ।
तैसोई तमाल कुंज स्याम रंग सोहत गोपी,
सब मिलि गावैं आनँद के कंद सो ॥
अलि पिक मोर नीलकंठ स्याम रंग सोहैं,
स्याम श्री यमुना बहैं गति अति मंद सो ।
'हरिचंद' हरि की निरखि छबि महादेव,
स्याम गज-खाल ओढ़ि नाचैं गावैं छंद सों ॥३९॥

सखी री ठाढ़े नंद-कुमार ।
सुभग स्याम घन सुख रस बरसत चितवन माँझ अपार ॥
नटवर नवल टिपारो सिर पर लखि छबि लाजत मार ।
'हरीचंद' बलि बूँद निवारत जब बरसत घन-धार ॥४०॥

हिंडोला

झूलत हैं राधिका स्याम संग नव रंग सुखद हिंडोरे ।
गावत मालव राग रस भरे तान मान मधुरे सुर जोरे ॥
उमगि रहीं ब्रजनारि नवेली पँचरँग चीर पहिरि चित चोरे ।
पँचरँग छबि रस जुगल माधुरी कहि न जाइ स्यामल रँग गोरे ॥

बरसत मंद मंद घन तेहि छन पँच-रँग बादर सब सुख-बोरे।
'हरीचंद' वृषभानुनंदनी कोटिन ससि-छवि छिन महँ छोरे ॥४१॥

वृषभानु-कुमारी लाडिली प्यारी झूलत हैं संकेत हो।
सँग सुंदर सखी सुहावनी जिन कीनो हरि सों हेत हो॥
सुंदर साज सिंगार किए सब पहिरे बिबिध रँग चीर।
हिलि मिलि झुलवहिं लाडिली हो नव रस जमुना तीर हो॥
सबै सोहाई नवल बधू मिलि गावत गौरी राग हो।
'हरीचंद' सुख को घन बरसत बाढ़्यो सलिल सोहाग हो ॥४२॥

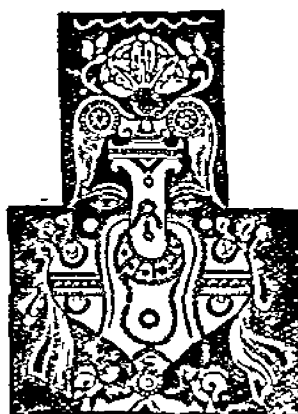
कलेऊ कीजै नंद-कुमार।
भई बड़ि बार जाहु जमुना-तट ठाढ़े सखा सब द्वार॥
आज प्रात ही घेर रह्यौ है बरसैगो बड़ी धार।
'हरीचंद' बलि बेगहि ऐयो भींजोगे सुकुमार ॥४३॥

घूम घूम घन आए बरसत धूम धूम पिय,
प्यारी रंग भौन भोजन रस भीने।
फुहु फुहु फुहु बूँद परैं छज्जन सों नीर झरैं,
बातन रँग-भरे दोऊ अरस-परस कीने॥
नागरि ललितादि ठाढ़ीं बिंजन बहु भाँति हात,
सीतल जल झारी भरि बीड़ादिक लीने।
'हरीचंद' हँसैं गावैं भोजन को सुख पावैं,
वारि फेरि सखी तृन तोरि तोरि दीने ॥४४॥

लाल यह सुंदर बीरी लीजै।
हँसि हँसि कै नँदलाल अरोगौ मुख ओगार मोहिं दीजै॥
रंग रह्यो बीड़ी की रचन मैं चूनरि तैसिय कीजै।
रस बाढ़्यौ तिय की बातन मैं 'हरीचंद' पिय भीजै ॥४५॥

नाचत ब्रजराज आज साजे नटराज-साज,
पावस सों बदि बदि कै होड़ सी लगाई।
कोकिल कल बंसी-धुनि नृत्य कला मोर नटनि,
पीत बसन चपला दुति छीनत चमकाई॥
ज्यों ज्यों बरसत सुरेस त्यौं त्यौं रस बरसत,
हरि घन गरजत उत इत रहे मृदंग बजाई।
'हरीचंद' जीति रंग रह्यौ आजु ब्रज अखारैं,
हारे घन रीझि देव कुसुमन झर लाई॥४६॥

इति



जैन-कुतूहल

'अर्हन्नित्यपि जैन शासन रताः'

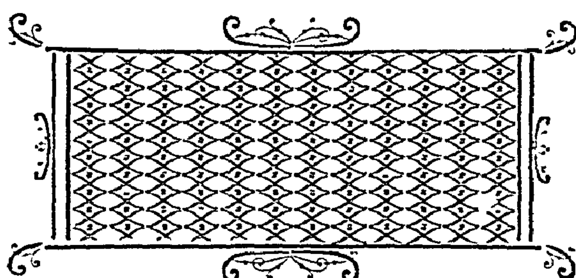
सं० १९३०

समर्पण

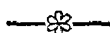
प्यारे !

तुम तो मेरा मत जानते ही हो, तो इस पचड़े से तुम्हें क्या ! यह देखो यह नया तमाशा जैन-कुतूहल नाम का तुम्हें दिखाता हूँ। तुम्हें मेरी सौगंद, वाह वाह अवश्य कहना।

केवल तुम्हारा
हरिश्चंद्र



जैन-कुतूहल



पियारे दूजो को अरहंत ।
पूजा जोग मानिकै जग मैं जाको पूजैं संत ।।
अपुनी अपुनी रुचि सव गावत पावत कोउ नहिं अंत ।
'हरीचंद' परिनाम तुही है तासों नाम अनंत ।। १ ।।

जय जय जयति ऋषभ भगवान ।
जगत ऋषभ वुध ऋषभ धरम के ऋषभ पुरान प्रमान ।।
प्रगटित-करन धरम पथ धारत नाना वेश सुजान ।
'हरीचंद' कोउ भेद न पायो कियो यथारुचि गान ।। २ ।।

तुमहिं तौ पार्श्वनाथ हौ प्यारे ।
तलपन लागैं प्रान वगल तें छिनहु होहु जो न्यारे ।।
तुमसों और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे ।
'हरीचंद' खोजत तुमहीं को वेद पुरान पुकारे ।। ३ ।।

अहो तुम वहु विधि रूप धरो ।
जव जव जैसो काम परै तव तैसो भेख करो ।।

कहुँ ईश्वर कहुँ धनत अनीश्वर नाम अनेक परो।
सत पंथहि प्रगटावन कारन लै सरूप बिचरो॥
जैन धरम मैं प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो।
'हरीचंद' तुमको बिनु पाए लरि लरि जगत मरो॥ ४॥

बात कोउ मूरख की यह मानो।
हाथी मारै तौहू नाहीं जिन-मंदिर मैं जानो॥
जग मैं तेरे बिना और है दूजो कौन ठिकानो।
जहाँ लखो तहँ रूप तुम्हारो नैनन माहिं समानो॥
एक प्रेम है एकहि प्रन है हमरो एकहि बानो।
'हरीचंद' तब जग मैं दूजो भाव कहाँ प्रगटानो॥ ५॥

नाहिं ईश्वरता अँटकी बेद मैं।
तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मत-भेद मैं॥
तुम्हरी अनित अपार अहै गति जाको वार न पारो।
ताको इति करि गाइ सकै क्यौं बपुरो बेद बिचारो॥
बेद लिखी ही होय तुम्हारी जो पै महिमा स्वामी।
तौ परिमिति गुन भए तिहारे नेति नेति के नामी॥
बेद-मारगहि बारो प्यारे जो इक तुमको पावै।
तौ जग-स्वामी जग-जीवन क्यों तुमरो नाम कहावै॥
जो तुव पद-रज-अंजन नैनन लागै तौ यह सूझै।
'हरीचंद' बिनु नाथ-कृपा क्यों यह अभेद गति बूझै॥ ६॥

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन॥
सत् कर्मन को फल नित मानत अति बिवेक के भौन।
तिन के मतहि बिरुद्ध कहत जो महा मूढ़ है तौन॥

सब पहुँचत एक हि थल चाहौ करौ जौन पथ गौन ।
इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गोपी-रौन ॥
कौन ठाम जहँ प्यारो नाहीं भूमि अनल जल पौन ।
'हरीचंद' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन ॥ ७ ॥

पियारे तुव गति अगम अपार ।
यामैं खोलै जीह जौन सो मूरख कूर गँवार ॥
तेरे हित बकनो बिन बातहिं ठानि अनेकन रार ।
यासों बढ़िकै और जगत नहिं मूरखता-व्यवहार ॥
कहँ मन बुद्धि वेद अरु जिह्वा कहँ महिमा-विस्तार ।
'हरीचंद' बिनु मौन भए नहिं और उपाय विचार ॥ ८ ॥

कहाँ लौं बकिहैं वेद विचारे ।
जिनसों कछु नातो नहिं तोसों तिनके का पतियारे ॥
कागज अक्षर शब्द अर्थ हिय धारण मुख उच्चार ।
इनसों बढ़ि जा मैं कछु नाहीं ते पावहि क्यों पार ॥
तेरी महिमा अमित इतै हैं गिनती की सब बात ।
'हरीचंद' बपुरे कहिहैं का यह नहिं मोहिं लखात ॥ ९ ॥

युक्ति सों हरि सों का संबंध ।
बिना बात ही तरक करैं क्यौं चारहु दृग के अंध ॥
युक्तिन को परमान कहा है ये कबहूँ बढ़ि जात ।
जाको बात फुरै सो जीतै यामें कहा लखात ॥
अगम अगोचर रूपहि मूरख युक्तिन मैं क्यों सानै ।
'हरीचंद' कोउ सुनत न मेरी करत जोई मन मानै ॥१०॥

जो पै झगरेन मैं हरि होते ।
तौ फिर श्रम करिकै उनके मिलिवे हित क्यों सब रोते ॥

घर-घर मैं नर नारिन मैं नित उठिकै झगरो होत।
चहाँ क्यों न हरि प्रगट होत हैं भव-वारिधि के पोत ॥
पसुगन मैं पच्छिन मैं नितही कलह होत है भारी।
तौ क्यों नहि तहँ प्रगट होत हैं आसुहि गिरवरधारी ॥
झगड़हु मैं कछु पूँछ लगी है याहि होत का वार।
तनिक बात पैं झगरि मरत हैं जग के फोरि कपार ॥
रे पंडितो करत झगरो क्यो चुप ह्वै बैठो मौन।
'हरीचंद' याही मैं मिलिहैं प्यारे राधा-रौन ॥११॥

खंडन जग मैं काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं इनको कहा उत्तर दीजै ॥
तासों बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
ह्याँ तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै ॥
अपुने ही पै कोपि बावरे अपुनो काटैं अंग।
'हरीचंद' ऐसे मतवारेन कों कहा कीजै संग ॥१२॥

पियारो पैये केवल प्रेम मैं।
नाहिं ज्ञान मैं नाहिं ध्यान मैं नाहिं करम-कुल-नेम मैं ॥
नहिं भारत मैं नहिं रामायन नहिं मनु मैं नहिं वेद मैं।
नहि झगरे मैं नाहिं युक्ति मैं नाहिं मतन के भेद मैं ॥
नहिं मंदिर मैं नहिं पूजा मैं नहिं घंटा की घोर मैं।
'हरीचंद' वह बाँध्यो डोलत एक प्रीति के डोर मैं ॥१३॥

धरम सब अटक्यो याही बीच।
अपुनी आपु प्रसंसा करनी दूजेन कहनो नीच ॥
यहै बात सबने सीखी है का वैदिक का जैन।
अपनी-अपनी ओर खींचनो एक लैन नहिं दैन ॥

आग्रह भखो सबन के तन मैं तासों तत्व न पावैं ।
'हरीचंद' उलटी की पुलटी अपुनी रुचि सों गावैं ॥१४॥

जै जै पद्मावति महरानी ।
सब देविन मैं तुमरी मूरति हम कहँ प्रगट लखानी ॥
तुमहि लच्छमी काली तारा दुरगा शिवा भवानी ।
'हरीचंद' हमकों तो नैनन दूजी कहुँ न दिखानी ॥१५॥

कंत है बहुरूपिया हमारो ।
ठगत फिरत है भेस बदलि जग आप रहत है न्यारो ॥
बूढ़ो-ज्वान-जती-जोगिन को स्वाँग अनेकन लावै ।
कबहूँ हिंदू जैन कबहुँ अरु कबहुँ तुरुक बनि आवै ॥
भरमत वाके भेदन मैं सब भूले धोखा खात ।
'हरीचंद' जानत नहिं एकै है बहुरूप लखात ॥१६॥

लगाओ चसमा सबै सफेद ।
तब सब ज्यों को त्यों सूझैगो जैसों जाको भेद ॥
हरो लाल पीरो अरु लीलो जो जो रंग लगायो ।
सोइ सोइ रंग सबै कछु सूझत वासों तत्व न पायो ॥
आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु तब वह रूप लखैहै ।
'हरीचंद' जो भेद भूलिहै सोई पियकों पैहै ॥१७॥

कहो अद्वैत कहाँ सों आयो ।
हमैं छोड़ि दूजो है को जेहिं सब थल पिया लखायो ॥
बिनु वैसो चित पाएँ झूठो यह क्यों जाल बनायो ।
'हरीचंद' बिनु परम प्रेम के यह अभेद नहिं पायो ॥१८॥

यह पहिले ही समुझि लियो ।
हम हिंदू हिंदू के बेटा हिंदुहि को पय पान कियो ॥

तब तोहि तत्व सूझिहै कहँ लौं पहिलेहि सो बनि आपु रहे।
जनम करम मैं हरिहि मानिकै खोए जे जग-तत्व लहे॥
मेरो मेरो कहि कै भूले अपुनो हठहि 'भुलात नहीं।
'हरीचंद' जो यह गति है तो फिर वह नहीं दिखाय कहीं॥१९॥

इतनोही तो फरक रह्यौ।
हमरो हमरो कहत सबै जग हम ही हम काहू न कह्यौ॥
जो हम हम भाखैं तो जग मे और दिखाई कौन परै।
'हरीचंद' यह भेद मिटावै तबै तत्व जिय मैं उछरै॥२०॥

चहिये इन बातन को प्रेम।
कोरी 'हम' सों काम चलै नहिं मरो वृथा करि नेम॥
जब लौं मूरति प्राननाथ की आँखिन मैं न समाय।
तब लौं सब थल प्रीतम प्यारो कैसे सबहिं लखाय॥
'अहं ब्रह्म' सब मूरख भाखैं ज्ञान गरूर बढ़ाय।
तनिक चोट के लगे उठत हैं रोइ रोइ करि हाय॥
जो तुम ब्रह्म चोट केहि लागी रोइ तजौ क्यों प्रान।
'हरीचंद' हाँसी नाहीं है करनो ज्ञान-विधान॥२१॥

'शिवोहं' भाखत सब ही लोग।
कहँ शिव कहँ तुम कीट अन्न के यह कैसो संजोग॥
अरध अंग मैं पारवती हू शिवहि न काम जगावै।
तुमको तो नारी के देखत अंग गुदगुदी आवै॥
तुमसो कहा संबंध ब्रह्म सों क्यों छाँटत हो ज्ञान।
'हरीचंद' मनमथ जागैगो तबै पड़ैगी जान॥२२॥

जो पै सबै ब्रह्म ही होय।
तो तुम जोरू जननी मानौ एक-भाव सो दोय॥

ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सरनो वृथा मरौ क्यों रोय।
'हरीचंद' इन बातन सों नहिं ब्रह्महि पैहो कोय ॥२३॥

जो पै ईस्वर साँचो जान।
तौ क्यौं जग को सगरे मूरख झूठो करत बखान ॥
जो करता साँचो है तो सब कारजहू है साँच।
जो झूठो है ईस्वर तौ सब जगहू जानौ काँच ॥
जो हरि एक अहै तो माया यह दूजी है कौन।
'हरीचंद' कछु भेद मिल्यौ न बक्यौ जिय आयो जौन ॥२४॥

कहौ रे इक-मत ह्वै मतवारो।
क्यौं इतनो पाखंड रचि रहे बिनु पाए पिय प्यारो ॥
कहा समुझ्यौ, सिद्धांत कहा कियो, का परिनाम निकारो।
कैसे मान्यौ केहि मान्यौ क्यौं कौन उपाय बिचारो ॥
सब कीन्हों पै सिद्ध कहा भयौ तप करि क्यौं तन जारो।
'हरीचंद' जो परम सुलभ पथ तापै कंटक डारो ॥२५॥

भये सब मतवारे मतवारे।
अपुनो अपुनो मत लै-लै सब झगरत ज्यौं भठिहारे ॥
कोउ कछु कहत ताहि कोऊ दूजो खंडत निज हठ धारे।
कह झगड़े ही मैं तेहि मान्यौ पागल भए बिचारे ॥
आपुस में पहिले सब मिलि निश्चै करि होइ न न्यारे।
'हरीचंद' आयो तो भाखैं जामैं मिलैं पियारे ॥२६॥

मत को नाहीं अर्थ अहै।
तो सब कोई मत मत कहिकै फिर क्यों कछू कहै ॥
इन बातन में जानि परे नहिं सब कोउ कहा लहै।
'हरीचंद' चुप ह्वै सगरो जग यामैं क्यौं न रहै ॥२७॥

नहि इन झगड़न में कछु सार ।
क्यों लरि लरिकै मरो बावरे बादन फोरि कपार ॥
कोउ पायौ कै तुमही पैहो सो भाखौ निरधार ।
'हरीचंद' इन सब झगड़न सों बाहर है वह यार ॥२८॥

अरे क्यों घर घर भटकत डोलौ ।
कहा धस्यौ तेहि कहूँ पाइहो क्यो बिन बातन छोलौ ॥
क्यों इन थोथिन पोथिन लै के बिना बात ही बोलौ ।
'हरीचंद' चुप है घर बैठो यामैं जीभ न खोलौ ॥२९॥

खराबी देखहु हो भगवान की ।
कहाँ कहाँ भटकत डोलत है सुधि न ताहि कछु प्रान की ॥
तीन ताग मैं कहुँ अँटक्यौ कहुँ बेदन मैं यह डोलै ।
कहुँ पानी मैं कहुँ उपवासन मैं कहुँ स्वाहा मैं बोलै ॥
कहुँ पथरा बनि बनि बैठो कहुँ बिना सरूप कहायो ।
मंदिर महजिद गिरजा देहरन डोलत धायो धायो ॥
बादन मैं पोथिन मैं बैठ्यौ बचन बिषय बनि आय ।
'हरीचंद' ऐसे को खोजैं केहि थल देहु बताय ॥३०॥

लखौ हरि तीन ताग मैं लटक्यौ ।
रीझि रह्यौ पानी चादन पै करम-जाल मैं अँटक्यौ ॥
हाथ नचावत सोर मचावत अगिन-कुंड दै पटक्यौ ।
'हरीचंद' हरजाई बनिकै फिरत लखहु वह भटक्यौ ॥३१॥

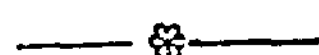
माया तुम सों बड़ी अहै ।
तुम्हरो केवल नाम बड़ो है बेद पुरान कहै ॥
बस कछु नहिं तुम्हरो या जग मैं यह जन साँच कहै ।
नाहीं तो 'हरिचंद' तुम्हारो है क्यौं काम दहै ॥३२॥

न जानै तुम कछु हौ की नाँहीं ।
झूठहि वेद पुरान बकत सब भेद जान नहिं जाँहीं ॥
तुम साँचे हौ कै सपना हौ कै हौ झूठ कहानी ।
पतित-उधारन दीन-नेवाज़न यह सब कैसी बानी ॥
जौ साँचे हौ तुम अरु सगरे वेदादिक सब साँचे ।
'हरीचंद' तौ हमहुँ पतित है उधरन सो क्यौं बाँचे ॥३३॥

अहो यह अति अचरज की बात ।
जानि बूझि कै विष के फल कों क्यों भूल्यौ जग खात ॥
सब जानत मरनो है जग मैं झूठे सुत पितु मात ।
'हरीचंद' तो फिर क्यों नित नित याही मैं लपटात ॥३४॥

कहाँ तोहिं खोजिए ए राम ।
मंदिर वेद पुरान जग्य जप तप मैं तो नहिं ठाम ॥
जहँ जहँ भाखत तहँ तहँ धावत मिलत न कहुँ बिसराम ।
'हरीचंद' इन सों कहा बाहर अहै तिहारो धाम ॥३५॥

देखैं पावत कौन सोहाग ।
बहुत सोहागिन एक पियरवा सब ही को अनुराग ॥
खोजत सब पावत नहिं कोऊ धावत करि करि लाग ।
'हरीचंद' देखैं पहिले हम काको लागत भाग ॥३६॥



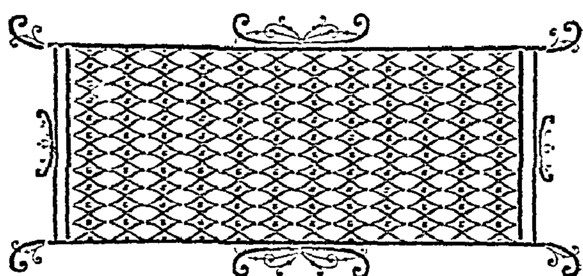


प्रेम-माधुरी

सं० १९३२

चन्द्रप्रभा प्रेस में सन् १८८२ में दूसरी आवृत्ति हुई

कविवचन सुधा, अक्तूबर १८७५ ई०



प्रेम-माधुरी

दोहा

वार वार पिय आरसी मत देखहु चित लाय।
सुंदर कोमल रूप में दीठ न कहुँ लगि जाय॥
देखन देहुँ न आरसी सुंदर नन्दकुमार।
कहुँ मोहित ह्वै रूप निज, मति मोहिं देहु विसार॥

सवैया

राखत नैनन मैं हिय मैं भरि दूर भए छिन होत अचेत है।
सौतिन की कहै कौन कथा तसवीर हू सों सतराति सहेत है।
लाग भरी अनुराग भरी 'हरिचंद' सबै रस आपुहिं लेत है।
रूप-सुधा इकली ही पियै पियहू को न आरसी देखन देत है॥ १॥

कूकै लगीं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे।

हरो भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेर प्रान तरसै लगे।
फेरि झूमि झूमि बरषा की रितु आई फेरि
बादर निगोरे झुकि झुकि बरसै लगे ॥ २ ॥

पहिले ही जाय मिले गुन मे श्रवन फेरि
रूप-सुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।
हँसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है।
मोहि मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हिय मे न जानी परै कान्ह है कि प्रान है ॥ ३ ॥

करि कै अकेली मोहिं जात प्राननाथ अबै
कौन जानै आय कब फेर दुख हरिहौ।
औध को न काम कछू प्यारे घनश्याम बिना
आप कैं न जीहैं हम जो पै इतै धरिहौ।
'हरीचंद' साथ नाथ लेन मैं न मोहिं कहा
लाभ निज जीअ मैं बताओ तो विचरिहौ।
देह संग लेते तो टहलहू करत जातो
एहो प्रान-प्यारे प्रान लाइ कहा करिहौ ॥ ४ ॥

गुरु-जन बरजि रहे री बहु भाँति मोहिं
संक तिनहूँ की छाँड़ि प्रेम-रंग राँची मैं।
त्योंही बदनामी लई कुलटा कहाई हौं
कलंकिनिहु बनी ऐसी प्रेम-लीक खाँची मैं।

कहै 'हरिचंद' सवै छोड़्यो प्रान-प्यारे काज
यातें जग झूठ्यो रह्यो एक भई साँची मैं ।
नेह के वजाय वाज छोड़ि सब लाज आज
घूँघट उघारि ब्रजराज-हेतु नाची मैं ॥ ५ ॥

चाढ़्यौ करै दिन ही छिन ही छिन कोटि उपाय करौ न वुझाई ।
दाहत लाज समाज सुखै गुरु की भय नींद सवै सँग लाई ।
छीजत देह के साथ में प्रानहु हा 'हरिचंद' करौं का उपाई ।
क्योंहू बुझै नहिं आँसू के नीरन लालन कैसी दवारि लगाई ॥६॥

छाँड़ि कै मोहिं गए मथुरा कुवरी तहँ जाय भई पटरानी ।
जो सुधि लीनी तो जोग सिखायो भए 'हरिचंद' अनूपम ज्ञानी ॥
गोप सों जो पै भए रजपूत लड़ौ किन जोड़ को आपुने जानी ।
मारत हौ अवलागन को तुम याही मैं वीरता आय खुटानी ॥७॥

वाजी करै वंसी धुनि वाजि वाजि श्रवनन,
जोरा-जोरी मुख-छवि चितहि चुराए लेत ।
हँसनि हँसावति जगत सों तिहारी मुरि,
मुरनि पियारी मन सव सों मुराए लेत ।
'हरिचंद' वोलनि चलनि वतरानि पीत-,
पट फहरानि मिलि धीरज मिटाए लेत ।
जुलफैं तिहारी लाज-कुलफन तोरैं प्रान,
प्यारे नैन-सैन प्रान संग ही लगाए लेत ॥ ८ ॥

हौं तो तिहारे दिखाइवे के हित जागत ही रही नैन उजार सी ।
आए न राति पिया 'हरिचंद' लिए कर भोर लौं हौं रही भार सो ।
है यह हीरन सों जड़ी रंगन तापै करी कछु चित्र चितार सी ।
देखो जू लालन कैसी वनी है नई यह सुन्दर कंचन-आरसी ॥९॥

सोई तिया अरसाय कै सेज पै सो छवि लाल विचारत ही रहे।
पोंछि रुमालन सों श्रम-सीकर भौंरन कों निरुवारत ही रहे।
त्यों छवि देखिवे कों मुख तें अलकैं 'हरिचंद जू' टारत ही रहे।
द्वैक घरी लौं जके से खरे वृषभानु-कुमार निहारत ही रहे ॥१०॥

बोल्यौ करै नूपुर श्रवन के निकट सदा,
पद-तल लाल मन मेरे बिहर्‌यो करै।
बाजी करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम मुख,
मन मुसुकानि मंद मनहि हँस्यो करै।
'हरिचंद' चलनि मुरनि बतरानि चित,
छाई रहै छवि जुग दृगन भर्‌यो करै।
प्रानहू ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई तेरो,
पीरो पट सदा जिय बीच फहर्‌यो करै ॥ ११ ॥

बृजवासी वियोगिन के घर मैं जग छाँड़ि कै क्यों जनमाई हमैं।
मिलिबो बड़ी दूर रह्यो 'हरिचंद' दई इक नाम-धराई हमैं।
जग के सगरे सुख सों ठगि कै सहिवे को यही है जिवाई हमैं।
केहि बैर सों हाय दई बिधिना दुख देखिबेही को बनाई हमैं ॥१२॥

कहा कहौं प्यारे जू वियोग मैं तिहारे चित,
बिरह-अनल लूक भरकि भरकि उठै।
कैसे कै बिताऊँ दिन जोबन के हा-हा काम,
कर लै कमान मोपै तरकि तरकि उठै।
भूलै नाहिं हँसनि तिहारी 'हरिचंद' तैसी,
बाँकी चितवनि हिय फरकि फरकि उठै।
बेधि बेधि उठत विसीले नैन-बान मेरे,
हिय मैं कँटीली भौंह करकि करकि उठै ॥१३॥

कुवजा जग के कहा बाहर है नँदलाल ने जा उर हाथ धस्यौ ।
मथुरा कहा भूमि की भूमि नहीं जहँ जाय कै प्यारे निवास कस्यौ ।
'हरिचंद' न काहू को दोष कछू मिलिहैं सोइ भाग में जो उतस्यौ ।
सबको जहाँ भोग मिल्यौ वहाँ हाय वियोग हमारे ही बाँटे पस्यौ ॥१४॥

रोकहिं जो तो अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए ।
जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता जो कछू न कहैं तो सनेह नसाइए ।
जौ 'हरिचंद' कहैं तुमरे बिन जीहैं न तो यह क्यौं पतिआइए ।
तासौं पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमैं समझाइए ॥१५॥

आजु सिंगार कै केलि के मंदिर बैठी न साथ मैं कोऊ सहेली ।
धाय कै चूमै कवौं प्रतिविंब कवौं कहै आपुहि प्रेम-पहेली ।
अंक में आपुने आपै लगै 'हरिचंद जू' सी करै आपु नवेली ।
प्रीतम के सुख मैं पिय-मैभई आए तें लाज कै जान्यौ अकेली ॥१६॥

सोई बने सब मंजुल कुंज अलीन की भीर जहाँ अति हेली ।
साज अनेक सजे सुख के 'हरिचंद जू' त्यों ही खरी हैं सहेली ।
सोई नई रतियाँ रति की पिय सोई कहै ढिग प्रेम-पहेली ।
सोचत सो सुख सोई भई तिय आए तें लाल के जान्यौ अकेली ॥१७॥

तब तौ बखानी निज वीरता प्रमानी कै कै
प्रेम के निबाह भारे गरव गरूरे हौ ।
जान सों पिया कै कह्यो प्रथम पयान 'हरि-
चंद' अब बैठे कित दुरि दुरि दूरे हौ ।
हाय प्राननाथ-बिनु भोगत अनेक बिथा
खोइ सुख आसा लागि अब लौं मजूरे हौ ।
अजौं तन तजिकै न जाओ लजवाओ मोहिं
हा हा मेरे प्रान निरलज्ज तुम पूरे हौ ॥१८॥

जा दिन लाल बजावत बेनु अचानक आय कढ़े मम द्वारे।
हौं रही ठाढ़ी अटा अपने लखि कै हँसे मो तन नंद-दुलारे।
लाजि कै भाजि गई 'हरिचंद' हौं भौन के भीतर भीति के मारे।
ताही दिना तें चवाइनहूँ मिलि हाय चवाय कै चौचँद पारे ॥१९॥

ब्रज मे अब कौन कला बसिये बिनु बात ही चौगुनो चाव करैं।
अपराध बिना 'हरिचंद जू' हाय चवाइनैं घात कुदाव करैं।
पौन मो गौन करे हीं लरी परैं हाय बड़ोई हियाव करैं।
जौ सपनेहूँ मिलै नँदलाल तौ सौतुख मैं ये चवाव करैं ॥२०॥

आजु कुंज मंदिर मैं छके रंग दोऊ बैठे,
केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि।
सखीजन कहत कहानी 'हरिचंद' तहाँ,
नेह भरी केकी कीर पिक सी चहकि चहकि।
एक टक बदन निहारें बलिहार लै लै,
गाढ़े भुज भरि लेत नेह सों लहकि लहकि।
गरें लपटाय प्यारी बार बार चूमि मुख,
प्रेम भरी बातैं करैं मद सों बहकि बहकि ॥२१॥

आजु कुंज-मंदिर अनंद भरि बैठे स्याम,
स्यामा-संग रंगन उमंग अनुरागे हैं।
घन घहरात बरसात होत जात ज्यौं ज्यौं,
त्यौंही त्यौं अधिक दोऊ प्रेम-पुंज पागे हैं।
'हरीचंद' अलकैं कपोल पैं सिमिटि रहीं,
बारि बुंद चूअत अतिहि नीके लागे हैं।
भींजि भींजि लपटि लपटि सतराइ दोऊ,
नील पीत मिलि भए एकै रंग बागे हैं ॥२२॥

बृज के सब नाँव धरैं मिलि ज्यौं ज्यौं बढ़ाइकै त्यौं दोऊ चाव करैं ।
'हरिचंद' हँसैं जितनो सबही तितनो दृढ़ दोऊ निभाव करैं ।
सुनि कै चहुँघा चरचा रिसि सों परतच्छ ये प्रेम-प्रभाव करैं ।
इत दोऊ निसंक मिलैं बिहरैं उत चौगुनो लोग चबाव करैं ।।२३।।

मिलि गाँव के नाँव धरौ सबही चहुँघा लखि चौगुनौ चाव करौ ।
सब भाँति हमैं बदनाम करौ कढ़ि कोटिन कोटि कुदावँ करौ ।
'हरिचंद' जू जीवन को फल पाय चुकीं अब लाख उपाव करौ ।
हम सोवत हैं पिय-अंक निसंक चबाइनै आओ चबाव करौ ।।२४।।

व्याकुल हौं तड़पौं बिनु पीतम कोऊ तौ नेकु दया उर लाओ ।
प्यासी तजौं तन रूप-सुधा बिनु पानिप पी को पपीहे पिआओ ।
जीअ मैं हौस कहूँ रहि जाय न हा 'हरिचंद' कोऊ उठि धाओ ।
आवै न आवै पियारो अरे कोऊ हाल तौ जाइ के मेरो सुनाओ ।।२५।।

जानत हौं नहीं ऐसी सखी इन मोहन जैसी करी हम सों दई ।
होत न आपुने पीअ पराए कबौं यह बोलनि साँची अरी भई ।
हा हा कहा 'हरिचंद' करौं बिपरीत सबै बिधि नै हम सों ठई ।
मोहन ह्वै निरमोही महा भए नेह बढ़ाय कै हाय दगा दई ।।२६।।

जानि कै मोहन के निरमोहहि नाहक बैर बिसाहि बरें परी ।
त्यौं 'हरिचंद' बिगारि कै लोक सो बेद की लीक भलै निदरें परी ।
आपुनि ही करनी को मिल्यो फल तासों सबै सहते ही सरे परी ।
यामैं न और को दोष कछू सखि चूक हमारी हमारे गरें परी ।।२७।।

नेह लगाय लुभाय लई पहिले बृज की सब ही सुकुमारियाँ ।
बेनु बजाय बुलाय रमाय हँसाय खिलाय करी मनुहारियाँ ।
सो 'हरिचंद' जुदा ह्वै बसे बधि कै छलसों ब्रज-बाल बिचारियाँ ।
वाह जू प्रेम निबाह्यो भलें बलिहारियाँ लालन वे बलिहारियाँ ।।२८।।

मेरी गलीन न आइए लालन यासों सबै तुमहीं लखि जाइहै।
प्रेम तो सोई छिप्यौ जो रहै प्रगटै रसहू सब भाँति नसाइहै।
आइहौं हौंही उतै 'हरिचंद' मनोरथ आपको कुंज पुराइहै।
अंक न बाट मे लाइए जू कोउ देखि जौ लैहै कलंक लगाइहै ॥२९॥

मारग प्रेम को को समुझै 'हरिचंद' यथारथ होत यथा है।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होन की सारी कथा है।
जानत है जिय मेरो भली विधि और उपाय सबै बिरथा है।
बावरे हैं बृज के सगरे मोहिं नाहक पूछत कौन बिथा है ॥३०॥

जिय पै जु होइ अधिकार तो बिचार कीजै
लोक-लाज भलो बुरो भलें निरधारिए।
नैन श्रौन कर पग सबै पर-बस भए
उतै चलि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिये।
'हरीचंद' भई सब भाँति सो पराई हम
इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिए।
मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन
आपै बसै जामैं ताहि कैसे कै बिसारिए ॥३१॥

होते न लाल कठोर इते जु पै होते कहूँ तुमहूँ बरसानियाँ।
गोकुल गाँव के लोग कठोर करैं छत हीय मैं मारि निसानियाँ।
यौं तरसावत हौ अबलागन को मुख देखिबे को दधि-दानियाँ।
दीनता की हमरे तुमरे निरदैपनहू की चलैंगी कहानियाँ ॥३२॥

बेनी सी बखानै कवि ब्याली काली काली आली
तिन सबहू कों प्रतिपाली अहो काली है।
ताही सों उताल नँदलाल बाल कूदि जल
नाथ्यौ जाय ताहि चाहि उपमा न चाली है।

तहाँ 'हरिचंद' सबै गाँव के तमासे लगे
तिन के अछत तुहू कीनी खूब ख्याली है।
ज्योंही ज्यों नचत प्यारी राधे तेरे दृग दोय
त्यौं ही त्यौं नचत फन पर बनमाली है ॥३३॥

नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल-माल गरें बन झालरि सी लाई है।
भँवर गुँजार हरि-नाम को उचार तिमि
कोकिला सों कुहुकि वियोग राग गाई है।
'हरीचंद' तजि पतझार घर-बार सबै
बौरी बनि दौरि चारु पौन ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरे ते प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है ॥३४॥

पीरो तन पखो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझानो पतझार मनौ लाई है।
सीरी स्वाँस त्रिविध समीर सी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधु झरि सी लगाई है।
'हरीचंद' फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है ॥३५॥

एरी प्रानप्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
जिय मैं बिरह-घटा घहरि घहरि उठै।
त्योंही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्योंहू तेरो
लाँबो केस रैन दिन छहरि छहरि उठै ॥

गड़ि गड़ि उठत कँटीले कुच कोर तेरी
सारी सों लहरदार लहरि लहरि उठै ।
सालि सालि जात आधे आधे नैन-बान तेरे
घूँघट की फहरानि फहरि फहरि उठै ॥३६॥

बैठे सबै गुरु लोग जहाँ तहाँ आइ बधू लखि सास भई खरी ।
देन उराहनो लागी सबै निसि को अति भोरी न जानत रीत री ।
ढीठ तिहारो बड़ो 'हरिचंद' न देखत मेरी सु ऐसी दसा करी ।
आँचर दीनो सखी मुख मैं कहि सारी फटी तो बनाइहै दूसरी ॥३७॥

प्रानपियारे तिहारे लिये सखि बैठे हैं देर सो मालती के तर ।
तू रही बातैं बनाय बनाय मिलै न बृथा गहिकै कर सों कर ।
तोहि घरी छिन बीतत है 'हरिचंद' उतै जुग सो पलहू भर ।
तेरी तो हाँसी उतै नहि धीरज नौ घरी भद्रा घरी में जरै घर ॥३८॥

दीनदयाल कहाइ कै धाइ कै दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो ।
त्यों 'हरिचंद' जू बेदन मैं करुनानिधि नाम कहो क्यों गनायो ।
एती रुखाइ न चाहिये तापैं कृपा करिकै जेहि को अपनायो ।
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यौ तो गरीब-नेवाज क्यौं नाम धरायो ॥३९॥

क्यो इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजायो ।
त्यों 'हरिचंद' जू पंकज के दल सो सुकुमार सबै अंग भायो ।
अमृत से जुग ओंठ लसे नव पल्लव सो कर क्यों है सुहायो ।
पाहन सो मन होते सबै अँग कोमल क्यौं करतार बनायो ॥४०॥

आओ सबै जुरि कै ब्रज गाँव के देखन को जे रहे अकुलात हैं ।
चार चबाइनै लै दुरबीनन धाओ न आज तमासे लखात हैं ।
सास-जेठानी-सखी संग की 'हरिचंद' करौ मिलि भेद की बात हैं ।
घूँघट टारि निवारि भयै पिय कौं हम आजु निहारन जात हैं ॥४१॥

एक ही गाँव में वास सदा घर पास इहौ नहिं जानती हैं।
पुनि पाँचएँ सातएँ आवत जात की आस न चित्त में आनती हैं।
हम कौन उपाय करैं इनको 'हरिचंद' महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं ॥४२॥

यह संग मैं लागियै डोलैं सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहू जो वियोग परै 'हरिचंद' तौ चाल प्रलै की सु ठानती हैं।
बरुनी में थिरैं न झपैं उझपैं पल मैं न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ॥४३॥

व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन हैं हमहूँ पहिचानती हैं।
पै बिना नँदलाल बिहाल सदा 'हरिचंद' न ज्ञानहि ठानती हैं।
तुम ऊधौ यहै कहियो उन सों हम और कछू नहिं जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ॥४४॥

जिनको लरकाई सों संग कियो अब सोऊ न साथहि साजती हैं।
'हरिचंद' जू जानि हमैं बदनाम चबाव घने उपराजती हैं।
हम हाय कलंकिनि ऐसी भई सखियाँ लखि कै मोहिं भाजती हैं।
निसि-बासर संग मैं जे रहतीं मुख बोलिबे सों अब लाजती हैं ॥४५॥

पहिले बहु भाँति भरोसो दियो अब ही हम लाइ मिलावती हैं।
'हरिचंद' भरोसे रही उनके सखियाँ जे हमारी कहावती हैं।
अब वेई जुदा ह्वै रहीं हम सों उलटो मिलि कै समुझावती हैं।
पहिले तो लगाइ कै आग अरी जल कों अब आपुहि धावती हैं ॥४६॥

सब आस तौ छूटी पिया मिलबे की न जानैं मनोरथ कौन सजैं।
'हरिचंद' जू दुःख अनेक सहैं पै अड़े हैं टरैं न कहूँ कों भजैं।
सब सों निरसंक ह्वै बैठि रहैं सो निरादर हू सों कछू न लजैं।
नहिं जान परै कछु या तन को केहि मोह तें पापी न प्रान तजैं ॥४७॥

मोहन सों जबै नैन लगे तब तो मिलिकै समुझावन धाई।
प्रीति की रीति औ नीति कही मिलिबे की अनेकन बात सुनाई।
बेऊ दगा दै जुदा ह्वै गई 'हरिचंद' जू एकहू काम न आई।
हाय मैं कौन उपाय करौं सखियाँ अपुनी ह्वै गई जु पराई ॥४८॥

हाय दशा यह कासों कहौं कोउ नाहिं सुनै जौ करेहूँ निहोरन।
कोऊ बचावनहारो नहीं 'हरिचंद' जू यो तो हितू हैं करोरन।
सो सुधि कै गिरिधारन की अब धाइ कै दूर करौ इन चोरन।
प्यारे तिहारे निवास की ठौर को बोरत हैं अँसुआ बरजोरन ॥४९॥

हित की हम सों सब बात कहौ सुख-मूल सबै बतरावती हौ।
पै पिया 'हरिचंद' सों नैन लगे केहि हेत ये बातैं बनावती हौ।
यहाँ कौन जो मानै तिहारो कह्यो हमैं बातन क्यौं बहरावती हौ।
सजनी मन पास नहीं हमरे तुम कौन को का समुझावती हौ ॥५०॥

जब सों हम नेह कियो उन सों तब सों तुम बातैं सुनावती हौ।
हम औरन के बस मे हैं परी 'हरिचंद' कहा समुझावती हौ'
कोउ आपुन भूलिहै बूझहु तौ तुम क्यो इतनी बतरावती हौ
इन नैनन को सखी दोष सबै हमैं झूठहि दोष लगावती हौ ॥५१॥

जिनके हित त्यागिकै लोक की लाज कों संगही संग में फेरो कियो।
'हरिचंद' जू त्यौं मग आवत जात में साथ घरी घरी घेरो कियो।
जिनके हित मैं बदनाम भई तिन नेकु कह्यौ नहिं मेरो कियो।
हमे व्याकुल छोड़िकै हाय सखी कोउ और के जाइ बसेरो कियो ॥५२॥

पिय रूसिबे लायक होय जो रूसनो वाही सों चाहिए मान किये।
'हरिचंद' तौ दास सदा बिन मोल कों बोलै सदा रुख तेरो लिये।
रहै तेरे सुखै सों सुखी नित ही मुख तेरो ही प्यारी बिलोकि जिये।
इतने हू पै जानै न क्यों तू रहै सदा पीय सों भौंह तनेनी किये ॥५३॥

पहिले बिनु जाने पिछाने बिना मिलीं धाइ कै आगे बिचारे बिना।
अपुने सों जुदा ह्वै गईं तुरतै निज लाभ औ हानि सम्हारे बिना।
'हरिचंद' जू दोष सबै इनको जो कियो सब पूछे हमारे बिना।
बरिआई लखो इनकी उलटी अब रोवहिं आपु निहारे बिना ॥५४॥

आय कै जगत बीच काहू सों न करै बैर
कोऊ कछू काम करै इच्छा जौ न जोई की।
ब्राह्मण की छत्रिन की वैसनि की सूद्रन की
अन्त्यज मलेछ की न ग्वाल की न भोई की।
भले की बुरे की 'हरिचंद' से पतितहू की
थोरे की बहुत की न एक की न दोई की।
चाहे जो चुनिन्दा भयो जग बीच मेरे मन
तौ न तू कबहुँ कहूँ निंदा करु कोई की ॥५५॥

मैं बृषभानुपुरा की निवासिनि मेरी रहै बृज-बीथिन भाँवरी।
एक सँदेसो कहौं तुम सों पै सुनो जौ करो कछू ताको उपावरी।
जो 'हरिचंद' जू कुंजन मैं मिलि जाहि करी लखि कै तुम बावरी।
बूझी है वाने दया करिकै कहिये परसों कब होयगी रावरी ॥५६॥

केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं अटके कित कौन बिचार लयो।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछू विधि ने हमसों हठ कौन ठयो।
निसि आजहू की गई हाय बिहाय बिना पिय कैसे न जीव गयो।
हत-भागिनी आँखिन कों नित के दुख देखिबे कों फिर भोर भयो ॥५७॥

हम तो सब भाँति तिहारी भईं तुम्हैं छाँड़ि न और सों नेह करौं।
'हरिचंद' जू छाँड़्यौ सबै कछु एक तिहारोई ध्यान सदा ही धरौं।
अपने को परायो बनाइ कै लाजहू छाँड़ि खरी बिरहागि जरौं।
सब ही सहौं नाहिं कहौं कछु पै तुव लेखे नहीं या परेखे मरौं ॥५८॥

आजु लौं जौ न मिले तौ कहा हम तो तुमरे सब भाँति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं।
जा 'हरिचंद' भई सो भई अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समै सब कंठ लगावैं ॥५९॥

जान दे री जान दे विचार कुल-कानहू को
गावन दे मेरे कुलटापन के गाथ को।
मैं तो रही भूलि बिन बात को बिचारे जौन
प्रेम को बिगारै छाँड़ि ऐसे सब साथ को।
देखो 'हरिचंद' कौन लाभ पायो जामैं पछि-
ताय रहि गई धन पाय खोयो हाथ को।
जरौ ऐसी लाज आवै कौन काज जानै आज
लखन न दीनों भरि नैन प्राननाथ को ॥६०॥

सदा व्याकुल ही रहैं आपु बिना इनको हू कछू कहि जाइये तो।
इक बारहू तोहि न देख्यौ कभू तिनको मुखचंद दिखाइये तो।
'हरिचंद'जू ये अँखियाँ नित की हैं बियोगी इन्हे समुझाइये तो।
दुखियान को प्रीतम प्यारे कबौं बहराइ कै धीर धराइये तो ॥६१॥

रोवैं सदा नित की दुखिया बनि ये अँखियाँ जिहि द्यौस सों लागी।
रूप दिखाओ इन्हैं कबहूँ 'हरिचंद'जू जानि महा अनुरागी।
मानिहैं औरन सों नहिं ये तुव रंग रँगी कुल लाजहि त्यागी।
आँसुन को अपने अँचरान सों लालन पोंछि करौ बड़-भागी ॥६२॥

घर-बाहर-केन को काम कछू नहिं को यह रार निवारि सकै।
'हरिचंद जू' जो बिगरी बदिकै तिन्हैं कौन है जौन सँवारि सकै।
समुझाइ प्रबोधि कै नीति-कथा इन्हैं धीरज कोऊ न पारि सकै।
तुम्हरे बिनु लालन कौन है जो यह प्रेम के आँसू निवारि सकै ॥६३॥

सँग में निसि-बासर ही रहते जिनते कछु बातैं न मैंने छिपाई।
जे हितकारिनी मेरी हुतीं 'हरिचंद जू' होय गईं सो पराई।
सो सब नेह गयो कित को मिलिबे की न एकहू बात बताई।
और चबाव करैं उलटो हरि हाय ये एकहू काम न आई ॥६४॥

हौं कुलटा हौं कलंकिनी हौं हमने सब छाँड़ि दयो कहा खोलौ।
आली रहौ अपने घर में तुम क्यों यहाँ आइ करेजहि छोलौ।
लागि न जाय कलंक तुम्हैं कहूँ दूर रहौ सँग लागि न डोलौ।
बावरी हौं जो भई सजनी तो हटो हम सों मति आइ कै बोलौ ॥६५॥

आयो सखी सावन बिदेश मन-भावन जू
कैसे करि मेरो चित्त हाय धीर धारिहै।
ऐहै कौन झूलन हिंडोरे बैठि संग मेरे
कौन मनुहारि करि भुजा कंठ पारिहै।
'हरीचंद' भींजत बचैहै कौन भींजि आप
कौन उर लाइ काम-ताप निरवारिहै।
मान समै पग परि कौन समुझैहै हाय
कौन मेरी प्रानप्यारी कहि कै पुकारिहै ॥६६॥

घेरि घेरि घन आए छाय रहे चहुँ ओर
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है।
दामिनी दमक जैसी जुगनूँ चमक तैसी
नभ मैं बिशाल बग-पंगति सँवारी है।
ऐसी समै 'हरिचंद' धीर न धरत नेकु
बिरह-बिथा तें होत व्याकुल पियारी है।
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है ॥६७॥

लै मन फेरिबो जानौ नहीं बलि नेह निबाह कियो नहिं आवत।
हेरि कै फेरि मुखै 'हरिचंद जू' देखनहू को हमैं तरसावत।
प्रीत-पपीहन को घन-साँवरे पानिप-रूप क्यौं न पिआवत।
जानौ न नेक बिथा पर की बलिहारी तऊ हौ सुजान कहावत ॥६८॥

आई गुरु लोग संग न्यौते ब्रज गाँव नई
दुलही सुहाई शोभा अंगन सनी रही।
पूछे मन-मोहन बतायो सखियन यह
सोई राधा प्यारी बृषभानु की जनी रही।
'हरीचंद' पास जाय प्यारो ललचायो दीठ
लाज की धँसी सो मानो हीर की अनी रही।
देखो अन-देखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ
आधो मुख देखिबे की हौस ही बनी रही ॥६९॥

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी
दुखी सी रहत कछू नाहीं सुधि देह की।
मोही सी लुभाई कछु मोदक सों खाए सदा
बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की।
रिस भरी रहे क्यों फूलि न समाति अंग
हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की।
पूछे ते खिसानी होय उतर न आवै ताहि
जानी हम जानी है निसानी या सनेह की ॥७०॥

आई प्रात सोवत जगाई मैं सखीन साथ
ननद बिलोकिबे को करै अभिलास है।
'हरीचंद' हँसि हँसि पोंछै मुख अंचल सो
आरसी लै दूजी ठाढ़ी कहै कछू मास है।

एक मोती वीनै एक गूथै वेनी एक हँसे
साँसत हमारी एक करै मिल लाख है।
वसन के दाग धोवै नख-छत एक टोवै
चूर लै चुरी को खेलै एक जूस-ताख है ॥७१॥

आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात
रीसै मति पूछे वात रंग कित ढरिगो।
सोने से या गात छ्वै सोनो भयो आप कै वा
आतप प्रभात ही को प्रगट पसरिगो।
'हरीचंद' सौतिन की मुख-दुति छीनी कै वा
आपनो वरन कहुँ पाय धाय ररिगो।
नील पट तेरो आज औरै रंग भयो काहे
मेरे जान विछुरि पिया तें पीरो परिगो ॥७२॥

कैसे सखी वसिए ससुरारि में लाज को लेइवो क्यों सहि जावै।
ऐसी सहेलिनैं ऊधमी हैं नख-दंत के दाग लै कोऊ गनावै।
त्यों 'हरिचंद' खरी ढिग सास के ढीठ जिठानी पिया को हँसावै।
ओढ़ि कै चादर रात के सेज की सामने ही ननदी चलि आवै ॥७३॥

हम तो तिहारे सव भाँति सों कहावैं सदा
हम सों दुराव कौन सो है सो सुनाइ दै।
द्वार पै खड़े हैं वड़ी देर सों अड़े हैं यह
आशा है हमारी ताहि नेक तो पुराइ दै।
'हरीचंद' जोरि कर विनती वखानै यही
देखि मेरी ओर नेक मंद मुसुकाइ दै।
एरी प्रान-प्यारी वार वार वलिहारी नेक
घूँघट उघारि मोहिं वदन दिखाइ दै ॥७४॥

सास जेठानिन सों दबती रहै लीने रहै रुख त्यों ननदी को।
दासिन सों सतरात नहीं 'हरिचंद' करै सनमान सखी को।
पीय कों दच्छिन जानि न दूसत चौगुनो चाउ बढ़ै या लली को।
सौतिनहू को असीसै सुहाग करै कर आपने सेंदुर टीको ॥७५॥

कहो कौन मिलाप की बातैं कहै कही औरन की तो कछू न पतीजिये।
चित चाहै जहाँ बसिए मिलिए न कभू जिय आवै सोई सोई कीजिये।
अब प्रान चलें चहैं तासो कहैं 'हरिचंद' की सो बिनती सुनि लीजिये।
भरि नैन हमें इक बेरहू तो अपुनो मुख मोहन जोहन दीजिये ॥७६॥

लाई केलि-मंदिर तमासा को बताइ छल
बाला ससि सूर के कला पैं किये दावा सी।
धाइ ताहि गहन चहत 'हरिचंद जू' के
घूमि रही घर मे चहूँघा करि कावा सी।
धोखा दै के अंकम भरत अकुलानी अति
चंचल चखन सों लखानी मृग छावा सी।
आहि करि सिसकि सकोरि तन मोहि पियै
कर तें छटकि छूटी छलकि छलावा सी ॥७७॥

तू रँगी रंग पिया के सखी कछू बात न तेरी लखाइ परी है।
जद्यपि हौं नित पास रहौं तऊ मेरी यहै मति सोच भरी है।
जानी अहो 'हरिचंद' अबै यह प्रीत प्रतीत तिहारी खरी है।
स्याम बसै उर में नित ताही सों पीलहू कंचुकी होत हरी है ॥७८॥

जाहु जू जाहु जू दूर हटो सो बकै बिन बात ही को अब यासों।
वा छलिया ने बनाय कै खासो पठायो है याहि न जानै कहा सों।
काहि करै उपदेस खरो 'हरिचंद' कहै किन जाइ कै तासों।
सो बनि पंडित ज्ञान सिखावत कूबरीहू नहिं ऊबरी जासों ॥७९॥

सिसुताई अजौं न गई तन तें तऊ जोवन-जोति बटोरै लगी ।
सुनि कै चरचा 'हरिचंद' की कान कछूक दै भौंह मरोरै लगी ।
बचि सासु जेठानिन सों पिय तें दुरि घूँघट में दृग जोरै लगी ।
दुलही उलही सब अंगन तें दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगी ॥८०॥

इत उत जग में दिवानी सी फिरत रही
कौन बदनामी जौन सिर पै लई नहीं ।
त्रास गुरु लोगन की आस कै अनेक सही
कब बहु भाँतिन के ताप सों तई नहीं ।
'हरिचंद' गिरि बन कुंज जहाँ जहाँ सुन्यौ
तहाँ तहाँ कब उठि धाइ कै गई नहीं ।
होनी अनहोनी कीनी सब ही तिहारे हेतु
तऊ प्रान-प्यारे भेंट तुम सों भई नहीं ॥८१॥

एक बेर नैन भरि देखैं जाहि मोहै तौन
माच्यौ ब्रज गाँव ठाँव ठाँव मैं कहर है ।
संग लगी डोलैं कोऊ घर ही कराहैं परी
छूट्यो खान-पान रैन चैन बन घर है ।
'हरिचंद' जहाँ सुनो तहाँ चर्चा है यही
इक प्रेम-डोर नाथ्यो सगरो शहर है ।
यामैं न सँदेह कछू दैया हौं पुकारे कहौं
भैया की सौं मैया री कन्हैया जादूगर है ॥८२॥

जौन गली कढ़े तहाँ मोहे नर-नारी सब
भीरन के मारे बंद होइ जात राह है ।
जकी सी थकी सी सबै इत उत ठाढ़ी रहैं
घायल सी घूमैं केती किए हिए चाह हैं ।

'हरीचंद' जासो जोई कहै तौन सोई करै
बरबस तजै सब पतिव्रत राह है।
यामैं न सँदेह कछू सहजहि मोहै मन
साँवरो सलोना जानै टोना खामखाह है ॥८३॥

सुखद समीर रूखी ह्वै कै चलन लागी
घटि चली रैन कछु सिसिर हिमंत की।
फूलै लागे फूल फेरि बौर बन आम लागे
कोकिलै कुहूकै लागीं माती मदमंत की।
'हरीचंद' काम की दुहाई सी फिरन लागी
आवै लागी छन छन सुधि प्यारे कंत की।
जानी परै आयु बिरहीन की सिरानी अब
आयो चढ़ै रातैं फेर दुखद बसंत की ॥८४॥

बन बन आग सी लगाइ कै पलास फूले
सरसो गुलाब गुल्लाला कचनारो हाय।
आइ गयो सिर पै चढ़ाय मैन बान निज
बिरहिन दौरि दौरि प्रानन सम्हारो हाय।
'हरीचंद' कोइलैं कुहूकि फिरैं बन बन
बाजै लग्यौ जग फेरि काम को नगारो हाय।
दूर प्रान-प्यारो काको लीजिये सहारो अब
आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय ॥८५॥

रूप दिखाइ कै मोल लियो मन बाल-गुड़ी बहु रंगन जोरी।
चाहत-माँझो दियो 'हरीचंद' जू लै अपने गुन की रस डोरी।
फेरि कै नैन परे तन पै बदनामी की तापै लगाइ पुँछोरी।
प्रीति को चंग उमंग चढ़ाय कै सो हरि हाय बढ़ाय कै तोरी ॥८६॥

जानत ही नहिं हौं जग में किहि कों
सबरे मिलि भाखत हैं सुख।
चौंकत चैन को नाम सुने सपनेहू
न जानत भोगन को रुख।
ऐसन सों 'हरिचंद' जू दूर ही
बैठनो का लखनो न भलो मुख।
मो दुखिया के न पास रहौ उड़ि कै
न लगै तुमहू को कहूँ दुख॥ ८७॥

गरजे घन दौरि रहैं लपटाइ
भुजा भरि कै सुख पागी रहैं।
'हरिचंद' जू भींजि रहैं हिय में
मिलि पौन चलें मद जागी रहैं।
नभ दामिनी के दमके सतराइ
छिपी पिय अंग सुहागी रहैं।
बड़-भागिनी वेई अहैं बरसात मैं
जे पिय-कंठ सों लागी रहैं॥ ८८॥

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग
ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ इक
श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।
ये बृजबाला सबै इक सी
'हरिचंद' जू मंडली ही बिगरी है।
एक जौ होय तो ज्ञान सिखाइए
कूप ही में यहाँ भाँग परी है॥ ८९॥

महाकुंज पुंजन में मिलि कै विहार कीने
तहाँ बाँधि आसन समाधि समुझावै जिनि।
जौन अंग लाग्यौ पिया अंगन में बार बार
तापै कूर धूर को रमाइबो बतावै जिनि।
'हरीचंद' जाही चख नित ही विलोके स्याम
ताहि मूँद योग को अयोग ध्यान लावै जिनि।
जाही कान सुनी प्यारे हरि की मधुर बातें
हाहा ऊधो ताही कान अलख सुनावै जिनि ॥९०॥

कौन कहे इत आइए लालन
पावस मे तो दया उर लीजिए।
को हम हैं कहा जोर हमारो है
क्यों 'हरिचंद' वृथा हठ कीजिए।
जो जिय में रुचै भेंटिए ताहि
दया करि कै तेहि को सुख दीजिए।
कोरि ही कोरी भली हम हैं पिय
भींजिए जू उनके रस भींजिए ॥९१॥

सखि आयो वसंत रितून को कंत
चहूँ दिसि फूलि रही सरसों।
बर सीतल मंद सुगंध समीर
सतावन हार भयो गर सों।
अब सुंदर साँवरो नंदकिसोर
कहै 'हरिचंद' गयो घर सों।
परसों को बिताय दियो बरसों
तरसों कब पाँय पिया परसों ॥ ९२ ॥

आजु केलि-मंदिर सों निकसि नवेली ठाढ़ी
भौंर चारों ओर रहे गंध लोभि वार के।
नैन अलसाने घूमैं पटहु परे हैं भू मैं
उर में प्रगट चिन्ह पिय कंठहार के।
'हरिचंद' सखिन सों केलि की कहानी कहै
रस में मसूसी रही आलस निवार के।
साँचे में खरी सी परी सीसी उतरी सी खरी
वाजूवँद वाँधे वाजू पकरि किवार के ॥९३॥

साज्यौ साज गाँव मिलि तीज के हिंडोरना को
तानि कै वितान खासो फरस विछायो री।
आवैं मिलि गोपी तापैं भींजि झुंड झुंड काम
छाप सी लगावैं गावैं गीत मन-भायो री।
मोहिं जान पाछे परी देरी तै दया कै
'हरीचंद' अंक लैकै लाल छिपि पहुँचायो री।
जानि गई ताहू पैं चवाइनै गजव देखे
पाँय विनु पंक के कलंक मोहिं लायो री ॥९४॥

खोरि साँकरी मैं आजु छिपि कै विहारी लाल
तरु पैं विराजे छल जिय अति कीनो है।
ग्वाल-वाल साथ केहू इत उत वाटिन में
छिपे 'हरिचंद' दान हेतु चित दीनो है।
ताही समैं गोपिन विलोकि कूदि धाए सव
ऊधम मचायो दूध दधि घृत छीनो है।
दही जो गिरायो सो तो फेरहू जमाय लैहैं
मन कहाँ पैहैं दान-मिस जौन लीनो है ॥९५॥

लाज समाज निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये।
जानन दीजिये लोगन कों कुलटा कहि मोहिं पुकारन दीजिये।
त्यों 'हरिचंद' सबै भय टारि कै लालन घूँघट टारन दीजिये।
छाँड़ि सकोचन चंदमुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिये ॥९६॥

पूरन पियूष प्रेम आसव छकी हौं रोम
रोम रस भीन्यौ सुधि भूली गेह गात की।
लोक परलोक छाँड़ि लाज सों बदन मोड़ि
उघरि नची हौं तजि संक तात मात की।
'हरीचंद' एतेहू पैं दरस दिखावै क्यो न
तरसत रैन दिना प्यासे प्रान पातकी।
एरे बृजचंद तेरे मुख की चकोरी हूँ मैं
एरे घनश्याम तेरे रूप की हौं चातकी ॥९७॥

छाँड़ि कुल वेद तेरी चेरी भई चाह भरी
गुरुजन परिजन लोक-लाज नासी हौं।
चातकी तृपित तुव रूप-सुधा हेत नित
पल पल दुसह वियोग दुख गाँसी हौं।
'हरीचंद' एक ब्रत नेम प्रेम ही को लीनौ
रूप की तिहारे ब्रज-भूप हौं उपासी हौं।
ज्याय लै रे प्रानन बचाय लै लगाय कंठ
एरे नंदलाल तेरी मोल लई दासी हौं ॥९८॥

तरसत स्रौन बिना सुने मीठे बैन तेरे
क्यौं न तिन माँहि सुधा-बचन सुनाइ जाय।
तेरे बिन मिले भई झाँझरि सी देह प्रान
राखि लै रे मेरो धाइ कंठ लपटाइ जाय।

'हरीचंद' बहुत भई न सहि जाय अब
हा हा निरमोही मेरे प्रानन बचाइ जाय।
प्रीति निरवाहि दया जिय मैं बसाय आय
एरे निरदई नेकु दरस दिखाय जाय ॥९९॥

दौरि उठि प्यारी गर लावै गिरधारी किन
ऐसे पियहू सों किन बोलै कलवादिनी।
देखु 'हरिचंद' ठीक दुपहर तेरे हेतु
आयो चलि दूर सों पियारो री प्रमादनी।
तेरे गृह चलत न दुख सुख जान गिन्यौ
सीतल बनाउ ताहि सुरत सवादनी।
मखमल भूभल भो लूह सीरी पास
दूरी भई तेरे यह धूप भई चाँदनी ॥१००॥

हे हरि जू बिछुरे तुम्हरे नहिं धारि सकी सो कोऊ बिधि धीरहिं।
आखिर प्रान तजे दुख सों न सम्हारि सकी वा वियोग की पीरहिं।
पै 'हरिचंद' महा कलकानि कहानी सुनाऊँ कहा बलवीरहिं॥
जानि महा गुन रूप की रासि न प्रान तज्यो चहैं वाके सरीरहिं॥१०१॥

साजि सेज रंग के महल मैं उमंग भरी
पिय गर लागी काम-कसक मिटाएँ लेत।
ठानि विपरीत पूरी मैन के मसूसन सों
सुरत, समर जयपत्रहिं लिखाएँ लेत।
'हरीचंद' उझकि उझकि रति गाढ़ी करि
जोम भरि पियहि झकोरन हराएँ लेत।
याद करि पी की सब निरदय घातें आजु
प्रथम समागम को बदलो चुकाएँ लेत ॥१०२॥

कबहुँक बारिन में कुंजन निवारिन में
इत उत बेलिन कों चौंकि चितवत है।
कासन कपासन पै फिरत उदास क्यों
पल्लवन बैठि बैठि दिन रितवत है॥
'हरीचंद' बागन कछारन पहारन मैं
जित तित पखो गुनि नेह हितवत है।
सूखे सूखे फूलन पै तरुगन मूलन पै
मालती-बिरह भौंरि दिन बितवत है॥१०३॥

काले परे कोस चलि चलि थक गये पाय
सुख के कसाले परे ताले परे नस के।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे
मदन के पाले परे प्रान पर-बस के॥
'हरीचंद' अंगहू हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन में छाले परे नाँघिबे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के॥१०४॥

थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद
सूख झाँझरी सी ह्वै कै देह लागी पियरान।
बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान॥
'हरीचंद' रावरे-बिरह जग दुखमय
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे बैनहु अथान लागे
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान॥१०५॥

लाई लिवाय तमासो बताय भुराय के दूतिका कुंजन माँहीं ।
धाय गही 'हरिचंद' जबै न छपी वह चंदमुखी परछाँहीं ।
अंक मैं लेत छल्यो छलकै बलकै तब आप छोड़ाय कै बाँहीं ।
हाथन सों गहि नीवी कह्यो पिय नाँहीं जू नाँहीं जू नाँहीं जू नाँहीं ॥१०६॥

नव कुंजन बैठे पिया नँदलाल जू जानत हैं सब कोक-कला ।
दिन मैं तहाँ दूती भुराय के लाई महा छवि-धाम नई अबला ।
जब धाय गही 'हरिचंद' पिया तब बोली अजू तुम मोही छला ।
मोहिं लाज लगै बलि पाँव परौं दिन हीं हहा ऐसी न कीजै लला ॥१०७॥

जानि सुजान मैं प्रीति करी सहिकै जग की बहु भाँति हँसाई ।
त्यों 'हरिचंद' जू जो जो कह्यो सो कस्यो चुप ह्वै करि कोटि उपाई ।
सोऊ नहीं निबही उनसों उन तोरत बार कछू न लगाई ।
साँची भई कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई॥१०८॥

जानति हो सब मोहन के गुन तौ पुनि प्रेम कहा लगि कीनो ।
त्यों 'हरिचंद' जू त्यागि सबै चित मोहन के रस रूप में भीनो ।
तोरि दई उन प्रीति उतै अपवाद इतै जग को हम लीनो ।
हाय सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार मैं दीनो ॥१०९॥

इन नैनन मैं वह साँवरी मूरति देखति आनि अरी सो अरी ।
अब तो है निबाहिबो याको भलो 'हरिचंद' जू प्रीत करी सो करी ।
उन खंजन के मद-गंजन सों अँखियाँ ये हमारी लरी सो लरी ।
अब लोग चवाव करो तौ करो हम प्रेम के फंद परी सो परी॥११०॥

अब तौ बदनाम भई ब्रज मैं घरहाई चवाव करौ तो करौ ।
अपकीरति होउ भले 'हरिचंद' जू सासु जेठानी लरौ तो लरौ ।
नित देखनो है वह रूप मनोहर लाज पै गाज परौ तो परौ ।
मोहिं आपने काम सों काम अली कुल के कुल नाम धरौ तो धरौ॥१११॥

नाम धरो सिगरो बृज तो अब कौन सी बात को सोच रह्यो है।
त्यों 'हरिचंद' जू और हू लोगन मान्यो बुरो अरी सोऊ सह्यो है।
होनी हुती सु तो होय चुकी इन बातन तें अब लाभ कहा है।
लागे कलंक हू अंक लगै नहिं तौ सखि भूल हमारी महा है ॥११२॥

वह सुंदर रूप बिलोकि सखी मन हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यो।
चित माधुरी मूरति देखत ही 'हरिचंद' जू जाय पग्यो सो पग्यो।
मोहिं औरन सों कछु काम नहीं अब तो जो कलंक लग्यो सो लग्यो।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं अलि साँवरो रंग रँग्यो सो रँग्यो ॥११३॥

हमहूँ सब जानतीं लोक की चालहिं क्यों इतनो बतरावती हौ।
हित जामैं हमारो बनै सो करो सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ।
'हरिचंद जू' यामैं न लाभ कछू हमैं बातन क्यों बहरावती हौ।
सजनी मन पास नहीं हमरे तुम कौन को का समुझावती हौ॥११४॥

बिछुरे बलबीर पिया सजनी तिहि हेत सबै बिछुरावने हैं।
'हरिचंद' जू त्यों सुनिकै अपवाद न औरहू सोच बढ़ावने हैं।
करिकै उनके गुन-गान सदा अपने दुख को बिसरावने हैं।
जेहि भाँति सो द्यौस ए बीतैं सखी तेहि भाँति सों बैठि बितावने हैं॥११५॥

मन-मोहन तें बिछुरीं जब सों तन आँसुन सों सदा धोवती हैं।
'हरिचंद जू' प्रेम के फंद परीं कुल की कुल लाजहिं खोवती हैं।
दुख के दिन कों कोऊ भाँति बितै बिरहागम रैन सँजोवती हैं।
हम हीं अपनी दसा जानैं सखी निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं॥११६॥

धिक देह औ गेह सबै सजनी जिहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रान-पियारे बिना इहि जीवहि राखि कहा सुख लूटनो है।
'हरिचंद जू' बात ठनी सो ठनी नित के कलकानि तें छूटनो है।
तजि और उपाव अनेक अरी अब तो हमको बिष घूँटनो है ॥११७॥

सुनी है पुरानन में द्विज के मुखन बात
तोहि देखैं अपजस होत ही अचूक है।
तासों 'हरिचंद' करि दरसन तेरो जिय
मेट्यौ चाहै कठिन मनोभव की हूक है।
ऐसो करि मोहिं सबै प्यारे नँदनंद जू सों
मिली कहैं लावैं मुख सौतिन के लूक है।
गोकुल के चंद जू सों लागै जो कलंक तौ तू
साँचो चौथ-चंद ना तो बादर को टूक है ॥११८॥

आई केलि-मंदिर मैं प्रथम नवेली बाल
जोरा-जोरी पिय मन-मानिक छुड़ाएँ लेति।
सौ सौ बार पूछे एक उत्तरु मरु कै देति
घूँघट के ओट जोति मुख की दुराएँ लेति।
चूमन न देति 'हरिचंदै' भरी लाज अति
सकुचि सकुचि गोरे अंगहिं चुराएँ लेति।
गहतहि हाथ नैन नीचे किए आँचर मैं
छवि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति ॥११९॥

यह सावन सोक-नसावन है मन-भावन यामैं न लाजै भरो।
जमुना पै चलो सु सबै मिलि कै अरु गाइ-बजाइ कै सोक हरो।
इमि भाषत हैं 'हरिचंद' पिया अहो लाडिली देर न यामैं करो।
बलि झूलो झुलावो झुको उझको यहि पायैं पतिव्रत तापैं धरो ॥१२०॥

उमड़ि उमड़ि दृग रोअत अधीर भए
मुख-दुति पीरी परी बिरह महा भरी।
'हरीचंद' प्रेम-माती मनहुँ गुलाबी छकी
काम झर झाँकरी सी दुति तन की करी।

प्रेम-कारीगर के अनेक रंग देखौ यह
जोगिआ सजाए बाल बिरिछ तरे खरी।
आँखिन मैं साँवरो हिए में बसै लाल वह
बार बार मुख तें पुकारत हरी हरी ॥१२१॥

जिय सूधी चितौन की साधै रही सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हँसि कै 'हरिचंद' न बोले कबौं मन दूर ही सौं ललचाय रहे।
नहिं नेक दया उर आवत क्यौं करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे।
मुख कौन सो प्यारे दियो पहिले जेहि के बदले यौं सताय रहे॥१२२॥

जानत कौन है प्रेम-बिथा केहिसों चरचा या बियोग की कीजिये।
को कही मानै कहा समुझै कोउ क्यौं बिन बात की रारहिं लीजिये।
कूर चवाइन में पड़ि कै 'हरिचंद जू' क्यों इन बातन छीजिये।
पूछत मौन क्यौं बैठि रही सब प्यारे कहा इन्हें उत्तर दीजिये॥१२३॥

तुमरे तुमरे सब कोऊ कहैं तुम्हें सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावलि आपनी राखो मिलौ मोहिं सोचिबे की कछु बात नहीं।
'हरिचंद जू' होनी हुती सो भई इन बातन सों कछु हात नहीं।
अपनावते सोच बिचारि तबै जल-पान कै पूछनी जात नहीं॥१२४॥

पिया प्यारे बिना यह माधुरी मूरति औरन को अब पेखिये का।
सुख छाँड़ि कै संगम को तुमरे इन तुच्छन को अब लेखिये का।
'हरिचंद जू' हीरन को बेवहार कै काँचन को लै परेखिये का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यौ उन आँखिन सों अब देखिये का॥१२५॥

कित को ढरिगो वह प्यार सबै क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
'हरिचंद' भये हौ कहा के कहा अनबोलिबे ते नहिं छाजत हौ।
नित को मिलनो तो किनारे रह्यौ मुख देखन ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाय बढ़ाय कै नेह न रूसिबे में अब लाजत हौ॥१२६॥

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो ।
पुनि नैन लगाई वढ़ाइ कै प्रीति निवाहन को क्यों कलाम कियो ।
'हरिचंद' कहा के कहा ह्वै गए कपटीन सों क्यों यह काम कियो ।
मन माँहि जौ छोड़न ही की हुती अपनाइ कै क्यों वदनाम कियो।।१२७।।

धाइ कै आगे मिलीं पहिले तुम कौन सों पूछि कै सो मोहिं भाखो ।
त्यों तुम ने सव लाज तजी केहि के कहे एतो कियो अभिलाखो ।
काज विगारीं सवै अपुनो 'हरिचंद जू' धीरज क्यों नहिं राखो ।
क्यों अव रोइ कै प्रान तजौ अपुने किये को फल क्यों नहिं चाखो।।१२८।

इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यौ
तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी ।
प्यारे 'हरिचंद जू' की वीती जानि औध प्रान
चाहत चले पै ये तो संग ना समायँगी ।
देख्यो एक वारहू न नैन भरि तोहिं यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी ।
विना प्रान-प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी ।।१२९।।

हौं तो तिहारे सुखी सों सुखी सुख सों जहाँ चाहिये रैन विताइये ।
पै विनती इतनी 'हरिचंद' न रूठि गरीव पै भौंह चढ़ाइये ।
एक मतो क्यों कियो तुम सों तिन सोउ न आवै न आप जो आइये ।
रूसिवे सों पिय प्यारे तिहारे दिवाकर रूसत है क्यों वताइये ।।१३०।।

धारन दीजिये धीर हिए कुल-कानि कों आजु विगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सवै 'हरिचंद' कलंक पसारन दीजिए ।
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों सोर मचाइ पुकारन दीजिए ।
छाँड़ि सँकोचन चंदमुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए ।।१३१।।

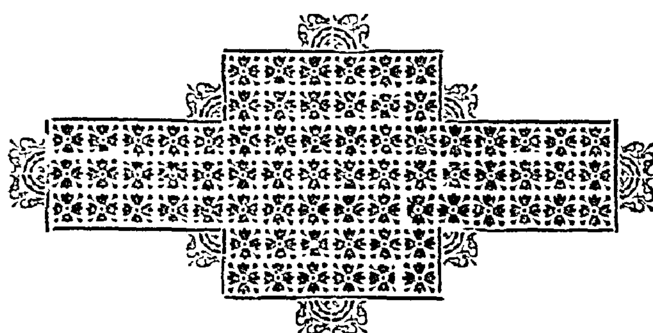


प्रेम-तरंग

भक्त-हृदय-वारिधि अगम झलकत श्यामहि रंग।
विरह-पवन-हिलोर लहि उमग्यो प्रेमतरंग॥

सं० १९३४

मल्लिकचंद्र और कंपनी
तृतीय आवृत्ति
कविवचन सुधा, ९-४-७७



प्रेम-तरंग

—✿—

खेमटा

राधा जी हो वृषभानु-कुमारी ।
कोटि कोटि ससि नख पर वारौं कीरति-दृग-उँजियारी ॥
सब ब्रज की रानी सुखदानी जसुदानन्द-दुलारी ।
'हरीचन्द' के हिये विराजो मोहन-प्रान-पियारी ॥ १ ॥

विरह की पीर सही नहिं जाय ।
कहा करौं कछु बस नहिं मेरो कीजे कौन उपाय ॥
'हरीचंद' मेरी बाँह पकरि कै लीजै आय उठाय ॥ २ ॥

अकेली फूल बिनन मैं आई ।
संग नहीं कोउ सखी सहेली फूल देख बिलमाई ॥
या बन के काँटन सों मेरी सारी गइ उरझाई ।
'हरीचन्द' पिया आय दया करि अपने हाथ छुड़ाई ॥ ३ ॥

खेमटा, साँझी का

श्याम सलोने गात मलिनियाँ ।
बड़े बड़े नैन भौंह दोउ बाँकी जोवन सों इठलात ।
सुनत नहीं कछु बात कोऊ की राधे के ढिग जात ।
'हरीचन्द' कछु जान परे नहिं घूँघट में मुसकात ॥ ४ ॥

लगत इन फुलवारिन में चोर ।
इन सों चौंकत रहियो सजनी छिप रहे चारों ओर ॥
अबहिं निकसि अइहैं गह्वर सों लैहैं भूषन छोर ।
'हरीचन्द' इनसों बच रहिये ए ठगिया बरजोर ॥ ५ ॥

मुख पर तेरे लटूरी लट लटकी ।
काली घूँघरवाली प्यारी चुनवारी मेरे जिअ खटकी ॥
छल्लेदार छबीली लाँबी लखि नागिन सब रहिं सिर पटकी ।
'हरीचंद' जंजीरन जकड़ी ये अँखियाँ अब छुटहिं न अटकी॥ ६ ॥

कैसे नैया लागे मोरी पार खिवैया तोरे रूसे हो ।
औंड़ी नदिया नावरि झँझरी जाय परी मँझधार ॥
देइ चुकीं तन मन उतराई छोड़ि चुकीं घर-बार ।
कहि 'हरिचन्द' चढ़ाइ नेवरिया करो दगा मति यार ॥ ७ ॥

सखी बंसी बजी नँद-नंदन की ।
श्री वृन्दावन की कुंज-गलिन में सुधि आई साँवर घन की ॥
मगन भई गोपी हरि के रस बिसरि गई सुधि तन मन की ॥८॥

काफी

कठिन भई आजु की रतियाँ ।
पिया परदेस बहुत दिन बीते नहीं आई पतियाँ ॥

विरह सतावत दिन दिन हमको कैसे करौं बतियाँ।
आय मिलौ पिय 'हरीचंद' तुम लागूँ मैं तोरी छतियाँ॥ ९॥

बजन लागी बंसी लाल की।
हौं बरसाने जात रही री सुधि आई बनमाल की॥
बिसरत नाहिं सखी वह चितवनि सुन्दर स्याम तमाल की।
'हरीचंद' हँसि कंठ लगायो बिसरि गई सुधि बाल की॥१०॥

झिंझोटी

रँगीले रँग दे मेरी चुनरी।
स्याम रंग से रँग दे चुनरिया 'हरीचन्द' उनरी॥११॥

होली खेमटा

छबीले आ जा मोरी नगरी हो।
साँवरे रंग मनोहर मूरति बाँधे सुरुख पगरी हो॥
'हरीचन्द' पिय तुम बिनु कैसे रैन कटे सगरी हो॥१२॥

चलो सोय रहो जानी, अँखियाँ खुमारी से लाल भई।
सगरी रैन छतिया पर राखा अधरन का रस लीना।
'हरीचन्द' तेरी याद न भूलै ना जानौं कहा कीना॥१३॥

दादरा

सैयाँ बेदरदी दरद नहिं जानै।
प्रान दिए बदनाम भए पर नेक प्रीति नहिं मानै॥
'हरीचन्द' अलगरजी प्यारा दया नहीं जिय आनै॥१४॥

सोरठ

जवनियाँ मोरी मुफुत गई बरबाद।
सपन्यौं मैं सखिया नहिं जान्यौ सैयाँ–सुख सेजिया–सवाद॥

चारी बैस सैयाँ दूर सिधारे दे गए बिरह-बिखाद।
'हरीचन्द' जियरै में रहि गईं लाखन मोरी मुराद ॥१५॥

सखी राधा-बर कैसा सजीला।
देखो री गोइयाँ नजर नहिं लागै कैसा खुला सिर चीरा छबीला।
बार-फेर जल पीयो मेरी सजनी मति देखो भर नैना रँगीला
'हरीचन्द' मिलि लेहु बलैया अँगुरिन करि चटकारि चुटीला ॥१६॥

पील

का करौं गोइयाँ अरुझि गई अँखियाँ।
कैसे छिपाऊँ छिपत नहिं सजनी छैला मद-माती भई मधु-मखियाँ ॥
साँवरो रूप देख परबस भई इन कुल-लाज तनिक नहि रखियाँ।
'हरीचंद' बदनाम भई मैं तो ताना मारत सब सँग कि सखियाँ ॥१७॥

नयन की मत मारो तरवरिया।
मैं तो घायल बिनु चोट भई रे कहर करेजे करिया ॥
काहे को सान देत भौंहन की काजर नयनन भरिया।
'हरीचन्द' बिन मारे मरत हम मत लाओ तीर कटरिया ॥१८॥

जिय लेके यार करो मत हाँसी।
तुमरी हँसी मरन है मेरो यह कैसी रीत निकासी ॥
आइ मिलौ गल लागौ पिअरवा अँखियाँ दरसन-प्यासी।
'हरीचन्द' नहिं तो जुलफन को मरिहैं दै गल-फाँसी ॥१९॥

ठुमरी, सहाना

आज तोहिं मिल्यो गोरी कुंजन पियरवा।
काहे बोलै झूठे बैन कहे देत तेरे नैन
देखु न बिथुरि रहे मुख पर बरवा ॥

अँगिया के बँद टूटे कर सों कँकन छूटे
अपने पीतम जी के लागी है तू गरवा ॥
'हरीचन्द'लाज मेटी गाढ़े भुज भर भेंटी
द्वै द्वै के उपटि भये चार चार हरवा ॥२०॥

काहू सों न लागें गोरी काहू के नयनवाँ ।
हँसैं सुनि सब लोग मिटै ना विरह-सोग
पूछे ते न आवै कछू मुख सों बयनवाँ ।
'हरीचन्द'घबराय बिपति कही न जाय
छूटै खान-पान मिटैं चित के चयनवाँ ॥२१॥

ठुमरी

भए हो तुम कैसे ढीठ कुँअर कन्हाई ।
मटुकी मोरी सिर सों पटकि तापै हँसत हौ ठाढ़े
देखो किन ऐसी बान सिखाई ॥
भीर भई देखो ठाढ़ी हँसैं बृजबाल सब लखि मुख मेरे
'हरिचन्द' तुम बृज कैसी यह नई रीति चलाई ॥२२॥

हाँ दूर रहो ठाढ़े हो कन्हाई ।
जिन पकरो बहियाँ मेरी हटो लँगर
करो न लँगराई इठलाई ।
काहे इत आओ अरराने रहो दूर
'हरिचन्द' कैसी रीत चलाई मन-भाई ॥२३॥

ठुमरी, सोरठ

बेपरवाह मोहन मीत, हौं तो पछिताई हो दिल देके ।
बरबस आय फँसी इन फंदन छोड़ सकल कुल-रीत ॥
कीनी चाल पतंग-दीप की मानी तनक न नीत ।
'हरीचन्द' कछु हाथ न आयो करि ओछे सों प्रीत ॥२४॥

तू मिल जा मेरे प्यारे।
तेरे बिन मन-मोहन प्यारे व्याकुल प्रान हमारे।
'हरीचन्द' मुखड़ा दिखला जा इन नयनन के तारे ॥२५॥

बहियाँ जिन पकरो मोरी, पिया तुम साँवरे हम गोरी।
तुम तो ढोटा नन्द महर के, हम वृषभानु-किशोरी।
'हरीचन्द' तुम कमरी ओढ़ो, हम पै नील पिछौरी ॥२६॥

सेजिया जिन आओ मोरी, मैं पइयाँ लागौं तोरी।
तुम सौतिन घर रात रहत हौ आवत हौ उठ भोरी।
'हरीचन्द' हम सों मत बोलो झूठ कहत क्यों जोरी ॥२७॥

झूठी सब बृज की गोरी, ये देत उलहनो जोरी।
मइया मैं नाहीं दधि खायो मैं नहिं मटुकी फोरी।
'हरीचन्द' मोहिं निबल जान ये नाहक लावत चोरी ॥२८॥

कलिंगड़ा

आओ रे मोरे रूठे पियरवा, धाय लागो प्यारी के गरवा।
रूठ रहे क्यों मुख सों बोलो, हिय की गाँठैं हँस हँस खोलो,
'हरीचंद' अपनी प्यारी को मान राख राखौ अपने कोरवा ॥२९॥

छतियाँ लेहु लगाय सजन अब मत तरसाओ रे।
तुम बिन तलफत प्रान हमारे, नयनन सों बहें जल की धारें,
बाढ़ी है तन बिरह-पीर सूरत दिखलाओ रे।
'हरीचन्द' पिय गिरिवरधारी, पैयाँ परौं जाओं बलिहारी,
अब जिय नाहीं धरत धीर जलदी उठ धाओ रे ॥३०॥

मुकुट लटक भौंहन की मटक मोहन दिखला जा रे।
कुण्डल की लटक तानन की खटक मुख तनक हँसन कटि कछनी
कसन इन दरसन प्यासे नयनन कों प्यारे दरसा जा रे॥

झुक झुक के चलन कलगी की हलन नित आय आय कछु गाय गाय
'हरिचंद' नाम मेरो लै लै नई तान सुना जा रे ॥३१॥

पीलू

सजन तोरी हो मुख देखे की प्रीत ।
तुम अपने जोबन मदमाते कठिन विरह की रीत ॥
जहाँ मिलत तहाँ हँसि हँसि बोलत गावत रस के गीत ।
'हरीचंद' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ॥३२॥

हिंडोला

जमुना-तट कुंजन बीन रहीं सब सखियाँ फूलों की कलियाँ ।
एक गावत एक ताल बजावत हैं करती मिल के एक रँग-रलियाँ ॥
मृगनैनी आय अनेक जुरीं छबि छाय रही ब्रज की गलियाँ ।
'हरीचंद' तहाँ मनमोहन जू सखि बन आए लखि यों अलियाँ ॥३३॥

यह कैसी बान तिहारी मेरे प्यारे गिरवरधारी हो ।
मारग रोकि रहे सूने बन घेरि लई पर-नारी ।
करि बरजोरी मोरी बहियाँ मरोरी, लीनी मटुकीहु सिर सों उतारी ।
ऐसी चपलाई कहा करत कन्हाई, देखो लोक-लाज सब टारी ॥
पइयाँ परौं दूर रहौ अंग न छुओ हमारो 'हरीचन्द' तोपै बलिहारी ॥३४॥

सजन छतियाँ लपटा जा रे ।
दोउ नैन जोरि कछु भौंह मोरि झुकि झूमि चूमि सुख दै झकोरि
अधरन पैं धरके अपनो अधर रस मोहिं पिला जा रे ॥
दोउ भुज-बिलास गलबाँही डाल मेरे गालन पै धर अपनो गाल,
उर छाय अंग संग में सबै रस-रँग बरसा जा रे ॥
मेरो खोल कंचुकी-बँद हँसि के रस लै जोबन को कसि-कसि के,
'हरिचंद' रँगीली सेजन पै सब कसक मिटा जा रे ॥३५॥

सजन गलियों विच आ जा रे।
तेरे बिन बाढ़ी बिरह-पीर गलियों-बिच आ जा रे ॥
तेरे बिना मोहिं नींद न आवे, घर-अँगना कछु नाहिं सुहावे,
इन नयनन सों बहत नीर सूरत दिखला जा रे ॥
'हरीचंद' तू मिल जा प्यारे, तेरे बिन तलफत प्रान हमारे,
निकल जाय सब जिय की कसक गरवाँ लिपटा जा रे ॥३६॥

सारंग

मेरे प्यारे सों सँदेसवा कौन कहै जाय।
जिय की बेदन हरे बचन सुनाय राम
कोई सखी देय मोरी पाती पहुँचाय ॥
जाय कै बुलाय लावै बहुत मनाय राम
मिलै 'हरीचंद' मोरा जिअरा जुड़ाय ॥३७॥

क्यों गले न लगत रसिया वे।
तू तो मेरे दिल बिच बसिया वे ॥
तेरी घूँघरवाली अलकैं मेरो तन मन डसिया वे।
'हरीचंद' नहिं मिलै करै तू सौतिन सँग रँग-हँसिया वे ॥३८॥

मेरे रूठे सैयाँ हो अरज मेरी सुनि लीजै।
कापै इतनी भौंह चढ़ाओ क्यो न सजा मोहिं दीजै।
'हरीचंद' मैं तो तुमरी ही जो चाहे सो कीजै ॥३९॥

किन वे रुठाया मेरा यार।
कहाँ गया क्यो छोड़ गया मोहि तोड़ गया क्यों प्यार ॥
बन-बन पात-पात करि पूछूँ कोई न सुनै पुकार।
'हरीचंद' गल-लगन-हौंस में बिरहिनि जरि भई छार ॥४०॥

किन विलमायो मेरो प्रान ।
पाटी कर पटकत निसि बीती रोवत भयो है विहान ॥
कहाँ रैन वसे को मन भाई किन तोर्यौ मेरो मान ।
'हरीचंद' बिन विकल भई कछु करतव परत न जान ॥ ४१ ॥

भैरवी

सैयाँ तुम हमसे बोलो ना ।
कब के गए कहाँ रैन गँवाई मत घूँघट पट खोलो ॥ ४२ ॥

काफी

तेरी छवि मन मानी मेरे प्यारे दिल-जानी ।
प्रात समय जमुना-तट पै हौं जात रही पानी ॥
घूँघट उलटि वदन दिसि हेर्यौ कहि मीठी बानी ।
'हरीचंद' के चित में चुभि गई सूरति सैलानी ॥४३॥

छयल तोरी रे तिरछी नजर मोहिं मारी ।
जब तें लगी तनक सुधि नाहीं तन की दसा विसारी ॥४४॥

आजु की रात न जाओ सैयाँ मोरी बतियाँ मानो ।
तुम सौतन के रात रहत हौ हम सों छल मत ठानो ॥४५॥

बल खात गुजरिया विरह भरी ।
भूलि गई सब सुध तन मन की लागी हरि की तिरछी नजरिया ।
'हरीचंद' पिया आय मिलो अब मारत है मोहिं विरह कटरिया ॥४६॥

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ।
जागत सब सास ननद मोरी बाजेगी पायल, मोसों सेजरिया० ।
तुम अपने मद चूर गिनत नहिं मुख मेरो चूमो गर लाय हाय ॥
'हरीचंद' न ऐसी मोसों बनैगी पिआरे कैसे
लाज छाँड़ि दौरि आऊँ तोहि मिलूँ धाय ॥४७॥

भैरवी

नजरहा छैला रे नजर लगाए चला जाय।
नजर लगी बेहोस भई मैं जिया मोरा अकुलाय ॥
व्याकुल तड़पूँ नजर न उतरै हाय न और उपाय।
'हरीचंद' प्यारे को कोई लाओ जाय मनाय ॥४८॥

नशीली आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात।
सगरी रैन मेरे सँग जागत रहे करत रँगीली बात ॥
चिड़िया नहीं बोलीं मेरी चूरी खनकत काहें अकुलात।
'हरीचंद' मत उठो पियरवा गल लगि करौ रस-घात।
नशीली आँखोंवाले सोए रहो अभी है बड़ी रात ॥४९॥

पीलू

हमसे प्रीति न करना प्यारी हम परदेसी लोगवा।
प्रीत लगाय दूर चलि जैहैं रहि जैहैं जिय सोगवा।
परदेसी की प्रीत बुरी है कठिन विरह को रोगवा।
'हरीचंद' फिर दुख बढ़ि जैहै कटिहै नाहिं वियोगवा ॥५०॥

भैरवी

पियारे गर लागो लागो रैन के जागे हो।
रैन के जागे प्यारी-रस-पागे जिया अनुरागे हो ॥
घूमत नैन पीक रँग दागे रसमगे बागे हो।
'हरीचंद' प्यारी मुख चूमत हँसि गर लागे हो ॥
पियारे गर लागो लागो रैन के जागे हो ॥५१॥

रैन के जागे पिया हो भोरहि मुख दिखलाओ।
रँगीली नसीली छबीली अँखियन अँखियाँ यार मिलाओ ॥
घूँघरवाली अलकैं बिथुरि रहीं जुलफैं यार बनाओ।
'हरीचन्द' मेरे गलबहियाँ दै आलस रैन मिटाओ ॥५२॥

न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय।
विरह बाढ़्यौ पिय बिन कैसे कटै रैन सखी
मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ॥
'हरीचन्द' पिया बिनु नींद न आवे साँपिन सी
लगै सेज हाय मोरी तड़पत रैन बिहाय।
न जाय मोसों सेजरिया चढ़िलो न जाय ॥५३॥

पूरबी

अजगुत कीन्ही रे रामा।
लगाय काँची प्रीति गए परदेसवा अजगुत कीन्ही रे रामा।
बारी रे उमिरि मोरी नरम करेजवा बिपति नई दीन्ही रे रामा ॥
अजगुत कीनी०।
'हरीचन्द' बिन रोइ मरौं रे खबरियौ न लीन्ही रे रामा ॥
अजगुत कीन्ही० ॥५४॥

आवन की कछु आज पिया की सुरति लगी मेरी सखियाँ।
उड़ि उड़ि अंचल जोबन उमगत फरकत मोरी बाईं अँखियाँ।
'हरीचन्द' पिय कंठ लागि कै होइहैं ये छतियाँ सुखियाँ ॥५५॥

भैरवी

रैन की हो पिय की खुमारी न टूटै।
बहुत जगाय हारी मोरी सजनी नींदड़िया नहीं छूटै।
भोर भए गर लगत न प्यारो अधर-सुधा नहिं छूटै।
'हरीचन्द' पिया नींद को मातो सेज को सुख नहिं लूटै ॥५६॥

शिकारी मियाँ वे जुलफों का फन्दा न डारो।
जुलफों के फन्दे फँसाय पियरवा नैन-बान मत मारो ॥
पलक कटारिन मार भँवन की मत तरवार निकारो।
'हरीचंद' मेरे जुलमी घायल छोड़ि न हमैं सिधारो ॥५७॥

पूरबी

अरे प्यारे हम तुम बिनु व्याकुल आ जा रे प्यारे।
तड़पत प्रान हमारे तुम बिन हो दरस दिखला जा रे प्यारे।
'हरीचंद' तुम बिना तलफत गर लपटा जा रे प्यारे।
अरे प्यारे जल बिन मरत मछरिया इनहिं जिला जा रे प्यारे ॥५८॥

पूरबी वा गौरी

पिअरवा रे मिलि जा मत तरसाओ।
तुम बिन व्याकुल कल न परत छिन जलदी दरस दिखाओ।
'हरीचंद' पिया अब न सहौंगी धाइकै गरवाँ लगाओ ॥५९॥

प्यारी तोरी बाँकी रे नजरिया बड़े तोरे नैना रे प्यारी।
प्यारी तोरा रस भरा जोबन जोर मीठे मुख बैना रे प्यारी।
तड़पत छैला काहे छोड़ चली रे प्यारी मार गई सैना रे प्यारी ॥६०॥

साँवरे छैला रे नैन की ओट न जाओ।
तुम बिन देखे मोरे नैना अति व्याकुल इक छिन मुख न छिपाओ।
सदा रहो मोरे नयनन आगे बंसी मधुर बजाओ।
'हरीचन्द' पिय प्यासी अँखियन सुंदर रूप दिखाओ ॥६१॥

ना बोलौ मोसों मीत पियरवा जानि गए सब लोगवा।
तुमरी प्रीत छिपी न छिपाये, अब निबहैगी बहुत बचाये,
इन दइमारे नयनन पीछे यह भोगन पर्यो भोगवा।
'हरीचन्द' ब्रज बड़े चवाई, कहत एक की लाख लगाई,
कठिन भयो अब घाट-बाट में हमरो तुमरो सँजोगवा ॥६२॥

एरी सखी ऐसी मोहिं परी लचारी रे।
का करौं मीत मोहन सों बोलतहि बनि आयो,
पैयाँ परत बिनती करत हा हा खात बलि बलि जात गिरिधारी रे॥

'हरीचन्द' पियरवा निकट आय मेरे पग सों,
रहत मुकुट छुवाय ऐसे ढीठ लँगरवा सों हारी रे ॥६३॥

राग सिंदूरा

भौंरा रे रस के लोभी तेरो का परमान।
तू रस-मस्त फिरत फूलन पर करि अपने मुख गान।
इत सों उत डोलत बौरानो किए मधुर मधु-पान।
'हरीचन्द' तेरे फन्द न भूलूँ बात परी पहिचान ॥६४॥

खयाल

न जाय मोसों ऐसो झोंका सहीलो ना जाय।
झुलाओ धीरे डर लगै भारी बलिहारी हो बिहारी,
मोसों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ॥
देखो कर धर मेरी छाती धर धर करै पग दोऊ रहे थहराय हाय।
'हरीचन्द' निपट मैं तो डरि गई प्यारे मोहिं लेहु झट गरवाँ लगाय ॥
न जाय मोसों ऐसो झोंका सहीलो ना जाय ॥६५॥

सोरठ

नींदड़िया नहिं आवै, मैं कैसी करूँ एरी सखियाँ।
'हरीचन्द' पिय बिनु अति तड़पैं खुली रहें दुखियाँ अँखियाँ ॥६६॥

खयाल

सखियाँ री अपने सैयाँ के कारनवाँ हरवा गूथि गूथि लाई।
बाग गई कलियाँ चुनि लाई रचि रचि माल बनाई।
'हरीचन्द' पिय गल पहिराई हँसि हँसि कंठ लगाई ॥६७॥

बिहाग

जागत रहियो वे सोवनवालियो ऐहै कारो चोर।
आधी रात निखंड गए मैं सुन्दर नन्द-किशोर ॥

लूटन लगिहै जोवन जब तब चलिहै कछू न जोर।
'हरीचन्द' रीती करि जैहै तन-मन-धन सब छोर ॥६८॥

असावरी

एरी लाज निछावर करिहौं जौ पिय मिलिहैं आज।
गहि कर सो कर गर लपटैहौं करिहौं मन को काज।
लोक-संक एकौ नहिं मानौं सब बाधक पर डरिहौं गाज।
'हरीचन्द' फिर जान न दैहौं जो ऐहैं बृजराज ॥६९॥

इंमन कल्यान

चतुर केवटवा लाओ नैया।
साँझ भई घर दूर उतरनो नदिया गहिरी मेरो जिय डरपै
अब मैं तेरी लेहुँ बलैया।
दैहौं जोवन-धन्न उतराई 'हरीचन्द' रति करि मन भाई
पैयाँ लागूँ तोरी रे बलदाऊ के भैया।
गर लगो मेरे पीतम सुघर खिवैया ॥७०॥

पूरबी

प्रानेर बिना की करी रे आमी कोथाय जाई।
आमी की सहिते पारी बिरह-जंत्रना भारी
आहा मरी मरी विप खाई।
बिरहे ब्याकुल अति जल-हीन मीन गति
हरि बिना आमि ना बचाई ॥७१॥

बेदरदी वे लड़िवे लगी तैंड़े नाल।
बे-परवाही वारी जी तू मेरा साहबा असी डरयों बिरह-बिहाल।
चाहनेवाले दी फिकर न तुझ नूँ गलो दा ज्वाब ना ख्याल।
'हरीचन्द' ततबीर ना सुझदी आशक वैतुल-माल ॥७२॥

बिहाग वा कलिंगड़ा

मैं तो राह देखत ही खड़ी रह गई हाय बीत गई सब रतियाँ।
पिया साँझ के कह गए भयो भोर, नहिं आए मदन को बाढ्यो जोर,
'हरिचन्द' रही पछिताय सीस धुनि करिकै बजर सी छतियाँ ॥७३॥

पिया बिनु मोहिं जारत हाय सखी देखो कैसी खुली उजियारियाँ।
चन्दा तन लावत बिरह लाय, कर पाटी पटकत करत हाय,
दुख बाढ़्यो सखी नहिं पास कोऊ व्याकुल बिरहिन सुकुमारियाँ।
तलफत जल बिनु मछरी सी सेज, रहि जात पकरि कर सों करेज,
'हरिचन्द' पिया की याद परै जब बातैं प्यारी प्यारियाँ ॥७४॥

काफ़ी पीलू

क्यौं फकीर बनि आया वे, मेरे बारे जोगी।
नई बैस कोमल अंगन पर काहें भभूत रमाया वे, मेरे बारे जोगी।
को वे मात-पिता तेरे जोगी जिन तोहिं नाहिं मनाया वे।
काँचे जिय कहु काके कारन प्यारे जोग कमाया वे, मेरे बारे जोगी।
बड़े बड़े नैन छके मद-रँग सों मुख पर लट लटकाया वे।
'हरीचंद' बरसाने में चल घर घर अलख जगाया वे, मेरे बारे जोगी।७५॥

गौरी

मोहन मीत हो मधुबनियाँ।
मतवारो प्यारो रसबादी रसिया छैल छिकनियाँ॥
बटपारो लंगर लड़बारौ भरन देत नहिं पनियाँ।
घाट बाट रोकत 'हरिचन्दहिं' नयो बन्यो दधि-दनियाँ ॥७६॥

मोहन प्यारो हो नँद-गैयाँ।
नित नई अट-पट चाल चलावत देखी सुनी जो नैयाँ॥
लकुट लिए रोकत मग जुवतिन मानत परेहु न पैयाँ।
'हरीचन्द' छैला ब्रज-जीवन वाको कोउ न गोसैयाँ ॥७७॥

मोहन बाँको हो गोकुलिया ।
चलन न देत पंथ रोकत गहि चंचल अंचल चुलिया ।
नैन नचावत दधि मटुकिन की करिकै टाला-टुलिया ।
'हरीचन्द' टोना कछु जानत जासों सब ब्रज भुलिया ॥७८॥

लावनी

बिना उसके जल्वा के दिखाती कोई परी या हूर नहीं ।
सिवा यार के, दूसरे का इस दुनियाँ में नूर नहीं ॥
जहाँ में देखो जिसे खूबरू वहाँ हुस्न उसका समझो ।
झलक उसी की सभी माशूकों मे यारो मानो ॥
जहाँ कोई खुशगुलू मिले तुम वहाँ उसी का बोल सुनो ।
जुल्फों को भी उसी का पेंच समझ कर आके फँसो ॥
नशीली आँखें वहाँ नहीं हैं जहाँ मेरा मखमूर नहीं ।
सिवा यार के० ॥१॥

जहाँ पै देखो नाज गजब का उसके सब नखरे जानो ।
देख करिश्मा, उसी सीगे मे उसको गरदानो ॥
जहाँ हो भोलापन तुम उस भोले को वहाँ पै पहिचानो ।
जुल्म जो देखो, तो उस जालिम की बेरहमी मानो ॥
बिना उसके इस शीशए-दिल को करता कोई चूर नहीं ।
सिवा यार के० ॥२॥

बिना मिले उस मह के झलक माशूकपना आता ही नहीं ।
बगैर उसके, निशानी शह कोई पाता ही नहीं ॥
मजाल क्या है दिल छीनै उस बिना दिया जाता ही नहीं ।
उसको छोड़ कर, दूसरा आँखों को भाता ही नहीं ॥
जितने खूबरू जहाँ में हैं वो कोई उससे दूर नहीं ।
सिवा यार के० ॥३॥

वही मेरा माशूक झलक इन बुतों में भी दिखलाता है।
वही इश्क़ में, आशिकों को हर तरह फँसाता है॥
कहीं मेहरबाँ बनता है और कहीं जुल्म फैलाता है।
ग़रज कि हर जा, मुझे वो यार ही नजर आता है॥
'हरीचंद' जो और देखते वो आशक़ भरपूर नहीं।
सिवा यार के० ॥४॥७९॥

करि निठुर श्याम सों नेह सखी पछताई।
उस निरमोही की प्रीति काम नहिं आई॥
उन पहिले आकर हमसे आँख लगाई।
करि हाव-भाव बहु भाँति प्रीति दिखलाई॥
ले नाम हमारा बंसी मधुर बजाई।
अब हमें छोड़ के दूर बसे जदुराई॥
कुबरी ने मोहा रहे वहीं बिलमाई।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई॥१॥

हमने जिसके हित लोक-लाज सब छोड़ी।
सब छोड़ रहे एक प्रीत उसी से जोड़ी॥
रही लोक-बेद घर-बाहर से मुख मोड़ी।
पर उन नहिं मानी सो तिनका सी तोड़ी॥
इक हाथ लगी मेरे जग बीच हँसाई।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई॥२॥

हम उन बिन सखियाँ बन बन ढूँढ़त डोलैं।
पिय प्यारे प्यारे मुख से सब छिन बोलैं॥
जिन कुंजन में हरि हँसि हँसि करी कलोलैं।
वहाँ व्याकुल हो हम मूँद मूँद दृग खोलैं।

दै दगा जुदा भए मोहन विपति बढ़ाई।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई ॥३॥

क्या करूँ कोई तदबीर न और दिखाती।
दिन रोते कटता रात जागते जाती॥
बिरहा से सब छिन हाय दहकती छाती।
कोई उनसे जा यह मेरी बिथा सुनाती॥
'हरिचन्द' उपाय न चलै रही पछताई।
उस निरमोही की प्रीत काम नहिं आई॥४॥८०॥

तुम सुनो सहेली सँग की सखी सयानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥
एक दिन मैं अँधरी रात रही घर सोई।
पलँगो पै इकली और पास नहिं कोई॥
हरि आय अचानक सोए पास भय खोई।
मुख चूम कस्यो मेरे भुज सों भुज सोई॥
मैं चौंकि उठी लियो गल लगाय सुखदानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥१॥

एक साँझ अकेली मैं थी गलियों आती।
लिये अंचल नीचे घर-हित दीआ-बाती।
आए इतने में सखि मेरे बाल-सँघाती।
उन दीप बुझाय लगाय लई मोहि छाती॥।
मैं औचक रह गई कियो जोई मनमानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥२॥

एक दिन मेरे घर जोगी बन कर आये।
सिर जटा बढ़ाये अंग भभूत लगाये॥

चढ़ सिढ़ी नाम लै हर को अलख जगाए।
मैं भिच्छा ले गई तब मुख चूमि लुभाए॥
बोले भिच्छा थी मुझे यही मेरी रानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥३॥

जब मिले जहाँ हँसि लीनों चित्त चुराई।
मुख चूमि भए बलिहार कंठ रहे लाई॥
विनती कर बोले सदा प्रीति दिखलाई।
सपने में भी नहिं देखी कभी रुखाई।
रहे सदा हाथ पर लिये मुझे दिल-जानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥४॥

एक दिन कुंजों में साथ दूसरी नारी।
अपने सुख बैठे थे मिलकर गिरधारी॥
मैं गई तो सकुचे झट यह बुद्धि विचारी।
बोले यह आई तुमहिं मिलावन प्यारी॥
तुम घर भेजन को विनती करि यहि आनी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥५॥

मेरे सुख में पिय ने सब दिन सुख माना।
मुझे अपना जीवन प्रान सदा कर जाना॥
मेरे हित सब सखियों का सहते ताना।
मुरझाए जो मुख मेरा कुछ मुरझाना॥
गुन लाख एक मुख कैसे बोलौं बानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥६॥

वह वन वन विहरन कुंज-कुंजतरु पातैं।
वह गल भुज डालन प्रीत-रीत की घातैं॥

वह चन्द चाँदनी और निराली रातैं।
एक एक की सौ सौ जी में खटकती बातैं ॥
'हरिचन्द' बिना भई रो रो हाय दिवानी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी ॥७॥८१॥

दुख किस्से कहूँ कोई साथ न सखी सहेली।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ॥
मैं पिय बिनु तड़पूँ हाय पास नहिं कोई।
रही सपने की संपत सी सब सुख खोई ॥
जो मैं पिय बिनु नहिं कभी पलँग पर सोई।
सोइ आज सेज सूनी लखि दुख सो रोई ॥
जंगल सी मुझको लगती हाय हवेली।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ॥१॥

मेरे बाल-सनेही मुझको छोड़ सिधारे।
तड़पूँ व्याकुल मैं बिन बृज के रखवारे।
कहाँ बिलमि रहे किन मोहे पीय हमारे।
नहिं खबर मिली भये निपट निठुर पिय प्यारे।
यह बिरह-बिथा नहिं जाती है अब झेली ॥
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ॥२॥

मेरा बाला जोबन पड़ी बिपति सिर भारी।
दिन कैसे काटूँ भई उमर की ख्वारी ॥
यह नई आपदा सिर से जात न टारी।
कहाँ गए हाय मुझे छोड़ पिया गिरधारी ॥
भई उन बिन मैं मुरझाय जली ज्यों बेली।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ॥३॥

गए सुरत भूल नहिं पाती भी भिजवाई ।
करि याद पिया की हाय आँख भरि आई ॥
साँपिन सि सेज घर वन सों परत दिखाई ।
जीना भया भारी दामोदर दुखदाई ॥
'हरिचन्द' विना भई जोगिन दे गलसेली ।
मुझे छोड़ गये मनमोहन हाय अकेली ॥४॥८२॥

वही तुम्हें जाने प्यारे जिसको तुम आप ही बतलाओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ॥
क्या मजाल है तेरे नूर की तरफ आँख कोई खोले ।
क्या समझे कोई, जो इस झगड़े के बीच आकर बोले ॥
खयाल के बाहर की बातें भला कोई क्योंकर तोले ।
ताकत क्या है, मुअम्मा तेरा कोई हल कर जो ले ॥
कहाँ खाक यह कहाँ पाक तुम भला ध्यान में क्यों आओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ॥१॥

गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किये ।
लिखीं किताबें, हजारों लोगों ने तेरे ही लिये ॥
बड़े बड़े झगड़े में पड़े हर शख्स जान रहते थे दिये ।
उम्र गुजारी, रहे गल्ताँ पेचाँ जब तक कि जिये ॥
पर तुम हो वह शै कि किसीके हाथ कभी क्योंकर आओ ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ॥२॥

पहिले तो लाखों में कोई विरला ही झुकता है इधर ।
अपने ध्यान में, रहा वह चूर झुका भी कोई अगर ॥
पास छोड़कर मजहब का खोजा न किसीने तुम्हें मगर ।
तुमको हाजिर, न पाया कभी किसी ने हर जा पर ॥

दूर भागते फिरो तो कोई कहाँ से पाए बतलाओ।
देखे वही बस जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ॥३॥

कोई छाँट कर ज्ञान फूल के ज्ञानी जी कहलाते हैं।
कोई आप ही, ब्रह्म बन करके भूले जाते हैं॥
मिला अलग निरगुन व सगुन कोइ तेरा भेद बताते हैं।
गरज कि तुझको, ढूँढ़ते हैं सब पर नहिं पाते हैं॥
'हरीचंद' अपनों के सिवा तुम नजर किसी के क्यों आओ।
देखे वही बस, जिसे तुम खुद अपने को दिखलाओ ॥४॥८२॥

चाहे कुछ हो जाय उम्र भर तुझीको प्यारे चाहेंगे।
सहेंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहेंगे॥
तेरी नजर की तरह फिरैगी कभी न मेरी यार नजर।
अब तो यों ही, निभैगी यों हो जिन्दगी होगी बसर॥
लाख उठाओ कौन उठे है अब न छुटैगा तेरा दर।
जो गुजरैगी, सहैंगे करैंगे यों ही यार गुजर॥
करोगे जो जो जुलम न उनको दिलबर कभी उलाहैंगे।
सहैंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ॥१॥

आह करैंगे तरसैंगे गम खायेंगे चिल्लायेंगे।
दीन व ईमाँ बिगाड़ेंगे घर-बार डुबायेंगे॥
फिरैंगे दर दर बे-इज्जत हो आवारे कहलायेंगे।
रोएँगे हम हाल कह औरों को भी रुलायेंगे॥
हाय हाय कर सिर पीटैंगे तड़पैंगे कि कराहैंगे।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ॥२॥

रुख फेरो मत मिलो देखने को भी दूर से तरसाओ।
इधर न देखो, रकीबों के घर मे प्यारे जाओ॥

गाली दो कोसो झिड़की दो खफा हो घर से निकलवाओ ।
कत्ल करो या, नीम-बिस्मिल कर प्यारे तड़पाओ ॥
जितना करोगे जुल्म हम उतना उलटा तुम्हें सराहेंगे ।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ॥३॥

होके तुम्हारे कहाँ जाँय अब इसी शर्म से मरते हैं ।
अब तो यों ही, जिन्दगी के बाकी दिन भरते हैं ॥
मिलो न तुम या कत्ल करो मरने से नहीं हम डरते हैं ।
मिलेंगे तुमको, बाद मरने के कौल यह करते हैं ॥
'हरीचन्द' दो दिन के लिये घबरा के न दिल को डाहैंगे ।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे ॥४॥८४॥

बाल य दिल के बवाल दिलवर ने मुखड़े पर डाले हैं ।
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ॥
छल्लेदार छबीले लम्बे लम्बे यह छहराते हैं ।
बल खा खा कर, फन्द में अपने दिल को फँसाते हैं ॥
चिलकदार चुनवारे गिडुरी से होकर रह जाते हैं ।
हिल हिल करके कभी यह अपनी तरफ बुलाते हैं ॥
पेचदार खम खाये उलझे सुलझे घूँघरवाले हैं ॥
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ॥१॥

कहूँ इश्क-पेचाँ आशिक को पेच में भी यह लाते हैं ।
फाँसी भी हैं, मुसाफिर को बेतरह फँसाते हैं ॥
जाल हैं यह जंजाल से सबको जाल में करके जाते हैं ।
जादू की यह, गिरह हैं दिलको अजब भुलाते हैं ॥
काले काले गजब निकाले पाले क्या यह काले हैं ॥
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं ॥२॥

देख इनका तलवार ने खम दम म्यान में मुँह को छिपा दिया।
भौरों ने भी, न इन सा हो के गूँजना शुरू किया॥
हजार सिर बुलबुल ने पटका हुई न ऐसी साँवलिया।
सिवार ने भी शर्म से पानी में मुँह डुबा लिया॥
मुश्क से खुशबू मे रेशम से चमक मे ये चौकाले हैं॥
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं॥३॥

बंसी हैं दिल के शिकार को लालच देके फँसाने के।
छींके हैं यह, लटकते दोनों दिल लटकाने के॥
आँकुस को हैं नोक जिगर से खींच के दिल को लाने के।
जंजीरों से यह बढ़ कर दिल को कैद कर जाने के॥
दिल के दुखाने को बीछू के डंक से भी जहरीले हैं॥
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं॥४॥

तुम्हें नूर की शमा कहूँ तो धुँआ इन्हें कहना है बजा।
रुखसारों पर थः दोनो चँवर ढला करते हैं सदा॥
यह वह उक्दा है जो किसी से अब तक प्यारे नहीं खुला।
कहूँ मुअम्मा, तो इसमें नहीं बाल भर फर्क जरा॥
दिल के पहुँचने को गालों तक कमन्द दोनों डाले हैं॥
जुल्फ के फन्दे तुम्हारे सबसे यार निराले हैं॥५॥

इनमें जो आकर फँसा वह फिर न उम्र भर कभी छुटा।
बला हैं बस ये, हमेशः इनसे बचाये दिलको खुदा॥
जंत्र मंत्र कुछ लगा न उसको जिसको इन साँपों ने डसा।
'हरीचन्द'के, जुल्फ में दिल अब तो बेतरह फँसा॥
भूल-भुलैयों से उलझे चिकने महीन चमकीले हैं।
जुल्फ के फन्दे, तुम्हारे सबसे यार निराले हैं॥६॥८५॥

आँखों में लाल डोरे शराव के वदले।
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाव के वदले॥
नित नया जुल्म करना सवाव के वदले।
झिड़की देना हर दम जवाव के वदले॥
त्योरी में वल वालों के ताव के वदले।
खून में रँगना कपड़ा शहाव के वदले॥
सव ढंग आज-कल हैं जनाव के वदले॥
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाव के वदले॥१॥

पीते हैं जिगर का खून आव के वदले।
खाते हैं सदा हम ग़म कवाव के वदले॥
खुशवू तेरी सूँघी गुलाव के वदले।
लेते हैं नाम तेरा किताव के वदले॥
तव रूपोशी यह किस हिसाव के वदले॥
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाव के वदले॥२॥

ह्याँ सदा जईफी है शवाव के वदले।
मस्तों से मिले वस शेखो शाव के वदले॥
रातों जो जागते रहे ख्वाव के वदले।
नागिन जिस पर अव है सहाव के वदले॥
मुँह तेरा देखा माहताव के वदले॥
हैं जुल्फ छुटीं रुख पर निकाव के वदले॥३॥

दिन कभी न इस खानःखराव के वदले।
मरना वेहतर इस इजतिराव के वदले॥
हो 'हरीचन्द' पर खुश अताव के वदले।
कर अव तो रहम ज़ालिम अज़ाव के वदले॥

क्यों नए चोचले हैं हिजाब के बदले।
हैं ज़ुल्फ़ छुटी रुख़ पर निक़ाब के बदले ॥४॥८६॥

(सपने में बनाई हुई)

मोहिं छोड़ि प्रान-पिय कहूँ अनत अनुरागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ॥
रहे एक दिन वे जो हरि ही के सँग जाते।
वृन्दावन कुंजन रमत फिरत मदमाते ॥
दिन रैन स्याम सुख मेरे ही सँग पाते।
मुझे देखे बिन इक छन प्यारे अकुलाते ॥
सोइ गोपीपति कुबरी के रस पागे ॥
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ॥१॥

कहाँ गईं स्याम की वे मनहरनी बातें।
वह हँसि हँसि कण्ठ-लगावनि करि रस-घातें ॥
वह जमुना-तट नव कुज कुंज द्रुम पातें।
सपने सी भईं अब वे बिहरन की रातें ॥
सहि सकत न कठिन बियोग-अगिन तन दागे ॥
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ॥२॥

पहिले तो सुन्दर मोहन प्रीति बढ़ाई।
सब ही बिधि प्यारे अपनी करि अपनाई ॥
सुख दै बहु भाँतिन नित नव लाड़ लड़ाई।
अब तोड़ि प्रीति मोहिं छोड़ि गए ब्रजराई ॥
संजोग-रैन बीतत बियोग-दुख जागे ॥
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे ॥३॥

क्या करूँ सखी कुछ और उपाय बताओ।
मेरे पीतम प्यारे मुझसे आन मिलाओ ॥

जिय लगी विरह की भारी अगिन बुझाओ।
मैं बुरी मौत मर रही मिलाइ जिलाओ।
'हरिचन्द' श्याम-सँग जीवन-सुख सब भागे।
अब उन बिनु छिन छिन प्रान दहन दुख लागे॥ ४ ॥८७॥

जबतक फँसे थे इसमें तबतक दुख पाया औ बहुत रोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए॥
बिना बात इसमें फँस कर रंज सहा हैरान रहे।
मजा बिगाड़ा, अपना नाहक ही को परेशान रहे॥
इधर उधर झगड़े में पड़े फिरते बस सर-गरदान रहे।
अपना खोकर, कहाते बेवकूफो नादान रहे॥
बोझ फिक्र का नाहक को फिरते थे गरदन पर ढोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए॥१॥

मतलब की दुनिया है कोई काम नहीं कुछ आता है।
अपने हित को, मुहब्बत सब से सभी बढ़ाता है॥
कोई आज औ कल कोई सब छोड़ के आखिर जाता है।
गरज कि अपनी गरज को सभी मोह फैलाता है॥
जब तक इसे जमा समझे थे तब तक थे सब कुछ खोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए॥२॥

जिसको अमृत समझे थे हम वह तो जहर हलाहल था।
मीठा जिसको जानते थे वह इनारू का फल था॥
जिसको सुख का घर समझे थे वह तो दुख का जंगल था।
जिनको सच्चा समझते थे वह झूठों का दल था॥
जीवन फल की आसा में उलटे हमने थे विष बोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए॥३॥

जहाँ देखो वहीं दगा और फरेब औ मक्कारी है।
दुख ही दुख से, बनाई यह सब दुनिया सारी है॥
आदि मध्य औ अंत एक रस दुख ही इसमें जारी है।
कृष्ण-भजन बिनु, और जो कुछ है वह ख्वारी है॥
'हरीचन्द' भव पंक छुटै नहिं बिना भजन-रस के धोए।
मुँह काला कर, बखेड़े का हम भी सुख से सोए॥४॥८८॥

पिय प्राननाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥
घनस्याम गोप-गोपी-पति गोकुल-राई।
निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई॥
वृन्दावन-रच्छक ब्रज-सरबस बल-भाई।
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई॥
श्री राधानायक जसुदानन्द दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥

तुव दरसन बिन तन रोम रोम दुख पागे॥
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन विष सम लागे॥
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे।
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे॥
मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥

तुमहीं मम जीवन के अवलम्ब कन्हाई।
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई॥
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुमरे बिनु भव जग सूनो परत लखाई॥

हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे॥

तुमरे-विनु इक छन कोटि कलप सम भारी।
तुमरे-विनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी॥
तुमरे सँग बनहू घर सों बढ़ि बनवारी।
हमरे तौ सब कुछ तुमही हौ गिरधारी॥
'हरिचन्द' हमारे राखौ मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे॥८९॥

बरवा

(धुन—'मोरि तो जीवन राधे' इस चाल पर)

मोहन दरस दिखा जा।
व्याकुल अति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा॥
बिछुरी मैं जनम जनम की फिरी सब जग छान।
अबकी न छोड़ों प्यारे यही राखो है ठान॥
'हरीचन्द' बिलम न कीजै दीजै दरसन दान॥९०॥

दरस मोहिं दीजै हो पिय प्रान।
दरस दीजै अधर पीजै कीजै परस सुजान॥
तुम बिनु व्याकुल धीर न आवत लीजै अरज यह मान।
'हरीचन्द' मोहिं जानि आपनी करिये जीवन-दान॥९१॥

पूरबी रेखता

हमैं दरसन दिखा जाओ हमारे प्रान के प्यारे।
तेरे दरसन को ऐ प्यारे तरस रहीं आँख बरसों से॥
इन्हैं आकर के समझाओ हमारे आँखों के तारे॥
सिथिल भई हाय यह काया है जीवन ओठ पर आया।
भला अब तो करो माया मेरे प्रानों के रखवारे॥

अरज 'हरिचन्द' की मानो लड़कपन अब भी मत ठानों।
बचा लो प्रान दरसन दो अजी ब्रजराज के बारे ॥९२॥

ठुमरी

पियारे सैयाँ कौन देस रहे रूसि जोबना को सब रँग चूसि।
'हरीचन्द' भये निठुर श्याम अब पहिले तो मन मूसि ॥९३॥

पियारे पिया कौन देश रहे छाय।
का पर रहे बिलमाय।
मेरी सुध बिसराय प्रेम सब जिय सो दूर भुलाय।
'हरीचन्द' पिय निठुर बसे कित जोगिन हमहिं बनाय ॥९४॥

पिया प्यारे तोहि बिनु रह्यो नहिं जाय।
कौन सो करौं मैं उपाय।
कहत 'चन्द्रिका' धाइ मिलो अब लेहु गरे लपटाय ॥९५॥

आओ पिआ प्यारे गरे लगि जाओ।
काहें जिअ तरसाओ, कहत 'चन्द्रिका' धाइ मिलो
अब जिय की जरनि जुड़ाओ ॥९६॥

खेमटा

अब ना आओ पिया मोरि सेजरिया।
जात बिदेस छोड़ि तुम हमको हनि हनि हिय में बिरह कटरिया।
कहत 'चन्द्रिका' हरीचन्द पिय जाओ वहीं जहाँ लाए नजरिया ॥९७॥

रेखता

मोहन पिय प्यारे टुक मेरे टिग आव।
वारी गई सूरत के बदन सो दिखाव।
तरस गए अँग अँग गर मैं लपटाव।
तेरी मैं चेरी मुझे मरत सों जिलाव।
वही रूप वही अदा दीने निज भाव।
प्यारे! 'हरिचन्दहिं' फिर आज भी दरसाव ॥९८॥

दिलदार यार प्यारे गलियों में मेरे आ जा।
आँखें तरस रही हैं सूरत इन्हें दिखा जा॥
चेरी हूँ तेरी प्यारे इतना तो मत सता रे।
लाखों ही दुख सहा रे टुक अब तो रहम खा जा॥
तेरे ही हेत मोहन छानी है खाक बन बन।
दुख झेले सर पः अनगन अब तो गले लगा जा॥
मन को रहूँ मैं मारे कब तक बता दे प्यारे।
सूखे विरह में तारे पानी इन्हें पिला जा॥
सब लोक-लाज खोई दिन-रैन बैठ रोई।
जिसका कहीं न कोई उसका तो जी बचा जा॥
मुझको न यों भुलाओ कुछ शर्म जी में लाओ।
अपनों को मत सताओ ए प्रान-प्यारे राजा॥
'हरिचन्द' नाम प्यारी दासी है जो तुम्हारी।
मरती है वह विचारी आकर उसे जिला जा॥९९॥

बंसी बजा के हम को बुलाना नहीं अच्छा।
घर-बार को यों हमसे छुड़ाना नहीं अच्छा॥
घर-बार छुड़ाते हो तो फिर हमको न छोड़ो।
अपनों को यों दामन से छुड़ाना नहीं अच्छा॥
करना किसी पै रहम इक अदना सी बात पर।
मुतलक किसी प ध्यान न लाना नहीं अच्छा॥
हम तो उसी में खुश हैं खुशी हो जो तुम्हारी।
फिर हम से छिपा कर कहीं जाना नहीं अच्छा॥
गाओ जो चाहो बंसी में हैं राग हज़ारों।
रट नाम की मेरे ही लगाना नहीं अच्छा॥

मिल जायँगे हम कुंज में मौका जो मिलेगा।
गलियों में हमारे सदा आना नहीं अच्छा ॥
'हरिचन्द' तुम्हारे ही हैं हम तो सभी तरह।
यों अपने गुलामों को सताना नहीं अच्छा ॥१००॥

अथ बँगला गान

प्रानप्रिय शशि-मुखि विदाय दाओ आमारे।
शून्य देह लोए जात्रो प्रान दिये तोमारे॥
करि हे विनय हइया सदय आमारे विदाय दाओ जाई देशांतरे॥१॥

प्राननाथ निदय हय विदाय चेओ ना।
तोमा बिन प्रान, नाहि रवे प्रान॥
किसे पाय प्रान आमाय बलो ना।
आमि हे अबला, ताहा ते सरला, विरह-ज्वाला, प्राने सवे ना॥२॥

जाई जाई करे नाथ दिओ नाहे जातना।
तोमार विच्छेदे ए जीवन रवे ना॥
पुनः ए नयन शशांक-वदन करिबे दर्शन कवे ओहे बलो ना।
तोमारे ना हेरे प्रान जेकी करे कि कव तोमारे, तुमि किये भावना॥३॥

प्राननाथ विदेशे त जेते दिबना।
जावे जाओ कांत किंतु हे नितांत, आमारे एकांत, आर कांत पाबे ना।
तोमार विहन, ए छार जीवन, ओ प्रानधन आर रवे ना॥४॥

आर जातना प्रान सहे ना।
सदा मन उचाटन, झरिछे दु नयन,
कांत बुझि ए जीवन, आमार आर रवे ना॥
हाए एमन समय, कोथा ओहे रसमय,
हइया अति सदय, आज्ञ प्रान बलो ना॥५॥

प्राननाथ देखा दाओ आसि अबलाय ।
जे दुःख पेतेछि आमि, मन जाने आर,
आमि जानि आरि जानेन ईश ।
जिनि के मने आमि जानाब तोमाय ॥६॥

आमार जे दशा नाथ आसिया हे देख ना ।
हरिश्चन्द्र नाथ जार, केन हेन दशा तार ,
बल ओहे गुन-मनि, आमार हे बलो ना ॥
सदा मन उचाटन, दहिते छे जीवन मन ,
असह्य 'चन्द्रिका' जीवने सहेना यातना ॥७॥

कोथाय रहिल सखि से गुन-मान ।
विच्छेद यातना, आर जे सहेना । कि करि बल न ओ प्रान सजनी ।
केमने एखन, धरिब जीवन । से कांत विहन बल ओ धनी ॥८॥

हाय विधि एत मोरे केन निर्दय ।
अमूल्य रतन करिया अर्पन, केन गो हरन ताहारे कराय ।
मम प्रान-धन, हृदय-रतन रमनी-मोहन कोथाय गो जाय ॥९॥

तुमि कर के तोमार कारे बल रे मन आपन ।
मिछा ए संसार माया जुड़े आछे त्रिभुवन ॥
दारा सुत परिवार संगे कि जाबे तोमार ।
जखन तुमि मुँदिबे दु नयन ॥१०॥

ओहे हरि दयामय !
ए भव-जंत्रना, आर जे सहे ना ।
करिया करुना, उधारो आमाय ॥११॥

ओहे नाथ करुनामय !
प्रभु हरि दयामय, दया करो ए जनाय ,
नामे ना कलंक रय उद्धारो तराय ॥
आमि अति मूढ़ मति, ना जानी भक्ति स्तुति ,
कि हवे आमार गति, बल गो आमाय ॥१२॥

मन केन रे भाव एत ।
ओई जे दिवा-निशि भावछ वसी, जेन बुधि हए छे हत ॥
एतेक भावना, किसेर कारन, हवे बूझि पागलेर मत ॥१३॥

आमार नाथ बड़ दयामय ।
करुना-आकर दयार सागर दयामय नाम जगत भीतर ।
एक मुखे गुन वर्णना जे भार, कहि छे 'चन्द्रिका' भाविया हृदये ॥१४॥

कलिगड़ा एक ताला
ओ प्रान नयन-कोने चाईले परे क्षति कि आछे ।
आमार केंदे सोहाग जेचे मान तोमार काछे ॥
जथा इच्छा तथा जावो, सदत हृदय रओ ।
तोमार विहन कओ, आमार के आछे ॥१५॥

सिन्धु धीमा तिताला
ए सोहाग आर आमार काज नाई ।
सदत हृदय जे ज्वाला पाई ॥
हृदय दहन जायगो जीवन ।
कि करि एखन बल गोसाईं ॥१६॥

प्राननाथ कि बले छिले ।
ए दारुण ज्वाला हृदये केन गो दिले ॥

हृदय माझे त राखिव तोमाय ।
सतत बलिते नाथ हे आमाय ॥
से सब कथन रहिल कोथाय ।
भेवे देख प्रान कि करिले ॥१७॥

कोथाय रहिले प्रान एमन बरखा ते ।
देख घन घन, वरिषे नयन, अवलारे भिजाते ।
वल ओरे प्रान, तोमाय कोन जन, शिखाले एमन आमारे काँदते ।
'चन्द्रिका' जे वले नाथ कि करिले अवला वधिले बुझि हे प्रानेते ॥१८॥

आदरे आदरे भालो तो छिले ।
जे तोमार अनुगत तार कि करिले ॥
नव जलधर तुमि तृषित चातकि आमी ,
ओहे प्राननाथ कोथा वारि विन्दू वरषिले ।
प्रानप्रिय प्रान-धन, वल जातना एमन ,
'चन्द्रिका' हृदये केन गो दिले ॥१९॥

ओहे हरि जगतेर पति ।
दया कर दयामय आमि दीन हीन अति ॥
लाए छे शरण चरणे जे जन, रुष्ट कि कारण ताहार प्रति ।
नाम दयाकर जगत भीतर कि हवे आमार वल गो गति ॥२०॥

आशाय आशाय भालो जातना दिले ।
जाओ तथा गुन-मनि जथा निशि पोहाइले ॥
से धनि तोमार धनि तुमि तार प्रेमे रिणि,
बाँधा आछ गुनमनी तवे हेथा केन आसिले ॥२१॥

तोमाय भुलिब केमने ।
हृदय अंकित छवि अति यतने ॥

दिवा निशि मुख देखि हृदय आदरे राखि,
प्रान सदा एई वासना मने ॥२२॥

एक वार भाव ओरे मन ।
शेषेर से दिन तव निकट एखन ॥
दिन दिन हीन वल मन हएछे दुर्वल,
रोगेर अति प्रवल भये भीत हएछे जीवन ॥२३॥

एतेक जीवने केन मरन वासना ।
बुझि कपालेर दोषे विधिर विड़म्वना ॥
केन रे अवोध मन कर कामना एमन,
से दुःख तव कारन बुझि ताहा जान न ॥२४॥

एखनि एमन हवे स्वपने छिल ना ज्ञान ।
ना होते मिलने सुखि आगे ते जाइवे प्रान ॥
जन्म जन्मान्तरे जेन पाई प्राननाथ हेन ।
विधिर काछे एई मोर शेष अकिंचन ॥२५॥

किछु सुख होलो जीवने ।
प्राननाथ भुलाएछे सेई नवीने ॥
आमार अभाव काले विरह वेदना ज्वाले,
आघात हवे ना तार कोमल हृदय-
स्थाने एई भेवे सुखमने ॥२६॥

नव प्रेमे प्रेमी होते कर वासना ।
वल वल ओरे प्रान मोरे वल ना ॥
एई प्रेमे प्रेमी होले मम चिन्ता जावे चले,
ईहा सेई जावे मोर हृदि-वेदना ॥

तोमाय पाव जन्मान्तरे एई आशा हृदे कोरे।
प्रान जावे आर जावे हृदि जातना ॥२७॥

सेई जे आमाय तोमाय छिल कथा मने आछे कि ना आछे वल ।
सेई जे छिल जत भाल वासा मने आछे कि ना आछे वल ॥
कत कत छिल मने आशा कत छिल हृदे भालो वासा ।
शेषे होलो आशाय नैराशा मने आछे कि ना आछे वल ॥
सेई जे प्रेम प्रेम करि कइते कथा से प्रेम रईल एखन कोथा ।
हृदये दिए छ कतेक व्यथा मने आछे कि ना आछे वल ॥
तुमि हे कि कछु किछुई जान ना मम मने आछे सव वेदना ।
आमि हृदये पेयेछि व्यथा नाना मने आछे कि ना आछे वल ॥
दिए छिल-त्तक 'चन्द्रिका' वाधा ओहे चन्द्र तव प्रेमे वाधा ।
आछे मन प्रान सव साधा मने आछे कि ना आछे वल ॥२८॥

हेरिव सतत सखी कालई वरन ।
मने पड़े जेन सदा से नील रतन ॥
मृगमद दिन सिरे कज्जल नयन तीरे,
नित्य नील वर्ण चीरे आच्छादित तन ।
'हरिश्चन्द्र' मुख सदा कृष्ण नामे आछे साधा,
से पेमे अंतर वाधा कृष्ण पदे आछे मन ॥२९॥

जाओ ओहे गुनमनि ए कि काज करिले ।
आमार प्रानेर छवि काड़िते वसिले ॥
ममाधिक प्रान-प्रिय के आछे तोमार प्रिय ।
आमार भाल वासा छवि कारे दिते निए छिले ॥
'चन्द्रिका' वले वल ना केन करहे छलना ।
रक्षित छवि ते मम तुमि केन हाथ दिले ॥३०॥

राखो हे प्रानेश ए प्रेम करिया जतन ।
तोमाय करेछि समर्पन ।।
जत दिन रबे प्रान श्रीचरने दिओ स्थान,
हरिश्चन्द्र प्रान-धन एई अकिंचन ।
'चन्द्रिका'-हृदय-धन नाहिक तोमा बिहन,
तब करे ते आपने करेछि जीवन मन ।।३१।।

थाकिते जीवन मन नाथ ए कि करिले ।
आमार आशार प्रेम कारे तुमि दान दिले ।।
'चन्द्रिका' हृदय-मन तब करे समर्पन ।
तार हृदि हरिधन कारे प्राण दिते निले ।।३२।।

आमाय भालो बेशे आर तोमार काज नाई ।
तुमि अन्य प्रान ज्वले आमाय भालो बास बोले ।।
सदा भासि आँखि जले हृदे नाना दुःख पाई ।
बिदाय दाओ गुनमनी सजब एबे सन्यासिनी ।।
हब नाथ विदेशिनी सुख पथे दिया छाई ।
हरिश्चन्द्र प्रान-धन 'चन्द्रिकार' निवेदन,
बासना एमन मन विदेशे ते प्रान जाई ।।३३।।

ए प्रेम राखिते केन करिछ जतनो रे ।
सेई प्रेम राखा गिया जथा बाँधा मनो रे ।।
सेई विनोदिनी धनि तुमि तार प्रेमे रिणी,
बाँधा आछो गुनमनि ताहारई प्रेम-डोरे ।
छाड़ो एई प्रेम आशा जाना गेल भालो बासा,
हृदय सब नैराशा 'चन्द्रिकार' एखनो रे ।।३४।।

मिछा केन दिते आश प्रेमेर परिचय ।
सतिनेर छबि आँकि आपन हृदये ॥
प्रेम कथा बलि प्रान कोरो ना आर जालातन,
राख गिया प्रानधन ताहार जा आज्ञा हय ।
हरिश्चन्द्र प्रान-पति तुमिरे निर्दय अति,
'चन्द्रिकार' नाहे गति जानिनु निश्चय ॥३५॥

आज आमार होलो सुप्रभात ।
नवीन वत्सरे पद दिल प्राननाथ ॥
ओ वत्सरे दिन हेन विधि पुनः देन जेन ।
धरे ए वासना मन पूर्ण करे जगन्नाथ ॥३५॥

आज किवा सुखि होलो जीवन ।
वेंचे छिले ताई जीवन पाईले दिन एमन ॥
प्राननाथेर जन्म दिन दिल दरसन ।
देख 'चन्द्रिकार' आज किवा सुख हृदि माझे,
आनन्देर आज साज सेजे छे मन ॥३७॥

कि आनन्देर दिन आज हेरिनु नयने ।
इहार समान दिन नहिक ए भुवने ॥
हरिश्चन्द्र प्रानपति आज तारे जन्म-तिथि,
विधि सुख दिल अति आजि 'चन्द्रिका' मने ॥३८॥

एई दिन पुनः हेरि मने वासना ।
नवीन वत्सरे आइ पद दिले हृदिराज,
तारे सुखे राखुन प्रभु एई कामना ॥
पुनः एई दिन हेरी एकान्त वासना करी,
'चन्द्रिका' हृदय आज सुख उपजिल नाना ॥३९॥

शुनियाछि तव कृपा पतित-गामिनी ।
पाइबे कोथाये तवे पतित आमार तुल्य,
पाप मात्र कर्म जार दिवस-यामिनी ॥
सर्वस्व स्वरूप जार मिथ्याचार व्यवहार,
हिंसा छल द्यूत मद्य मांस ओ कामिनी ॥४०॥

निभृत निशीथे सई ओ बाँशी बाजिल ।
पूरित करिया वन भेदिया गगन घन,
जे काँपाइया समीरन मधुर रवे गाजिल ॥
स्तम्भित प्रवाह नीर ताड़ित मयूर कीर,
झँकारिया तरुगन एक तान साजिल ।
'हरिश्चन्द्र' श्याम-बाँशी-स्वर कामदेव फाँसी,
कुलवधु सुनियाई आर्यपथ त्याजिल ॥४१॥

कोथाय आछ ओहे प्रिय अबला-जीवन ।
प्रानधन श्याम-घन ॥
नव-नील-वर्ण-तन पूर्ण-चन्द्र-निभानन ।
कूजित वंशिकास्वन प्रसन्न - वदन ॥
कर दु ख विनाशन ओहे गोपिका-रमन ।
आसिया श्रीवृन्दावन दाओ दर्शन ॥
'हरिश्चन्द्र' निवेदन सुन दिया किछु मन ।
ओई पदे समर्पण आछे गो जीवन ॥४२॥

सई मजाले मजाले श्याम मजाले आमाय ।
सतत बाँशीर ध्वनि करे मोरे पागलिनी,
सई काँदाले काँदाले श्याम काँदाले आमाय ॥
बाँशी ते मदन बने डाके काहा घने घने,
सई मताले मताले श्याम मताले आमाय ॥४३॥

केह जाओ गो जाओ मधुपुरिते ।
बुझाइए सेई प्रानेर श्यामे आनिते ॥
चल गिया प्रानधने राधा जे बाँचे ना प्राने ।
तोमार विच्छेद-बान नाहिं पारे सहिते ॥४४॥

मदन-मोहन मधु-सूदन दयामय ।
वलि शुन गुनमनि सेथा राधा विनोदिनी ।
विरहे व्याकुल धनि चल गो तराय ॥४५॥

ओहे श्याम आछे कि आर आमाय मने ।
सुन हे श्याम त्रिभंग दिया ए प्रनय भंग ।
सेथाय कुवजा संग भूले ए दु:खिनी जने ॥
सुन हरि प्रानधन आमार ए निवेदन ।
आर कि ओहे दर्शन दिवे नाए बृन्दावने ॥४६॥

गज़ल

तेरी सूरत मुझे भाई मेरा जी जानता है ।
जो झलक तूने दिखाई मेरा जी जानता है ॥
अरे जालिम तेरे इस तीरे निगह से हमने ।
चोट जैसी कि है खाई मेरा जी जानता है ॥
खायँगे जहर नहीं डूब मरेंगे जाकर ।
जो है कुछ जी में समाई मेरा जी जानता है ॥
कत्ल करके न खबर ली मेरे कातिल अफ़सोस ।
जाँ इसी दुख में गँवाई मेरा जी जानता है ॥
प्यार की वह तेरी चितवन व नशीली आँखें ।
दिल को किस तरह हैं भाई मेरा जी जानता है ॥
दे के जी और पै जीने का मजा खो बैठे ।
जीते जी जी पै बन आई मेरा जी जानता है ॥

सब्र की फौज के पा उठ गए दिल हार गया।
आँख तूने जो लड़ाई मेरा जी जानता है॥
ख्वाब सा हो गया शब को तेरी सुहबत का खयाल।
रात वह फेर न आई मेरा जी जानता है॥
दाग दिल पर य रहेगा कि तेरे कूचे तक।
थी 'रसा' की न रसाई मेरा जी जानता है॥१॥

दिल मेरा ले गया दगा करके।
बेवफा हो गया वफा करके॥
हिज्र की शब घटा ही दी हमने।
दास्ताँ जुल्फ की बढ़ा करके॥
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझको।
दिलजलों को जला जला करके॥
वक्ते रेहलत जो आए बालीं पर।
खूब रोए गले लगा करके॥
सर्व कामत गजब की चाल से तुम।
क्यों कयामत चले बपा करके॥
खुद बखुद आज जो वो बुत आया।
मैं भी दौड़ा खुदा खुदा करके॥
क्यो न दावा करे मसीहा का।
मुर्दे ठोकर से वह जिला करके॥
क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ।
इक झलक सी मुझे दिखा करके॥
दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर।
रो रहा है 'रसा रसा' कर के॥ २॥

——※——

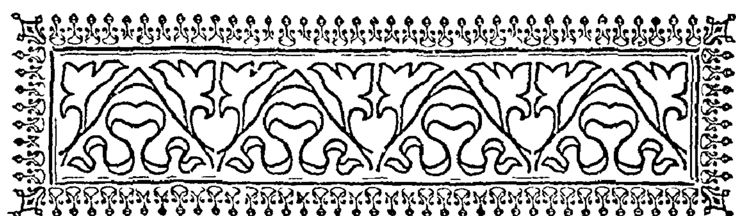
उत्तरार्द्ध भक्तमाल

सं० १९३४

हरिश्चंद्रचंद्रिका सन् १८७६–१८७७ ई० में

प्रकाशित

कवि वचनसुधा २७-३-१८७६ मे सूचना



उत्तरार्द्ध भक्तमाल

दोहा

राधावल्लभ वल्लभी वल्लभ वल्लभताइ ।
चार नाम वपु एक पद वंदत सीस नवाइ ॥ १ ॥
ह्वै प्रतच्छ वसि गृह निकट दियो प्रेम को दान ।
जय जय जय हरि मधुर वपु गुरु रस-रीति-निधान ॥ २ ॥
जग के विपय छुड़ाइ सव सुद्ध प्रेम दिखराइ ।
वसे दूर ह्वै सहज पुनि, जै जै जादवराइ ॥ ३ ॥
धन जन हरि निहचिन्त करि, फिर डारयौ भव-जाल ।
सोचि जुगति कछु मोहिं जिन जै जै सो नँदलाल ॥ ४ ॥
कछु गीता मैं भाखि कै शुक ह्वै करुना धारि ।
कही भागवत मैं प्रगट प्रेम-रीति निरुवारि ॥ ५ ॥
पुनि वल्लभ ह्वै सो कही कवहूँ कही जु नाहिं ।
शुद्ध प्रेम-रस-रीति सव निज ग्रंथन के माहिं ॥ ६ ॥
वंश रूप करि कै द्विविध थापी पुनि जग सोय ।
अव लौं जाके लेस सों पामर प्रेमी होय ॥ ७ ॥
व्यास कृष्ण चैतन्य हरि दास सु हित हरिवंस ।
विविध गुप्त रस पुनि कहे धरि वपु परम प्रसंस ॥ ८ ॥

भाँति भाँति अनुभव सरस जिन दिखरायो आप।
अघमहुँ को सो नित जयति ममन समन पुर दाप ॥ ९ ॥
अतिहि अघी अति हीन निज अपराधी लखि दीन।
जदपि छमा के जोग नहिं तऊ दया अति कीन ॥१०॥
छत्रानी सों यों कह्यौ या कहँ जानहु संत।
अहो कृपाल कृपालुता तुमरी को नहिं अंत ॥११॥
ज्वर-तापित हिय मे प्रगट जुगल हँसत आसीन।
स्वर्ण सिंहासन पर लिए कर जुग कंज नवीन ॥१२॥
अगिनि बरत चारहुँ दिसा पै मधि सीतल नीर।
ताहि उजारत चरन सों देत दास कहँ धीर ॥१३॥
बहु नट वपु ह्वै आपुही कसरत करत अनेक।
कबहूँ पौढ़े महल मैं तानि झीन पट एक ॥१४॥
कबहुँ सेत पाखान की कोच जुगल छबि धाम।
बैठे बाग बहार मैं गल भुज दिए ललाम ॥१५॥
साँझ समय आरति करत सब मिलि गोपी ग्वाल।
कबहुँ अकेले ही मिलत पिय नँदलाल दयाल ॥१६॥
कबहुँ गौर दुति बाल वपु रजत अभूपन अंग।
पंच नदी पौसाक तन धरे किए सोइ ढंग ॥१७॥
कबहुँ जुगल आवत चले साँझ समय बरसात।
कै बसंत जँह हरित धर चारहु ओर दिसात ॥१८॥
देखि दीन भुव मैं लुठत फूल-छरी सिर मारि।
हँसत परसपर रस भरे जिय अति दया विचारि ॥१९॥
कबहुँ प्रगट कबहूँ सुपन कबहुँ अचेतन माहिं।
निज जय दृढ़ता हेत जो बारम्बार दिखाहिं ॥२०॥
होत बिमुख रोकत तुरत करत त्रिबिध उपदेस।
जै जै जै हरि-राधिका बितरन नेह बिसेस ॥२१॥

मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि-नाम ।
जयति कोऊ सो केसरी वृंदावन वन धाम ॥२२॥
तम-पाखंडहि हरत करि जन-मन-जलज विकास ।
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति-पथ करन प्रकास ॥२३॥

अथ परम्परा

तन्नमामि निज परम गुरु कृष्ण कमल-दल-नैन ।
जाको मत श्री राधिका नाम जपत दिन रैन ॥२४॥
श्रीगोपीजन-पद जुगल बंदत करि पुनि नेम ।
जिन जग मैं प्रगटित कियो परम गुप्त रस प्रेम ॥२५॥
श्रीशिव-पद निज जानि गुरु बंदत प्रेम-प्रमान ।
परम गुप्त निज प्रगट किय भक्ति-पंथ अभिधान ॥२६॥
बंदौं श्री नारद-चरन भव पारद अभिराम ।
परम विसारद कृष्ण-गुन-गान सदा गतकाम ॥२७॥
पुनि बंदत श्री व्यास-पद वेद-भाग जिन कीन ।
कृष्ण तत्व को ज्ञान सब सूत्र विरचि कहि दीन ॥२८॥
बंदत श्री शुकदेव जिन सोध प्रेम को पंथ ।
हमसे कलि-मल ग्रसित-हित कह्यो भागवत ग्रंथ ॥२९॥
विष्णुस्वामि-पद जुगल पुनि प्रनवत वारम्वार ।
जिन प्रगटायो प्रेम-पथ वहत्त जानि संसार ॥३०॥
गोपीनाथ अरंभि जै देवादिक मध थामि ।
विल्वमँगल लौं सप्त सत गुरु-अवली प्रनमामि ॥३१॥
नमो विल्वमंगल-चरन भक्ति-बीज उत्कर्ष ।
सूक्ष्म रूप सों तरु रहे जो अनेक सत वर्ष ॥३२॥
यह मारग डूबत निरखि जिन प्रगटायो रूप ।
नमो नमो गुरुवर-चरन श्री वल्लभ द्विजभूप ॥३३॥

जुगल सुअन तिनके तनय जिनहिं आठ निरधारि।
भक्ति रूप दसधा प्रगट बंदत तिनहिं बिचारि ॥३४॥
एक भक्ति के दान हित थापित परम प्रसंस।
भयो अहै अरु होइगो जै श्री वल्लभ वंस ॥३५॥
प्रगट न प्रेम प्रभाव नित नासन सोग कुरोग।
जै जै जग-आरति-हरन विदित वल्लभी लोग ॥३६॥
जे प्रेमी-जन कोउ पथ हरि-पद नित अनुरक्त।
बंदत तिनके चरन हम करहु कृपा सब भक्त ॥३७॥

अथ उपक्रम

नाभा जी महराज ने भक्तमाल रस जाल।
आलबाल हरि-प्रेम की बिरची होइ दयाल ॥३८॥
ता पाछें अब लौं भए जे हरि-पद-रत-संत।
तिनके जस बरनन करत सोइ हरि कहँ अति कंत ॥३९॥
कबहूँ कबहुँ प्रसंग-बस फिर सों प्रेमी नाम।
ऐहैं या नव ग्रंथ मैं पूरब-कथित ललाम ॥४०॥
भक्तमाल जो ग्रंथ है नाभा-रचित विचित्र।
ताही को एहि जानियो उत्तर भाग पवित्र ॥४१॥
भक्त-माल उत्तर-अरध याही सों सुभ नाम।
गुथी प्रेम की डोर मैं सन्त-रतन अभिराम ॥४२॥
नव माला हरि-गल दई नाभा जी रचि जौन।
दुगुन आजु करि कृष्ण कों पहिरावत हौं तौन ॥४३॥
लिखे कृष्ण-हिय मैं सदा जदपि नवल कोउ नाहिं।
नाम धाम हरि-भक्त के आदि समय हू माँहिं ॥४४॥
तदपि सदा निज प्रेम-पथ दीपक प्रगटन काज।
समय समय पठवत अवनि निज भक्तन ब्रजराज ॥४५॥

ताही सों जब आवहीं भुव तब जानहिं लोग।
भक्त नाम गुन आदि सब नासन भव-भय-रोग ॥४६॥
तिनहीं भक्त-दयाल की परम दया बल पाइ।
तिनको चरित पवित्र यह कहत अहौं कछु गाइ ॥४७॥

स्ववंश-वर्णन

वैश्य अग्रकुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल-पाल।
ता सुत गिरिधर-चरन-रत वर गिरधारीलाल ॥४८॥
अमींचंद तिनके तनय फतेचंद ता नंद।
हरखचंद जिनके भए निज कुल-सागर-चंद ॥४९॥
श्री गिरिधर गुरु सेइ कै घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब हरि-पद भक्ति दृढ़ाइ ॥५०॥
तिनके सुत गोपाल-ससि प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम-गति मेटि जिन कीनी भक्ति प्रकास ॥५१॥
मेटि देव-देवी सकल छोड़ि कठिन कुल-रीति।
थाप्यौ गृह मैं प्रेम जिन प्रगटि कृष्ण-पद-प्रीति ॥५२॥
पारवती की कूख सों तिनसों प्रगट अमंद।
गोकुलचन्द्राग्रज भयो भक्त दास हरिचन्द ॥५३॥
तिन श्री वल्लभ वर कृपा विरंची माल बनाइ।
रही जौन हरिकंठ मैं नित नव ह्वै लपटाइ ॥५४॥
लहिहैं भक्त अनंद अति, ह्वैहैं पतित पवित्र।
पढ़ि पढ़ि कै हरि-भक्त को चित्र विचित्र चरित्र ॥५५॥

श्री विष्णु स्वामि संसार मैं प्रगट राजसेवा करी।
श्री शुक सों लहि ज्ञान आंध्र भुव पावन कीनी ॥
नृप-प्रधानता जगत-जाल गुनि कै तजि दीनी।
हठ करि हरि कों अपुने कर नित भोग लगायो ॥

भक्ति-प्रचारन द्विविध वंश भुव माहिं चलायो।
जग में अनेक सत बरस बसि नाम दान भुव उद्धरी।
श्री विष्णु स्वामि संसार में प्रगट राजसेवा करी ॥५६॥

श्री निम्बादित्य सरूप धरि आपु तुंग विद्या भई।
द्रावड़ि भुव में अरुण गेह द्विज ह्वै प्रगटाए॥
तम पखंड दलमलन सुदर्शन वपु कहवाए।
सकल वेद को सार कह्यौ दस ही छंदन महँ॥
शुक-मुख सों भागवत सुनी नृप देवरात जहँ।
धनि अरक वृच्छ चढ़ि दरस दै अतिथि संक सब हरि लई।
श्री निम्बादित्य सरूप धरि आपु तुंग विद्या भई ॥५७॥

मायावादी घननाद मद रामानुज मर्दन कियो।
अगनित तम पाखंड प्रगट ह्वै धूरि मिलायो॥
धीर वनक सों सुदृढ़ भक्ति को पंथ चलायो।
वादी-गनन प्रतच्छ सेस बनि दरसन दीनो॥
गुरु को चार मनोरथ पन करि पूरन कीनो।
जा सरन जाइ निरदुंद ह्वै जीव नरक-भय तजि जियो।
मायावादी घननाद मद रामानुज मर्दन कियो ॥५८॥

दृढ़ भेद भगति जग में करन मध्व अचारज भुव प्रगट।
प्रथम शास्त्र पढ़ि सकल अरंभन खंडन ठान्यौ॥
द्वैतवाद प्रगटाइ दास-भावहि दृढ़ मान्यौ।
थापि देव गोपाल धरनि निज विजय प्रचार्‌यौ॥
मतिमंडित पंडितगन-बल खंडित करि डार्‌यौ।
दै संख चक्र की छाप भुज दई मुक्ति सारूप्य झट।
दृढ़ भेद भगति जग में करन मध्व अचारज भुव प्रगट ॥५९॥

श्री विष्णु स्वामि-पथ-उद्धरन जै जै वल्लभ राजवर ।
तिलँग वंस द्विजराज उदित पावन वसुधा-तल ।।
भारद्वाज सुगोत्र यजुर साखा तैत्तिर कल ।
यज्ञनरायन कुलमनि लक्ष्मनभट्ट-तनूभव ।।
इल्लमगारू-गर्भ-रत्नसम श्रीलक्ष्मी धव ।
श्री गोपनाथ-विट्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथकर ।
श्री विष्णु स्वामि-पथ-उद्धरन जै जै वल्लभ राजवर ।।६०।।

निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि विट्ठल वपु धरि कै कह्यौ ।
श्री श्री वल्लभ-सुअन विप्रकुल-तिलक जगत-चर ।।
माया - मत - तम - तोम - विमर्दन ग्रीष्म - दिवाकर ।
जन-चकोर हित-चंद भक्ति-पथ भुव प्रगटावन ।।
अंतरंग सखि-भाव स्वामिनी-दास्य दृढ़ावन ।
दैवी-जन मिलि अवलंब हित इक जा पद दृढ़ करि गह्यौ ।
निज प्रेम-पंथ सिद्धांत हरि विट्ठल वपु धरि कै कह्यौ ।।६१।।

निज फलित प्रफुल्लित जगत मैं जय वल्लभ-कुल-कलपतर ।
गुरुवर गोपीनाथ प्रगट पुरुषोत्तम प्यारे ।।
श्री गिरिधर गोविंद राय रुक्मिनी दुलारे ।
बालकृष्ण श्री वल्लभ माला विजय प्रकासन ।।
श्री रघुपति जदुनाथ स्याम-घन भव-भय-नासन ।
मुरलीधर दामोदर सुकल्यानराय आदिक कुँवर ।
निज फ़लित प्रफुल्लित जगत मैं जय वल्लभ-कुल-कलपतर।।६२।।

जग कठिन सृंखला सिथिल कर प्रगटि प्रेम चैतन्य को ।
श्री गोपीजन-सम हरि-हित सब सों मुख मोर्‌यौ ।।
लोक-लाज भव-जाल सकल तिनुका सो तोर्‌यौ ।
वेद-सार हरिनाम दान करि प्रगट चलायो ।।

अनुदिन हरि-रस निरतत जुग दृग नीर बहायो।
नित मत्त कृष्ण मधुपान करि सपनेहु ध्यान न अन्य को।
जग कठिन सृंखला सिथिल कर प्रगटि प्रेम चैतन्य को ॥६३॥

ये मध्व संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जग-विदित।
विजय-ध्वज अति निपुन बहुत बादी जिन जीते॥
माधवेन्द्र नरसिंह भारती हरि-पद प्रीते।
ईश्वरपुरी प्रकाशभट्ट रघुनाथ अचारज॥
त्रिपुर गङ्ग श्रीजीव प्रबोधानन्द सु आरज।
अद्वैत सुनित्यानन्द प्रभु प्रेम-सूर-ससि से उदित।
ये मध्व संप्रदा के परम प्रेमी पंडित जग-विदित ॥६४॥

जान्यौ वृंदावन रूप हरिदास व्यास हरिवंस मिलि।
निम्बारक मत विदित प्रेम को सारहि जान्यौ॥
जुगल-केलि-रस-रीति भलें करि इन पहिचान्यौ।
सखी-भाव अति चाव महल के नित अधिकारी॥
पियहू सों बढ़ि हेत करत जिन पैं निज प्यारी।
जग दान चलायो भक्ति को ब्रज-सरवर-जल जलज खिलि।
जान्यौ वृंदावन रूप हरिदास व्यास हरिवंस मिलि ॥६५॥

ये वृंदावन के संत सब जुगल भाव के रँग रँगे।
मौनीदास गुविन्ददास निम्बार्कसरन जू॥
ललितमोहनी चतुरमोहनी आसकरन जू।
सखी-चरन राधाप्रसाद गोवर्द्धन देवा॥
कंवल ललित गरीबदास भीमा सखि-सेवा।
श्री वल्लभदास अनन्य लघु विट्ठल मोहन रस पगे।
ये वृंदावन के संत सब जुगल भाव के रँग रँगे ॥६६॥

रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनन्दन प्रगट ।
किय रसाब्धि नव काव्य कृष्ण-रस रास मनोहर ॥
श्री गोकुल-ससि सेइ लहे अनुभव बहु सुंदर ।
पिता पितामह प्रपितामह की पंडितताई ॥
भक्ति रीति हरि प्रीति भलें करि आपु निभाई ।
जानकी-उदर-अंबुधि-रतन पितु-गुन जिन मैं विदित खट ।
रघुनाथ-सुअन पंडित-रतन श्री देवकिनन्दन प्रगट ॥६७॥

पीताम्बर-सुत विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादीन्द्रजित ।
श्री वल्लभ पाछें बुधि-बल आचार्ज कहाए ॥
निरनय वाद-विवाद अनेकन ग्रंथ बनाए ।
गाड़ा पैं धुज रोपि जयति वल्लभ लिखि तापर ॥
ग्रंथ साथ सब लिए फिरे जीतत चहुँ दिसि बर ।
श्री बालकृष्ण-सेवा-निरत निज बल प्रगटायो अमित ।
पीताम्बर-सुत विद्या-निपुन पुरुषोत्तम वादीन्द्रजित ॥६८॥

श्री द्वारकेश व्रजपति व्रजाधीश भए निज कुल-कमल ।
सेवा भाव अनेक गुन इन प्रगट दिखाए ॥
श्री युगल नित्य रस-रास कीरतन बहुत बनाए ।
शुद्ध पुष्टि अनुभवत उच्छलित रस हिय माहीं ॥
सपनेहु जिनकी वृत्ति कबहुँ लौकिक-मय नाहीं ।
श्री वल्लभ को सिद्धांत सब थित जिनके चित नित विमल ।
श्री द्वारकेश व्रजपति व्रजाधीश भए निज कुल-कमल ॥६९॥

श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल नाथहि फिर बोलवाइयो ।
रसिक नाम सौ ग्रंथ रचे भाषा के भारे ।
नाम राखि हरिदास तथा संस्कृत के न्यारे ॥
परम गुप्त रस प्रगट बिरह अनुभव जिन कीनो ।

सेवा मह मद त्यागि सदा हरि के चित दीनो ॥
हरि-इच्छा लखि बिनु समयहू मंदिर इन खुलवाइयो ।
श्री श्री हरिराय स्व-भक्ति-बल नाथहि फिर बोलवाइयो ॥७०॥

जो अनुभव श्री विट्ठल कियो सोइ दाऊ जी में उघट ।
सात सरूपहि फिर श्री जी पासहिं पधराए ।
पहिले ही की भाँति अन्नकुट भोग लगाए ॥
सब रितु उच्छव प्रगट एक रितु माहि दिखाए ।
हून परस करि सो कर फिर नहिं प्रभुहि छुवाए ॥
करि लाखन व्यय सेवा करी किय गोकुल मेवाड़ अट ।
जो अनुभव श्री विट्ठल कियो सोइ दाऊ जी में उघट ॥७१॥

लखि कठिन काल फिर आपुही आचारज गिरिधर भए ।
बालकपन खेलत ही में पाखान तरायो ।
बादी दक्षिण जीति पंथ निज सुदृढ़ दृढ़ायो ॥
श्री मुकुन्द भव-द्वन्द-हरन काशी पधराए ।
थापी कुल-मरजादा अनुभव प्रगट दिखाए ॥
पूरे करि ग्रंथ अनेक पुनि आपहु बहु बिरचे नए ।
लखि कठिन काल फिर आपुही आचारज गिरिधर भए ॥७२॥

बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ।
श्री गिरिधर की सुता सतोगुन-मय सब अंगा ।
हरि-सेवा में चतुर पतित-पावनि जिमि गंगा ॥
खट ऋतु छप्पन भोग मनोरथ करि मन-भायो ।
वृंदावन को अनुभव कासी प्रगटि दिखायो ॥
थिर थापी करि सब रीति निज सुजस दसहु दिसि में छयो ।
बारानसि प्रगट प्रभाव श्री स्यामा बेटी को भयो ॥७३॥

ये वल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ।
मोम चिरैया रचि कै श्री रनछोर उड़ाई ।
पुरुषोत्तम प्रभु-पद रचि लीला ललित सुनाई ॥
विट्ठलनाथ दयाल सतोगुन-मय वपु धारे ।
तैसेहि गोविंदलाल गोकुलाधीस पियारे ॥
जीवन जी जन-जीवन-करन त्रिविध ग्रंथ विरचे नए ।
ये वल्लभ कुल के रत्न-मनि बालक सब भुव मैं भए ॥७४॥

अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर सूर जग मैं उयो ।
वल्लभ सागर विट्ठल जाहि जहाज वखान्यौ ।
जग-कवि-कुल-मद हस्यौ प्रेम नीके पहिचान्यौ ॥
एक वृत्ति नित सवा लाख हरि-पद रचि गाए ।
श्री वल्लभ वल्लभ अभेद करि प्रगट जनाए ॥
जा पद-वल अब लौं नर सकल गाइ गाइ हरि गुनि जियो ।
अघ-निकर सूर-कर सूर-पथ सूर सूर जग मैं उयो ॥७५॥

श्री कुंभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ।
राधा-माधव बिनु कोउ पद जिन कबहुँ न गायो ।
विरह-रीति हरि-प्रीति-पंथ करि प्रगट दिखायो ॥
सुनत कृष्ण को नाम स्रवन हियरो भरि आवत ।
प्रेम-मगन नित नव पद रचि हरि सनमुख गावत ॥
श्री वल्लभ-गुरुपद-जुग-पदुम प्रगट सरस मकरंद जनु ।
श्री कुंभनदास कृपाल अति मूरति धारें प्रेम मनु ॥७६॥

परमानँददास उदार अति परमानँद व्रज वसि लह्यो ।
हिय हरि-रस उच्छलित निरखि गुरु कर धरि रोक्यौ ।
जिनके दृग जुग जुगल रूप रसिकन अवलोक्यौ ॥
लाखन पद रचि कहे विरह व्यापी अनुछिन गति ।

सखी सखा वात्सल्य महातम भाव सिद्ध श्रुति ॥
श्री वल्लभ प्रभु-पद प्रेम सों जागरूक जग जस लह्यौ ।
परमानँददास उदार अति परमानँद ब्रज बसि लह्यौ ॥७७॥

श्री कृष्णदास अधिकार करि कृष्ण-दास्य अधिकार लह ।
अंतरंग हरि-सखा स्वामिनी के एकंगी ।
जासु गान सुनि नचत मुदित ह्वै ललित त्रिभंगी ॥
जगत प्रीति अभिमान द्वेष हरि को अपनावन ।
इनके गुन औगुन प्रगटे तनहू तजि पावन ॥
नव बार-वधू हरि भेंट करि वल्लभ-पद कर सुदृढ़ गह ।
श्री कृष्णदास अधिकार करि कृष्ण-दास्य अधिकार लह ॥७८॥

गोविंद स्वामी श्रीदाम-वपु सखा अंतरंगी भए ।
हरि सँग खेलत फिरत तुरग बनि कबहूँ धावत ।
भूख लगत वन छाक लेन तब इनहिं पठावत ॥
अनुछिन साथहि रहत केलि परतच्छ निहारत ।
गाइ रिझावत हरिहि प्रेम जग में विस्तारत ॥
द्वै सै बावन पद जुगल रस-केलि-मए बिरचे नए ।
गोविंद स्वामी श्रीदाम-वपु सखा अंतरंगी भए ॥७९॥

श्री नंददास रस-रास-रत प्रान तज्यौ सुधि सो करत ।
तुलसिदास के अनुज सदा विट्ठल-पद-चारी ।
अंतरंग हरि-सखा नित्य जेहि प्रिय गिरिधारी ॥
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई ।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहिं डुबाई ॥
पंचाध्यायी हठि करि रखी तब गुरुवर द्विज भय हरत ।
श्री नंददास रस-रास-रत प्रान तज्यौ सुधि सो करत ॥८०॥

श्री दास चतुर्भुज तोक वपु सख्य दास्य दोऊ निरत ।
निज मुख कुंभनदास पुत्र पूरो जेहि भाख्यौ ।
गाइ गाइ पद नवल कृष्ण-रस नित जिन चाख्यौ ॥
बिछुरि विरह अनुभयो संग रहि जुगल केलि रस ।
सब छिन सोइ रँग रँगे वल्लभी-जन के सरवस ॥
सेयो श्री विट्ठल भाव करि जगत-वासना सों विरत ।
श्री दास चतुर्भुज तोक वपु सख्य दास्य दोऊ निरत ॥८१॥

श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट एक करि कै लखे ।
गुरुहि परिच्छन हेत प्रथम सनमुख जब आए ।
पोलो नरियर खोटो रुपया भेंट चढ़ाए ॥
श्री विट्ठल तेहि साँचो किय लखि अचरज धारी ।
शरन गए कहि छमहु नाथ यह चूक हमारी ॥
पद विरचि सेइ श्रीनाथ कहँ विविध गुप्त अनुभव चखे ।
श्री छीत स्वामि हरि और गुरु प्रगट एक करि कै लखे ॥८२॥

चौरासी परसंग मैं मम आयसु धरि सीस ।
छंद रचे ब्रजचंद कछु सुमिरि गोकुलाधीस ॥

अथ चौरासी वैष्णव प्रसंग

दामोदरदास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के ।
जिन कहँ श्री प्रभु❀ कह्यौ कियो तेरे हित मारग ।
एक मात्र ये रहे रहस्यन के नित पारग ॥
वल्लभ पथ के खंभ समर्पन प्रथम किये जिन ।
अनुदिन छाया सरिस संग रहि भेद लहे इन ॥

❀ चौरासी वार्त्ता प्रसंग में प्रभु शब्द से श्री महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी का नाम जानना ।

रहिहैं जब लौं भुव पंथ यह अंतरंग नँदलाल के।
दामोदरदास दयाल भे सूत्र रूप यह माल के॥८३॥

दृढ़ दास्य परम बिस्वास के कृष्ण-दास मेघन भये।
जब गुरु बल्लभ बेदब्यास-ढिग मिलन पधारे।
तीनि दिवस लौं जल बिनु ठाढ़े रहे दुआरे॥
निसि में गंगा तरि गुरु के हित चूड़ा लाए।
करि प्रसन्न श्री प्रभुहि परम उत्तम वर पाए॥
गिरि-सिला हाथ रोकी गिरत भूमि-परिक्रम सँग गये।
दृढ़ दास्य परम बिस्वास के कृष्णदास मेघन भये॥८४॥

दामोदरदास कनौज के सँभलवार खत्री रहे।
हरि सेयो तजि लाज सबै भय लीक मिटाई।
नारी सिर घट धारि प्रगट गागरी भराई॥
तृन सम धन के मोह तजे सेवा हित धारी।
अन्याश्रय को त्याग सदा भक्तन हितकारी॥
नित सेवत मथुरानाथ को प्रकट संप्रदा फल लहे।
दामोदरदास कनौज के सँभलवार खत्री रहे॥८५॥

पद्मनाभदास कनौज कों श्री मथुरानाथ न तजे।
नाम दान लै ब्यास वृत्त प्रभु रूप लै त्यागी।
भीपौ अनुचित जानि पुष्टि मारग अनुरागी॥
कौड़ी लकड़ी बेंचि भागवत कृत निरबाहे।
छोला ही तें तोपि इष्ट ऐश्वर्ज न चाहे॥
सर्वज्ञ भक्त अरु दीन-हित जानि एक कृष्णहि भजे।
पद्मनाभदास कनौज कों श्री मथुरानाथ न तजे॥८६॥

तनया पद्मनाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रपी ।
सपड़ी महाप्रसाद जाति-भय भगत न लीनो ।
जिय में यही विचारि वैष्णवी पूरी कीनी ॥
पै दोउन कों श्री मथुरापति कही सपन में ।
सपड़िहि महाप्रसाद जाति-भय करौ न मन में ॥
श्री गोस्वामी हू मुदित भे सानुभावता अति लपी ।
तनया पद्मनाभ-दास की तुलसा वैष्णव रुचि रपी ॥८७॥

पद्मनाभदास की वहू की ग्लानि गई सब जीय की ।
लिख्यौ कुष्ट-बिरतांत महाप्रभु निकट पठायो ।
सेवक दुख सुनि कै प्रभुहू कछु जिय दुख पायो ॥
दृढ़ विश्वास सुहेत दई अज्ञा प्रभु सेवहु ।
वर पुरुषोत्तमदास कथा को समझ्यौ भेवहु ॥
सेवत ही चारहि मास के भई पूर्व्व गति पीय की ।
पद्मनाभदास की वहू की ग्लानि गई सब जीय की ॥ ८८ ॥

नाती पद्मनाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे ।
श्रीगोस्वामी - चरन - कमल बंदे गोकुल मैं ।
पाई सुगम सुराह तिगुन-मय या वपु कुल मैं ॥
श्री मथुरापति प्रगट भाव-बस बिहरत भूले ।
या कुल की मरजाद जान जापैं अनुकूले ॥
परमानँद सोनी संग तें परम भागवत पद लहे ।
नाती पद्मनाभदास के रघुनाथदास सास्त्री रहे ॥८९॥

छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही ।
श्राद्ध लक्ष्मन भट्ट सरपि कछु थोरो हो तहँ ।
महाप्रभुन घृत हेत पठाए सेवक तेहि पहँ ॥

दिए नहीं वहु भाँति माँगि थकि पारिप लीने।
इन ठाकुर घी देनो अति अनुचित दृढ़ कीने।
स्रावहु दिन प्रभुहि जिवाँइ कै लोक मेटि हरि-गति लही।
छत्रानी रजो अडेल की परम भागवत रूप ही ॥९०॥

पुरुषोत्तमदास सुसेठ-वर छत्री श्री काशी रहे।
नाम दान सनमान जासु गिरजापति कीने।
निसि दिन भैरौ द्वारपाल सिव सासन दीने॥
अन्याश्रय गत विरज मदनमोहन अनुरागी॥
महाप्रभुन की कृपापात्रता जिन सिर जागी।
जिन घर नंदादिक कूप सो प्रगटि जनम उत्सव लहे।
पुरुषोत्तमदास सुसेठ-वर छत्री श्री काशी रहे ॥९१॥

जाई पुरुषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत।
गंगा-स्नानहु सों वढ़ि जिन सेवा गुनि लीनी।
श्री गोस्वामी श्री मुख जासु बड़ाई कीनी॥
गहन नहानी एक वार चौवीस वरष में।
सेठौ सुनि भे मगन भजन सुख-सिंधु हरष में॥
सेवक स्वामी एकै अहैं यातैं नित एकतै रहत।
जाई पुरुषोत्तमदास की रुकमिनि मोहन-मदन-रत ॥९२॥

गोपालदास तिन तनय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन।
भगवद नामस्मरन हुँकारी प्रगट आप भर।
श्री गोस्वामी श्री मुख जिनहिं सराहत निरभर॥
भगवद-लीला सदा नित्त नव अनुभव करते।
तिलक सुवोधनि पाठ कीरतन चित हित धरते॥
पुरुषोत्तमदास सुवंस में अति अनुपम अवतंस मन।
गोपालदास तिन तनय कों सुमिरत श्री मोहन-मदन ॥९३॥

सारस्वत ब्राह्मण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये।
देनो दियो चुकाइ जासु नवनीत पियारे।
श्री आचारज महाप्रभुन धनि धन्य उचारे॥
बाल-भाव निज इष्टहि सेवत बालक पाये।
सेवा मैं वसु जाम लीन तन धन विसराये॥
नित सकल काम-पूरन परम दृढ़ विस्वास सरूप ये।
सारस्वत ब्राह्मण रामदास ठाकुर-हित चाकर भये॥९४॥

गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि कठिन पन चित धरे।
जजमानाश्रय भोग मदन-मोहन के राचे।
जो आवै सो सकल तुरत अपने अभिलाषे॥
जा दिन नहिं कछु मिलै छानि जल अर्पन करते।
भूपे ही रहि आप वैष्णवनि हित अनुसरते॥
सागौ स्वादित अति जासु घर भक्त भाव सों नहिं टरे।
गदाधरदास द्विज सारस्वत अतिहि कठिन पन चित धरे॥९५॥

वेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत।
वेनीदास महान भागवत बड़े भ्रात हे।
विषई माधवदास अनुज पैं नहिं रिसात हे॥
बाँटि सकल धन भए विलग कामिनि अनुकूले।
मुक्तमाल लिय मोल इष्ट हित आपुहि भूले॥
प्रगटे ठाकुर चोरन लगे भये विषय तें तव विरत।
वेनीदास माधवदास दोउ श्री नवनीत-प्रिया निरत॥९६॥

हरिवंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री कासी निवस।
द्वै दिन पटने रहे तहाँ हाकिम चित ऐसी।
अनुसरिहैं हम तुरत करैं ये आज्ञा जैसी॥

सपने ठाकुर कही डोल झूलन हम चाहत।
हाकिम तें है बिदा तयारी करी वचन रत॥
श्री काशी मे आए तुरत डोल झुलाए प्रेम-बस।
हरिवंस पाठक सारस्वत ब्राह्मण श्री कासी निवस॥९७॥

गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित।
चारि भाग निज द्रव्य प्रभुन आज्ञा तें कीने।
एक भाग श्री नाथै इक निज गुरु कहँ दीने॥
एक भाग दै तजी नारि एक आपुहि लीने।
सोउ वैष्णवन हेत कियो सब व्यय भय हीने॥
तजि देव अंस गुरु अंस लहि सेवा केसवराय नित।
गोविंददास भल्ला तज्यौ प्रानहु प्रिय निज इष्ट हित॥९८॥

अम्मा पैं नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट।
अम्मा बालक दोय ताहि करि प्यार पुकारैं।
मरे एक के ता रोवत हरि दुख जिय धारैं॥
रोवत रोवत मरो सोऊ सुत बहु बिलाप कर।
श्री गोस्वामी समुझावन हित आये तेहि घर॥
मंदिर को टेरा खोलि कै देपे पय पीवत निकट।
अम्मा पैं नित अनुकूल श्री बालकृष्ण ठाकुर प्रगट॥९९॥

गंजन धावन छत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद।
जिन बिन ठाकुर महाप्रभू घरहू नहिं रहते।
जे ठाकुर बिन अतिहि दुसह दुख सहत न कहते॥
छन बिछुरत इन देह दहत जर वे न अरोगत।
इन दोउन की प्रीति परसपर कौन कहि सकत॥
सब भावहि बस नित ही रहे दिये जिनहिं निज परम पद।
गंजन धावन छत्री हुते श्री नवनीत-प्रिया सुखद॥१००॥

ब्रह्मचारि नरायनदास जू वसत महावन भजन-रत ।
धन कहँ गुन्यौ विगार देखि निज सेज चहूँ कित ।।
दिय वोहारि फेंकवाइ वहुरि लिपवायो हँसि हित ।
श्री गोकुल चन्द्रमा पीर खाई जिनके घर ।।
आरोगाई प्रभुन कही मति डरौ जाति-डर ।
तवहीं तैं सपड़ी खीर नहिं यहै रीति या पुष्टि मत ।।
ब्रह्मचारि नरायनदास जू वसत महावन भजन रत ।।१०१।।

छत्रानी एक महावनहि सेवत नित नवनीत-प्रिय ।
पृथ्वि-परिक्रम करत महाप्रभु तहाँ पधारे ।
पाये श्रुति - सरवस्व आपने प्रान अधारे ।।
चार वेद के सार चार हरि विग्रह रूरे ।
श्रास पास ही वसत मनोरथ निज-जन पूरे ।।
तिन मैं यह प्रेम-सुरंग रँगि रही धरे अति भक्ति हिय ।
छत्रानी एक महावनहि सेवत नित नवनीत-प्रिय ।।१०२।।

जियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के ।
उभय तनय पुरुषोत्तमदास छवीलदास जिन ।
सेवा कीनीं कछुक दिवस इन पै संतति विन ।।
तिनके मामा कृष्णदास पुनि सेवा कीनी ।
तिन पीछे तिन मित्र सोई सेवा सिर लीनी ।।
तहुँ डेढ़ वरस रहि पुनि गए मंदिर निज प्रिय प्रान के ।
जियदास भजन-रत जाम चहुँ श्री लाडिले सुजान के।।१०३।।

श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही ।
देवा पत्नी सहित सरस सेवा चित दीन्ही ।
तिनहीं लौं तहँ रहे ठाकुरौ भावहि चीन्ही ।।
रहे तनय तिन चारि लई नहिं तिनतें सेवा ।

भाव-वन्य भगवान जासु कर्मादि कलेवा ॥
अंतरध्यान भे सु भौन ते निज इच्छा विचरन मही ।
श्री ललित त्रिभंगी लाल की सेवा देवा सिर रही ॥१०४॥

रसिकाई दिनकरदास की कथा सुननि मे अकथ ही ।
तुरतहि धावत सुनत महाप्रभु-कथा कहत अब ।
काचिहि लौटी पाइ लेत सुधि रहति न तन तब ॥
जानि कही प्रभु अति अनुचित तुम करी कथा-हित ।
भोग लगाइ प्रसाद पाइ अब तें ऐही नित ॥
येई श्रोता अब आजु तें श्री मुख यह आपै कही ।
रसिकाई दिनकरदास की कथा सुननि मे अकथ ही ॥१०५॥

मुकुन्ददास कायस्थ हे जिन मुकुन्द-सागर किये ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद प्रीति जिनहिं अति ।
याही तें प्रभु तिलक सुबोधनि भै तिन की मति ॥
निज मुख श्री भागवत कहैं नहिं सुनैं सु अपर मुप ।
कर्म सुभासुभ जनित पंडितनि सुलभ न वह सुप ॥
वरनाश्रम धर्मनि बंचकनि सहजहि में इन ठगि लिये ।
मुकुन्ददास कायस्थ हे जिन मुकुन्द-सागर किये ॥१०६॥

छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई ।
यह मारग अति विषम कृष्ण चइतन्य सुनत ही ।
मुर्छित है है जाहिं सु जिन कहँ सुलभ सुपद ही ॥
वृंदावन प्रति वृच्छ पत्र भ्रज प्रगट दिखाये ।
अवगाहन नहिं दीन प्रभुन परसाद पवाये ॥
सेवा श्री मोहन-मदन की जिनहिं सावधानी दई ।
छत्री प्रभुदास जलोटिया टका मुक्ति दै दधि लई ॥१०७॥

प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निंदियो ।
सेवत नीकी भाँति ठाकुरहिं वृद्ध भये अति ।
तीर्थ प्रथोदिक पहुँचाये सब अन्याश्रित मति ॥
अन्याश्रय लपि सावधान आये निज घर कहँ ।
करि सेवा निज सेव्य ललन की तजी देह तहँ ॥
निंदा करि कीरति चौधरी मार पाइ पद वंदियो ।
प्रभुदास भाट सिंहनंद के तीर्थ प्रथोदिक निंदियो ॥१०८॥

पुरुषोत्तमदास जु आगरे राजघाट पै रहत हे ।
श्री गोस्वामी एक समै आये तिनके घर ।
भई रसोई भोग समर्प्यों किए अनौसर ॥
पुनि सादर निज सेव्य ठाकुरै के भाजन में ।
आरोगाये जस आरोगे नंद-भवन में ॥
श्री ठाकुर ही की सेज पै पौढ़ाए सेवत रहे ।
पुरुषोत्तमदास जु आगरे राजघाट पै रहत हे ॥१०९॥

घर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जात के ।
श्री हरिके रँग रँगे प्रभुन-पद-पदुम प्रीति अति ।
सही कैद दइ जिनहिं तुरुक बहु मार मंद मति ॥
बिन चरनोदक महाप्रसाद लिये न पियत जल ।
इन कहँ खेदित जानि ठाकुरहु परत न छन कल ॥
गजी की फरगुल इनहिं की हरे सीत श्रीनाथ के ।
घर तिपुरदास को सेरगढ़ हुते सुकायथ जात के ॥११०॥

पूरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे ।
आयसु लहि श्रीनाथ-हेतु मंदिर समराये ।
सुभ मुहूर्त में जहँ श्रीनाथहि प्रभु पधराए ॥
अति सुगंध अरगजा समर्पे जिन अपने कर ।

दिय ओढ़ाय आपने उपरना गोस्वामी वर ॥
गद्दल परसादी नाथ के बरस बरस पावत रहे ।
पूरनमल छत्री प्रभुन के कृपापात्र अति ही रहे ॥१११॥

यादवेंद्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत ।
श्री गोस्वामी संग कहूँ परदेस चलत जब ।
एक दिवस की सामग्री के भार वहत सब ॥
सेवा करहिं रसोई निसि मे पहरा देते ।
मास दिवस के काम एक ही दिन करि लेते ॥
जे कूप खोदि निज कर-कमल खारो जल मीठो करत ।
यादवेंद्रदास कुम्हार श्री गोस्वामी-आयसु-निरत ॥११२॥

गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनैं ।
ठाकुर-सेवा महाप्रभुन इन सिर पधराये ।
सेये नीकी भाँति ठाकुरहि अतिहि रिझाये ॥
ठाकुर आयसु पाइ बदरिकास्रमहि पधारे ।
ठाकुर सेवा काहु भागवत माथे धारे ॥
जिन यह इनसों निरधार किय ठाकुर देव न इहि तनैं ।
गोसाँईदास सारस्वत देह तजी बदरी बनैं ॥११३॥

माधवभट कसमीर के मरे बाळकहि ज्याइयो ।
अतिहि दीन ह्वै लिपी सुबोधनि महाप्रभुन पैं ।
सेवा मे अपराध परौ अनजाने उनपैं ॥
लघु घाधा में तजी देह चोरनि सर लागे ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति-रस पागे ॥
श्रीनाथौ जिनकी कानि तें निज पासहि पधराइयो ।
माधवभट कसमीर के मरे बालकहि ज्याइयो ॥११४॥

गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के विस्राम हित ।
आवत श्री द्वारिका पद्मरावल निवसे जहँ ।
सुनि गोपालदास सेवा सो पहुँचि गए तहँ ।।
पूछि कुसल लपि द्वारिकेस दरसन अभिलापी ।
कही प्रगट रनछोर अडेल लपौ निज आँपी ।।
सुनि विरजो माव पटेल लै आइ दरस लहि भे मुदित ।
गोपालदास पै सदन बहु पथिकनि के विस्राम हित ।।११५।।

द्विज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ।
परमारथी गुपालदास सिपये ये आये ।
महाप्रभुन दरसन करि निज अभिमत फल पाये ।।
लै प्रभु-पद चंदन चरनामृत भे विद्याधर ।
श्री ठाकुर आयसु तें गये कोऊ सेवक घर ।।
पथ बहु रोटी अरपन करी घी चुपरी न रुपी परी ।
द्विज साँचोरे रावल पदुम श्री रनछोर कही करी ।।११६।।

पुरुपोत्तम जोसी द्विज हुते कृष्णभट्ट पैं अति मुदित ।
आये ये उज्जैन पद्मरावल के सुत-घर ।
रहे तहाँ पै तिन सब इनको कीन अनादर ।।
बड़े पुत्र तिन कृष्ण भट्ट निज घर पधराये ।
राखे तहँ दिन चारि प्रसादहु भले लिवाये ।।
सुनि सतसंगी हरिवंस के गोस्वामी भुप भगत हित ।
पुरुपोत्तम जोसी द्विज हुते कृष्णभट्ट पैं अति मुदित ।।११७।।

ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ।
श्री ठाकुर अर्पित अशुद्ध गुनि अति दुख पाये ।
ताती पीर समर्पि सिपे जो प्रभुन सिपाये ।।
ज्वार भोग अनकुट पैं पेट कुपीर उपाई ।

इरषा सो दुरजन इन पैं तरवारि चलाई ॥
तेहि श्री करसों गहि कै कही मारै मति ये महत जन।
ऐसे भूले रजपूत कों जगन्नाथ लीने सरन ॥११८॥

जननी नरहर जगनाथ की महा प्रभुन-छवि छकि रहीं ।
इक इक मुहर भेंट हित दै पठये दोउ भाइन।
नाम निवेदन हेतु प्रभुन पैं अति चित चाइन ॥
मिले कृपा करि दियो दरस पुरुपोत्तम नगरी।
भई स्वरूपासक्ति तुरत भूली सुधि सगरी ॥
पुनि माँगि भेंट की मुहर प्रभु लिए सरन दोउन तहीं।
जननी नरहर जगनाथ की महाप्रभुन-छवि छकि रहीं ॥११९॥

नरहर जोसी जगनाथ के भाई वड़े महान हे।
भोग अरोगन आये सिसु ह्वै अपन विसारी।
पै इन प्रभु की कानि रंचकौ चित न विचारी ॥
सावधान भे सुनत अनुज सों प्रभु की करनी।
गोस्वामी के सरन किये जजमान स-घरनी ॥
तेहि जरत बचाये आगि तें ऐसे ये सुपदान हे।
नरहर जोसी जगनाथ के भाई वड़े महान हे ॥१२०॥

साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे।
जगन्नाथ जोसी गर मुद्र तपित लाइकै।
हाकिम पैं अधिकारी इनको किये जाइकै ॥
जिनकी मति लहि राजपुतानी सती भई नहिं।
शुद्ध होइ आई ताकों तिन दिये नाम तहिं ॥
पुनि सरनागत करि प्रभुन के पर-उपकारी पद लहे।
साँचोरा राना व्यास दुज सिद्धपूर निवसत रहे ॥१२१॥

धनि राजनगर-वासी हुते रामदास द्विज सारस्वत ।
श्री नटवर गोपाल पादुका गुरु सेयौ इन ।
श्री रनछोर सु कहे ग्रहन किय निज नारिहु जिन ॥
ठाकुर ही आयसु तें तिय कों नामहु दीने ।
तव ताके कर महाप्रसाद मुदित मन लीने ॥
पुनि नाम निवेदन प्रभुन पैं करवाये कहि कानि सत ।
धनि राजनगर-वासी हुते रामदास द्विज सारस्वत ॥१२२॥

गोविंद दूवे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ।
श्री गोस्वामी-पत्र पाइ मीरहि द्रुत त्यागी ।
श्री ठाकुर रनछोर-वारता-रस-अनुरागी ॥
प्रभुन थार के महाप्रसाद दिये नहिं इक दिन ।
सकल वैष्णवनि सहित उपास किये तिहि दिन तिन ॥
सुनि भूखे श्री रनछोर सो थार महापरसाद दिय ।
गोविंद दूवे साँचोर द्विज नवरत्नहि नित पाठ किय ॥१२३॥

राजा माधौ दूवे हुते दोउ भाई साँचोर द्विज ।
रामकृष्ण हरिकृष्ण वड़े छोटे दोउ भाई ।
वड़े पढ़े वहु कथा कहैं लघु मूढ़ सदाई ॥
भावज की कटु सुनि दूवे के सरनहिं आये ।
अष्टोत्तर सतनाम वार द्वै जपि सव पाये ॥
पुनि पाइ नाम श्रीप्रभुन पैं भे निज कुल के कलस-धुज ।
राजा माधौ दूवे हुते दोउ भाई साँचोर द्विज ॥१२४॥

जननी श्लोकोत्तम दास कों नाथ सेवकनि मिलि कह्यौ ।
करैं रसोई प्रीति समेत परोसि लिवावैं ।
याही तें श्रीनाथ सेवकनि कों अति भावैं ॥
श्री गोस्वामी रीझि रहे लषि शुद्ध प्रेम पन ।

रस वात्सल्य अलौकिक जानि सिहाहिं मनहिं मन ॥
मन शुद्धाद्वैत सरूप मति कृष्णभक्ति तजि तन लह्यौ ।
जननी श्रोकोत्तमदास को नाथ सेवकनि मिलि कह्यौ ॥१२५॥

ईश्वर दूबे साँचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के ।
श्रोकोत्तम जन नाम धन्य येऊ पुनि पाये ॥
नाथ सेवकनि अधिक पीय दै मातु कहाये ॥
अविरल भक्ति विशुद्ध गुसाईं सों इन लीन्हीं ।
महाप्रभुन पथ प्रीति रीति इन दृढ़ करि चीन्हीं ।
पाई सेवा श्रीअंग की सरन अनाथनि नाथ के ॥
ईश्वर दूबे साँचोर के मुखिया भे श्रीनाथ के ॥१२६॥

वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मद-मरदन किये ।
श्री गोपीपति मुहर गुसाईं पैं पहुँचाई ।
करी दंडवत लाड पहुँच पत्रिका सुहाई ॥
मथुरा तें आगरे गए आये जुग जामैं ।
सीहनंद वैष्णवनि उछाहनि में अभिरामैं ॥
मन ढेढ़ नित्त ये खात है ढाल गुरज इक कर लिये ।
वासुदेव जन जन्मस्थली काजी मद-मरदन किये ॥१२७॥

बाबा वेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे ।
श्री केसव के कीर्तनिया ये अरु जादव जन ।
कृष्णदास तहँ गिरिवरधर ध्यावत त्यागे तन ॥
नाथ दरस करि गिरि नीचे वेनू तन त्यागे ।
जादवदासौ सर रचि नाथ धुजा के आगे ॥
कहि नाथ देह तजि आगि धरि वायु वहे तिन तन दहे ।
बाबा वेनू के अनुजवर कृष्णदास घघरी रहे ॥१२८॥

जगतानंद द्विज सारस्वत थानेसर निवसत रहे।
एक श्लोक के अर्थ प्रभुन त्रै जाम विताये॥
कही मास द्वै तीनि वीतिहै सुनि सिर नाये।
देहु नाम इन विनय करी तव प्रभु अपनाये॥
पुनि महाप्रभुन कों नित निज घर पधराये।
तहँ नित सेवा विधि तिनहिं कहि सावधान सेवन कहे।
जगतानंद द्विज सारस्वत थानेसर निवसत रहे॥१२९॥

दोऊ भाई छत्री हुते महाप्रभुन-रस रँग रये।
आनँददास वड़े भाई नित वैठि अनुज सँग।
महाप्रभुन के चरित कृष्ण गुन कहत पुलकि अँग॥
सोइ जात जव दास विसम्भर भरत हुँकारी।
भरत आप तव श्री हरिजू निज जन-हितकारी॥
कहि कथा पूछि अनुजहि मुदित जानि ठाकुरहि ठगि गये।
दोऊ भाई छत्री हुते महाप्रभुन-रस रँग रये॥१३०॥

इक निपट अकिंचन व्राह्मनी जिन हरि कहँ निज कर लहे।
माटी के सव पात्र सदन साँकरो सुहायो।
वृद्धि भई निज ठाकुर रत अपरस विसरायो॥
लपि वैष्णव श्री महाप्रभुन पधराये तेहि घर।
प्रीति भाव लखि भे प्रसन्न अति ही जिय प्रभुवर॥
सेवकन कह्यौ मरजाद तजि इन प्रभु-पद दृढ़ करि गहे।
इक निपट अकिंचन व्राह्मनी जिन हरि कहँ निज कर लहे॥१३१॥

छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही।
दिन दस के लडुआ इक ही दिन करिकै राखे।
सो प्रभु आप उठाइ अंक लै तुरतहि चाखे॥

यह मरजादा भंग देखि रोई भय होई।
आरति के हित कियो कह्यौ तब प्रभु दुख जोई॥
नव नित सामग्री नव करति ऐसी चतुर सुजानि ही।
छत्रानी इक हरि-नेह-रत वत्सलता की खानि ही॥१३२॥

समराई हठ करि प्रभुन कों निज कर भोग लगाइयो।
सास गोरजा महाप्रभुन के दरस पधारी॥
तब यह हरि सनमुख लाई रचि रुचि कै थारी।
जब न अरोगे तब इन कछु आपहु नहिं खायो॥
ऐसे ही हठ करि जल बिनु दिन कछुक बितायो।
तब आपु प्रगट ह्वै प्रेम सो जल लै याहि पिवाइयौ।
समराई हठ करि प्रभुन कों निज कर भोग लगाइयो॥१३३॥

दासी कृष्णा मति रुचि भरी गुरु-सेवा में अति निरत।
जब गोस्वामी कहँ चतुर्थ बालक प्रगटाए।
तब श्री वल्लभ गोस्वामी वर नाम धराए॥
कृष्णा भाख्यो इनकों गोकुलनाथ पुकारो।
तासों जग में यहै नाम सब लेत हँकारो॥
गोस्वामी हू जा कानि सों यहै नाम भाखे तुरत।
दासी कृष्णा मति रुचि भरी गुरु-सेवा में अति निरत॥१३४॥

श्री वूला मिश्र उदार अति बिनु रितुहु बालक दियो।
जिजमानहि हरिबंस एक ही छंद सुनाई।
करम लिखी हू उलटन पतनी गोद भराई॥
छत्री को इन सकल-मनोरथ पूरन कीनो।
करुना चित में धारि दान बालक को दीनो॥
हरि-गुरु-बल जो मुख सों कह्यौ सोई हठ करि कै कियो।
श्री वूला मिश्र उदार अति बिनु रितुहु बालक दियो॥१३५॥

मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई।
हरि-गुरु परम अभेद भाव हिय रहत सदाई।
याही तें गुरु-कीरति इन हरि-सनमुख गाई॥
मीरा भाख्यौ हरि-चरित्र गाओ द्विजराई।
सुनि अति कोपे इन जानें नहिं वल्लभराई॥
लखि द्वैध भाव तजि गाँव सों दूर बसे मति गुरु भई।
मीराबाई की प्रोहिती रामदास जू तजि दई॥१३६॥

सेवक गोवर्द्धननाथ के रामदास चौहान हे।
जब प्रगटे प्रभु प्रथम गोवरधन गिरि के ऊपर।
नाम नवल गोपाललाल त्रय-दमन मनोहर॥
तब श्री वल्लभ इनकों सेवा हरि की दीनी।
रहै मँड़ैया छाइ परम रति मैं मति भीनी॥
नित ब्रज को गोरस अरपि कै सेवत हरि सुख-खान हे।
सेवक गोवर्द्धननाथ के रामदास चौहान हे॥१३७॥

द्विज रामानंद विछिप्त बनि जगहि सिखाई प्रेम-विधि।
गुरु रिसि करि कै तज्यौ तऊ हरि जेहि नहिं त्याग्यौ।
दरसायो सिद्धान्त यहै पथ को अनुराग्यौ॥
विकल पथहि पथ फिरत खात तन की सुधि नाहीं।
निरखि जलेबी हरिहि समर्पी अति चित-चाही॥
ताको रस हरि के बसन मैं देख्यौ गुरुवर भावनिधि।
द्विज रामानंद विछिप्त बनि जगहि सिखाई प्रेम-विधि॥१३८॥

छीपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादीन्द्र-जित।
हरि-सेवक बिन लेत न जलहू प्रेम बढ़ावन।
भट्टनहू के परस लेत नहिं जानि अपावन॥

श्री गोस्वामी–चरन–कमल–मधुकर ये ऐसे।
स्वाती-अम्बर कों चातक चाहत है जैसे ॥
धनि धनि जिनके प्रेम-पन अन्याश्रय गत धीर चित।
छीपा-कुल-पावन भे प्रगट विष्णुदास वादीन्द्र-जित ॥१३९॥

जन-जीवन प्रभु की आनि दै मेघनि नहिं वरसन दये।
एक समै श्री महाप्रभू दरसन करिवे हित।
आवत हे सब सीहनंद के वैष्णव इक चित ॥
लागे करन रसोई मग में घन घिरि आये।
निहचै जानि अकाज अनन्यनि अति अकुलाये ॥
चढ़ि आई गुर की कानि चित मघवा-मद जिन हरि लये।
जन-जीवन प्रभु की आनि दै मेघनि नहिं वरसन दये ॥१४०॥

भगवानदास सारस्वतै दई प्रभुन श्री पाँवरी।
श्री आचारज जाइ विराजे इनके घर जहँ।
नित उठि प्रातहि करहिं दंडवत ये सादर तहँ ॥
तातें कोउ नहिं धरत पाव तेहि पूजित ठौरहि।
ठाकुर जिन सो सानुभाव कहिए का औरहि ॥
सेये जिन अपन बिसारि कै भरी निरंतर भाँवरी।
भगवानदास सारस्वतै दई प्रभुन श्री पाँवरी ॥१४१॥

भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति।
कछु सामग्री दाझि गई इक दिन अनजाने।
गोस्वामी सेवा तें बाहिर किये रिसाने ॥
सुनि जन अच्युत गोस्वामी सों रोइ विनय की।
नाथ हाथ गति प्रभु संबंधी जीव निचय की ॥
सुनि कर गहि लै गिरिराज पै कही सेइ अबतें सुमति।
भगवानदास श्रीनाथ के हुते भितरिया सुखद अति ॥१४२॥

दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे ।
आवैं नित सिंगार समै श्रीनाथ-दरस हित ।
पुनि निज थल कों जात हुते ऐसो साहस चित ॥
नाथ–परिक्रम दंडवती इन तीन करी जब ।
श्री गोस्वामी श्री-मुख करी बड़ाई बहु तब ॥
हे गुनातीत ये भगवदी प्रभुन-भगति रस बहत हे ।
दुज अच्युतदास सनोड़िया चक्रतीर्थ पै रहत हे ॥१४३॥

दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु विरहानल तन दहे ।
सेवा पधराई श्री मोहन मदन लाल की ।
आपहु बैठे पाट प्रगटि तन छबि रसाल की ॥
सेये नीकी भाँति मदन-मोहन रिझवारे ।
श्री गोस्वामी जिनहिं नमत लपि अपन बिसारे ॥
प्रभु-असुर-विमोहन-चरित लपि बद्रिनाथ दरसन लहे ।
दुज गौड़ दास अच्युत तहीं प्रभु विरहानल तन दहे ॥१४४॥

श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ अच्युत अच्युतदास द्विज ।
प्रभु सँग पृथी-परिक्रम करि पद-पाँवरि पूजत ।
प्रभु के लौकिक करम धरम तिन कहँ नहिं सूझत ॥
जिन लपि नर सुर असुर विमोहि परत भव-सागर ।
गुनातील प्रभु-चरित-मगन मन जन नव नागर ॥
मोहित जन लपि प्रभु दरस दै कहे सगुन प्रागट्य निज ।
श्री प्रभुन सरूप सुजान सुभ अच्युत अच्युतदास द्विज ॥१४५॥

नरायनदास प्रभु-पद-निरत अम्बालय में बसत हे ।
नृप-नौकर अवसर न पावते प्रभु दरसन कों ।
उत्कंठित दिन राति धन्य धनि जिनके मन कों ॥

कब जैहौ भैया श्री वल्लभ के दरसन हित।
चाकर राखे सुरति देन को यों छन छन तिन ॥
बहु भेंट पठावत हे प्रभुहि ऐसे ये भागवत हे।
नरायनदास प्रभु-पद-निरत अम्बालय मे बसत हे ॥१४६॥

नरायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे।
जिनको आयुस दई मदनमोहन गुनि प्रभु-जन।
बाहिर मुहिं पधारउ काढ़िहौं गुप्त इते बन ॥
मथुरा तें निकसाइ तुरत बाहिर पधराये।
पुनि श्री गोपीनाथ सिंहासन पै बैठाए ॥
तातें दरसन करि सबै सहजहि अभिमत फल लहे।
नारायनदास भाट जाति मथुरा में निवसत रहे ॥१४७॥

नारिया नारायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे।
पातसाह ठट्ठा के ये दीवान हेत हे।
दुसह दंड में परि नित पाँच हजार देत हे ॥
रुपये लाख पचास भरन लौं कैद किये तिन।
इक दिन के द्वै गुरु-भाइन को देइ दिये जिन ॥
छुटि पातसाह सों साँच कहि सहस मुहर प्रभु-पद धरे।
नरिया नारायनदास भे सरन प्रभुन के अनुसरे ॥१४८॥

छत्रानी एक अकेलियै सीहनन्द मैं बसत ही।
श्री नवनीत-प्रिया की करति अकिंचन सेवा।
तरकारी हित सिसु लौं झगरत जासों देवा ॥
माया विद्या अन-सपड़ी सपड़ी कै त्यागी।
भावहि भूपे घी चुपरी रोटिहि अनुरागी ॥
माया विसिष्ट प्रगटत सदा प्रेमहि तें प्रभु तुरत ही।
छत्रानी एक अकेलियै सीहनन्द मैं बसत ही ॥१४९॥

कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ।
जिनकी जुवती हुती वीरवाई प्रसूतिका ।
श्री ठाकुर-सेवा की सोई सुचि विभूतिका ॥
लई सूतकौ मैं सेवा जासों प्रभु पावन ।
सेवक प्रभुन सरूप होत नहिं कवहुँ अपवान ॥
नहिं आतम सुद्धासुद्ध कहुँ सोइ प्रभु सोइ सेवक सज्यौ ।
कायथ दामोदरदास जिन श्री कपूररायहि भज्यौ ॥१५०॥

छत्री दोउ स्त्री पुरुप हे रहे आइ सिहनंद में ।
निपटै लघु घर हुतो मेड़ ठाकुर पौढ़ाए ।
जिनके डर सों सोवत निसि आँगन सचुपाए ॥
पावस रितु में भींजत जानि पुकारि कही सुनि ।
घर मैं सोवहु भींजौ मति न करौ ऐसो पुनि ॥
तौऊ साँस न पावै वजन सोये या आनन्द में ।
छत्री दोउ स्त्री पुरुप हे रहे आई सिहनंन्द में ॥१५१॥

श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ।
प्रभुन दरस विन किये रहे नहिं जे एकौ दिन ।
छुटे सकल गृह-काज भये घर के सव सुप विन ॥
याही तें प्रभु आपै आवत हुते सदन जिन ।
वहुत वारता करत हुते धनि जिनसों अनुदिन ॥
पै दिन चौथे पचयें न कछु जननी रिस जिय धारते ।
श्री महाप्रभुन सूतार घर श्रम पिछानि पग धारते ॥१५२॥

अन्य मारगी मित्र इक छत्री सेवक अति विमल ।
अन्य मारगी भवन नेह वस गए एक दिन ।
किये पाक तेहि ठाकुर आगे नाथ अरपि तिन ॥
भोग सराये ताहि लिवाये लिय आपौ पुनि ।

भूपे ठाकुर ताहि जगाय कही सब सों सुनि ॥
परभाव जानि या पंथ को भयो सरन सोऊ बिकल ।
अन्य भारगी मित्र इक छत्री सेवक अति बिमल ॥१५३॥

चित लघु पुरुपोत्तमदास के गुरु ठाकुर मैं भेद नहिं ।
श्री आचारज महाप्रभुन-पद रति रस-भीने ।
आपै के गुन श्रवन कीरतन सुमिरन कीने ॥
आपै कहँ आतम अरपे सेये पूजे जन ।
सपा दास आपहि के वंदे आपहि कों इन ॥
आपहु जिनको अति ही चहे भक्ति भाव धरि जीय महिं ।
चित लघु पुरुपोत्तमदास के गुरु ठाकुर मैं भेद नहिं ॥१५४॥

कविराज भाट श्रीनाथ कों नित नव कवित सुनावते ।
तीनों भाई नाम पाइकैं किये निवेदन ।
नाथ निकट बहु कवित पढ़े प्रभु भये मुदित मन ॥
धनि धनि धनि वे कवित धन्य वे धन्य भगति जिन ।
धनि धनि धनि श्री प्रभुन नाम उद्धारन अगतिन ॥
किय कवित अनेकनि प्रभुन के सदा प्रभुन मन भावते ।
कविराज भाट श्रीनाथ को नित नव कवित सुनावते ॥१५५॥

गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभून पै ।
मार्कण्डे पूजत हे प्रभु निज जन्मोत्सव दिन ।
इक दिन आगे आये हे गाये पद तेहि छिन ॥
सुनि माधव में वल्लभ हरि अवतरे दास सुप ।
कृष्ण-भगति मुद मगन भये तजि ज्ञानादिक सुप ॥
बहु छंद प्रबंध प्रवीन ये चारे रसिक दुहून पै ।
गोपालदास टोरा हुते अति आसक्त प्रभून पै ॥१५६॥

जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्न विस्वास तें।
दरसन करत प्रभुन पूरन पुरुषोत्तम जाने।
करी विनय कर- जोरि सरन मोहिं लेहु सुजाने॥
आपौ आज्ञा दई न्हाइ आवौ ते आये।
पाइ नाम पुनि किए समर्पन अति चित चाये॥
ये सन्निधान श्रीनाथ के न्यारे ह्वै भव-पास तें।
जनार्दनदास छत्री भये सरन पूर्न विस्वास तें॥१५७॥

गडुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया प्रभुन सरन भे प्रभु कहे।
गये प्रभुन पैं न्हाइ दण्डवत करी विनय कै।
कही सरन मोहिं लेहु नाथ अब देहु अभय कै॥
कही आप मुसिकाय कहौ स्वामी किमि सेवक।
पुनि तिन वन्दन करी कही आज्ञा मुहिं देवक॥
लहि नाम सेवकनि सहित निज किये निवेदन मुद लहे।
गडुस्वामी ब्रह्म सनोड़िया प्रभुन सरन भे प्रभु कहे॥१५८॥

कन्हैया साल छत्री जिन्हैं प्रभुन पढ़ाए ग्रंथ निज।
श्रीमद्गोस्वामी जू जिन सों पढ़े ग्रन्थ बहु।
इनकी कहा बड़ाई करिये मुख अति ही लहु॥
प्रेम दास्य विस्वास रूप ये नीके जानत।
श्रीहरि गुरु की भगति भाव करिकै पहिचानत॥
निज गमन समय राख्यौ इन्हैं थापन कों भुव पंथ निज।
कन्हैया साल छत्री जिन्हैं प्रभुन पढ़ाए ग्रन्थ निज॥१५९॥

गौड़िया सु नरहरदास जू प्रभुन-कृपा पाये सुपद।
जिन घर बैठे पाट मदन-मोहन पिय प्यारे।
सोये सहित सनेह जानि प्रेमहिं पर वारे॥

पुनि पधराये श्री गोस्वामी पैं यह सुनि जिय।
ये सुप पैहैं यहीं लाल हैं इनहीं के प्रिय॥
पुनि गोस्वामी पधरायो श्रीरघुनाथ-सदन सुपद।
गौड़िया सु नरहरिदास जू प्रभुन-कृपा पाये सुपद॥१६०॥

बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये।
आछे भट ते सुने भागवत नाम पाइ कैं।
जाते श्री रनछोर प्रभुन तहँ टिके आइ कैं॥
पाये प्रभु पैं नाम समर्पन किये गए सँग।
दरसन करि पुनि आइ मोरबी रँगे प्रभुन रँग॥
पुनि रहे तहँ आयसु प्रभुन आपुन श्रीगोकुल गये।
बादा श्रीप्रभु की कृपा तें दास बादरायन भये॥१६१॥

नरो सुता तिय आदि सब सद्दू मानिकचंद की।
देवदमन जिन सदन पियत पय नरो पियावति।
जात कटोरो भूलि ताहि सुपियहि दै आवति॥
माँगि प्रभुन सों गाय नाम गोपाल धराये।
निज प्रागट्य जनाइ प्रभुन तिन गृह पधराये॥
प्रभु कृपापात्र सुचि भगवदी मूरति ब्रह्मानंद की।
नरो सुता तिय आदि सब सद्दू मानिकचंद की॥१६२॥

सन्यासी नरहरदास पैं सुगुरु-कृपा अतिसय हुती।
एक समै श्री महाप्रभू द्वारिका पधारे।
बेना कोठारिहु लै एऊ संग सिधारे॥
तहाँ विनय करि किये सुसेवक सरन प्रभुन के।
जिनके सरनागत पै बस नहिं चलत तिगुन के॥
सेवा अपराधौ तिगुन सिर भेद भगति यह दृढ़मती।
सन्यासी नरहरदास पैं सुगुरु-कृपा अतिसय हुती॥१६३॥

गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे।
ग्रीषम भोग अरोगि जामिनी जगमोहन में।
पौढ़त जहँ श्रीनाथ स्वामिनी के गोहन में ॥
आँखि मींचि चहुँ जाम करत बीजन तहँ ठाढ़े।
प्रभु आयसु तें आरस-गात अति आनँद बाढ़े ॥
ठाकुर सेवक कहँ दंड दै बादि बिरह में तन दहे।
गोपालदास जटाधारी नाथ खवासी करत हे ॥१६४॥

सति धर्म मूल तिय वनिक-गृह कृष्णदास पहुँचाइयौ।
वैष्णव धर्म अकिंचनता तेहि प्रगटि दिखाई।
जिनकी तिय करि कौल वनिक सों सीधो लाई ॥
करी रसोई भोग अरपि पुनि भोग सराये।
बहुरि अनौसर करिकै सब वैष्णवनि जिंवाये ॥
लषि ज्ञानचन्द पै प्रभु-कृपा आपुहि कौल चिताइयौ।
सति धर्म मूल तिय वनिक-गृह कृष्णदास पहुँचाइयौ ॥१६५॥

श्री गोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे।
श्री हरि-पद अरविंद मरन्द मते मिलिन्द में।
गावन में हरि-चरित मौन में अति अमंद ये।
अन्न-आश्रय अरु वैष्णव-धन विप जिनहिं विषहु तें।
याही तें ये हुते नियारे द्वन्द दुषहु तें ॥
कौड़ी बेंचत हे ढाइयै पैसनि हित अधिक न चहे।
श्रीगोस्वामी के प्रान-प्रिय संतदास छत्री रहे ॥१६६॥

सुंदरदासहि के संग तें वैष्णव माधवदास भे।
माधवदास कृष्ण चैतन्य-सुसेवक दृढ़मति।
जाको भोग समर्पित पावत प्रेत दुष्ट अति ॥

पै तिहि दृढ़ बिस्वास जु श्री ठाकुरै अरोगत।
श्री आचारज प्रभुन निदि सो लह्यौ दंड द्रुत॥
अपराध आपनो जानि कैं महाप्रभुन की आस भे।
सुंदरदासहि के संग ते वैष्णव माधवदास भे॥१६७॥

बिरजो भावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे।
श्री गोकुल द्वै वेर साल मे सदा आवते।
गाड़ा गाड़ा गुड़ घृत सौंजनि सहित लावते॥
एक पाप श्री गोकुल इक श्रीनाथद्वार रह।
खिरक लिवावत भोग समर्पित सय ग्वालिनि कहँ॥
पुरुषोत्तम खेतहि वैष्णवनि सबै लिवाए मुद भरे।
बिरजो भावजी पटेल दोउ वैष्णव ही हित अवतरे॥१६८॥

गोपालदास रोड़ा दिये नाम दान प्रभु के कहे।
एक समै गोपालदास श्रीनाथहि आये।
आयो ज्वर द्वै चारि भये लंघन दुष पाये॥
लागी प्यास कही सेवक सों सोइ गयो सो।
आपुहि झारी लै प्याये जल दुष बिसरो सो॥
श्री गोस्वामी की सीप सों प्रभुता मद रंच न रहे।
गोपालदास रोड़ा दिये नाम दान प्रभु के कहे॥१६९॥

काका हरिवंस प्रसंस मति धरम परम के हंस भे।
श्री बिट्ठल-सुत जेहि काका सम आदर करहीं।
वैष्णव पर अति नेह सुअन सम नित अनुसरहीं॥
नाम-दान दै जगत जीव फिरि फिरि के तारे।
ठौर ठौर हरि सुजस भक्ति हित बहु बिस्तारे॥
प्रिय कंस धंस के होइ कै छत्रिहु बल्लभ बंस भे।
काका हरिवंस प्रसंस मति धरम परम के हंस भे॥१७०॥

गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई।
जवन-उपद्रव जब श्रीप्रभु मेवाड़ पधारे।
मारग मैं यह साथ रहीं हिय भगति विचारे॥
जब रथ कहुँ अड़ि जात तबै सब इनहिं बुलावैं।
श्री जी के ढिग भेजि नाथ-इच्छा पुछवावैं॥
श्री विट्ठल गिरिधर नाम सों पद रचि हरि-लीला गई।
गंगा बाई श्रीनाथ की अतिहि अंतरंगिनि भई॥१७१॥

श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे।
नंददास अग्रज द्विज-कुल मति गुन-गन-मंडित।
कवि हरि-जस-गायक प्रेमी परमारथ पंडित॥
रामायन रचि राम-भक्ति जग थिर करि राखी।
थोरे मैं बहु कह्यौ जगत सब याको साखी॥
जग-लीन दीनहू जा कृपा-बल न राम-चरितहि तजे।
श्रीतुलसिदास-परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे॥१७२॥

गोस्वामी विट्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगट।
भट्ट नाग जी कृष्णभट्ट पद्मा रावल-सुत।
माधोदास हिसार बास कायथ निज पितु जुत॥
विट्ठलदास निहालचंद श्रीरूपमुरारी।
रूपचंद नंदा खत्री भाइला कुठारी॥
राजा लाखा हरिदास भाई जलौट हरि नाम रट।
गोस्वामी विट्ठलनाथ के ये सेवक जग में प्रगट॥१७३॥

गोस्वामी विट्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत।
कृष्णदास कायस्थ नरायनदास निहाला।
ज्ञानचन्द ब्राह्मणी सहारनपुर के लाला॥

जन-अर्दन परसाद गोपालदास पाथी गनि ।
मानिकचंद मधुसूदनदास गनेस व्यास पुनि ॥
जदुनाथ दास कान्हो अजव गोपीनाथ गुआल सत ।
गोस्वामी विट्ठलनाथ के ये सेवक हरि-चरन-रत ॥१७४॥

हित रामराय भगवान वलि हठी अली जगनाथ जन ।
कही जुगल रस-केलि माधुरीदास मनोहर ।
विट्ठल विपुल विनोद विहारिनि तिमि अति सुन्दर ॥
रसिक-विहारी त्योंही पद वहु सरस वनाए ।
तिमि श्री भट्टहु कृष्ण-चरित गुनहु वहु गाए ॥
कल्यानदेव हित कमल-दृग नरवाहन आनंदघन ।
हित रामराय भगवान वलि हठी अली जगनाथ जन ॥१७५॥

श्री ललितकिशोरी भाव सों नित नव गायो कृष्ण-जस ।
भट्ट गदाधर मिस्र गदाधर गंग गुआला ।
कृष्ण-जिवन हरि लछीराम पद रचत रसाला ।
जन हरिया घनस्याम गोविंदा प्रभु कल्याना ।
विचित्र-विहारी प्रेम-सखी हरि सुजस वखाना ॥
रस रसिकविहारी गिरिधरन प्रभु मुकुंद माधव सरस ।
श्री ललितकिशोरी भाव सों नित नव गायो कृष्ण-जस॥१७६॥

श्री वल्लभ आचारज अनुज रामकृष्ण कवि मुकुटमनि ।
वसत अजुध्या नगर कृष्ण सों नेह वढ़ावत ।
कृष्ण-कुतूहल कहि गुपाल लीला नित गावत ॥
दोऊ कुल की वृत्ति तिनूका सी तजि दीनी ।
व्याह कियो नहिं जानि दुखद हरि-पद मति भीनी ॥
करि वाद पंथ थापन कियो ग्रंथ रचे नव तीन गनि ।
श्री वल्लभ आचारज अनुज रामकृष्ण कवि मुकुटमनि ॥१७७॥

हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे।
वल्लभ पथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड़्यौ।
धन जन मान कुटुम्बहि बाधक लखि मुख मोड़्यौ॥
केवल अनुभव सिद्ध गुप्त रस चरित बखाने।
हिय सँजोग उच्छलित और सपनेहुँ नहिं जाने॥
करि कुटी रमन-रेती वसत संपद भक्ति कुबेर भे।
हरि-प्रेम-माल रस-जाल के नागरिदास सुमेर भे॥१७८॥

हिय गुप्त वियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे।
बार-वधू ढिग बसत सबै कछु पीयो खायो।
पै छनहूँ हिय सों नहिं सो अनुभव बिसरायो॥
सुनतहि विट्ठल नाम भक्त-मुख श्रवन मँझारी।
प्रान तज्यो कहि अहो तिनहिं सुधि अजहुँ हमारी॥
दरसन ही दै हरिभक्त अपराध कुष्ट जन दुख दहे।
हिय गुप्त वियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे॥१७९॥

श्री वृंदावन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन।
निज गुरु हित हरिवंस कृष्ण-चैतन्य चरन-रत।
हरि-सेवा में सुदृढ़ काम क्रोधादि दोषगत॥
अद्भुत पद बहु किये दीन जन दै रस पोपे।
प्रभु-पद-रति विस्तारि भक्तजन मन संतोपे॥
दृढ़ सखी भाव जिय में वसत सपनेहुँ नहिं कहुँ और मन।
श्री वृंदावन के सूर-ससि उभय नागरीदास जन॥१८०॥

इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिंदुन वारियै।
अलीखान पाठान सुता-सह ब्रज रखवारे।
सेख नबी रसखान मीर अहमद हरि-प्यारे॥

निरमलदास कबीर ताजखाँ बेगम बारी।
तानसेन कृष्णदास बिजापुर नृपति-दुलारी॥
पिरजादी बीबी रास्ती पद-रज नित सिर धारियै।
इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिन हिन्दुन वारियै॥१८१॥

बाबा नानक हरि-नाम दै पंचनदहि उद्धार किय।
बार बार निज सौंज साधुजन लखत लुटाई।
बेदी बंस प्रसंस प्रगटि रस-रीति दृढ़ाई॥
गुप्त भाव हरि प्रियतम को निज हिये पुरायो।
गाइ गाइ प्रभु-सुजस जगत अघ दूरि बहायो॥
जग ऊँच नीच जन करि कृपा एक भाव अपनाइ लिय।
बाबा नानक हरिनाम दै पंचनदहि उद्धार किय॥१८२॥

कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो।
सेन बंस श्री शिवानंद सुत बंग उजागर।
सुर-बानी मैं निपुन सकल रस के मनु सागर॥
अति छोटे तन गुरु महिमा करि छंद बखानी।
जननि गोद सों किलकि हँसे निज गुरु पहिचानी॥
परमानँद सों चैतन्य ससि नाम पलटि दूजो दियो।
कवि करनपूर हरि-गुरु-चरित करनपूर सबको कियो॥१८३॥

बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित।
नाम नरायनदास बिदित हनुमत कुल जायो।
अग्र कील्ह गुरु-कृपा नयन खोयोहू पायो॥
गुरु-आयसु धरि सीस भक्त-कीरति जिन गाई।
भक्तमाल रस-जाल प्रेम सों गूथि बनाई॥
नित ही नव-रूप सुबास सम सुमन-संत करनी कथित।
बनमाली के माली भए नाभा जी गुन-गन-गथित॥१८४॥

ये भक्तमाल रस-जाल के टीकाकार उदार-मति ।
कृष्णदास बंगाल कृष्ण-पद-पदुम परम रत ।
प्रियादास सुखदास प्रिया जुग चरन-कुमुद नत ॥
ललितलालजी दास एक औरहु कोउ लाला ।
लाल गुमानी तुलसिराम पुनि अग्गरवाला ॥
परतापसिंह सिधुआपती भूपति जेहि हरि-चरन-रति ।
ये भक्तमाल रस-जाल के टीकाकार उदार-मति ॥१८५॥

लाला बाबू बंगाल के वृंदावन निवसत रहे ।
छोड़ि सकल धन-धाम वास व्रज को जिन लीनो ।
माँगि माँगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो ॥
हरि-मंदिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो ।
साधु-संत के हेत अन्न को सत्र चलायो ॥
जिनकी मृत देहहु सब लखत व्रज-रज लोटन फल लहे ।
लाला बाबू बंगाल के वृंदावन निवसत रहे ॥१८६॥

कुल अग्रवाल पावन-करन कुन्दनलाल प्रगट भये ।
प्रथम लखनऊ बसि श्री घन सों नेह बढ़ायो ।
तहँ श्री युगल सरूप थापि मंदिर बनवायो ॥
द्वापर को सुखरास रास कलियुग में कीनी ।
सोइ भजन आनंद भाव सहचरि रँग भीनी ॥
लाखन पद ललित किशोरिका नाम प्रगटि बिरचे नए ।
कुल अग्रवाल पावन-करन कुन्दनलाल प्रगट भये ॥१८७॥

गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल वैश्य वंश भूपन प्रगट ।
रामायन भागवत गरग संहिता कथामृत ।
भाषा करि करि रचे बहुत हरि-चरित सुभापित ॥

दान मान करि साधु भक्त मन मोद बढ़ायो।
सब कुल-देवन मेटि एक हरि-पंथ दृढ़ायो॥
लक्षावधि ग्रन्थन निरमये श्री वल्लभ विश्वास अट।
गिरिधरनदास कवि-कुल-कमल वैश्य वंश-भूषन प्रगट॥१८८॥

यह चार भक्त पंजाब मे चार वेद पावन भए।
श्री रामानुज वृद्ध हरिचरन बिनु सब त्यागी।
भाई सिंह दयाल भजन में अति अनुरागी॥
कविवर दास अमीर कृष्ण-पद मैं मति पागी।
मयाराम रसरास ललित प्रेमी वैरागी॥
श्री हरि के प्रेम प्रचार-हित जिन उपदेस बहुत दये।
यह चार भक्त पंजाब में चार वेद पावन भए॥१८९॥

श्रीभक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो।
क्षत्रिय वंश गुलाबसिंह - सुत मत रामानुज।
रामकुमारी-गर्भ-रत्न त्यागी-मंडल-धुज॥
सुवसु वेद वसु चंद आठ कातिक प्रगटाए।
श्री हरि-महिमा ग्रंथ ललित बत्तीस * बनाए॥

---

*श्री रघुनाथ के परम भक्त अति रसिक विद्वज्जन मान्य महानुभाव श्री रत्नहरिदास जी ने ३२ ग्रंथ नवीन बनाये हैं। तिन ग्रंथों में प्रति पद जमक अनुप्रासादि अलंकार भरे हैं और वर्णमैत्री की तो प्रतिज्ञा है कि एक पद वर्णमैत्री बिना नहीं होगा। तथा उनके पढ़ने से अत्यानंद प्रकट होता है कि कथन में नहीं आता। जो पुरुष सुनते हैं, वही मोहित हो जाते हैं।

१-रामरहस्य। चौपाई दोहादि छंदों में बाल्यलीला रघुनाथजी की श्लोक ५०००।

२-प्रश्नोत्तरी। दोहा ४० शुक प्रोक्तप्रश्नोत्तरी की भाषा है।

रणजीत सिंह नृप बहु कह्यौ तदपि नाहिं दरसन दियो।
श्री भक्त रत्नहरिदास जू पावन अमृतसर कियो ॥१९०॥

त्रेता में जो लछिमन करी सो इन कलियुग माहिं किय।
अग्रज कुन्दनलाल सदा दैवत सम मान्यौ।
परम गुप्त हरि-विरह अमृत सों हियरो सान्यौ॥

३-रामललाम-ललित पद छंदों में रामायण है। श्लोक ६००० राम कलेवा ग्रंथवत्।

४-सार संगीत—उक्त छंदों में श्लोक ६००० भागवत की कथा।

५-नानक-चंद्र-चंद्रिका—चौपाई दोहादि छंदों में श्री नानक शाह का जीवन-चरित वर्णन।

६-दाशरथी दोहावली—दोहा ११०० रामायण है अति चमत्कार युत।

७-जमकदमक दोहावली—दोहा १२५ प्रति दोहा में ४ जमक हैं।

८-गूढ़ार्थ दोहावली—दोहा १०० फुटकर हैं।

९-एकादशस्कंध-भागवत का चौपाई दोहा में।

१०-कौशलेश कवितावली—कवित्त १०८ रामायण क्रम से।

११-गुरु-कीरति कवितावली—१०८ नानक शाह का चरित्र है।

१२-कुसुमक्यारी—कवित्त ३६, दशमस्कंध का समास से।

१३-दशमस्कंध कवितावली—कवित्त १६७ अति विचित्र हैं।

१४-महिम्न कवितावली—कवित्त २७।

१५-नानक नवक—कवित्त ९ नानक शाह की स्तुति।

१६-रासपंचाध्यायी—कवित्त ६०।

१७-ब्रजयात्रा—कवित्त १५० ब्रज के यात्रा का वर्णन।

१८-कवित्त कादंबिनी—भागवत क्रम से कवित्त १५०।

१९-रघूत्तमसहस्र नाम—श्लोक २५ वाल्मीकि रामायण की कथा भी क्रम से।

२०-पद रत्नावली—विष्णु पदों में रामायण। इसी प्रकार और भी उत्तम ग्रंथ हैं।

अंतरंग सखि भाव कबहुँ काहू न लखायो।
करम-जाल विध्वंसि प्रेम-पथ सुदृढ़ चलायो॥
श्री कुंदनलाल उदार मति बंधु-भगति अति धारि हिय।
त्रेता मे जो लछिमन करी सो इन कलियुग माहिं किय॥१९१॥

नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम सखा हरि सुजस कवि।
नित्य पाँच पद विरचि कृष्ण अरचन तव ठानत।
गान तान बंधान बाँधि हरि सुजस बखानत॥
देस देस प्रति घूमि घूमि नर पावन कीनो।
निज नयनन के प्रेम-वारि हियरो नित भीनो॥
घर त्यागि फिरत इत उत भ्रमत भक्त-वनज-वन प्रगट रवि।
नित श्याम सखी सम नेह नव श्याम सखा हरि सुजस कवि॥१९२॥

दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह।
तुकाराम चोखा महार सावंता माली।
नामदेव गोरा कुम्हार पंढ़री सुचाली॥
रामदास पुनि एकनाथ मायूर कन्हाई।
कृष्णा साबू और कृष्ण अर्पन रत बाई॥
दामाजी दत्त वधूत ज्ञानेश्वर अमृतराव कह।
दक्षिण के ये सब भक्तवर संत मामलेदार सह॥१९३॥

नारायन शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के।
गट्टू जी महराज काठजिभ कृष्णदास वरि।
तुलाराम रघुनाथदास विसुनाथसिंह हरि॥
युगुलानन्य सुप्रियादास राधिकादास कहि।
हरिविलास नवनीत गोप जै श्रीकृष्णा लहि॥
मथुरा ससि हरस अजीत हरि रामगुलाम गुपाल के।
नारायन शालग्राम हरिभक्त प्रगट यहि काल के॥१९४॥

द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि समय भक्त हरि के भये ।
रामसखा हरिहरप्रसाद लछमीनारायन ।
अवधदास चौपई उमादत जन रामायन ॥
रामचरन सुक लोटा गट्टू रामप्रसादा ।
सेवक सीतारास पौहरी गड्डू दादा ॥
वलि रामनिरंजन जुगल जुगराज परम हंसादि ये ।
द्विज ब्रह्मदत्त सह प्रगट एहि समय भक्त हरि के भये ॥१९५॥

ये चार भक्त एहि काल के औरहु हरि-पद-कंज-रत ।
राम नाम रत रामदास हापड़ के वासी ।
त्यागि सम्पदा भए सुनत सप्ताह उदासी ॥
जागो भट्ट प्रसिद्ध भजन-प्रिय सेवत कासी ।
राम-नाम-रत माजी नागर वंस प्रकासी ॥
श्री हरिभाऊ हरिभाव-रत शूलटंक सिव ढिग वसत ।
ये चार भक्त एहि काल के औरहु हरि-पद-कंज-रत॥१९६॥

उनइस सै तैंतीस वर संवत भादों मास ।
पूनो सुभ ससि दिन कियो भक्त-चरित्र प्रकास ॥
जे या संवत लौं भए जिनको सुन्यौ चरित्र ।
ते राखे या ग्रंथ में हरि-जन परम पवित्र ॥
प्राननाथ आरति-हरन सुमिरि पिया नँद-नंद ।
भक्तमाल उत्तर अरध लिखी दास हरिचंद ॥
जो जग नर ह्वै अवतर्‌यौ प्रेम प्रगट जिन कीन ।
तिनहीं उत्तर अरध यह भक्तमाल रचि दीन ॥
जय वल्लभ विट्ठल जयति जै जै पिय नँदलाल ।
जिन विरची यह प्रेम-गुन गुथी भक्ति की माल ॥

नहिं तो समरथ यह कहाँ हरिजन गुन सक गाय।
ताहू में हरिचंद सो पामर है केहि भाय॥

जगत-जाल में नित बँध्यो पर्यौ नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचंद॥

धोबी बच सों सिय तजन व्रज तजि मथुरा गौन।
यह द्वै संका जा हिये करत सदा ही भौन॥

दुखी जगत-गति नरक कहँ देखि क्रूर अन्याय।
हरि-दयालुता में उठत संका जा जिय आय॥

ऐसे संकित जीअ सों हरि हरि-भक्त चरित्र।
कबहूँ गायो जाइ नहिं यह बिनु संक पवित्र॥

हरि-चरित्र हरि ही कह्यौ हरिहि सुनत चित लाय।
हरिहि बड़ाई करत हरि ही समुझत मन भाय॥

हम तो श्री वल्लभ-कृपा इतनो जान्यौ सार।
सत्य एक नँदनंद है झूठो सब संसार॥

तासों सब सों विनय करि कहत पुकार पुकार।
कान खोलि सबही सुनौ जौ चाहौ निस्तार॥

मोरौ मुख घर ओर सों तोरौ भव के जाल।
छोरौ जग साधन सबै भजौ एक नँदलाल॥

हरिश्चन्द्रो माली हरिपदगतानां सुमनसां
सदाऽम्लानां भक्ति प्रकटतर गंधां च सुगुणां।
अगुंफत्सन्मालां कुरुत हृदयस्थां रस-पदा
यतोन्येषां स्वस्य प्रणय सुखदात्रीयमतुला॥

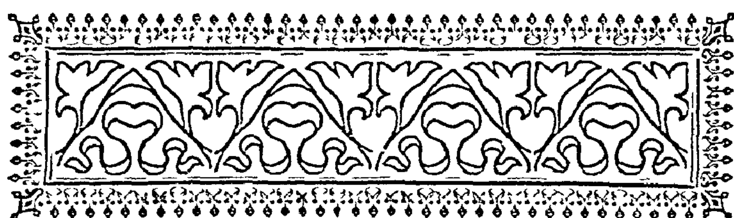
——❀——

प्रेम-प्रलाप

सं० १९३४

हरिश्चंद्र-चंद्रिका

सन् १८७७ ई०



प्रेम-प्रलाप

नखरा राह राह को नीको ।
इत तो प्रान जात हैं तुम बिनु तुम न लखत दुख जी को ॥
धावहु बेग नाथ करुना करि करहु मान मत फीको ।
'हरीचंद' अठलानि-पने को दियो तुमहिं विधि टीको ॥ १ ॥

खुटाई पोरहि पोर भरी ।
हमहिं छाँड़ि मधुबन में बैठे बरी क्रूर कुबरी ॥
स्वारथ लोभी मुँह-देखे की हमसों प्रीति करी ।
'हरीचंद' दूजेन के ह्वै कै हा हा हम निदरी ॥ २ ॥

चरित सब निरदय नाथ तुम्हारे ।
देखि दुखी-जन उठि छिन धावत लावत कितहि अबारे ॥
मानी हम सब भाँति पतित अति तुम दयाल तौ प्यारे ।
'हरीचंद' ऐसिहि करनी ही तौ क्यौं अधम उधारे ॥ ३ ॥

प्रभु हो ऐसी तो न बिसारो ।
कहत पुकार नाथ तव रूठे कहुँ न निबाह हमारो ॥
जौ हम बुरे होइ नहिं चूकत नित ही करत बुराई ।
तो फिर भले होइ तुम छाँड़त काहे नाथ भलाई ॥

हमरिहि बारी और भए कह तुम तौ सहज दयाल।
'हरीचंद' ऐसी नहिं कीजै सरनागत प्रतिपाल ॥७॥

अनीतैं कहौ कहाँ लौं सहिए।
जग-व्यौहारन देखि देखि कै कब लौं यह जिय दहिए ॥
तुम कछु ध्यानहि मैं नहिं लावत तौ अब कासों कहिए।
'हरीचंद' कहवाइ तुम्हारे मौन कहाँ लौं रहिए ॥८॥

अहो इन झूठन मोहिं भुलायो।
कबहुँ जगत के कबहुँ स्वर्ग के स्वादन मोहिं ललचायो ॥
भलें होइ किन लोह-हेम की पाप पुन्य दोउ बेरी।
लोभ मूल परमारथ स्वारथ नामहिं मैं कछु फेरी ॥
इनमैं भूलि कृपानिधि तुमरो चरन-कमल बिसरायो।
तेहि सों भटकत फिर्‌यौ जगत मैं नाहक जनम गँवायो ॥
हाय-हाय करि मोह छाँड़ि कै कबहुँ न धीरज धार्‌यौ।
या जग जगती जोर अगिनि मैं आयसु-दिन सब जार्‌यौ ॥
करहु कृपा करुनानिधि केशव जग के जाल छुड़ाई।
दीन हीन 'हरिचंद' दास कों बेग लेहु अपनाई ॥९॥

दीन पैं काहे लाल खिस्याने।
अपुनी दिसि देखहु करुनानिधि हमपैं कहा रिसाने ॥
माछर मारे हाथ जलहि इक कहत बात परमाने।
महा तुच्छ 'हरिचंद' हीन सों नाहक भौंहहिं ताने ॥१०॥

हमहूँ कबहुँ सुख सों रहते।
छाँड़ि जाल सब निसि-दिन मुख सों केवल कृष्णहि कहते ॥
सदा मगन लीला अनुभव मैं दृग दोउ अविचल बहते।
'हरीचंद' घनस्यान-विरह इक जग-दुख तृन सम दहते ॥११॥

कहो किमि छूटै नाथ सुभाव ।
काम क्रोध अभिमान मोह सँग तन को बन्यौ बनाव ॥
ताहू मैं तुव माया सिर पैं औरहु करन कुदाँव ।
'हरीचंद' बिनु नाथ कृपा के नाहिन और उपाव ॥१२॥

वेदन उलटी सबहि कही ।
स्वर्ग लोभ दै जगहि भुलायो दुनिया भूलि रही ॥
सुद्ध प्रेम तुव कहुँ नहिं गायो जो श्रुति-सार सही ।
'हरीचंद' इनके फंदन परि तुव छबि जिय न गही ॥१३॥

सूरता अपुनी सबै डुलाई ।
हमसे महा हीन किंकर सों करि कै नाथ लराई ॥
दयानिधान क्षमासागर प्रभु बिदित नाम कहवाई ।
हमरे अवहिं देखि तुम प्यारे कीरति तौन मिटाई ॥
कबहुँ न नाथ-कृपा सों मेरे अब ह्वैहैं अधिकाई ।
तौ किन तारि हीन 'हरिचन्दहि' मेटन जागत हँसाई ॥१४॥

कुढ़त हम देखि देखि तुव रीतैं ।
सब पैं इक सी दया न राखत नई निकाली नीतैं ॥
अजामेल पापी पै कीनी जौन कृपा करि प्रीतैं ।
सो 'हरिचंद' हमारी बारी कहाँ बिसारी जी तैं ॥१५॥

बड़े की होत बड़ी सब बात ।
बड़ो क्रोध पुनि बड़ी दयाहू तुम मैं नाथ लखात ॥
मोसे दीन हीन पै नहिं तौ काहे कुपित जनात ।
पै 'हरिचंद' दया-रस उमड़े ढरतेहि घनिहै तात ॥१६॥

हमारे जिय यह सालत बात ।
दयानिधान नाम तुव आछत हम ऐसेहि रहि जात ॥

और अघी तो तरत पाप करि यह श्रुति-कथा सुनात।
हम मैं कौन कसर नँद-नंदन यह कछु नाहिं जनात॥
जहँ लौं सोचे सुने किये अघ वदि वदि संज्ञा प्रात।
तऊ तरन को कारन दूजो 'हरिचन्दहि' न लखात॥१७॥

अहो हरि अपुने विरुदहि देखौ।
जीवन की करनी करुनानिधि सपनेहुँ जनि अवरेखौ॥
कहुँ न निबाह हमारो जौ तुम मम दोसन कहँ पेखौ।
अवगुन अमित अपार तुम्हारे गाइ सकत नहिं सेखौ॥
करि करुना करुनामय माधव हरहु दुखहि लखि भेखौ।
'हरीचंद' मम अवगुन तुव गुन दोउन को नहिं लेखौ॥१८॥

करुना करि करुनाकर वेगहि सुध लीजिए।
सहि न सकत जगत-दाव तुरत दया कीजिए॥
हमरे अवगुनहिं नाथ सपनेहुँ जिनि देखौ।
अपुनी दिसि प्राननाथ प्यारे अवरेखौ॥
हम तो सब भाँति हीन कुटिल कूर कामी।
करत रहत धन-जन के चरन की गुलामी॥
महा पाप पुष्ट दुष्ट धरमहिं नहिं जानौं।
साधन नहिं करत एक तुमहिं सरन मानौं॥
जैसे हैं तैसे तुव तुमही गति प्यारे।
कोऊ विधि राखि लेहु हम तो सबहि हारे॥
द्रुपद-सुता अजामिल गज की सुध कीजै।
दीन जानि 'हरीचंद' बाँह पकरि लीजै॥१९॥

जोड़ को खोजि लाल लरिए।
हम अबलन पैं बिना बात ही रोस नहीं करिए॥

मधुसूदन हरि कंस-निकंदन रावन-हरन मुरारि।
इन नॉवन की सुरत करो क्यों ठानत हमसों रारि ॥
निवलन को वधि जस नहि पैहौ साँची कहत गुपाल।
'हरीचद' ब्रज ही पैं इतने कहा खिसाने लाल ॥२०॥

पियारे वहु विधि नाच नचायो।
यह नहि जानि परी केहि सुख के वदले इतो दुखायो।
ब्रज वसि कै सव लाज गँवाई घर घर चाव चलायो॥
हम कुल-वधुन कलंकिनि कुलटा डगरै डगर कहायो।
हम जानी वदनामी दै हरि करिहैं सव मन-भायो।
ताको फल यों उलटो दीनो भलो निवाह निभायो॥
ऐसी नहिं आसा ही तुम सों जो तुम करि दिखरायो।
'हरीचंद' जेहि मीत कह्यौ सोइ निठुर वैरि वनि आयो॥२१॥

जिनके देव गुवरधन-धारी ते औरहि क्यों मानै हो।
निरभय सदा रहत इनके वल जगतहि तृन करि जानै हो॥
देवी देव नाग नर मुनि वहु तिनहिं नाहिं उर आनै हो।
'हरीचंद' गरजत निधरक नित कृष्ण कृष्ण वल सानै हो॥२२॥

हमारे ब्रज के सरवस माधो।
किन ब्रत जोग नेम जप संजम वृथा गोरि तन साधो॥
अष्ट-सिद्धि नव-निधि को सव फल यहै न और अराधौ।
'हरीचंद' इनहीं के पद-जुग-पंकज मन-अलि वाँधो॥२३॥

पिय तोहिं राखौंगी हिय में छिपाय।
देखन न दैहौं काहु पियारे रहौंगी कंठ निज लाय॥
पल की ओट होन नहिं दैहौं लूटौंगी सुख-समुदाय।
'हरीचंद' निधरक पीऔंगी अधरामृतहि अघाय॥२४॥

तुम सम कौन गरीब-नेवाज।
तुम साँचे साहेब करुनानिधि पूरन जन-मन-काज॥
सहि न सकत लखि दुखी दीन जन उठि धावत ब्रजराज।
बिह्वल होइ सँवारत निज कर निज भक्तन के काज॥
स्वामी ठाकुर देव साँच तुम वृन्दावन-महराज।
'हरीचंद' तजि तुमहिं और जे जाँचत ते बिनु-लाज॥२५॥

तो तेरे मुख पर वारी रे।
इन अँखियन को प्रान-पिया छवि तेरी लागत प्यारी रे॥
तुम बिनु कल न परत पिय प्यारे बिरह बेदना भारी रे।
'हरीचंद' पिय गरे लगाओ पैयाँ परौं गिरधारी रे॥२६॥

तुमरी भक्त-बछलता साँची।
कहत पुकारि कृपानिधि तुम बिनु,
और प्रभुन की प्रभुता काँची॥
सुनत भक्त-दुख रहि न सकत तुम,
बिनु धाए एकहु छिन बाँची।
द्रवत दयानिधि आरत लखतहि,
साँच झूठ कछु लेत न जाँची॥
दुखी देखि प्रहलाद भक्त निज,
प्रगटे जग जै जै धुनि माँची।
'हरीचंद' गहि बाँह उबार्‌यौ,
कीरति नटी दसहुँ दिसि नाँची॥२७॥

मेरे माई प्रान-जीवन-धन माधो।
नेम धरम ब्रत जप तप सबही जाके मिलन अराधों॥
जो कछु करौं सबै इनके हित इन तजि और न साधों।
'हरीचंद' मेरे यह सरबस भजौं कोटि तजि बाधो॥२८॥

हौं जमुना जल भरन जात ही मारग मोहि मिले री कान्ह ।
करि मुठ-भेर अंक बरबस भरि रोक्यौ री मोहिं अंचल तान ॥
भौंह नचाइ प्रेम चितवन लखि हँसि मुसुकाइ नैन रह्यौ जोरि ।
घट गिराइ करि और अचगरी दूर खरो भयो अंचर छोरि ॥
कहा कहौं कछु कहि नहिं आवत करिकै हिये काम की चोट ।
मन लै तन लै नैन-चैन लै प्रानहुँ लै भयो अँखियन ओट ॥
कहा करौं कित जाऊँ सखी री या बिन मो कहँ कछु न सुहाय ।
हियो भर्यौ आवत छिनही छिन हाय कहा करौं कछु न बसाय ॥
कित पाऊँ कित अंक लगाऊँ कित देखूँ वह सुंदर रूप ।
हाय मिले बिन किमि जिय राखो कहाँ मिले मेरे गोकुल-भूप ॥
रोअत बीतत रैन दिवस मोहिं बेबस ह्वै हौं रहौं करि हाय ।
जौ तन तजें मिलैं मोहि निहचै तौ जिअ त्यागौं कोटि उपाय ॥
हाय कहा करौं करि न सकत कछु रोअत ही जैहै सखि जीय ।
'हरीचंद' बिनु मिले स्याम घन सुंदर मोहन प्यारे पीय ॥२९॥

जनन सों कबहूँ नाहिं चली ।
सदा सर्बदा हारत आए जानत भाँति भली ॥
कहा कियो तुम बलि राजा सों चतुराई न चली ।
बाँधन गए बँधाए आपुहि व्यर्थहि बने छली ॥
भीषम ने परतिज्ञा टारी चक्र गहायो हाथ ।
अरजुन को रथ हाँकत डोले रन मैं लीने साथ ॥
जसुदा जू सों हाथ बँधायो नाचे माखन काज ।
मैं रिनियाँ तुम्हरो गोपिन सों कह्यौ छोड़ि कै लाज ॥
रिन बहु जानि छोड़ि कै गोकुल भागे मथुरा जाय ।
सदा सर्बदा हारत आए भक्तन सों ब्रजराय ॥
हम सोहूँ हारत ही बनिहै कबहुँ न जैहो जीत ।
तासों तारौ 'हरीचंद' को मानि पुरानी प्रीति ॥३०॥

श्री राधे कहा अजगुत कियो।
अखिल लोक-निकुंज-नायक सहज निज करि लियो ॥
जासु माया जगत मोहत लखि तनिक दृग-कोर।
सोई प्रभु तुव मोह मोहे नचत भौंह मरोर ॥
रसन को अवलम्ब जेहि आनंदघन स्तुति कहत।
सोई रसिक कहात तो सों तोहि सों सुख लहत ॥
जासु रूठे जगत मैं कछु सेस नहिं रहि जात।
सोई तव रूठे विकल ह्वै दीन वने लखात ॥
जगत-स्वामी नाम के करि भेद जौन कहात।
सो कहत तोहिं स्वामिनी यह अतिहि अचरज वात ॥
रिखिन जो रस नहिं लह्यौ करि थके कोटि प्रसंस।
सहज किय 'हरिचंद' सो करि प्रगट वल्लभ-वंस ॥३१॥

तुम विनु तलपत हाय विपति वढ़ी भारी हो।
तुम विनु कोउ नहिं मोर पिया गिरधारी हो ॥
तुम विनु व्याकुल प्रान धरौं कैसे धीर हो।
आइ मिलौ गर लगौ पिया वलवीर हो ॥
तुम विनु सूनी सेज देखि जिय जारई।
काम अकेली जानि वान कसि मारई ॥
तुम विनु अति अकुलाय वैन नहिं कहि सकौं।
मिलौ पिया 'हरिचंद' भई वौरी वकौं ॥३२॥

करनी करुनासिंधु की कासों कहि जाई।
अति उदार गुन-गन भरे गोवरधन-राई ॥
तनिक तुलसि दल कें दिये तेहि वहु करि मानै।
सेवा लघु निज दास की परवत सी जानै ॥

अजामेल सुत आपनो तुव नाम पुकाखौ।
ताके अघ सब दूर कै तुम तुरत उवाखौ॥
कहा व्याध गजराज सो करनी बनि आई।
कहा गीध गनिका कियो ताखो तुम धाई॥
कहा कपिन को रूप है का गुन बड़िआई।
तिन सो बोले बन्धु से ऐसी करुनाई॥
कहाँ सुदामा बापुरो कहँ त्रिभुवन स्वामी।
ताकी अग्रज सारखी किय चरन-गुलामी॥
कहाँ ग्वाल और ग्वालिनी करनी की पूरी।
जिनके सँग बन में फिरे हरि करत मजूरी॥
ब्रज के मृग पसु भीलनी तृन बीरुध जेते।
बंधु सरिस माने सबै करुनानिधि तेते॥
कहाँ अधम अघ सों भखौ 'हरिचंद' भिखारी।
हि माधो सहजहि लियो गहि बाँह उबारी॥३३॥

मेरी तुमरी प्रीति पिया अब जानि गए सब लोगवा।
लाख छिपाए छिपे नहिं नैना इन प्रगट्यो संजोगवा॥
हँसत सबै मारत मिलि ताना सुनि सुनि बाढ़त सोगवा।
ताहू पर 'हरिचंद' मिलत नहिं कठिन भयो यह रोगवा॥३४॥

प्राननाथ मन-मोहन प्यारे वेगहि मुख दिखराओ।
तलफत प्रान मिले बिनु तुमसों क्यों न अबहि उठि धाओ॥
केहि विधि कहौं कहत नहि आवै जिय के भाव पियारे।
अपनो नेह हमहिं पहिचानत हे ब्रजराज-दुलारे॥
जग में जा कहँ प्रीति-रीति मय भाषत हैं नर-नारी।
तासों अधिक बिलच्छन हमरी प्रेम-चाल कछु न्यारी॥

मोह कहत कोउ भक्ति बखानत नेह प्रेम कोउ भाखै ।
तिन सब सों बढ़ि प्रीति हमारी कहो नाम कह राखैं ॥
समुझत कोउ न बात हमारी पागल सबहि बखानै ।
तुमरे नेह अलौकिक की गति कहौ कोऊ किमि जानै ॥
जाके कहे-सुने जग रीझत सो कछु और कहानी ।
हम जिमि पागल बकत सुनत नहिं तासों कोउ मम बानी ॥
जानत नहिं परिनाम आपनो केवल रोअन जानैं ।
अति विचित्र मेरी गति प्यारे कैसे कहो बखानैं ॥
छूटत जग न धरम कछु निबहत रहत जीअ अकुलाई ।
होत न कछु निरनै का ह्वैहै तुम बिन कुँअर कन्हाई ॥
कहा करैं कित जायँ पियारे कछुक उपाव बताओ ।
'हरीचंद' ऐसे नेहिन कों क्यौं न धाइ गर लाओ ॥३५॥

तुम बिन प्यारे कहूँ सुख नाहीं ।
भटक्यौं बहुत स्वाद-रस-लंपट ठौर-ठौर जग माँहीं ॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे जाइ जहाँ ललचाने ।
तहँ ते फिर ऐसो जिय उचटत आवत उलटि ठिकाने ॥
जित देखो तित स्वारथ ही की निरस पुरानी बातैं ।
अतिहि मलिन व्यवहार देखि कै घिन आवत है तातैं ॥
हीरा जेहि समझत सो निकरत काँचो काँच पियारे ।
या व्यवहार नफा पाछें पछतानो कहत पुकारे ॥
सुंदर चतुर रसिक अरु नेही जानि प्रीति जित कीनो ।
तित स्वारथ अरु कारो चित हम भले सबहि लख लीनो ॥
सब गुन होइँ जुपै तुम नाहीं तौ बिनु लोन रसोई ।
ताही सों जहाज-पच्छी-सम गयो अहो मन होई ॥

अपने और पराए सब ही जदपि नेह अति लावैं ।
पै तिन सों संतोख होत नहिं यहु अचरज जिय आवैं ॥
जानत भलें तुम्हारे बिनु सब बादहि बीतत साँसैं ।
'हरीचंद' नहिं छुटत तऊ यह कठिन मोह की फाँसैं ॥ ३६ ॥

भूलि भव-भोगन झूमत फिर्यौ ।
खर कूकर सूकर लौं इत उत डोलत रमत फिर्यौं ।
जहँ जहँ छुद्र लख्यौ इंद्री-सुख तहँ तहँ भ्रमत फिर्यौं ॥
छन भर सुख नित दुखमय जे रस तिन मैं जमत फिर्यौं ॥
कबहुँ न दुष्ट मनहिं करि निज बस कामहि दमत फिर्यौं ।
'हरीचंद' हरि-पद-पंकज गहि कबहुँ न नमत फिर्यौं ॥ ३७ ॥

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो क्यों इतनी प्रीत बढ़ाई जो न अंत निबही ॥
मीठे मीठे बचन बोलि कै दीनी क्यों परतीति ।
अब क्यों छाँड़ि पराए ह्वै गए कहो कौन यह नीति ॥
जौ मधुपुरी गमन तुम पहिलेहि बदि राखी मन माहीं ।
क्यों बृन्दाबन सरद-चाँदनी बिहरे दै गल-बाहीं ॥
कहाँ गई वह बात तुम्हारी कहाँ गयो वह प्यार ।
कित गई प्रेम भरी वह चितवनि जिहि लखि लाजत मार ॥
पहिले कहि देते हम सों नहिं निबहैगो यह प्रेम ।
'हरीचंद' यह दगा दई क्यों ठानि प्रीति को नेम ॥३८॥

प्राननाथ ब्रजनाथ भई सब भाँति तिहारी ।
बिगरी सबही भाँति कोऊ नाहिंन रखवारी ॥
कहा करैं कित जायँ ठौर नहिं कतहुँ लखाई ।
सब भाँतिन सों दीन भई दोउ लोक गँवाई ॥

माने धरम न एक रही तुव पद अनुरागी।
कठिन करम अरु ज्ञान लखत दूरहि तें भागी॥
तुव पद-बल अभिमान न कोउ कहँ तृन सम जान्यो।
हित अनहित नहिं लख्यौ जगत काहुवै न मान्यो॥
काहू की नहिं होइ रही कोउ कियो न अपनो।
ऐसी बेसुध जगत बसी मनु देखत सपनो॥
भली बात जेहि जगत कहत सो एक न कीनी।
रही कुचालन सनी सदा गति अपजस पीनी॥
काहू सों नहिं डरीं रहीं बहु बैर बढ़ाई।
अनहित जगहि बनायो नहिं सीखी चतुराई॥
महामोह में बहीं सदा दुख ही दुख पायो।
रोअत ही करि हाय हाय सब जनम गँवायो॥
सुख केहि कहत न हाय कबौं सपनेहूँ जान्यौ।
जग के स्वादन हूँ कहँ नहिं कबहूँ पहिचान्यौ॥
उमगि उमगि कै सदा रहीं रोअत दुख मानी।
कोउ सों मरम न कह्यो रहीं मन फिरत दिवानी॥
'हरीचंद' कोउ भाँति निवाही प्रीति तुम्हारी।
पैं अब सो नहिं चलत हहा प्यारे बनवारी॥३९॥

खोजहू न लीनो फेरि नैन-बान मारि कै।
तड़पत ही छोड़ि गयो घायल करि डारि कै॥
भौंह की कमान तान गुन अंजन छाकि कै।
काम जहर सों बुझाइ मार्‌यौ मोहिं ताकि कै॥
व्याकुल हौं तलफत तेहि दया नाहिं आवई।
पानिप पानिप पिआइ मोहि ना जिआवई॥
प्रानहु अवसाने तन व्याकुल भई भारी।
'हरीचंद' निरदै मन-मोहना सिकारी॥४०॥

जहाँ तहाँ सुनियत अति प्यारो
प्यारे हरि को सुखद बिसद जस।
करन रंध्र मैं स्रवत सुधा सम
सीतल होत हियो सुनि अति रस॥
अजामेल गज सों जो कीनी
दीन सुदामा कों जु कियो हित।
सबरी कपि गनिका की करनी
नाथ-कृपा गावत सब जित तित॥
बधिक बिराध व्याध जवनादिक
तारे छिनक वार लागी नहिं।
पावन कियो पुलिन्दी-गन कों दै
कुच-कुंकुम-जुत-पद-रज महिं॥
भाँति अनेक बिबिध बिधि बरनित
अगिनित गुनगन गथित मथित श्रुति।
जहाँ तहाँ सुनियत सबके मुख
श्रवन सुखद संतत हिय हित अति॥
कोउ अस कोउ गरीब-नेवाजी
कोऊ पतित-पावनता गावत।
दीन-बंधु-ताई हितकारी
सरस सुभाव नेह बरसावत॥
नृप नारी द्रौपदी आदि सम
गावत ग्राम नगर नारी-नर।
हियो भरयौ आवत सुनि सुनि कै
गोविंद नामांकित जस सुंदर॥
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवत
जो हरि करत पतित-हित कारन।

'हरीचंद' सरनागत - वत्सल
दीन-दयानिधि पतित - उधारन ॥४१॥

मनवत मनवत ह्वै गयो भोर ।
खसित निसा-नायक पच्छिम दिसि सोर करत तमचोर ॥
पियहि सवै निसि जागत बीती खरे खरे कर जोर ।
आलस वस अव लरखरात पग निरखत तुव दृग कोर ॥
क्य सखि प्रेमहि लाज लगावति करिकै वृथा मरोर ।
'हरीचंद' गर लगु उठि पिय के हौं तोहिं कहत निहोर ॥४२॥

आजु मेरे भोरहि जागे भाग ।
आए पिया तिया-रस-भीने खेलत दृग जुग फाग ॥
भलौ हमैं भूले तौ नाहीं राख्यौ जिय अनुराग ।
साँझ भोर एक ही हमारे तुव आवन की लाग ॥
मंगल भयो भोर मुख निरखत मिटे सकल निसि दाग ।
'हरीचंद' आओ गर लागो साँचो करौ सोहाग ॥४३॥

हम तुम पिया एक से दोऊ ।
मानौ विलग न नेक साँवरे घट वढ़िकै नहिं कोऊ ॥
तुम जागे हमहूँ निसि जागे तिय सँग जोहत वाट ।
खरे विताई निसि हम दोउन मनवत पकरि कपाट ॥
सिथिल वसन तुमरे औ हमरे भोगत पछरा खात ।
थाकी गति दोउन की आलस इत उत आवत जात ॥
अरुनारे दृग अंजन फैल्यौ विलसत होइ हरास ।
टूटे वन्द कहा कंचुकि के लपटत लेत उसास ॥
हम तुम एक प्रान मन दोऊ यामैं कछू न भेद ।
'हरीचंद' देखहु विन श्रम सों दोऊ के मुख स्वेद ॥४४॥

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी कान्हर नट के संग
ललित जमुन-तट नव वसंत करि होरी।
सोभा सिन्धु बहार अंग प्रति दिपति देह
दीपक सी छबि अति मुख सुदेस ससि सो री॥
आसा करि लागी पिय सो रट पंचम सुर गावत ईमन
हट मेघ बरन 'हरिचंद' बदन अभिराम करी बरजोरी।
सारँगनैनि पहिरि सुहा सारी भयो कल्यान
मिले श्री गिरिधारी छबि पर जन तृन तोरी॥४५॥

प्यारे की छबि मनमानी सिर मोर मुकुट
नट भेख धरे मेरे घर आए दिलजानी।
चतुर खिलारी गिरिधारी हँसि हँसि गर लाए
मन भाए 'हरिचंद' न सुरत भुलानी॥४६॥

प्यारी जू के तिल पर बलि बलिहारी।
जा मिस बसत कपोल न अनुछिन लघु बनि पिय गिरधारी॥
पिय की दीठ चीन्ह मनु सोहत लागत अति ही प्यारी।
'हरीचंद' सिंगार तत्व सी लखि मोहन मनवारी॥४७॥

कहु रे श्रीवल्लभ-राजकुमार।
दीन-उधारन आरति-नासन प्रगट कृष्ण अवतार॥
काहे तू भरमायो डोलत साधन करत हजार।
यह भव-रुज क्यौंहू नहिं जैहै बिना चरन-उपचार॥
कौन पतित सों प्रेम निबहिहै जो बहु अघ-आगार।
श्रुति-पुरान कछु काम न ऐहैं यह तोहिं कहत पुकार॥
बुरे दिनन को साथी नहिं कोउ मात-पिता-परिवार।
'हरीचंद' तासों विट्ठल भजु अरे यहै श्रुति-सार॥४८॥

जौ पैं श्रीवल्लभ-सुतहिं न जान्यौ ।
कहाँ भयो साधन अनेक मैं परिकै वृथा भुलान्यौ ।।
वादि रसिकता अरु चतुराई जौ यह जीअ न आन्यौ ।
मर‍्यौ वृथा विषया रस लंपट कठिन करम मैं सान्यौ ।।
सोई पुनीत प्रीत जेहि इनसों वृथा वेद मथि छान्यौ ।
'हरीचंद' श्रीविट्ठल विनु सव जगत झूठ करि मान्यौ ।।४९।।

पतित-उधारन नाम सही ।
श्रीवल्लभ-विट्ठल विनु दूजो नेह निवाहन-हार नहीं ।।
साधन वृथा न करु मन लंपट भूलि वुद्धि क्यों जात वही ।
कोऊ कछू काम नहिं ऐहै क्यों डोलत करि मही-मही ।।
दीनन को हित नाहिंन दूजो यहै वात करि सपथ कही ।
'हरीचंद' से अधम-उधारन अरे यही इक यही-यही ।।५०।।

चिर जीयो मेरो श्रीवल्लभ-कुल ।
माया मत खर तिमिर दिवाकर
प्रेम अमृत पय रस सागर-पुल ।।
कलि खल-गन-उद्धरन रसिक-जन
सरन-करन विरहिन विरहाकुल ।
'हरीचंद' दैवी जन प्रियतम
पतित-उद्धरन महिमा अन-तुल ।।५१।।

श्रीवल्लभ प्रभु मेरे सरवस ।
पचौ वृथा करि जोग जाय कोउ
हमको तो इक यहै परम रस ।।
हमरे मात पिता पति वंधू
हरि गुरु मित्र धरम धन कुल जस ।

'हरीचंद' एकहि श्रीवल्लभ
तजि सब साधन भए इनके बस ॥५२॥

गीत

बना मेरा ब्याहन आया वे।
बना मेरा सब मन-भाया वे॥
बना मेरा छैल छबीला वे।
बना मेरा रंग-रँगीला वे॥

बनरा रँगीला रँगन मेरा सबन के दृग छावना।
सुंदर सलोना परम लोना श्याम रंग सुहावना॥
अति चतुर चंचल चारु चितवन जुवति-चित्त-चुरावना।
ब्याहन चला रँग-रस-रला जसुमति-लला मन-भावना॥

बना के मुख मरवट सोहै वे।
बना देखन मन मोहै वे॥
बना केसरिया जामा वे।
बना लखि मोहत कामा वे॥

लखि काम मोहै स्याम छबि पर लसत सुंदर जेहरा।
सिर जरकसी चीरा झुकाए खुला तिस पर सेहरा॥
कटि ललित पटुका बँधा सूहा सुभग दोहरा वेहरा।
जियमें हमारी नवल दुलहिन-हेत धरे सनेहरा॥

बना के नैना बाँके वे।
बने दोनों मद छाके वे॥
बना की भौंह कमानै वे।
बनी का हिअरा छानै वे॥

छानै बना का नवल हिअरा भौंह बाँकी प्यार की।
जुलफैं बनी उलफैं जिया की हिलत मोहन मार की॥

कर सुरख मेंहदी पग महावर लपट अत्तर अपार की ।
जिय बस गई सूरत निवानी दूलहे दिलदार की ॥

वना मेरा सब रस जानै वे ।
वना प्रीतहि पहिचानै वे ॥
वना चतुरा रस-वादी वे ।
वनी-रस-अधर-सवादी वे ॥

रस अधर स्वादी वनी का अँग-अंग रस कस के भरा ।
जिय प्रेम मानै नेह जानै सकल गुन-आगर खरा ॥
विधि मदन मानी छवि गुमानी नवल नेही नागरा ।
निधि रसिक की 'हरिचंद' सरवस नंद-वंस उजागरा॥५३॥

लावनी

सखी चलो साँवला दूलह देखन जावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ॥
नीली घोड़ी चढ़ि वना मेरा वन आया ।
भोले मुख मरवट सुंदर लगत सुहाया ॥
जामा चीरा जरकसी चमक मन भाया ।
सूहा पटुका कटि कसे भला छवि छाया ॥
हाथों मेंहदी मन हाथों हाथ चुरावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ॥
सिर मौर रँगीला तुर्रों की छवि न्यारी ।
मोती लर गूथा सेहरा मुख मन-हारी ॥
फूलों की वेनी झविया लटकै प्यारी ।
सिर-पेंच सीस कानन कुंडल छवि भारी ॥
घुँघराली अलकैं नैनन को अति भावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ॥

तैसी दुलहिन सँग श्रीवृषभानु-कुमारी ।
मौरी सिर सोहत अंग केसरी सारी ।।
मुख बरवट कर मैं चूरी सरस सँवारी ।
नकबेसर सोभित चितहि चुरावनवारी ।।
सिर सेंदुर मुख मैं पान अधिक छबि पावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।।

सखियन मिलि रस सों नेह गाँठ लै जोरी ।
रहिं वारि-फेरि तन मन धन सब तृन तोरी ।।
गावत नाचत आनँद सों मिलि कै गोरी ।
मिलि हँसत हँसावत सकत न कंकन छोरी ।।
'हरिचंद' जुगल छबि देखि बधाई गावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ।।५४।।

ईमन, ताल नाम गर्भित

जै आदि ब्रह्म औतारी इक अलख अगोचर-चारी ।
लक्ष्मीपति घन जलद बरन तन रुद्र तीन
दृग चार बदन पति सुन्दर गरुड़ सवारी ।
कहा कहों री रूपक हरि को चलत कबहुँ
धीमे कहुँ द्रुत गति वृंदावन बनवारी ।।
सुफल कतल कर जुलुफ बनी सिर भक्त जनन के आड़े आवत
'हरीचंद' यह सृष्टि रची रचि अचिर चरचरी सारी ।।५५।।

लावनी

तुम बिनु व्याकुल बिलपत बन-बन बनमाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।।
तुव ध्यान धारि धरि बंसी अधर बजावैं ।
भरि बिरह नाम लै राधा राधा गावैं ।।

तुव आगम सुमिरत छन-छन सेज सजावैं ।
मग लखत द्वार पर बार बार उठि धावैं ।।
मुरछात देखि तुव बिना सेज कहँ खाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।।

संजोग साज सिंगार न तुव बिनु भावैं ।
तन चंद चाँदनी औरहु बिरह जरावैं ।।
जल चंदन माला फूल न कछू सुहावैं ।
तुम आगम बिनु कर मींजि मींजि पछतावैं ।।
भई रैन चैन बिनु डसन मदन बिख ब्याली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।।

अपने अपराधन कबहूँ बैठि बिचारै ।
तुव मिलन मनोरथ अल-बल बैन उचारै ।।
कबहूँ संगम-सुख सुमिरत हियरो हारै ।
कबहूँ तेरे गुन कहि कहि धीरज धारै ।।
भई रात ऊजरी दुख बियोग सौं काली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।।

सुमिरत तोहि दृग भरि रहत स्याम सुखदाई ।
गद्‌गद गल बचनहु बोलि न सकत कन्हाई ।।
पिय दुखित दसा देखी नहिं अब तो जाई ।
कर जोरत मिलु अब मोहन सों सखि धाई ।।
'हरिचंद' मनावत पूरब छाई लाली ।
मति करु बिलंब उठि चलु बेगहि सुनु आली ।।५६।।

अष्टपदी

रासे रमयति कृष्णं राधा ।
हृदि निधाय गाढ़ालिंगन कृत हृत बिरहातप-बाधा ।।

आश्लिष्यति चुम्बति परिरम्भति पुनः पुन. प्राणेशं ।
सात्विकभावोदयशिथिलायित मुक्ताऽकुञ्चितकेशं ॥
भुजलतिकाबन्धनमाबद्धं कामकल्पतरुरूपं ।
सीमन्तिनी कोटिशतमोहनसुन्दरगोकुलभूपं ॥
स्वालिंगनकण्टकित-तनु-स्पर्शोदितमदनविकारं ।
स्खलित वचनरचन श्रवण स्खलितीकृतरतरति-मारं ॥
रतिविपरीतलालसालसरस लसित मोहिनीवेशं ।
निज सीत्कारमोहितप्रमदादत्तमाधवावेशं ॥
हुंकृतिद्विगुणसुरतपणश्रमलोलित नाशाभूपं ।
निजासेचनकसिंचित शशधार-मुख-स्वेदपीयूपं ॥
वात्स्यायनविधिविहितषडङ्ग विलक्षण रक्षण दक्षं ।
चतुराशीति चतुर तरता धृत कामकलाकलपक्षं ॥
स्वेद-सुगंधविमूर्च्छितालिकुल सहकिङ्किणिकलरावं ।
नखदानाधरखण्डनजनितोद्भटसहचारीभावं ॥
कठिनकुचामर्दन शिथिलीकृतकरकङ्कणभुजबन्धं ।
प्रतिमुद्रितसिंदूरकज्जलादिक मुख हृदय स्कन्धं ॥
निशावसानाजागर जेनित सखीजनमोहित तन्द्रे ।
गायति गोकुलचन्द्राग्रज कवि हरिश्चन्द्र कुलचन्द्रे ॥५७॥

गरबो

थारे मुख पर सुंदर श्याम, लटूरी लट लटके छे ।
जे ने जोईने म्हारो मन लाल, जाइ-जाइ अटके छे ॥
थारा सुन्दर नैन विशाल, प्यारा अति रूडा छे ।
जेने जोईने जग ना रूप, लागे भूँडा छे ॥
थारा सुन्दर गोल कपोल, गुलाब जेव्हा फूल्या छे ।
जेने जोईने मन-भ्रमर, जुवतिओ ना भूल्या छे ॥

तारे कंठे वे वघनखा, मनोहर सोहे छे।
जेवा नव ससिना वे कटकां, लखताँ मोहे छे॥
तारा वोली अमृत सनी, करण-सुखदाई छे।
जेने सांम्हड़ताँ मन जाय, एह्वी मिठाई छे॥
तारो नख सिख रूप अनूप, सोभा प्यारी छे।
जेनी सोभा लखीने 'हरीचन्द' वलिहारी छे॥५८॥

वाला वल्लभ सुमिरण करताँ सहु दुख भागे छे।
जेनो मङ्गलमय सुभ नाम अमृत जेवो लागे छे॥
जेनो सुन्दर श्याम सरूप कृष्ण जेवो सोहे छे।
जेने कंकुम तिलक ललाटे म्हारूँ मन मोहे छे॥
जेने नैणा जुगल विशाल कृपा-रस भरी रह्या छे।
जेमा राधा कृष्णना रूप शोभा करी रह्या छे॥
जेनी लाँवी लाँवी वाँहों शोभा पाए छे।
जेथी तार्‌या पतित हजार म्हारो मन भाए छे॥
जेना चरणे जन ना शरण तीर्थमय उभये छे।
जेने जोंताँ जनना चित्त भिया थाय निभये छे॥
म्हारा लछमन-नन्दन प्यारा गुरु केह्वाये छे।
जेना पद-रज पर 'हरिचंद' वलि वलि थाए छे॥५९॥

कवित्त

जानि विन पीतम सहाय लै वसंत काम,
　　इनहीं कवहुँ मह्रा प्रलय प्रचारे हैं।
आयो जानि आज प्रान-प्यारो 'हरिचंद' है कै,
　　सीतल सुगंध मंद मंद पग धारे हैं।
मूँदि दै झरोखन कों डारि परदान जामैं,
　　आवै नाहिं क्योंहू पौन अति वजमारे हैं।

छुअन न दैहौं इन्हैं सपनेहूँ अंग यह,
वेई अहैं आग ह्वै हैं अंग जिन जारे हैं ॥६०॥

हय चले हाथी चले रथ चले प्यादे चले,
ऊँट चले रेल चली तार धाय कै चली ।
सूर चले चंद चल्यौ तारा चलें दिन चल्यौ,
रैन चली छिन चले पल पल मे टली ।
बाप चल्यो बेटा चल्यो नारि चली मीत चले,
'हरीचंद' चली देव-दानव की मंडली ।
प्रति जुग प्रति वर्ष प्रति मास प्रति दिन,
प्रति घरी प्रति छिन लागी है चला-चली ॥६१॥

गौरी

प्रान पिया के गुन-गन सुनौ री सहेली आय ।
सुमिरत गर भरि आवत मोपैं कह्यौ न जाय ॥
हौं निकसी घर बाहिर पिय मिले मारग माँह ।
मो पग छाँह छुआई प्यारे मुकुट की छाँहि ॥
मो दृग जल भरि आयो लखि कै ललन सनेह ।
बेबस मन भयो व्याकुल कँपि सिथिल भई देह ॥
लखि मग बहु जन हौं कछु बोलि सकी नहि हाय ।
मुख की छाँह मिलायो मुख पिय तब चलि धाय ॥
गेंद उठावन मिस लै मम पग-तर की धूरि ।
हा हा नैन लगाई मोहन जीवन-मूरि ॥
चलि चलि आगे पाछे लट्टू भयो मँड़राइ ।
अनुचर भाव दिखायो प्रान-जीवन जदुराइ ॥
इक दिन भवन अकेली दुपहर बैठी भौन ।
आए भेस बनाए सुंदर राधा-रौन ॥

उठन चली आदर हित लखि पिय मोहन मैन ।
वादन इमि बैठाई कहि कहि सादर बैन ॥
ठोढ़ी गहि मुख निरखत इक टक भरि दृग नीर ।
भुज गहि कसि हिय लाई प्रान-पिया बलबीर ॥
इक चुम्बन हित उझकत जब लौं मैं ललचाय ।
तब लौं सौ सौ लीन्हे प्यारे कंठ लगाय ॥
देखि सकी न पिया मुख नीचे ह्वै गए नैन ।
तब लौं मैं दृग चूम्यौ सिर हिय धरि सुख-दैन ॥
मम दृग जल-कन देखत पिय अति ही अकुलाइ ।
कसिकै हिए लगायो निज दृग जल बरसाय ॥
मम मुख-ससि-दिसि निरखत पिय दृग भए चकोर ।
भे आनँद-घन चातक देखत मेरी ओर ॥
मम मुख पिय सुख पावत मम-मय भे पिय-प्रान ।
आदर-मय मोहि कीन्ही प्यारे चतुर सुजान ॥
इक मुख गुन-गन अगनित कैसे कहौं बनाय ।
हिय उमगत गर रूँधत नैन रहत झर लाय ॥
परम मधुर नित नूतन कहँ लौं कहिए गाय ।
'हरीचंद' पिय गुन-गन जीवन एक उपाय ॥६२॥

हिंडोले का प्रसंग

एरी हरियारी माँहि नीकी अति लागे तोहि ,
सारी हरियारी जासों तूही हरि प्यारी है ।
वृन्दावन-देवी तू प्रतच्छ मनो आज भई ,
हरिहू की परम बियोग-ताप-हारी है ।
गौर-श्याम-एकता रहस्य मनु प्रकट कियो ,
हरि मैं सब भई सोई हरित सिंगारी है ।

'हरीचंद' हेतु हरि कल्प तरोवर मे,
लपटि रही कीरति की बेलि हरियारी है ॥६३॥

दीपावली का पद

कुंज-महल रतन-खचित जगमग प्रतिबिम्बत अति
सोभित ब्रज-बाल-रचित दीप-मालिका।
इक-इक सत-सत लखात सो छबि बरनी न जात
जोतिमई सोहति सुंदर अरालिका॥
मानहु सिसुमार चक्र उडुगन सह लसत गगन
उदित मुदित पसरित दस दिसि उजालिका।
मेट्यौ तम तोम तमकि बहु रबि इक साथ चमकि,
अगनित इमि दीप करैं कौन तालिका॥
सोरह सिंगार किए पीतम को ध्यान हिए,
हाथ लिए मंगलमय कनक थालिका।
गावत मिलि सरस गीत झलकत मुख परम प्रीत,
आई मिलि पूजन प्रिय गोप-बालिका॥
राधा-हरि संग लसत प्रमुदित मन हेरि हँसत,
जुग मुख छबि छूट परत गोख-जालिका।
'हरीचन्द' छबि निहार मान्यौ त्यौहार चार,
धनि-धनि दीपावलि सब ब्रज-रसालिका ॥६४॥

जीव का दैन्य

कहिए अब लौं ठहर्‌यौ कौन।
सोई भाग्यो तुव साम्हे सो गयो परिछ्यौ जौन॥
नारद विश्वामित्र पराशर महा-महा तप-खानि।
असन बसन तजि बन में निबसे जन कहँ कंटक जानि॥

तिनहूँ की जब भई परिच्छा तब न नेक ठहराए।
माया-नटी पकरि तिनहूँ कहँ पुतरी से नचवाए ॥
तो जे जग मैं बसत विषय के कीट पाप मैं पागे।
तिनको तुम परखन का चाहत हम तो अघ अनुरागे ॥
अपुनो विरुद समुझि करुनानिधि निज गुन-गनहिं विचारी।
सब विधि दीन हीन 'हरीचंदहि' लीजै तुरत उधारी ॥६५॥

प्यारे मोहिं परखिए नाहीं।
हम न परिच्छा जोग तुम्हारे यह समुझहु मन माहीं।
पापहि सों उपज्यौ पापहि में सगरो जनम सिरान्यो ॥
तुव सनमुख सो न्याव-तुला पैं कैसे कै ठहरान्यौ।
कीटहु तें अति तुच्छ मंद मति अधम सबहि विधि हीना॥
सो ठहरै किमि जाँच-समय में जो सबही विधि दीना ॥
दयानिधान भक्त-वत्सल करुनामय भव-भयहारी।
देखि दुखी 'हरीचंदहि' कर गहि वेगहि लेहु उबारी ॥६६॥

साँझ सवेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है ॥
आठ बेर नौबत बज-बजकर तुझको याद दिलाती है।
जाग-जाग तू देख घड़ी यह कैसी दौड़ी जाती है ॥
आँधी चलकर इधर उधर से तुझको यह समझाती है।
चेत चेत जिंदगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है ॥
पत्ते सब हिल-हिल कर पानी हर-हर करके बहता है।
हर के सिवा कौन तू है वे यह परदे में कहता है ॥
दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है।
इक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नहिं सुनता है ॥

रोकर गाकर हँसकर लड़ कर जो मुँहसे कह चलता है ।
मौत-मौत फिर मौत सच है येही शब्द निकलता है ॥
तेरी आँख के आगे से यह नदी बही जो जाती है ।
योंही जीवन बह जायेगा यह तुझको समझाती है ॥
खिल-खिलकर सब फूल बाग में कुम्हला-कुम्हला जाते हैं ।
तेरी भी गत यही है गाफिल यह तुझको दिखलाते हैं ॥
इतने पर भी देख औ सुनकर क्या गाफिल हो फूला है ।
'हरीचंद' हरि सचा साहब उसको बिलकुल भूला है ॥६७॥

कवित्त

यह द्विजवर हम अधम महान वह अति ही
संतोषी मैं तो लोभ ही को जामा हौं ।
वह श्रुति पढ्यो महामूढ़ बुद्धि मेरी उन
तंदुल दियो हौं मनहूँ सो निहकामा हौं ।
'हरीचंद' आइ बनी एकै बात दीनानाथ
यासों मोहिं राखि लेहु जो पै अघ-धामा हौं ।
बालपने ही सों सखा मान्यौ है तुमहिं एक
दीन हीन छीन हौं मैं याही सों सुदामा हौं ॥६८॥*

होइ कुल-नारी ऐसी बात क्यों बिचारी यामें
अति अघ भारी यह कहत पुकारी हौं ।
यही करनी है जो तौ खोजौ कोऊ धनी बली
हौं तो निज नारि के बियोग में दुखारी हौं ।

---

* नवोदिता हरिश्चंद्र चन्द्रिका खं० ११ सं० २–३ (नवं० और दिसं० सन् १८८४ ई०) में प्रेम प्रलाप नाम से ५० पद पूरे छपे थे, जिनमें से केवल नौ अन्य संग्रहों में नहीं आए हैं, अतः वे इसी संग्रह के अंत में दे दिए गए हैं । —संपादक ।

'हरीचंद' याही सों सुदामा बतरात इमि
छाँड़ौ मेरो हाथ ना तो दैहौं शाप भारी हौं।
द्वारिका मैं जाइ कै पुकारिहौं हरिहि मोहिं
काहे दुख देत मैं तौ बाम्हन भिखारी हौं ॥६९॥

कितै गई हाय मेरी कुटिया परन छाई
साढ़े तीन पादहू की खटियौ कहा भई।
कितै गए जनम के जोरे माटी-भाँड़ मेरे
सहसन टूक की कथरिया कितै गई।
'हरीचंद' कहत सुदामा बिलखाइ इत
लाई किन राशि मनि-कंचन महामई।
और जो गयो तो सहि जैहौं कोऊ भाँति पै
बताओ कोऊ हाय मेरी बाम्हनी कहाँ गई ॥७०॥

परन-कुटीर मेरी कहाँ बहि गयी इत
कंचन महल ऊँचे ठाढ़े हैं महा विचित्र।
मृत्तिका के भाँड़हू बिलाने मेरे कंथा सह
टूटी पटरी मैं धरी पोथी हू गई पवित्र।
'हरीचंद' नारिहू को खोज ना मिलत कहूँ
रोअत सुदामा हाय कैसो भयो है चरित्र।
मिलन सों रह्यौ-सह्यौ घरहू उजार्‌यो वाह
द्वारिका के नाथ भली मित्रता निवाही मित्र ॥७१॥

फल दियो भीलनी अजामिल उचार्‌यो नाम
गिद्ध कियो शुद्ध, गज कलिका चढ़ाई है।
गोपी-गोप नेह कीनो केवट चरन धोयो
सेवा करी भील कपि रिपु सों लराई है।

'हरीचंद' पद को परस मुनि-नारि लह्यौ
गनिका पढ़ावत सुवा को नाम गाई है।
इनके न एकौ गुन औगुन सबै के मोमैं
एतेहू पै तारौ तबै आपु की बड़ाई है ॥७२॥

देखि कै काली कराली महा डरि बुद्धि न ता पद माँहि धँसी है।
लक्ष्मी के बहु वैभव चाहि न लालच में मति मेरी फँसी है।
त्यों 'हरीचंद' सरस्वति सेइ न ज्ञान के ध्यानन मैं हुलसी है।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७३॥

जो बिनु नासिका कान को ब्रह्म है ता दिसि बुद्धि न नेकु धँसी है।
निर्गुन जौन निरंजन है छवि ताकी न या जिय माहिं धँसी है।
त्यों 'हरिचंद जू' सीस सहस्र के देव मैं इच्छा न नेकु गँसी है।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७४॥

छोटे हैं छोटिहि बात रुचै मोहिं यासो न जाल में बुद्धि फँसी है।
गुंज हरा परे देखि नरामधि दृष्टि तहीं मम जाय धँसी है।
त्यो 'हरिचंद जू' मोर-पखौअन गौअन देखि महा हुलसी है।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७५॥

लोचन चारु चकोरन कों सुख-दायक नायक गोप ससी है।
होत हियो हरियारो बिलोकत कंठ हरा हरि के तुलसी है।
पालक हैं 'हरिचंद' को तौन जो नंद को बालक लोक जसी है।
चाकर हैं ब्रज साँवरे के जिन टेंटिन ऊपर फेंट कसी है ॥७६॥

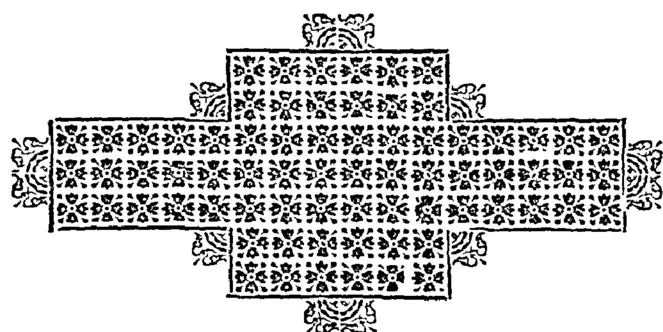
गीत-गोविंदानंद

सं० १९३५

हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० ५–६

नवं० सन् १८७७ ई० से अक्तू०

सन् १८७८ ई० तक



गीत-गोविंदानंद

दोहा

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥
रसिक-राज बुध-वर विदित प्रेमी प्रिय-पद-सेव ।
राधा-गुन-गायक सदा मधु-बच जय जयदेव ॥ २ ॥
कहँ कविवर जयदेव-बच कहँ मम मति अति हीन ।
पै दोउ हरि-गुन-गामिनी एहि हित यह स्रम कीन ॥ ३ ॥
रसिकराज जयदेव की कविता को अनुवाद ।
कियो सबन पै नहिं लह्यौ तिनमैं तौन सवाद ॥ ४ ॥
मेटन को निज जिय खटक उर धरि पिय नँदनन्द ।
तिनहीं के पद - बल रच्यो यह प्रबंध हरिचंद ॥ ५ ॥
जिमि बनिता के चित्र मैं नहिं कछु हास-विलास ।
पै जेहि सो प्रिय सो लहत वाहू मैं सुखरास ॥ ६ ॥
तैसहि गीत - गुविंद अति सरस निरस मम गीत ।
पै जिन कहँ प्रिय तौन ते करिहैं यासों प्रीत ॥ ७ ॥

मंगलाचरण

मेघन तें नभ छाय रहे, बन-भूमि तमालन सों भई कारी ।
साँझ समै डरिहै, घर याहि कृपा करिकै पहुँचाबहु प्यारी ।
यों सुनि नंद - निदेश चले दोउ कुंजन मे वृषभानु-दुलारी ।
सोइ कलिंदी के कूल इकंत की, केलि हरै भव-भीति हमारी ॥ ८ ॥४

दोहा

वाणी चारु चरित्र सों, चित्रित जो पिय भीति ।
पद्मावति पद दास जो, जानत कविता - रीति ॥ ९ ॥
सोई कवि जयदेव यह, गीत - गोविंद रसाल ।
रच्यो कृष्ण कल केलिमय, नव प्रबंध रस-जाल ॥१०॥
जौ हरि सुमिरन होइ मन, जौ सिंगार सो हेत ।
तौ बानी जयदेव की, सुनु सब सुगुन-निकेत ॥११॥

सवैया

वेद-उधारन मंदर-धारन भूमि-उबारन है बनचारी ।
दैत विनासी बलि के छलि छय-कारक छत्रिन के असुरारी ॥
रावन-मारन त्यों हल-धारन वेद-निवारन म्लेच्छ-सुदारी ।
यों दस रूप-विधायक कृष्णहिं कोटिन्ह कोटि प्रनाम हमारी ॥१२॥

राग सोरठ

जय जय हरि-राधा-रस-केलि ।*
तरनि तनूजा - तट इकंत में बाहु बाहु पर मेलि ॥ध्रुव०॥
एक समै हरि नंदराय सँग रहे बाट में जात ।
तितही श्री राधा सुख-साधा आइ कढ़ी हरखात ॥

---

*इस मंगलाचरण में बारहो रस हैं। इसमें यथाक्रम शृंगार, अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, वात्सल्य, करुणा, बीभत्स, सख्य, माधुर्य और शांत हैं। (चंद्रिका)

हरि-माया करि मेघ बुलाए छाए घेरि अकास।
साँझ समय भुव लहि तमाल तरु भई श्याम सुखरास ॥
देखि नंद भय करि श्यामा सों बोले बैन रसाल।
यह डरपत लखि कै अँधियारी वारो मेरो लाल ॥
आगे हौं लै जाइ सकत नहिं भई भयानक साँझ।
राधे करिकै दया याहि तुम पहुँचाओ घर माँझ ॥
इमि सुनि नंद-निदेस चले दोउ विहरत जमुना-तीर।
'हरीचंद' सो निरखि जुगल-छवि हरी द्दगन की पीर* ॥१३॥

राग मालव

जय जय जय जगदीश हरे।
प्रलय भयानक जलनिधि जल धँसि प्रभु तुम वेद उधारे।
करि पतवार पुच्छ निज विहरे मीन सरीरहि धारे ॥ ध्रु० ॥
कठिन पीठ मंदर मंथन किन छिति भर तिल सम राजै।
गिरि घूमनि सुहरानि नींद-बस कमठ रूप अति छाजै ॥जय० ॥
कनक-नयन-वध रुधिर छींट मिलि कनक वरन छवि छायो।
रद आगे धर ससि कलंक मनु रूप वराह सुहायो ॥जय० ॥
कर-नख-केतकिपत्र अग्र अलि-कनककसिपु तन फार्‌यौ।
खंभ फारि निज जन-रच्छन-हित हरि नरहरि-वपु धार्‌यौ ॥जय० ॥
अद्भुत वामन वनि वलि छलिकै तीन पैंड़ जग नाप्यौ।
दरसन मज्जन पान समन अघ निज नख जल थिर थाप्यौ ॥जय० ॥
अभिमानी छत्रीगन वधि तिन रुधिर सींचि धर सारी।
इकइस वार निछत्र करी भुव हरि भृगुपति-वपु-धारी ॥जय० ॥
दस दिसि दस सिरमौलि दियो वलि सब सुरगन भय हारे।
सिय लछमन सह सोभित सुंदर रामरूप हरि धारे ॥ जय० ॥

---

* ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण-जन्म खंड की यह कथा है। (चंद्रिका)

सुंदर गौर सरीर नील पट ससि मैं घन लपटायो।
करसन कर हल सों जमुना जल हलधर रूप सुहायो ॥ जय० ॥
अति करुना करि दीन पसुन पैं निंदे निज सुख वेदा।
कलिजुग धरम कहे हरि ह्वै के बुद्ध रूप हर खेदा ॥ जय० ॥
म्लेच्छ वधन हित कठिन धार तरवार धारि कर भारी।
नासे जवन सत्ययुग थाप्यौ कलकि रूप हरि धारी ॥ जय० ॥
नंद-नँदन जग-वंदन दस वपु धरि लीला विस्तारी।
गाई कवि जयदेव सोई 'हरिचंद' भक्त-भय हारी ॥ जय० ॥१४॥

झिंझौटी था समाच

कमला-उर धरि बाहु विहारी।
कुंडल कनक गंड जुग-धारी ॥
ललित कलित बनमाल सँवारी।
जय जय जय हरि देव मुरारी ॥
जय जय दिनमनि तेज-प्रकासन।
जय जय जय जय भव-भय-नासन ॥
मुनि-मन-मानस-जलज-विकासन।
जय जय हरि केसव गरुड़ासन ॥
जय कालिय विषधर बल-गंजन।
जय जय ब्रज-जुवती मन-रंजन ॥
जदु-कुल-कमल-सूर दृग खंजन।
जय जय हरि केसव भव-भंजन ॥
जय जय मुर-मधु-नरक-विदारन।
पन्नगपति-गामी जग-तारन ॥
जय जय सुर-कुल-सुख-विस्तारन।
जय हरिदेव भक्त-भय-हारन ॥

जय जय अमल कमल-दल लोचन ।
जय जय भवपति भव-दव-मोचन ॥
त्रिभुवन-गति ब्रज-तिय-मन-रोचन ।
जय जय हरि सिर वर गोरोचन ॥
जय जय जनक-सुता कृत भूषण ।
समर विजित त्रिसिरा खर-दूषण ॥
जय दसकंठ - वनज-वन-भूषण ।
जय दृग-छटा कमल छवि भूषण ॥
जय जय अभिनव जलधर सुन्दर ।
जय धृत-पृष्ठ कठिन गिरि मंदर ॥
जय विहरन गोवर्धन - कंदर ।
श्रीमुख ससि रत गोप पुरंदर ॥
हम सब तुव पद-पंकज-दासा ।
पूरहु निज भक्तन की आसा ॥
तिनको तुम दुख नित नित नासा ।
जिन कहँ तुव चरनन विस्वासा ॥
श्री जयदेव रचित मन-भाई ।
मंगल उज्ञल गीति सुहाई ॥
'हरीचन्द' गावत मन लाई ।
ताकी हरि नित करत सहाई ॥१५॥

इति मंगलाचरण ।

प्रथम सर्ग

(सामोद दामोदर)

वसन्त

हरि विहरत लखि रसमय वसन्त।
जो विरही जन कहँ अति दुरंत॥
वृन्दावन-कुंजनि सुख समंत।
नाचत गावत कामिनी-कंत॥
लै ललित लवंगलता - सुवास।
डोलत कोमल मलयज बतास॥
अलि-पिक-कलरव लहि आस-पास।
रह्यौ गूँजि कुंज गह्वर अवास॥
उनमादित ह्वै तपि मदन-ताप।
मिलि पथिक बधू ठानहिं बिलाप॥
अलि-कुल कल कुसुम-समूह-दाप।
बन सोभित मौलसिरी कलाप॥
मृगमद - सौरभ के आलवाल।
सोभित बहु नव चलदल तमाल॥
जुव-हृदय - विदारन नख कराल।
फूले पलास बन लाल लाल॥
बन प्रफुलित केसर कुसुम जान।
मनु कनक छरी लिए मदन रान॥
अलि सह गुलाब लागे सुहान।
विष बुझे मैन के मनहुँ बान॥
नव नीबू फूलन करि विकास।
जग निलज निरखि मनु करत हास॥

तिमि विरही हिय-छेदन हतास ।
वरछी से केतकि-पत्र पास ॥
लपटत इव माधविका सुवास ।
फूली मल्ली मिलि करि उजास ॥
मोहे मुनिजन करि काम-आस ।
लखि तरुन सहायक रितु-प्रकास ॥
पुसपित लतिका नव संग पाय ।
पुलकित बौराने आम आय ॥
लहि सीतल जमुना लहर बाय ।
पावन बृंदावन रह्यौ सुहाय ॥
जयदेव रचित यह सरस गीत ।
रितु-पति विहरन हरि-जस पुनीत ॥
गावत जे करि 'हरिचंद' प्रीत ।
ते लहत प्रेम तजि काम-भीत ॥१६॥

मालकोस

सखि हरि गोप-वधू सँग लीने ।
विलसत विविध विलास हास मिलि केलि-कला रसभीने ॥ध्रुव०॥
स्याम सरीर खौर चंदन की पीत बसन बनमाला ।
रमनि हँसनि झलकत मनि कुंडल लोल कपोल रसाला ॥
पीन उरोज भार झुकि हरि को प्रेम सहित गर लाई ।
गोप-वधू कोउ पंचम रागहिं ऊँचे सुर रहि गाई ॥
चपल कटाच्छन जुवती-जन-उर काम बढ़ावनहारे ।
मुग्ध वधू कोउ ध्याइ रही मन मैं मनमोहन प्यारे ॥
कोउ हरि के कपोल ढिग अपनो नवल कपोलहि लाई ।
बात करन मिस चूमति पिय-मुख तन पुलकावलि छाई ॥

जमुना-तीर निकुंज पुंज मैं मदनाकुल कोउ नारी।
खैंचत गहि हरि को पीतांबर हँसत खरे बनवारी॥
ताल देत कंकन धुनि मिलि कल बंसी बजत सुहाई।
ता अनुसार सरस कोउ नाचति लखि हरि करत बड़ाई॥
बिहरत कोउ सँग कोउ मुख चूमत काहू को गर रहे लगाई।
काहू को सुंदर मुख देखत चलत कोऊ सँग लाई॥
जो जयदेव कथित यह अद्भुत हरि-बन-बिहरनि गावै।
बल्लभ-बल 'हरिचंद' सदा सो मंगल फल नव पावै॥१७॥

इति सामोद दामोदरो नाम प्रथम सर्ग।

बिहाग

जिय तें सो छबि टरत न टारी।
रास-बिलास रमत लखि मो तन हँसे जौन गिरिधारी॥ ध्रु०॥
अधर मधुर मधु-पान छकी बंसी-धुनि देति छकाई।
ग्रीव-डुलनि चंचल कटाच्छ मिलि कुंडल-हिलनि सुहाई॥
घुँघुरारी अलकन पै प्यारी मोर-चंद्रिका राजै।
नवल सजल घन पै मनु सुंदर इंद्रधनुष-छबि छाजै॥
गोप-बधू-मुख चूम अधर अमृत रस लाल लुभाए।
बंधुजीव-निंदक ओठन पै मंद हँसनि मन भाए॥
भरत भुजन मैं गोप-बधूटिन प्रेम पुलक तन पूरे।
कर-पद-गल-मनिगन आभूखन मेटत हिय तम रूरे॥
स्याम सुभग सिर केसर-रेखा घन नव ससि छबि पावै।
जुवती-जूथ कठिन कुच मीजत जेहि जिय दया न आवै॥
गंडन पर मनि-मंडित कुंडल झलकत सब मन मोहै।
सुर-नर-मुनिगन बंदित कटि-तट लपटि पीत पट सोहै॥

विसद कदंब तरे ठाढ़े जन-भव-भय-मेटनवारे।
काम-भरी चितवन लखि मम उर काम-बढ़ावनहारे।।
श्री जयदेव कथित यह हरि को रूप ध्यान मन भायो।
बसै सदा रसिकन के हिय 'हरिचंद' अनूप सुहायो।।१८।।

अरी सखि मोहिं मिलाउ मुरारी।
मेटौं काम-कसक तन की गर लाइ रमन गिरिधारी।।ध्रु०।।
इक दिन गहवर कुंज गई हौं तहाँ छिपे रहे प्यारे।
चितवत चकित चहूँ दिसि मोहिं लखि हँसे सुरति-सुख-धारे।।
प्रथम समागम लाजि रही बहु बातन तब बिलमाई।
बोलत ही हँसिकै कछु मो तन नीवी सिथिल कराई।।
कोमल सेज सुवाइ मोहिं उर पर भर दै रहे सोई।
हरि आलिंगत चुंबत ही पियो अधर लपटि तिन दोई।।
आलस-बस दृग मूँदत ही तिन तन पुलकावलि छाई।
स्वेद सिथिल तब होत मोहिं भए काम बिवस ब्रजराई।।
बोलत ही मम प्राननाथ बहु कोक-कला बिसतारी।
कुंतल कुसुम खसित लखि मम कुच जुग नख रेख पसारी।।
नूपुर बोलत ही पिय प्यारे सुरत बितानहि तान्यौ।
रमत गिरत किंकिनि सिर गहि मुख चूमत अति सुख मान्यौ।।
रति-सुख-समुद-मगन मोहिं लखि दृग मूँदि रहे मद थाके।
बिथकित सेज परी लखि पियहू काम-कलोलन छाके।।
गोप-बधू सखि सों इमि भाखत स्याम काम-रस पूरी।
गायो सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' भक्ति-रति-मूरी।।१९।।

हाहा गई कुपित ही प्यारी।
निज अपमान मानि मन भारी।।ध्रु०।।
मोहिं घिर्‌यौ लखि बधुन मँझारी।
रिस करि गई उदास बिचारी।।

निज अपराध जानि भय धारी।
हौंहू ताहि न सक्यौ निवारी॥
किमि ह्वैहै करिहै कहा बारी।
का कहिहै मम बिरह-दुखारी॥
धन जन जीवन घर परिवारी।
ता बिनु वृथा जगत-निधि सारी॥
सो मुख-चंद-जोति उँजियारी।
कोप कुटिल भौंहैं कजरारी॥
मनहुँ कँवल पर भँवर-कतारी।
बिसरति हिय तें नाहिं बिसारी॥
बन बन फिरौं ताहि अनुसारी।
बिलपौं वृथा पुकारि पुकारी॥
अब हौं हिय सों ताहि निकारी।
रमिहौं तासों गल भुज डारी॥
मम अपराधन हिये बिचारी।
अतिहि दुखित तेहि जात निहारी॥
पै नहिं जानौं कितै सिधारी।
तासों सकत मनाइ न हारी॥
दृग सों छिनहूँ होत न न्यारी।
आवत जात लखात सदा री॥
पै यह अचरज अतिहि हहा री।
धाइ लगत गर क्यौं न पियारी॥
अबकैं करु अपराध छमा री।
करिहौं फेर न चूक तिहारी॥
सुंदरि दरसन दै बलिहारी।
दहत मदन तो बिनु तन जारी॥

किंदु विल्व वारिधि तमहारी।
गाई कवि जयदेव सँवारी॥
विरहातुर हरि कहनि कथा री।
जो 'हरिचंद' भक्त-सुखकारी॥२०॥

प्यारे तुम बिनु व्याकुल प्यारी।
काम-बान-भय ध्यान धरत तुव लीजै ताहि उवारी॥
चंदन चंद न भावत पावत अति दुख धीर न धारै।
अहिगन-गरल बगारि सरल तन मलयानिल तेहि जारै॥
अविरल बरसत मदन-बान लखि उर महँ तुमहिं दुराई।
सजल कमल-दल कवच बनाइ छिपावत हियहिं डराई॥
कुसुम सेज कंटक सों लागत सुख-साजन दुख पावै।
व्रत सम सुख तजि तुव रति मनवत कोउ बिधि समय बितावै॥
अविरल नीर ढरकि नैननि तें रहत कपोलन छाई।
मनहुँ राहु-विदलित ससि तें जुग अमृत-धार वहि आई॥
मृगमद लै तुव चित्र बनावति व्याकुल बैठि अकेली।
काम जानि तेहि लिखति मकर-सर पुनि प्रनवत अलबेली॥
पुनि पुनि कहति अहो पिय प्यारे पायँ परति अपनाओ।
तुम बिनु दहत सुधानिधि प्रीतम गर लगि मरत जिआओ॥
विलपति हँसति विखाद करति रोअति कबहूँ अकुलाई।
कबहुँ ध्यान महँ तुमहिं निरखि गर लागति ताप मिटाई॥
ऐसहि जो हरि-विरह-जलधि महँ मगन होइ रस चाहै।
सखी-वचन जयदेव कथित 'हरिचंद' गीत अवगाहै॥२१॥

तुव वियोग अति व्याकुल राधा।
मिलि हरि हरहु मदन-मद-बाधा॥ध्रु०॥
कृश तन प्रानहु भर सम जानै।
हार पहार सरिस उर मानै॥

कोमल चंदन बिष सम लागै।
सुख सामा लखि संकित भागै ॥
लेत स्वाँस गुरु व्याकुल भारी।
दहति तनहि मदनागि प्रजारी ॥
चौंकि चौंकि चितवत चहुँ ओरी।
स्रवत नीर नलिनी मनु तोरी ॥
तुव बिनु सुमन परस तन जारी।
सूनी सेज न सकत निहारी ॥
निज कर सों न कपोल उठावै।
नव ससि साँझ गहे मनु भावै ॥
पुनि पुनि हरि तुव नाम उचारै।
बिरह मरत कोउ बिधि जिय धारै ॥
कवि जयदेव कथित यह बानी।
'हरीचंद' हरि-जन-सुखदानी ॥२२॥

राग झिझौटी

बिरह-बिथा तें व्याकुल आली।
तुव बिनु बहुत बिकल बनमाली ॥ध्रु०॥
मलय-समीर झकोरत आवत।
तन परसत अति काम जगावत ॥
फूले बिबिध कुसुम तरु डारन।
बिरही जन हिय नखन बिदारन ॥
चंद चाँदनी सों तन जारत।
तुव बिछुरे पिय प्रान न धारत ॥
मदन-बान बिधि व्याकुल भारी।
तलपि तलपि बिलपत बनवारी ॥

मधुर भँवर धुनि सहि नहिं जाई।
मूँदे रहत श्रवन हरिराई ॥
जब निसि बढ़त मदन-रुज भारी।
मोहत विकल अधीन मुरारी ॥
छोड़ि देह-सुख गेह बिसारी।
गिरि-बन-बास करत गिरिधारी ॥
मुरछि धरनि लोटत बिलखाई।
चौंकि रहत राधे रट लाई ॥
हरि को बिरह-विलास सुहायो।
श्री जयदेव सुकवि यह गायो ॥
'हरीचंद' जेहि यह रस भावत।
तेहि हरि अनुभव प्रगट लखावत ॥२३॥

बिलम मत करु पिय सों मिलु प्यारी।
बैठे कुंज अकेले तुव हित मदन-मथन गिरिधारी ॥ध्रु०॥
धीर समीर घाट जमुना-तट बन राजत बनमाली।
कठिन पीन कुच परसन चंचल कर जुग सोभा-साली ॥
लै तुव नाम बदत संकेतहि मधुरी बेनु बजाई।
तुव दिसि तें जु रेनु उड़ि आवत रहत ताहि हिय लाई ॥
उड़त पखेरुन गिरत पतौअन तुव आगवन बिचारी।
सेज सँवारत इत उत चितवत चकित पंथ बनवारी ॥
चंचल मुखर नूपुरहि तजि मुख अंचल ओट दुराई।
तिमिर-पुंज चल कुंज सखी मिलि हियरो लै न सिराई ॥
रति-विपरीत पिया-उर ऊपर मुक्तमाल ढिग सोही।
घन पैं चपल बलाका सह चपला सी रह मन मोही ॥
किंकिनि तजिकै बसन उतारि निरंतर अंतर त्यागी।
चढ़ु पिय कोमल किसलय सेज पिया के उर रहु लागी ॥

हरि बहु-नायक मानी रैनहु जात चली सब बीती।
बेगहि चलु करु पीय मनोरथ पालि प्रीति की रीती॥
श्री जयदेव-कथित दूती-बच हरि-राधा गुन गाई।
लही प्रेम-फल सब 'हरिचंद' जुगल छबि जीअ बसाई॥२४॥

तुम बिनु दुखित राधिका प्यारी।
तुव-मय भइ तन सुरति बिसारी॥
अधर मधुर मधु पियत कन्हाई।
तुमहिं सबै दिसि परत दिखाई॥
मिलत चलत उठि तुम कहँ धाई।
गिरि गिरि परत बिरह दुखदाई॥
किसलय बलय बिरचि कर धारी।
तुव रति ध्यान जिअति सुकुमारी॥
कबहुँ रचति रस-रास सँवारी।
जानति हमहीं मदन-मुरारी॥
बदति सखिन सों पुनि पुनि आली।
अजहुँ न क्यों आए बनमाली॥
लखि घन सम अँधियार भुलाई।
तुव धोखे चूमति गर लाई॥
तुव बिलंब अति ही अकुलाई।
ब्याकुल रोअति सेज सजाई॥
श्री जयदेव रचित जो गावै।
'हरीचंद' हरि-पद-रति पावै॥२५॥

(नागर नारायण नाम ७म सर्ग)

हा हरि अजहूँ बन नहि आए।
बैठे बाट बिलोकत बीती औधहु कित बिलमाए॥ ध्रु०॥

सखियन झूठ बोलि बहरायो, हा, अब कौन उपाई।
प्राननाथ बिनु बिफल सबै मन नव जोबन सुँदराई॥
जाके मिलन हेत कारी निसि बन बन डोलत धाई।
मदन-बान बेदना देत मोहिं सोई निठुर कन्हाई॥
घरहू छुट्यौ हरिहु नहिं आए तौ अब मरनहिं नीको।
कहा लाभ बिरहागि दाहि तन रखिबो जीवन फीको॥
इत मधु मधुर जामिनी मो हिय बेदन देत प्रजारी।
उत कोउ बड़भागिनि कामिनि सँग ह्वैहैं रमत मुरारी॥
कर कंचन कंकन बाजूबँद बिरहानल तपि जारैं।
बिष से बिषय साज सब लागत उलटे दुखहिं प्रचारैं॥
कुसुम - सरिस मम कोमल तन पैं फूल-माल हू भारी।
तीछन काम - बान सी बेधति बिनु प्यारे गिरिधारी॥
हम जाके हित बेत कुंज मैं बैठीं त्यागि हवेली।
सो हरि भूलेहु सुमिरत नहिं मोहिं छाँड़ी हाय अकेली॥
इमि बिलपति बृषभानु - लली हरि-बिरह-बिथा अकुलाई।
श्री जयदेव सुकवि मधुरी 'हरिचंद' कथा सोइ गाई॥२६॥

हरि सँग बिहरति ह्वैहै कोऊ।
बड़भागिनि जुवती गुनवारी दै गल मैं भुज दोऊ॥ ध्रु० ॥
मदन-समर-हित उचित भेस लै कंचुकि कुच कसि बाँधे।
कच-बिगलित कुसुमन सों मानहुँ बीर सुमन-सर साधे॥
हरि - गल लागत स्वेदादिक तन मदन - बिकारहु जागे।
कुच - कलसन पर मुक्तहार बहु हिलत सुरत रस पागे॥
मुख-ससि-निकट ललित अलकावलि उमरि घुमरि रहि छाई।
पिय-अधरासव-पान छकी तिमि झमत तिय अलसाई॥

परसत उझकि कपोलन चंचल कुंडल जुगल सुहाए।
किंकिनि कलरव करति हिलत जघ जुगल जंघ मन भाए॥
पिय तिय दिसि निरखत चितवति कछु हँसि करि नैन लजीले।
विविध भाव रस भरी दिखावति लहि रति रसिक रसीले॥
रोम पाँति उलहित तन वेपथु होत गरो भरि आएँ।
मूँदि मूँदि दृग खोलति लै लै स्वास सुरति सुख पाएँ॥
झलकत मुक्त-जाल से तन पर स्रम-सीकर अति नीके।
रति-रन अभिरत थकि परी गल लगिकै हिय पर पी के॥
श्री जयदेव सुकवि भाखित यह हरि-विहार रस गावै।
काम-विमुख ह्वै 'हरीचंद' सो प्रेम रुचिर* फल पावै॥२७॥

माधव नव रमनी सँग लीने।
बंसी-बट यमुना-तट, विहरत रति-रन जय रस-भीने॥ ध्रु०
मदन पुलक तन चूमन पिय मुख फरकत अधर लसाहीं।
मृगमद तिलक देत ता मुख मैं मनु ससि मैं मृग-छाहीं॥
जुवजन मनहर रतिपति मृग वन सघन सुघन सम कारे।
चिकुर निकर कर लिए सँवारत गूँथि कुसुम बहु प्यारे॥
नभमंडल सम कुच जुग मैं घन-मृगमद लपटि सुहावैं।
नख-छत-ससि लखि नखत-माल सी मुक्तमाल पहिरावैं॥
नवल नलिन भुज कोमल करतल सुकमल दल से राजैं।
मरकत कंकन तहँ पहिरावत मधुप-माल सम भ्राजैं॥
सघन जघन मनु मदन-हेम-सिंहासन सुरुचि सोहायो।
सुरँग वसन पर तोरन-सम पिय किंकिनि-जाल बँधायो॥
कमलालय नख-मनिगन-भूखित पद-पल्लव हिय लाई।
निज मन हित मनु मेंड़ बनावत जावक-रेख सुहाई॥

*पाठा० अनुपम।

इमि वलवीर निठुर वन विहरत सँग लै दूजी नारी ।
ता हित तरु - तर वैठि विलोकत वाट वृथा हम हारी ॥
यों हरि रसमय होय कहति सखियन सों व्याकुल प्यारी ।
सो कविवर जयदेव कह्यो 'हरिचंद' कलुख कलि हारी ॥२८॥

कमल-लोचन पिया जाहि गर लाइहै ।
सो न सजनी कवहुँ विरह–दुख पाइहै ॥
देखि किसलय सेज सो न दुख मानिहै ।
आन-प्रीतमहि निज निकट करि जानिहै ॥
अमल कोमल कमल-वदन हिय धारिहै ।
तेहि न सर कुटिल कामहुँ कवहुँ मारिहै ॥
अमृत मधु मधुर पिय वचन स्रवन पारिहै ।
ताहि अति मलिन मलयानिल न जारिहै ॥
थल-कमल सम चरन करन हिय चाहिहै ।
ताहि चंदहु न निज किरन-सर दाहिहै ॥
श्याम सुंदर सजल जलद तन लागिहै ।
तासु हिय कवहुँ नहिं विरह दुख पागिहै ॥
कनक सम पीत पट लपटि सुख सानिहै ।
सो न गुरुजन हँसन संक जिय मानिहै ॥
तरुन-मनि कृष्ण सों सुरत सुख ठानिहै ।
सो न सपनेहुँ कवौं विरह दुख जानिहै ॥
सुकवि जयदेव कृत गीत जो गाइहै ।
सो न 'हरिचंद' भव-दुखन घवराइहै ॥२९॥

भैरव

हम सों झूठ न वोलहु माधव जाहु जू केशव जाओ ।
जो जिय वसी रैन निवसे जहँ ताही कों गर लाओ ॥ ध्रु० ॥

अनियारे दृग आलस-भीने पलकैं घुरि घुरि जाहीं।
जागि तिया-रस पागि न प्रगटत निज अनुराग लजाहीं ॥
बार बार चूमन सो रस भरि तिय-जुग-दृग कजरारे।
लाल रहे तुव अधर लाल पै भए अंग सब कारे ॥

रति-रन अभिरत स्याम सुभग तन नख-छत लखत सुहायो।
मदन नील पट कनक-लेखनी मनु जयपत्र लिखायो ॥
पिय तुव हिय तिय-पद को जावक लखहु न कैसो सोहै।
मनु जिय काम-लता उलही है पल्लव पसरि रह्यो है ॥

तुम अति निठुर तदपि हम तुम सों तनिकहु बिलग न प्यारे।
तुव अधरन रद-छद पै ताकी पिय उर पीर हमारे ॥
तन जिमि कारो तिमि मनहू तुव कुटिल कपट सों कारो।
अपनी जानि औरहू हम कहँ बदि मदनानल जारो ॥

बन बन बधुन-बधन-हित डोलत निरदय बने सिकारी।
या मैं अचरज नहि तुम प्रथमहिं नारि पूतना मारी ॥
सुनि तिय-बचन सरोस पिया हठि लीनी कंठ लगाई।
श्री जयदेव सुकवि 'हरिचंद' बिलास-कथा सोइ गाई ॥२०॥

मानी माधव पिय सों मानिनि मान न करु मम मान कही।
बहत पवन लखि हरि उठि आए तू केहि सुख घर बैठि रही ॥
कुच जुग कलस ताल-फल से गुरु सरस तिनहिं कित बिफल करै।
बार बार सखि तोहि समुझावति किन सुंदर हरि सो बिहरै ॥
बिलपति बिकल तोहि लखि सखिगन हँसहिं तऊ नहिं लाज धरै।
बैठे सजल नलिन-दल से जन हरि लखि किन दृग पीर हरै ॥
किन जिय खेद करति सुनु मम बच हरि सों मिलि मृदु बोलि अरी।
सुनि जयदेव सखी 'हरिचंद'-कथन निज उर-दुख दूर दरी ॥२१॥

मान तजि मानु सुनु प्रान-प्यारी।
दहत मोहिं मदन तुव विरह जर जाल सौं,
अधर मधु पान दै लै उवारी ॥ ध्रु० ॥

मधुर कछु बोलि मुख खोलि जासों निरखि
दसन-दुति विरहतम दूर नाऊँ।
अधर मधु मधुर सुंदर सुधा-सिंधु, मुख-
ससिहि लखि दृग-चकोरहि जुड़ाऊँ ॥

साँचही होइ रूठी जुपै कोप करि,
तौ न क्यों नयन-सर मोहिं मारै।
बाँधि भुज-पास सों अधर-दंतन सुदसि,
क्यों न अपराध-बदलो निवारै ॥

तुही मम प्रानधन भव-जलधि-रतन तू,
तोहि लगि जगत हौं जीव धारौं।
तनिक जौ तू कृपा कोर मो दिसि लखै,
तौ जगहि तोहि परि वारि डारौं ॥

नील नलिनी सुदल सरिस तुव नयन जुग,
कोप सों कोकनद रूप धारे।
तौ न किन जानि मोहि कृष्ण हति काम-सर,
अरुन करु तरुन अनुराग भारे ॥

क्यों न सोभित करति कुंभ-कुच हार सों,
हीय जासों दुगुन होइ राजै।
सघन निज जघन पैं बाँधि किंकिनि कलित,
मदन नौवति सरिस सुरत वाजै ॥

थल-कमल-मान-हर मम हृदय प्रानकर,
सरस रतिरंभ तुव चरन प्यारे।

कहै तो लाइ हिय मैं महावर भरौं,
हरौं जिय-ताप आनंदवारे ॥
सदन संताप को मदन मोहिं कदन हित,
दहत अति अगिनि तन मैं बढ़ाई।
चरन पल्लव जुगल-गरल-हर सीस मम,
धारि किन तेहि तुरत दै बुझाई ॥
भाखि इमि चतुर हरि पगन परि तियहिं,
रिझयो लियो संक तजि अंक लाई।
सोइ पद्मावलि - प्रान - जयदेव कवि,
कही 'हरिचंद' लीला बनाई ॥३२॥

उठि चलु मोहन-ढिग प्यारी।
मंजुल वंजुल कुंज विलोकत तुव मग गिरिधारी।
मनावत तो कहँ जे हारे,
कियो विनय बहु तुव पद पैं निज सीस रहे धारे ॥
सुरत करि उनकी तू नारी,
मंजुल वंजुल कुंज विलोकत तुव मग गिरिधारी ॥
पहिरि पग मनि नूपुर सीरे,
पीन पयोधर सघन जघन भर चलु धीरे धीरे।
चाल सो हंसहि लजवाई,
चलु सुनु तरुनी जन-मोहन मन-मोहन वच धाई ॥
सफल करूँ श्रवनहि मैं वारी। मंजुल वंजुल० ॥
कुंज में सुनु कोइल बोलै,
काम नृपति के वंदीजन से मदन-विरद खोलै।
चलत मलयानिल मद-माती,
नव पल्लव हिलि तोहिं बुलावत निकट बिरिछ पाँती ॥

विलँव न करु गज-गति वारी। मंजुल वंजुल० ॥
देखु फरकत जोवन दोऊ,
मदन रंग सों उमड़ि अलिंगन चहत पियहिं सोऊ।
गवन हित सगुन मनहुँ कीने,
हीर-हार जलधार भरे जुग घट सनमुख लीने ॥
चूक मति समयहि बलिहारी। मंजुल वंजुल० ॥
सखिन तोहिं रति-रन-हित साज्यौ,
तौ किन अब लौं मदन-भेरि तुव किंकिन-रव बाज्यौ।
द्रवत तजि लाजन क्यों रूठी,
चलति न क्यों सखि कर गहि वैठो मानिनि है झूठी॥
विना तुव व्याकुल वनवारी। मंजुल वंजुल० ॥
कह्यौ लै मानिनि मम मानी,
सूचन रति अभिसार वजावत चलु कंकन रानी।
मिलत लखि तोहि हम सुख पावैं,
जुगल रूप जयदेव सुकवि लखि हिय महँ पधरावैं ॥
होइ 'हरिचंदहु' बलिहारी। मंजुल वंजुल० ॥२३॥

माधव ढिग चल राधा प्यारी।
विलस पिया-गल मैं भुज धारी ॥ ध्रु० ॥
मंजु कुज मधि सेज विछाई।
विहर तहाँ हँसि हँसि सुख पाई ॥ माधव० ॥
कुच-कलसन पर तरलित माला।
विहर असोक सेज पर वाला ॥ माधव० ॥
विविध कुसुम लै कुंजन बाँधे।
विलस कुसुम कोमल तन राधे ॥ माधव० ॥

वहत सीत मलयानिल आई।
विहर सुरत-रत हरि-गुन गाई ।। माधव० ।।
सघन जघन वरु सफल सुहाए।
लखु पल्लव वल्लिन लपटाए ।। माधव० ।।
गूँजत मधुप मदन मद-माती।
विहर कृष्ण सँग रति-रस-राती ।। माधव० ।।
सुनु गावत पिक काम-वधाई।
चलु लै निज पिय को हिय लाई ।। माधव० ।।
कवि जयदेव केलि-रस गावै।
'हरिचंदहु' सुनि जनम सिरावै ।। माधव० ।।३४।।

राधा केलि कुंज महँ जाई।
वैठे वाट विलोकत निरखे रस उमगे हरिराई ।।ध्रुव०।।
राधा-ससि-मुख निरखि हरखि तन रस-समुद्र लहराने।
रमन मनोरथ करत मदन-बस विविध भाव प्रगटाने ।।
स्याम सुभग हिय पर इमि सोहत सुंदर मोतिन माला।
जमुना-जल मनु सेत कमल के सोभित फेन रसाला ।।
मृगमद मोचक मेचक तन पैं पीत वसन लपटायो।
मानहुँ नील कमल पै पसर्यौ पीत पराग सुहायो ।।
रसमय तन मैं सुंदर वदन विलोचन जुग मतवारे।
सरद सरोवर कमलनि खेलत जुग खंजन अनियारे ।।
कमल वदन में दुहुँ दिसि कुंडल रवि से सुभग लखाहीं।
हिलत अधर मुसुकान मनहुँ पिय मुख चूमन ललचाहीं ।।
वारन कुसुम गुथे मनु घन महँ कहुँ कहुँ चाँदनि राजै।
नव ससि अरुन किरिन सम सिर पैं कुंकुम तिलक विराजै ।।

मनिगन भूखन भूखित सब अँग सुंदर सुभग सरीरा।
पुलकित तन रति-आतुर बैठे मोहन पिय बलबीरा ॥
श्री जयदेव कथित हरि को वपु जा जिय में छिन आवै।
सो 'हरिचंद' धन्य जग में निज जीवन को फल पावै ॥३५॥

राधे मेरी आस पुजाओ।
प्रानपिया हरि को कह्नो करि मिलि पिय सों सुख पाओ ॥ध्रु०॥
नव किसलय सों सेज सँवारी कोमल पद तहँ धारी।
हरु पल्लव अभिमानहि अरुन चरन दरसाइ पियारी ॥
अति श्रम भयो प्रानप्यारी तोहिं चरन पलोटौं तेरे।
नूपुर धरौं उतारि सेज पर बैठु आइ ढिग मेरे ॥
बोलि मधुर कछु किन निज पिय कों व्याकुल हियो जुड़ावै।
कहु तौ उर सों अंचल कृष्ण उतारि अधिक सुख पावै ॥
पिय गर लगन हेत फरकौहैं जुगल कलस कुच प्यारी।
पिय पुलकित हिय लाइ हरत किन मदन-ताप सुकुमारी ॥
निज बिरहानल तपत देखि मोहिं क्यों न दया उर लावै।
अधर मधुर रस सुधा स्वाद दै किन मोहिं मरत जियावै ॥
तुव बिन कोकिल नाद सुनत रहे स्रवन सदा दुख पाई।
दै तिन कहँ सुख भाखि मधुर कछु किंकिनि कलित बजाई ॥
नाहक मान ठानि दुख दीनो अब मो दिस लखु प्यारी।
नीचे नैन न लाज भरी करु दै रति-सुख बलिहारी ॥
श्री जयदेव सुकवि हरि भाखित सरस गीत जो गावै।
ता जिय में 'हरिचंद' प्रेम-बल काम-बिकार न आवै ॥३६॥

यह सुनि राधा पिय सों बोली।
मान छाँड़ि निज प्राननाथ सों गाँठ हृदय की खोली ॥ध्रु०॥

मंगल कलस सरिस सम जुग कुच मृगमद चित्र बनाओ ।
चंदन से सीतल कर हिय धरि जिय को ताप मिटाओ ।।
काम–बान अलि-कुल–मद–गंजन नैननि अंजन प्यारे ।
तुव चूमन सों फैलि रह्यो तेहि देहु सँवारि दुलारे ।।
दृग कुरंग-गति मेंड़ सरिस मम स्रवन न पिय गिरधारी ।
काम-फाँस से कुंडल प्यारे निज कर देहु सँवारी ।।
मेरे मुख पर पीतम सुंदर निज कर बिरचि सँवारौ ।
नवल कमल पर अलि-कुल सरिस अलक निरुवारि बगारौ ।।
स्रम-सीकरहिं पोंछि मम सिर पिय निज कर रुचिर बनाओ ।
पूरन ससि पै मृग-छाया सों मृगमद-तिलक लगाओ ।।
मदन-चौंर धुज से मम सुंदर केस-पास निरुवारौ ।
केकि-पच्छ से बारन गूथहु सुंदर कुसुम सँवारौ ।।
सरस सघन मम जघनन पर कल किंकिनि कलित सजाओ ।
सुंदर बसन अभूपन रचि रचि मम अंगनि पहिनाओ ।।
इमि राधा-बच सुनत कृष्ण-गर लगि विहरे सुख पायो ।
सो जयदेव सुकवि 'हरिचंद' विहार कुतूहल गायो ।।२७।।

दोहा

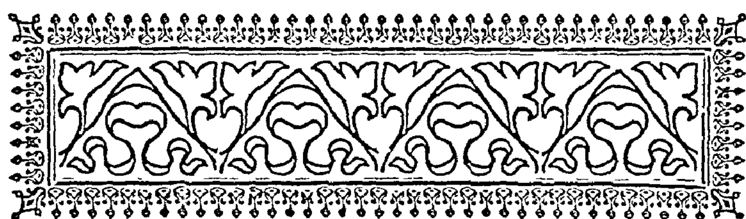
अष्ट-पदी चौबीस इमि गाईं कवि जयदेव ।
भाषा करि हरिचंद सोइ कही प्रेम-रस भेव ।।१।।
सुभ मंत्र सम पद सबै प्रगटे भाषा माहिं ।
यह अपराध महा कियो यामें संसय नाहिं ।।२।।
छमिहैं निज जन जानि सो जुगल दास तकसीर ।
हरिहैं अपनो समुझि जिय कठिन मोह-भव-पीर ।।३।।

इति

सतसई-सिंगार

सं० १९३५

हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० २ सं० ८ से
खं० ६ सं० ५ सन् १८७५ ई०
सन् १८७८ ई० तक में
क्रमशः प्रकाशित



सतसई-सिंगार

मेरी भव-बाधा हरो राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाईं परैं स्याम हरित द्रुति होइ ॥ १* ॥
स्याम हरित द्युति होइ परैं जा तन की झाँईं ।
पाय पलोटत लाल लखत साँवरे कन्हाई ॥
श्री 'हरिचंद' वियोग पीत पट मिलि द्रुति टेरी ।
नित हरि जा रँग रँगे हरौ बाधा सोइ मेरी ॥ १ ॥

सीस मुकुट, कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
इहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारी-लाल ॥३०१॥
सदा बिहारी-लाल बसौ बाँके उर मेरे ।
कानन कुण्डल लटकि निकट अलकावलि घेरे ॥
श्री 'हरिचंद' त्रिभंग ललित मूरत नटवर सी ।
टरौ न उर तें नैकु आज कुंजनि जो दरसी ॥ २ ॥

---

* दोहों के आगे की ये संख्याएँ बिहारी रत्नाकर से मिलान करने के लिये दी गई हैं ।

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ ॥१६१॥
प्रतिबिम्बित जग होइ कृष्णमय ही सब सूझै।
एक सँयोग वियोग भेद कछु प्रगट न बूझै।
श्री 'हरिचंद' न रहत फेर बाकी कछु जोहन।
होत नैन-मन एक जगत दरसत तब मोहन ॥ ३ ॥

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति कर अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होत प्रयाग ॥२०१॥
पग पग होत प्रयाग सरस्वति पद की छाया।
नख की आभा गंग छाँह सम दिनकर-जाया॥
छन छबि लखि 'हरिचंद' कलप कोटिन लव सम लजि।
भजु मकरध्वज मनमोहन मोहन तीरथ तजि ॥ ४ ॥

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ॥६८१॥
वा जमुना के तीर सोई धुनि आँखिन आवै। /
कान बेनु-धुनि आनि कोऊ औचक जिमि नावै॥
सुधि भूलति 'हरिचन्द' लखत अजहूँ बृन्दावन।
आवन चाहत अबहिं निकसि मनु स्याम सरस घन ॥ ५ ॥

सखि सोहत गोपाल के उर गुंजनि की माल।
बाहर लसति मनौ पिये दावानल की ज्वाल ॥२१२॥
दावानल की ज्वाल धूम सह मनहुँ बिराजै।
प्रिया-बिरह दरसाइ मनहुँ संगम सुख साजै॥
सोई 'श्री हरिचन्द' बिहँसि कर लेत कबहुँ लखि।
मानिक मुक्ता-नील बनत गुंजा सों लखु सखि ॥ ६ ॥

कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥६३५॥
बाँचति, धरति समेटि, खोलि पुनि पुनि तिहि बाँचै।
बरन बरन पर प्रान वारि आनँद जिय राचै ॥
प्रेम-औधि 'हरिचंद' जानि उलही उर अन्तर।
नैन नीर जुग भरे लिये ही रहत सदा कर ॥ ७ ॥

नित प्रति एकत ही रहत बयस - बरन - मन एक।
चहियत जुगल-किसोर लखि लोचन - जुगल अनेक ॥२३८॥
लोचन - जुगल अनेक होयँ तौ कछु सुख पावैं।
जग की जीवन - मूरि प्रिया - प्रिय निरखि सिरावैं ॥
गौर-स्याम 'हरिचंद' कोटि मोहन मनमथ-रति।
एक बरन इक रूप लखौ इक ही टक नित प्रति ॥८॥

लोचन-जुगल अनेक पलटि यह अविधि पलक किय।
सुधा-श्रवन-सम बैन-श्रवन-हित श्रवनहु जुग दिय ॥
सेवन-हित 'हरिचंद' किये द्वै ही कर अनुचित।
विधि सब करी अनीति जुगल छबि किमि लखिये नित ॥ ८ ॥

मोर मुकुट की चन्द्रिकन यों राजत नँद-नन्द।
मनु ससि-सेखर की अकस किय सेखर सत-चन्द ॥४१९॥
किय सेखर सत-चन्द सुरँग केसरी कुलह पर।
गंगधार सी लटकि रही दुहुँ दिसि मोती लर ॥
कहा कहौं 'हरिचन्द' आजु छवि नागर नट की।
सब जिय उपजत काम लटक लखि मोर मुकुट की ॥ ९ ॥

किय सेखर सत-चन्द जटित नगपेच विम्ब परि।
स्याम सचिक्कन चिकुर आभ सों स्याम भये घिरि ॥

जमुना-तट 'हरिचन्द' मरद निसि रास लटक की।
छवि लखि मोही आज पीत पट मोर मुकुट की ॥ ९ ॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग सिर मौर।
उनहूँ बिन छन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर ॥१८२॥
दृगन अजौं वहि ठौर खरे ही परत लखाई।
क्योंहू सुधि नहिं जात सोई छबि नैननि छाई॥
सुमिरत सोइ 'हरिचन्द' पीर कसकत अति उर महँ।
अँसुवनि सींचत तहाँ खरे निरखे हरि जहँ जहँ ॥१०॥

सोहत ओढ़ें पीत पट स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात ॥६८९॥
आतप पर्‌यौ प्रभात किधौं बिजुरी घन लपटी।
जरद चमेली तरु तमाल मैं सोभित सपटी॥
प्रिया-रूप-अनुरूप जानि 'हरिचन्द' बिमोहत।
स्याम सलोने गात पीत पट ओढ़े सोहत ॥११॥

किती न गोकुल कुलबधू, काहि न किहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥६५२॥
ह्वै मुरली-सुर-लीन कौन ब्रज पतिव्रत राख्यौ।
किन प्रन पार्‌यौ, लोक-सील किन दूरि न नाख्यो॥
धुनि सुनिकै 'हरिचन्द' न उठि धाई तजि को कुल।
हरि सों जल-पय-सरिस मिली अस किती न गोकुल ॥१२॥

मिलि परछाँहीं जोन्ह सों रहे दुहुँन के गात।
हरि राधा इक संग ही चले गलिन मैं जात ॥६५३॥
चले गलिन मैं जात जुगल नहिं देत लखाई।
राधा मिलि रहिं जोन्ह छाँह मिलि रहे कन्हाई॥

गौर-स्याम 'हरिचंद' अवहिं दोउ देखो झिलि-मिलि ।
दिए हाथ पै हाथ साथ ही जाते हिलि मिलि ॥१३॥

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस-रास ।
लहाछेह अति गतिन की सवनि लखे सव पास ॥२९१॥
सवनि लखे सव पास दिए नाचत गल-वाहीं ।
उरप तिरप गति लेत एक वहु गोपिन माहीं ॥
लाग डाँट 'हरिचंद' तत्तथेइ संगीतक रँग ।
तान मान वन्धान रह्यौ निसि व्रज-गोपिन सँग ॥१४॥

मोर चंद्रिका स्याम - सिर चढ़ि कत करति गुमान ।
लखिवी पाइनि तर लुठति सुनियत राधा-मान ॥६७६॥
सुनियत राधा मान कियो हरि जात मनावन ।
ह्वैहै तोसी और दसेक नख-विम्वित चावन ॥
धूरि भरी 'हरिचंद' होइहै विगत तंद्रिका ।
जावक - रँग सों लाल लाल की मोर-चंद्रिका ॥१५॥

इन दुखिया अँखियान कों सुख सिरजौई नाँहिं ।
देखें वनै न देखतें विन देखे अकुलाहिं ॥६६३॥
विनु देखे अकुलाहिं विकल अँसुवन झर लावैं ।
सनमुख गुरुजन - लाज भरी ये लखन न पावैं ॥
चित्रहु लखि 'हरिचंद' नैन भरि आवत छिन छिन ।
सुपन नींद तजि जात चैन कवहुँ न पायो इन ॥१६॥

विनु देखे अकुलाहिं विरह-दुख भरि भरि रोवैं ।
खुली रहैं दिन रैन कवहुँ सपनेहु नहिं सोवैं ॥
'हरीचंद' संजोग विरह सम दुखित सदाहीं ।
हाय निगोरी आँखिन सुख सिरजौई नाहीं ॥१६॥

बिनु देखे अकुलाहिं बावरी ह्वै ह्वै रोवैं।
उघरी उघरी फिरैं लाज तजि सब सुख खोवैं॥
देखैं 'श्रीहरिचंद' नैन भरि लखैं न सखियाँ।
कठिन प्रेम-गति रहत सदा दुखिया ये अँखियाँ॥१६॥

नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नन्दित करी इहि कित नन्दकिसोर॥४६९॥
इहि कित नन्दकिसोर स्याम घन अबहीं आए।
प्रफुलित लखियत लता बेलि सर जलज मुँदाये॥
पद-रेखा 'हरिचंद' चमकि प्रकटत नट-बानक।
स्वेत सुगन्धित पवन अचल इत नाचि अचानक॥१७॥

प्रलय-करन बरसन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गरब हर्यौ हरखि गिरधर गिरि धरि हाथ॥५४१॥
गिरधर गिरि धर हाथ सकल ब्रज लोग बचाये।
बरसि सुधा-रस सात दिवस नर-नारि जिवाये॥
मिले नयन 'हरिचंद' तहाँ तजि गुरजन को भय।
इत तें रस बरसात करी उत घन जन-परलय॥१८॥
डिगत पानि डिगलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कम्प किसोरी-दरस कें खरे लजाने लाल॥६०१॥
खरे लजाने लाल जबै तैं भौंह मरोरी।
सजग होइ गिरि धर्यौ कोर करुना करि जोरी॥
रकुट लाय 'हरिचंद' रहे तब गोपहु हरि-ढिग।
अरी खरी तू बाल नेकु चितये हरि गे डिग॥१९॥

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सकल गो-गोपी-गोपाल॥५२१॥

गो - गोपी - गोपाल अवै सव गोवरधन तर।
हरि गिरि लीन्हें हाथ तकत इक टक तुव मुख पर ॥
'हरीचंद' गहि दया उतै ही लखु कर चोपे।
नाहीं तौ हरि चौंकि गिरैहै गिरि ब्रज लोपे ॥२०॥

गो-गोपी-गोपाल जदपि गोपाल बचाये।
पै तिन कौं 'निज वदन-सुधा दै तहीं जिवाये ॥
नाहीं तो 'हरिचंद' सात दिन इक कर रोपे।
किमि हरि गिरि कर लिये रहत सगरो ब्रज लोपे ॥२०॥

गो-गोपी-गोपाल राखि गिरिधर कहवाये।
हाथन हीं तू सदा तिन्हैं लै रहत लगाये ॥
चढ़े रहत 'हरिचन्द' वैन दृग जिय हरि चोपे।
गिरिधर-धारिनि क्यौं न होत तू रति-रस-लोपे ॥२०॥

लाज गहौ, बेकाज कत घेरि रहै, घर जाँहिं।
गो-रस चाहत फिरत हौ, गो-रस चाहत नाँहिं ॥१२६॥
गो-रस चाहत नाहिं रूप लखि लाल लुभाने।
सो रस पैहौ नाहिं फिरत काहे मँडराने ॥
साँझ भई 'हरिचंद' जान घर देहु दुहाई।
लखिहै कोऊ आइ लाज कछु गहौ कन्हाई ॥२१॥

मकराकृति गोपाल के कुंडल सोहत कान।
धँस्यौ मनौ हिय-घर समर, ड्यौढ़ी लसत निसान ॥२०३॥
ड्यौढ़ी लसत निसान मनौ तुव गुन प्रगटावत।
जेहि सुनि हरि अति विकल कुंज तोहिं तुरत बुलावत ॥
चलति न क्यौं 'हरिचंद' वृथा लावत विलम्ब इत।
छोड़ु मकर तुव विना स्याम जल-विनु मकराकृत ॥२२॥

अधर धरत हरि के परत ओठ-दीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रँग होति ॥४२०॥
इन्द्र-धनुष रँग होति स्याम घन लहि छवि पावत।
याही तें हरि सुधा-सार सम रस बरसावत ॥
मुक्त-माल बक-पाँति साँझ फूली माला मध।
बिजुरी सम 'हरिचंद' पीत पट रह्यौ लपटि अध ॥२३॥

इन्द्र-धनुष सी होति बधन बिरही अबलागन।
बिनु धलमी तें भये इतो बिष होइ कहाँ तन ॥
हम बंचित ही रहत सदा 'हरिचंद' लोक-डर।
हाय निगोरी यह बंसी पीवत अधराधर ॥२३॥

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देहु दुहून मिलि दिपति ताफता रंग ॥७०॥
दिपति ताफता रंग बसन बिरची गुड़िया सी।
चतुराई नहिं चढ़ी तऊ कछु लाज प्रकासी ॥
देइ नितम्बनि भार अजौं कटि भले छुटी नहिं।
जोबन आयो जऊ तऊ मुगधता छुटी नहिं ॥२४॥

दिपति ताफता रंग मिलित बय सोभा बाढ़ी।
कछु तरुनाई चढ़ी जोय कछु लाजहु गाढ़ी ॥
आइ चली 'हरिचंद' जदपि जिय में कछु रसता।
बलिहारी चलि लखौ तऊ तन छुटी न सिसुता ॥२४॥

तिय-तिथि तरुनि-किसोर-वय पुन्य-काल सम दोन।
काहू पुन्यनि पाइयत बैस-सन्धि-संक्रोन ॥२७४॥
बैस-संधि-संक्रोन समय सब दिन नहिं आवत।
दूती बनि दैवज्ञ मिलन को समय बतावत ॥

श्री 'हरिचंद' सुकुंज-सेज तीरथ जानहु जिय।
देहु अधर-रस-दान लाल भागन पाई तिय ॥२५॥

वैस-संधि-संक्रौन सात विनु चार सौति कहँ।
द्वै की पट भौं नव सालत जिय अठ द्दग वारह ॥
अजौं न ग्यारह कुच सु पाँच कटि दस धुन नहिं जिय।
करहु न एक न देर होहु त्रय भाग मिली तिय ॥२५॥

ललन अकौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।
आजु काल्हि मैं देखियत उर उकसौहीं भाँति ॥
उर उकसौहीं भाँति वनक कछु कहत न आवै।
देखे हीं सुख होइ तिहारे मनहिं रिझावै ॥
चलि निरखौ 'हरिचंद' जुगल वय मिलन अलौकिक।
नैन वैन कछु भये औरही ललन अलौकिक ॥२६॥

भावक उभरौंहौं भयौ, कछुक पर्यौ भरुआय।
सीपहरा के मिस हियौ निसि-दिन हेरति जाय ॥२५२॥
निसि-दिन हेरति जाय कछू हँसि हँसि कै बोलै।
आँख-मिचौनी के मिस सखि-द्दग नापति डोलै ॥
हिय हरखै 'हरिचंद' पियहि लखि होत लजौंहीं।
कटि सूछमता प्रगट करत भावक उभरौंहीं ॥२७॥

अपने अँग के जानि कै जोवन-नृपति प्रवीन।
स्तन-मन-नयन-नितम्ब कौ वड़ौ इजाफा कीन ॥२॥
वड़ौ इजाफा कीन सवनि जागीर वढ़ाई।
कंचुकि चाहत अंजन सारी खिलत दिवाई ॥
मदन चक्कवै जानि करन कारज ता मन के।
जोवन नृप अधिकार वढ़ाए अपने तन के ॥२८॥

इक भींजैं, चहले परैं, बूड़ैं, बहैं हजार।
किते न औगुन जग करत वै नै चढ़ती बार ॥४६१॥
वै नै चढ़ती बार कूल-मरजादा तोरत।
भंजत धीरज-मेड़ लाज-सामाँ सब बोरत॥
वेग कठिन 'हरिचंद' भेद यह तदपि दुहूँ दिक।
चतुर होत इक पार जानि कै बूड़त लहि इक ॥२९॥

देह दुलहिया की बढ़ै ज्यों ज्यों जोबन-जोति।
त्यों त्यों लखि सौतैं सबै बदन मलिन दुति होति ॥४०॥
बदन मलिन दुति होति सौत गुरुजन सुख पावत।
लाल हजारन भाँति मनोरथ उर उपजावत॥
तजत गरब 'हरिचन्द' जिती जुवती जग मँहियाँ।
ज्यौं ज्यौं उलहति चलति सलोने देह दुलहिया ॥३०॥

नव नागरि-तन-मुलुक लहि जोबन-आमिल जोर।
घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम करी और की और ॥२२०॥
करी और की और लखत सिसुना बलि छूटी।
दियो नितम्बनि भार लखौ बीचहिं कटि लूटी।
कुच उमगे 'हरिचन्द' भई बुधिहू गुन-आगरि।
चपल नैन बढ़ि चले मदन परसत नव नागरि ॥३१॥

लहलहाति तन तरुनई लचि लग लौं लफि जाइ।
लगैं लाँक लोइन-भरी लोइन लेति लगाइ ॥५३२॥
लोइन लेति लगाइ फेरि छूटैं न छुड़ाए।
बनत चहँटुआ नैन लगे डोलत सँग धाए॥
लाल लट्टू 'हरिचंद' लट्टू सम देखत छाती।
भट्टू फिरत सँग लगे तरुनई लखि उलहाती ॥३२॥

सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि, सुगन्ध, सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ, लखि बिथुरे सुथरे वार ॥९५॥
बिथुरे सुथरे वार देखि उरझ्यौही चाहत।
मानत नहिं कुल-कानि लाज नहिं तनिक निवाहत॥
जूरा मैं बँधि लटकि रहत अलकन के छींकन।
चोटिन में गुँथि जात केस लखि सहज सचीकन॥३३॥

बेई कर व्यौरो वहै, व्यौरौ क्यौं न विचार।
जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे वार॥४३६॥
तिनहीं सुरझे वार वार जिनपै मैं वारी।
कहे देत कर-परसनि सखि यह तौ गिरधारी॥
उन विन को 'हरिचंद' परसि प्रगटै मनमथ-जर।
रोम-पाँति उकसाति पीठ लागैं वेई कर॥३४॥

कच समेटि, भुज कर उलटि खरी सीस-पट डारि।
काको मन वाँधै न यह जूरो बाँधनिहारि॥
जूरो वाँधनिहारि वाँधि मन छोड़ि न जानै।
सींचति सरस सनेह सुगन्धनहूँ लै सानै॥
तजति नाहिं 'हरिचंद' मोहिं बोलति मुखहु न वच।
जुलुफ जँजीरन सीस फूल को कुलुफ देत कच॥३५॥

छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार॥५७३॥
नील छबीले बार हरत मन सब ही भाँतिन।
बँधे, छुटे, सटकारे गूँथे मोती पाँतिन॥
अहि सिवार अलि आद सबन को गरब मिटावैं।
अँखियन अरुझे रहत न सुरझैं छुटे छुटावैं॥३६॥

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बँकारी देत ज्यौं दाम रुपैया होत ॥४४२॥
दाम रुपैया होत उलैया तें व्यवहारन ।
सोलह सै गुन बढ़त बदन - सोभा तिमि वारन ॥
अमल कमल अलि पाँति रहत जिमि जमल ओर जुटि ।
ससि पैं अहि सम ससि-बदनी के कुटिल अलक छुटि ॥३७॥

ताहि देखि मन तीरथनि बिकटनि जाइ बलाय ।
जा मृगनैनी के सदा बेनी परसत पाय ॥
बेनी परसत पाय जमुन सो लोल कलोलै ।
मोतिन मिस तिमि गंग संग लागी ही डोलै ।
चरन महावर सरिस सरस्वति मिलति जौन छन ।
तिय तीरथपति होत लहत फल जाहि देखि मन ॥३८॥

नीकौ लसत लिलार पर टीको जटित जराय ।
छबिहि बढ़ावत रबि मनौं ससि - मंडल मैं आय ॥१०५॥
ससि - मंडल मैं आइ सूर सोभाहि बढ़ावत ।
मोती - लर तारागन सी तिमि अति छबि पावत ॥
तिय-सोभा 'हरिचंद' कियो मोतिन मुख फीको ।
लखौ लाल चलि कुंज आजु प्यारी-मुख नीको ॥३९॥

सबै सुहाए ही लसैं बसत सुहाई ठाम ।
गोरे मुख बेंदी लसैं अरुन, पीत, सित, स्याम ॥२७१॥
अरुन, पीत, सित, स्याम, खुलैं सबही मन मोहैं ।
साँच कहत जग लोग सबै सुंदर कहँ सोहैं ॥
बिनु सिंगार ही लेत जौन मन सहज लुभाए ।
क्यौं न लगैं सिंगार ललन तेहि सबै सुहाए ॥४०॥

कहत सबै, वेंदी दियें आँक दस-गुनो होत।
तिय-लिलार वेंदी दियें अगनित बढ़त उदोत ॥३२७॥
अगनित बढ़त उदोत तीस, अस्सी, नव्वे-गुन।
तीन, आठ, नव, सत, सहस्र 'हरिचंद' बढ़त पुन॥
वंदी वेना वेंदी भौं लहि वनत रुपा जब।
मोती-लर तें होत मुहर लखि थकित रहत सब॥४१॥

अगनित बढ़त उदोत न सो कवि पैं गिनि आवै।
निरखत मन हर लेत तिहारे मन अति भावै॥
सो सोभा 'हरिचंद' वरनि नहिं जात कछू अब।
· बलि निरखौ चलि स्याम सहज छवि जाहि कहत सब॥४१॥

भाल लाल वेंदी छए छुटे वार छवि देत।
गह्यो राहु अति आहु करि मनु ससि सूर-समेत॥३५५॥
मनु ससि सूर-समेत इकत गहि राहु दबावत।
स्वेद-कना मिस अमृत निकसि तव ससि तें आवत॥
वारिध औ पिय नाते तव गहि जुगल कमल वर।
निरुवारत तकि तमहिं परसि तिय भाल लाल कर॥४२॥

पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल।
भोडरहू की वेंदुली चढ़ति तिया के भाल॥४४१॥
चढ़ति तिया के भाल तिमिहिं सो तिय गरवानी।
हम सब कुल की होय फिरत दूरहि मँडरानी॥
कामी हरि 'हरिचंद' करो वेवस करि घायल।
भोडर राख्यौ सीस जर्‌यौ रतनन लै पायल॥४३॥

चढ़ति तिया के भाल पिया-मन सुख उपजावति।
कोटि रतन रवि-ससिहूँ सों बढ़ि सोभा पावति॥

मूरतमान सुहाग - बिंदु लखि कवि-मति कायल ।
यातें यह अनमोल जदपि नवलख की पायल ॥४३॥

चढ़ति तिया के भाल तैसहीं तू गरवानी ।
सुनत सखिन की बात न पीतम कों पतियानी ॥
रहति मान करि वृथा कोप मैं करि मति मायल ।
पियहिं लुठावति चरन तरें परसावति पायल ॥४३॥

चढ़ति तिया के भाल सबैं सुंदर कहँ सोहत ।
तासों करु न सिंगार बेंदुली ही मन मोहत ॥
चलु 'हरिचंद' निकुंज दूर तजि माल हिमायल ।
उत पिय तुव बिन व्याकुल इत तू पहिरति पायल ॥४३॥

चढ़ति तिया के भाल सदा निज मान बढ़ावत ।
तैसहिं नूपुर बोलन सों आदर नहिं पावत ॥
सूचति रति अभिसार सवन कहँ बाजि उतायल ।
याही सों मनि-जटितहु राखति पद तर पायल ॥४३॥

भाल लाल बैंदी ललन आखत रहे बिराजि ।
इंदु-कला कुज मैं बसी मनौं राहु-भय भाजि ॥६९०॥
मनौ राहु-भय भाजि इंदु कुज-मंडल आयो ।
ताहू पै तिन बादर ही निज जोर जमायो ॥
पूजि देव-तिय न्हाइ खरी बाढ़ी अति सोभा ।
बिथुरे केसनि तिलक अखत लखि पिय मन लोभा ॥४४॥

पिय-मुख लखि पन्ना जरी बेंदी बढ़ै बिनोद ।
सुत-सनेह मानौं लियो बिधु पूरन बुध गोद ॥७०७॥
बिधु पूरन बुध गोद मोद भरि कैं बैठार्‌यौ ।
होइ उच्च के जिन सोहाग को चौचँद पार्‌यौ ॥

सेंदुर केसर पान दिठौना वेसर कच सुख।
औरहु ग्रह मिलि वसे इकत लखि सुंदर तिय मुख ॥४५॥

गढ़-रचना वरुनी अलक चितवनि भौंह कमान।
आघ वँकाई ही वढ़ै तरुनि तुरंगम तान ॥३१६॥
तरुनि तुरंगम तान वँकाइहि तें छवि पावत।
ताही तें तू सदा मान की मति उपजावत॥
वेहू ललित त्रृभंग सदा वाँके सब सों वढ़।
यह जोरी 'हरिचंद' भली विधि रची आपु गढ़ ॥४६॥

नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह।
काँटे लौं कसकति हिये गरी कँटीली भौंह ॥४०६॥
गरी कँटीली भौंह न भूलति कवहुँ भुलाये।
वह चितवनि वह मुरनि चलनि चख चपल नचाये॥
आन रहे 'हरिचंद' एक सौंहन को आसा।
उन तौ विछुरत ही वुधि-वल मन-धीरज नासा ॥४७॥

गरी कँटीली भौंह जीय सों चुभत सदाहीं।
अव उनके विनु मिले सखी जिय मानत नाहीं॥
लाउ वेगि 'हरिचंद' पूरि मम कोटिन आसा।
नाहीं तो यह तन वियोग मनमथ अव नासा ॥४७॥

गरी कँटीली भौंह कोप करि प्रगट वँकाई।
मम भुज छूटन हेत सरस रिसि जौन दिखाई॥
वह छलि भाजी हाय रह्यौ मैं लखत तमासा।
मिलन-मनोरथ-पुंज पलक मूँदत सव नासा ॥४७॥

गरी कँटीली भौंह सोइ कसकत जिय भारी।
गुरुजन की भय-देनि खानि हा हा वह प्यारी॥

मिलन औध 'हरिचंद' वदनि वह रासनि आसा।
भूलति क्योंहूँ नाहिं नचावनि भौं दृग नासा ॥४७॥

गरी कँटीली भौंह विरह व्याकुल अति भारी।
कोउ विधि वेगि मिलाउ मोहिं सुंदर सोइ प्यारी॥
कहियो तुम करि सौंह न पूरत क्यौं अब आसा।
ताकी जाको बुधि बल सब देखत तुम नासा॥४७॥

खौरि-पनच, भृकुटी-धनुष, बधिक-समर, तजि कानि।
हनत तरुन-दृग तिलक-सर, सुरक-भाल भरि तानि॥१०४॥
सुरक-भाल भरि तानि खोजि चतुरन ही मारत।
बधि फिर खोज न लेत चवाइन चौचँद पारत॥
जिय व्याकुल 'हरिचंद' होत गति मति सब बौरी।
गोरे गोरे भाल विलोकत केसरि खौरी॥४८॥

रस सिंगार मंजन किए, कंजन भंजन-दैन।
अंजन रंजनहूँ बिना, खंजन-गंजन नैन॥४६॥
खंजन-गंजन नैन लुकंजन मनहुँ लगाये।
पैठि हिये मन लयो तबहुँ नहिं परत लखाये॥
वारौं कोटिक मीन, मैन-म्रर, मृग-छबि सरबस।
कहँ ये जड़ पसु निरस कहाँ वे भरे मदन-रस॥४९॥

खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरन सिकार॥४५॥
नागर नरन सिकार करत ये जुलुम मचावत।
अंजन गुनहूँ बँधे उड़न झपटत गहि लावत॥
चोन्हि चीन्हि 'हरिचन्द' रसिक ये मारत मेलन।
बधि फिर सुधि नहिं लेत भले सिखये यह खेलन॥५०॥

सायक-सम घायक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ विलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात ॥५५॥
लखि जलजात लजात, हरिन वन वसत निरन्तर।
खंजन निज मद-गंजन करि निवसत तरुवर पर ॥
सो मोहत 'हरिचन्द' जौन त्रिभुवन के नायक।
वुझे त्रिवेनी-नीर जीय-घायक दृग-सायक ॥५१॥

अर तैं टरत न वर परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ा-होड़ी वढ़ि चले चित, चतुराई, नैन ॥ २ ॥
चित, चतुराई, नैन मधुरता वच-रस-साने।
जोवन कुच पिय प्रेम सवै साथहि उमगाने ॥
जीतन हरि 'हरिचन्द' कुमक नृप मदन सुघर तें।
आवत सव ही वढ़े वढ़ेई टरत न अर तें ॥५२॥

जोग-जुगुति सिखये सवै मनौ महा मुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन ॥१३॥
कानन सेवत नैन रहत नितही लौ लाए।
हरि-मद-रस सों छके छवीले उमग वढ़ाए।
सेली डोरे लाल लखत गुदरी पल अनमिख।
क्यों न लहैं अद्वैत सिद्धि प्रिय जोग जुगुति सिख ॥५३॥

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तैं हरि नीके ए नैन ॥६७॥
हरिनी के ए नैन अनी के घन वरुनी के।
फीके कमलन करत भावते जी के ती के ॥
ही के हर 'हरिचन्द' रंग चीते प्रिय प्रीते।
नीते मानत नाहिं चपल चीते वर जीते ॥५४॥

संगति दोष लगै सबै, कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव संग तैं भए कुटिल-गति नैन ॥३०३॥
भए कुटिल-गति नैन कुटिलई पिय सों ठानत।
सोधे जित अरि रहत कान सिख नेक न मानत॥
अरुझि परत 'हरिचन्द' सैन सजि बरुनिन-पंगति।
घायहु चाँको करत खरे बिगरे लहि संगति ॥५५॥

दृगनि लगत, बेधत हियौ, विकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं विषम ईछन तीछन बान ॥३४९॥
ईछन तीछन बान आज अति अचरज पारैं।
मिलत करेजे घाय करैं बिछुरे तिय मारैं॥
काढ़े औरहु धँसत बढ़त उपचार निरखि ढिग।
जेहि लागत तेहि लगन देत नहिं लगन लाय दृग ॥५६॥

झूठे जानि न संग्रहे मनु मुँह-निकसे बैन।
याही तें मानो किये, बातनि कौं विधि नैन ॥३४५॥
बातनि कौं विधि नैन किये सब विधि विधि जानी।
बिनु बोलेहू जासु मधुर बोलनि रस-सानी।
हाव भाव 'हरिचन्द' छिपे रस धरे अनूठे।
कहे देत जिय बात करत मुख के छल झूठे ॥५७॥

फिरि फिरि दौरत देखियत, निचले नैंकु रहैं न।
ये कजरारे कौन पै करत कजाकी नैन ॥६७०॥
करत कजाकी नैन कजा की सैन सैन गति।
बटपारे बरजोर बिचारे पथिक देत हति॥
कावा सम 'हरिचंद' फिरत कावा धावा धरि।
पै निज ठौरहि रहत करत अचरज अति फिरि फिरि ॥५८॥

खरी भीरहूँ भेदि कै कितहूँ तैं इत आय।
फिरै दीठि जुरि दुहुँनि की सबकी दीठि बचाय ॥
सब की दीठि बचाय नीठि मिलिही ये जाहीं।
कोटि उपाइ न करौ ठौरही ये ठहराहीं ॥
कठिन प्रीति 'हरिचन्द' भीत गुरुजन हरि सगरी।
करत आपनो काज लाज तजि यह गति निखरी ॥५९॥

सब ही तन समुहाति छिन, चलति सबन दै पीठि।
वाही तन ठहराति यह, किबिलनुमा लौं दीठि ॥३०॥
किबिलनुमा लौं दीठि एक हरि दिसि ही हेरै।
कोटि जतन कोउ करो अनत कहुँ रुखहु न फेरै ॥
पीतम बिनु 'हरिचन्द' कहौ क्यौं अनत लगै मन।
सरल भाव यों भले लखौ किन छिन सबही तन ॥६०॥

किबिलनुमा लौं दीठि न कबहूँ प्रन करि फेरै।
छबि-सागर डूब्यो निज मन-ससि फिरि फिरि हेरै ॥
हरि-चुम्बक 'हरिचन्द' करत दृग-लोहहिं करसन।
तितही ठहरति जदपि करत कावा सब ही तन ॥६०॥

किबिलनुमा लौं दीठि भई सब तजि पिय अनुसर।
ताहि देखि 'हरिचन्द' प्रेम गति सुदृढ़ करी अर ॥
बिन देखें हरि-धाम लखन को तजति न वह प्रन।
तौ परतछ हरि पाइ कहा यह चितवै सब तन ॥६०॥

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजि जात।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात ॥३२॥
नैनन हीं सों बात करत दोऊ अरुझाने।
अलख जुगल के खेल न काहू लखत लखाने ॥

इन्हें काम सो काम होइ किन लाखन जन महँ।
ये अपने रस-मगन और करिहै इनको कहँ ॥६१॥

कंज-नयनि मंजन किये बैठी व्यौरति बार।
कच-अँगुरिनि बिच दीठि दै निरखति नन्दकुमार ॥७८॥
निरखति नन्दकुमार सखिन की दीठि बचाए।
एक पंथ द्वै काज करति मुख अलक छिपाए ॥
छिप्यौ चन्द 'हरिचंद' सघन घन देइ लुकंजन।
तहँ सों द्वै उडुगन निरखत करि ढिग जुग कंजन ॥६२॥

सब अँग करि राखी सुघर नागर-नेह सिखाइ।
रस जुत लेति अनन्त गति पुतरी पातुर राइ ॥२७४॥
पुतरी पातुर-राइ नचति मन हरति सुहावति।
अतिहि चतुर गुन भरी अनेकन भाव दिखावति ॥
मनहिं हरति 'हरिचंद' हठनि नित रँगी मदन-रँग।
को जोहत नहिं मोहत यह छवि-पूरित सब अँग ॥६३॥

दीठि-बरत बाँधी अटनि, चढ़ि धावत न डरात।
इत उत तें चित दुहुँन के नट लौं आवत जात ॥१९३॥
नट लौं आवत जात संक बिनु इत उत मिलि भल।
करत कला बहु भाँति मैन-गुरु मंत्र-जोग-बल ॥
दृष्टिबन्ध 'हरिचंद' होत जग लखत न नीठी।
खेलि लहत रस-केलि रीझ चित-नट चढ़ि दीठी ॥६४॥

लोनेहूँ माहस सहस, कीने जतन हजार।
लोइन लोइन सिन्धु तन, पैरि न पावत पार ॥२१३॥
पैरि न पावत पार रहत त्रिवली-तरंग फँसि।
कुच-गिर सों टकराइ नाभि-भँवरन घूमत धँसि ॥

अरुझत वारहि वार रूप-चादर परि भीने।
नैन कहर दरियाव पाइ वूड़त मन लीने ॥६५॥

पहुँचति डँटि रन सुभट लौं, रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीर मैं आँखि उतै चलि जाहिं ॥१७८॥
आँखि उतै चलि जाहिं रुकत नेकहु नहिं रोके।
करैं आपुनो काज संक विनु गिनत न टोके॥
छकी प्रेम 'हरिचंद' परस्पर लगीं दरस ठटि।
मिलत धाइ अकुलाइ हेरि उतही पहुँचति डटि ॥६६॥

गरी कुटुम्बिनि-भीर मैं रही वैठि दै पीठि।
तऊ पलक करि जात उत सलज हँसौंहीं दीठि ॥९७॥
सहज हँसौंहीं दीठि झपकि उत फिरही जाँहीं।
गुरु-जन-नजरि बचाए दुरि सनमुख समुहाँहीं॥
कछु देखन मिस सहज इतहि उत दुरि दुरि अगरी।
पीतम दिसि लखि लेत लालचिन चपल अचगरी ॥६७॥

भौंह उँचै, आँचर उलटि, मौर मोरि, मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सों जोरि ॥२४२॥
दीठि दीठि सों जोरि काज परवस अकुलानी।
गुरुजन आयसु वँधी सलोनी ओट दुरानी॥
प्रेम-भरी 'हरिचन्द' चलत दृग चपल लजौंहैं।
वेवस चितवनि चितै गई मोरत निज भौंहैं ॥६८॥

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यों न होय वेहाल।
लगत जु हिये दुसार करि, तऊ रहत नटसाल ॥३७५॥
तऊ रहत नटसाल सदा सालत जिय माँहीं।
वेधि पार ह्वै जाँहि तदपि ये निसरत नाँहीं॥

सुधि न टरत 'हरिचन्द' छिनहू सोअत जागत।
वारेकहू के लगे सदा लागत से लागत ॥६९॥

अनियारे, दीरघ दृगिनि किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जेहि वस होत सुजान ॥५८८॥
जेहि वस होत सुजान भावते हैं कछु न्यारे।
सहज प्रीति रस-रीति विवस निज पिय वस पारे॥
कहा भयो 'हरिचंद' जु पै लाखन तिय पिय-ढिग।
प्रेमी रीझत प्रेम न अनियारे दीरघ दृग ॥७०॥

जदपि चवाइनि चीकिनी चलति चहूँ दिसि सैन।
तऊ न छाँड़त दुहुँन के हँसी रसीले नैन ॥२३६॥
हँसी रसीले नैन करत वत-रस अरुझाने।
भाव भरे रस भरे मैन के मनहुँ खजाने॥
जग रीझो खीझो वरजौ घटिहैं नहिं चाइनि।
ये अपने रस-पगे चाव किन करहिं चवाइनि ॥७१॥

फूले फदकत लै फरी, पल कटाच्छ-करवार।
करत बचावत विय-नयन-पाइक घाइ हजार ॥२४७॥
पाइक घाइ हजार करत जुरि जुरि दुरि जाहीं।
फिर उँटि सनमुख लरहिं बचहि अभिरहिं मुरि जाहीं॥
जुगल चतुर 'हरिचंद' भीर मुलवत नहिं भूले।
भिरे प्रेम-रन - रंग सुभट - दृग गुन-बल फूले ॥७२॥

चमचमात चंचल नयन विच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुर-सरिता विमल जल उछलत जुग मीन ॥२७६॥
जल उछलत जुग मीन रूप-धारा ललचाने।
झलकत मुख तिमि निरखि न पिय मन रहत ठिकाने॥

सेत वसन 'हरिचंद' कहिय तन उपमा केहि सम ।
प्रगटत वाहर प्रभा चारु मुख चमकत चमंचम ॥७३॥

नावक-सर से लाइकै तिलक तरुनि गइ ताकि ।
पावस-झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि ॥५७०॥
गई झरोखे झाँकि पिया - उर विरह वढ़ाई ।
नीके मुख नहिं लख्यो रह्यौ तासों अकुलाई ॥
मीन उछरि जल दुरै लुकै वन जिमि भजि सावक ।
तिमि सो नैन नवाइ दुरी हति पिय-उर नावक ॥७४॥

सटपटाति सी ससि-मुखी मुख घूँघट-पट ढाँकि ।
पावस-झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि ॥६४६॥
गई झरोखे झाँकि लाज-वस ठहरि सकी नहिं ।
इत पिय-मुख नहिं लख्यौ भले तासों व्याकुल महि ॥
परे लाज-वस जुगल विकल वह घर-मधि ये वट ।
मिलि न सकत 'हरिचन्द' प्रेम की हिय-मधि सटपट ॥७५॥

छुटत न लाज, न लालचौ प्यौ लखि नैहर-गेह ।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच-सनेह ॥५२४॥
भरे सकोच-सनेह निरखि ढिग पिय ललचाहीं ।
दुरि दुरि देखहिं कवहुँ कवहुँ लखि लोग लजाहीं ॥
रोकेहू नहिं रहत न घूँघट तजि सुख लूटत ।
विचि चुम्वक के लोह-सरिस कोउ विधि नहिं छूटत ॥७६॥

दूरौ खरे समीप को मानि लेत मन मोद ।
होत दुहुन के द्दगन ही वत-रस हँसी-विनोद ॥६३९॥
वत-रस हँसी-विनोद मान अरु मान-मनावनि ।
रिझनि-खिझनि-संकेत-वदनि पुनि कंठ-लगावनि ॥

नैननहीं 'हरिचन्द' करत सुख-अनुभव पूरो।
नैन मिले जिय निकट जदपि ठाढ़े दोउ दूरो ॥७७॥

तिय, कित कमनैती पढ़ी, बिन जिहि भौंह-कमान।
चित बेधै चूकति नहीं बंक बिलोकनि-बान ॥२५६॥
बंक बिलोकनि-बान सबै बिधि अजगुत पारत।
बिनु देखी जो वस्तु ताहि तकि कै किमि मारत॥
काढ़े औरहु चुभत अनोखे चोखे सर हिय।
बधिन बेश लै जात सिकारिनि अति बिचित्र तिय ॥७८॥

नीचे हीं नीचे निपट दीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचे, नीचे दियो मन-कुलिंग झकझोरि ॥२५७॥
मन कुलिंग झकझोरि कियो परबस मोहिं प्यारी।
कहाँ जाउँ, का करौं, भयो जिय अतिहि दुखारी॥
अब नहिं आन उपाय सुधाधर-रस-बिनु साँचे।
सब बिधि कियो निकाम निरखि दृग ऊँचे नीचे ॥७९॥

नैन-तुरंगम अलक-छबि-छरी लगी जेहि आइ।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयो मति दीनी बिसराइ॥
मति दीनी बिसराइ बिबस इत सों उत डोलै।
छुटी धीरता-डोर न मुखहू सों कछु बोलै॥
सुपथ-कुपथ नहि लखत भयो बुधि-बिनु उनमद सम।
सब बिधि ब्याकुल भयो चेत चढ़ि नैन-तुरंगम ॥८०॥

ऐंचति सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ।
फिर उझकनि कों मृग-नयनि दृगनि लगनिया लाइ ॥३२०॥
दृगनि लगनिया लाइ इहाँ सों कितै दुरानी।
कल न परत बिनु लखे बिकल गति मति बौरानी॥

छाँड़ि विवस 'हरिचंद' गई बुधि धीरज सैंचति।
दृग-बंसी मन-मीन रूप निज गुन-विझ ऐंचति ॥८१॥

करे चाह सों चुटुकि कै खरें उड़ौंहैं मैन।
लाज नवाए तरफरत करत खूँद सी नैन ॥५४२॥

करत खूँद सी नैन मेंड़ गुरुजन की तोरत।
लोक-लीक नहिं गिनत उतैही हठि मुख जोरत ॥
मन-सहीस 'हरिचन्द' थक्यौ बुधि-बागहि पकरे।
खरे विवस भे रहत न लाज-लगामन जकरे ॥८२॥

नेकु न झुरसी विरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी, खरी झालरति जाति ॥९८॥

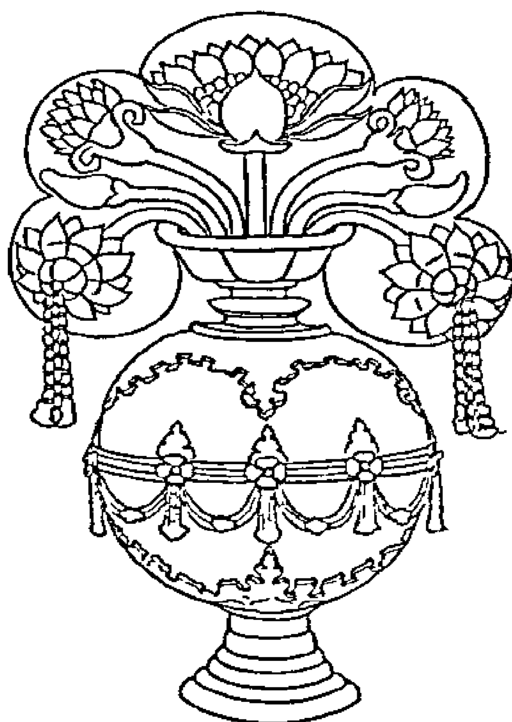
खरी झालरति जाति मनोरथ करि उमगाई।
सींचि सींचि अँसुवानि अवधि-तरु लाइ चढ़ाई ॥
वनमाली 'हरिचंद' चलहु लावहु लै उर सी।
लखहु आपनी नेह-लता वलि नेकु न झुरसी ॥८३॥

कर उठाइ घूँघट करत उसरत पट-गुझरौट।
सुख-मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट ॥४२४॥

लखि ललना की लौट ललन-दृग टरत न टारे।
लोट-पोट ह्वै रहे छके सुधि सकल बिसारे ॥
दुरि दुरि साम्हे होत रसिक 'हरिचन्द' चतुर तर।
अरुझे बारहिं बार लखत त्रिवली-मुख-दृग-कर ॥८४॥

नभ लाली आली भई चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली, आली, अनत, आए वनमाली न ॥११५॥

आए बनमाली न करी सखि बहुत कुचाली।
काली ब्याली रैन बिरह घाली जिय माली॥
बाली दीपक जोति मन्द भइ प्रीति न पाली।
टाली हाली औध भई खाली नभ-लाली॥८५॥



होली

सं० १९३६

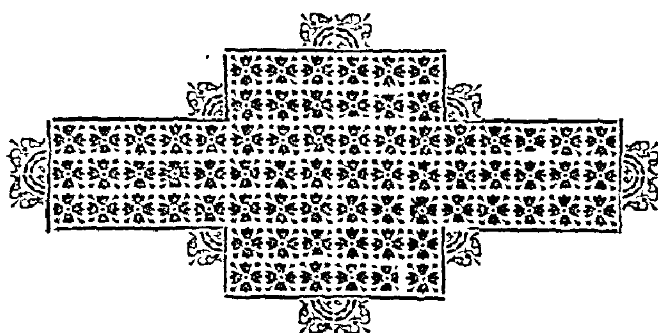
हरिप्रकाश यंत्रालय में
सं० १९२६ मे
मुद्रित

प्यारे,

कहाँ चले ? इधर आओ, त्योहार घर का करो। देखो, हमने होली के कुछ खेल इन पत्रों में लिखे हैं, इनसे जी बहलाओ।

तुम्हारा

हरिश्चंद्र।



होली

दोहा

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरव घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥

झपताल सहाना

सखी बनि ठनि तू चली आज कितकौं न जानत है मग श्याम खड़ो री ।
चंद सो बदन ढाँकि नीले पट देखु न आगे ही छैल अड़ो री ॥
वा मारग कोउ जान न पावत होरी को खंभ सों है कै गड़ो री ।
'हरीचंद' वासों भली दूर ही की बिहारी खिलारी फफंदी बड़ो री ॥१॥

बिहाग

रे निठुर मोहिं मिल जा तू काहे दुख देत ।
दीन हीन सब भाँति तिहारी क्यों सुधि धाइ न लेत ॥
सही न जात होत जिय व्याकुल बिसरत सब ही चेत ।
'हरीचंद' सखि सरन राखि कै भल्यो निबाह्यो हेत ॥२॥

सिंदूरा

कान्ह तुम बहुत लगावत अपुने कों होरी-खिलार ।
निकसि आव मैदान दुरत क्यों लै चौगान निवार ।।
तू नँद-गैंयाँ तौ हैं हमहूँ बरसाने की नार ।
अब को दाँव जो जीतै तोपैं 'हरीचंद' बलिहार ।। ३ ।।

एरी या ब्रज में बसिकै तरह दिये ही बनै काज ।
वह तो निलज विचार करत नहिं तू कत खोवत लाज ।।
तू कुलबधू सुलच्छनि गोरी क्यों डरवावति गाज ।
'हरीचंद' के मुख नहिं लगनो होरी के दिन आज ।। ४ ।।

सखी री कासों ठानत सरबर तू बे-काम ।
वह तो धूत फकंदी ब्रज को तू है कुल की बाम ।।
कौन जीतिहै ढीठ निलज सों तू कित नाहक करत कलाम ।
'हरीचंद' निज बाट चली चल याको उपाधी नाम ।। ५ ।।

धनाश्री

मनमोहन चतुर सुजान, छबीले हो प्यारे ।
तुम बिनु अति ब्याकुल रहैं सब ब्रज के जीवन प्रान ।।
तुमरे हित नँद-लाडिले हो छोड़ि सकल धन-धाम ।
बन बन में ब्याकुल फिरैं हो सुंदर ब्रज की बाम ।।
तनक बाँस की बाँसुरी हो लेत जबै तुम हाथ ।
ब्याकुल धावैं देव-बधू तजि अपने पति को साथ ।।
सुर-नर-मुनि-मन-मोहिनी हो मोहन तुमरी तान ।
जमुना जू बहिबो तजैं थकि टरत न देव-बिमान ।।
जड़ चैतन होइ जात हैं चैतन जड़ होइ जात ।
जौ इन सब की यह दसा तौ अबलन की का बात ।।

उठि धावैं ब्रज-नागरी हो सुनि मुरली की टेर।
लाज संक मानै नहीं हो रहत श्याम कों घेर॥
मगन भई सब रूप मैं हो गोकुल गाँव बिसारि।
'हरीचंद' जन वारने हो धन्य धन्य ब्रज-नारि॥ ६॥

इकताला

झूलत पिय नंदलाल झुलवत सब ब्रज की बाल
वृंदावन नवल कुंज लोल दोलिका।
संग राधिका सुजान गावत सारंग तान
बजत बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका॥
ऊधम अति होत जात घूँघट मैं नहिं लखात
छूटत बहुरंग उड़त अबिर झोलिका।
'हरीचंद' दै असीस कहत जियौ लख बरीस
दिन दिन यह आवै तेहवार होलिका॥ ७॥

काफी

अरे जोगिया हो कौन देस तें आयो।
हाँ हाँ रे जोगी मीठे तेरे बोल॥ टेक॥
आँखैं लाल बनीं मद-माती कुसुम फूल के रंग।
मानो शिव बरसाने आयो चेला न कोऊ संग॥
हाँ हाँ रे जोगी पहिरे बघंबर चोल॥
हाँ हाँ रे जोगी तू तो चेला काम को यह झूठो साध्यौ ध्यान।
जैसे बकुला गंगा-जल में बैठत आइ सुजान॥
हाँ हाँ रे जोगी खोलि आपुने नैन॥
हाँ हाँ रे जोगी अबलन कों ऐसे देखै जैसे ब्रज को रसिया कोय।
जोग लियो कैसो रे जोगी यह तो जोग न होय॥
हाँ हाँ रे जोगी नारी बिन कैसो चैन॥

हाँ हाँ रे जोगी कुंज कुटी एकांत थली में जौ तू निकसै आय।
तौ इक मोहन मन्त्र कों हम देहैं तोहि सिखाय ॥
हाँ हाँ रे जोगी होयगो परम अनंद ॥
हाँ हाँ रे जोगी तोसों मंतर लेहिंगी हो भेंट धरैं धन-धाम।
जोगी तेरे कारने सब जोगिन ब्रज की बाम ॥
हाँ हाँ रे जोगी चेला तेरो 'हरिचंद' ॥
हो कौन देस तें आयो अरे जोगिया ॥८॥

होरी काफी

तुही कहा ब्रज में अनोखी भई।
कान नहिं काहू की करत दई ॥
जानत नहिं कछु चाल यहाँ की आई अबहि नई।
मोहन मिलतहि जानि परैगी भूलैगी सबई ॥
छैल खिलार रसिक होरी को लीने सखा कई।
गाय कबीर अबीर उड़ावत आवत ह्वैहै सई ॥
देखत ही तोहि दौरि परैगो जानि नवेली नई।
हार तोरि रँग डारि चूमि मुख चूरी करिदै रई ॥
तब तोसों कछु बनि नहिं ऐहै जब तेरी लाज गई।
'हरीचंद' सों को ऐसी जो नै कै नाहिं गई ॥९॥

होरी

जो मैं डरपत ही सो भई।
छैल छबीलो खिलारन लीने आगे ठाढ़ो दई ॥
फेंट गुलाल धरे डफ कर लै गावत तान नई।
वाकी तान सुनत सो को नहिं जाकी लाज गई ॥
एक प्रीत मेरी वासों पुनि दूजे होरी छई।
'हरीचंद' छिपिहैं नाहीं अब जानैंगे लो कई ॥१०॥

डफ की

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्री नँदनंदन के वृषभानु लली ठकुरानी के ॥
निरभय रहत वदत नहिं काहू डर नहिं डरत भवानी के ।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के ॥११॥

अब तेरे भए पिया वदि कै ।
दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर लै ॥
कहाँ जाहिं अब छोड़ि पियारे रहें तोहि निज सरवस दै ।
'हरीचंद' ब्रज की कुंजन में डोलैंगे कहि राधे जै ॥१२॥

चिर जीओ फागुन को रसिया ।
जब लौं सूरज चंद उँजेरी तब लौं ब्रज मैं फिर बसिया ॥
नित नित आओ होरी खेलन नित गारी नित ही हँसिया ।
'हरीचंद' इन नैन सदा रहौ पीत पिछौरी कटि कसिया ॥१३॥

कोऊ नाहिंनै जो बरजै निडर छैल ।
अररानो ही परत डरत नहिं रोकि रहत मग वनि अरैल ॥
वाके डर सों कोऊ कुल की नारि निकसत नहिं जमुना की गैल ।
'हरीचंद' कैसे निबहैगी फागुन में वाके फंद फैल ॥१४॥

धमार धनाश्री

मन-मोहन की लगवारि गोरी गूजरी ।
मगन भई हरि-रूप मैं सब कुल की लाज बिसारी ॥
नंद-सुवन को नाम हो कोऊ वाके आगे लेइ ।
सुनतहि तन थरथर कँपै मुख उत्तर कछू न देइ ॥
श्याम सुँदर को चित्र हो वाहि जो कोऊ देत देखाइ ।
नैनन सों अँसुवा बहै मुख बचन कह्यौ नहिं जाइ ॥

जो कोऊ वासों पूछई मुख बोलत आन की आन।
जिय को भेद न खोलई वह नागरि चतुर सुजान॥
दृग को जल सूखै नहीं हो मनु जमुना बहि जाइ।
गोरो मुख पीरो पर्यो मनु दिन में चंद लखाइ॥
नित गुरुजन खीझन रहैं हो लरत ससुर अरु सास।
तिनकी सब बातें सहै नहिं छोड़ै प्रेम की फाँस॥
तन अति ही दुबरो भयो मनु फूल-छरी की चाल।
भोरो मुख नित नित घटै अरु सूखे अधर रसाल॥
जो कोऊ कहि देइ हो मन-मोहन निकसे आइ।
सुनतहि उठि धावै अरी गृह-काज सबै बिसराइ॥
मग में जो मोहन मिलैं हो नहिं देखत भरि नैन।
घूँघट पट की ओट में हो करत कछू इक सैन॥
जहँ मन-मोहन पग धरैं तहँ की रज सीस चढ़ाइ।
सखियन कों सँग छोड़िकै वह पीछे लागी जाइ॥
या ब्रज की सब ग्वालिनी हो ज्यों ज्यों करत चबाव।
त्यों त्यों वाके चित्त मे हो बढ़त चौगुनो चाव॥
जो बैठे एकांत में हो जपत उनहिं को नाम।
ध्यान करै नँदलाल को नहिं भावै कछु धन-धाम॥
खान-पान सब छोड़िकै हो पति को सुख बिसराइ।
कोउ मिस सों ब्रजराज के वह घर के मारग जाइ॥
बातन में बहराइकै हो पूछत उनकी बात।
जौ हमहूँ कछु पूछहीं तौ बातन में फिरि जात॥
नैन नींद आवै नहीं वाके लगे स्याम सों नैन।
भावै नहिं कोउ भोग हो वाने त्याग्यो सब सुख चैन॥
जो कोऊ समुझावही तौ औरहु व्याकुल होइ।
"हरीचंद" हरि में मिलिही हो जल पय सम मन खोइ॥१५॥

राग देश

सखी हमरे पिया परदेश होरी मैं कासों खेलौं।
जिनके पीतम घर हैं सजनी तिनहिं की है होरी ॥
हम अपने मोहन सों बिछुरीं बिरह-सिंधु में बोरी ॥
चोआ चंदन अबिर अरगजा औरहु सुख के साज।
'हरीचंद' पिय बिनु सब हमको बिख से लागत आज ॥१६॥

सिंदूरा

आज कहि कौन रुठायो मेरो मोहन यार।
बिनु बोले वह चलो गयो क्यों बिना किये कछु प्यार ॥
कहा करौं कछु न बनत है कर मींड़त सौ बार।
'हरीचंद' पछितात रहि गई खोइ गले को हार ॥१७॥

असावरी

तुम मम प्रानन तें प्यारे हो, तुम मेरे आँखिन के तारे हो।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आयो फागुन मास।
अब तुम बिनु कैसे रहौंगी तासों जीय उदास ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह होरी त्यौहार।
हिलि मिलि झुरमुट खेलिये हो यह बिनती सौ बार ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो अब तो छोड़ौ लाज।
निधरक बिहरौ मो सँग प्यारे अब याको कहा काज ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जौ रहिहौ सकुचाय।
तौ कैसे कै जीवन बचिहै यह मोहिं देहु बताय ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जग मैं जीवन थोर।
तो क्यों भुज भरिकै नहिं बिहरौ प्यारे नंदकिशोर ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो तुम बिनु जिय अकुलाय।
ता पैं सिर पैं फागुन आयो अब तो रह्यो न जाय ॥

प्राननाथ हो प्यारे लाल हो तुम बिनु तलफैं प्रान।
मिलि जैये हौं कहत पुकारे एहो मीत सुजान॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह अति सीतल छाँह।
जमुना-कूल कदंब तरे किन बिहरौ दै गलबाँह॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो मन कछु ह्वै गयो और।
देखि देखि या मधु रितु मैं इन फूलन को बे-तौर॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो लेहु अरज यह मान।
छोड़हु मोहि न इकली प्यारे मति तरसाओ प्रान॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो देखि अकेली सेज।
मुरछि मुरछि परिहौं पाटी पैं कर सो पकरि करेज॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो नींद न ऐहै रैन।
अति ब्याकुल करवट बदलौंगी ह्वैहै जिय बेचैन॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो करि करि तुम्हरी याद।
चौंकि चौंकि चहुँ दिसि चितओंगी सुनै न कोउ फरियाद॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो दुख सुनिहै नहिं कोय।
जग अपने स्वारथ को लोभी बादन मरिहौं रोय॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सुनतहि आरत बैन।
उठि धाओ मति बिलम लगाओ सुनो हो कमल-दल-नैन॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सब छोड्यौ जा काज।
सोऊ छोड़ि जाइ तौ कैसे जीवैं फिर ब्रजराज॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो मति कहुँ अनतै जाहु।
मिलि कै जिय भरि लेन देहु मोहिं अपनो जीवन-लाहु॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो इनको कौन प्रमान।
ये तो तुम बिनु गौन करन कों रहत तयारहि प्रान॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जिय मे नहिं रहि जाय।
तासों भुज भरि मिलि कै भेटहु सुंदर बदन दिखाय॥

प्राननाथ हो प्यारे लाल हो पल की ओट न जाव।
बिना तुम्हारे काहि देखिहैं अँखियाँ हमैं बताव ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो साथिन लेहु बुलाय।
गाओ मेरो नामहि लै लै डफ अरु बेनु बजाय ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आइ भरौ मोहिं अंक।
यह तो मास अहै फागुन को या मैं काकी संक ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो देहु अधर-रस-दान।
मुख चूमहु किन बार बार दै अपने मुख को पान ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो कब कब होरी होय।
तासों संक छोड़ि कै बिहरौ दै गल मैं भुज दोय ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो रहौ सदा रस एक।
दूर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु वेद-बिवेक ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो थिर करि थापौ प्रेम।
दूर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो सदा बसौ ब्रज देस।
जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो फलनि फलौ गिरिराज।
लहौ अखंड सोहाग सबै ब्रज-बधू पिया के काज ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो जाइ पछारौ कंस।
फेरौ सब थल अपनि दुहाई करि दुष्टन को धंस ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो दिन दिन रहो बसंत।
यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब बिधि अति सुखद समंत॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो बाढ़ौ अविचल प्रीति।
नेह निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की रीति ॥
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो यह बिनती सुनि लेहु।
'हरीचंद' की बाँह पकरि दृढ़ पाछे छोड़ न देहु ॥१८॥

देश

रंग मलि डारो मोपै सुनो मोरी बात ।
बड़ी जुगति हौं तोहिं बताऊँ क्यौं इतने अकुलात ॥
श्री वृषभानु-नंदिनी ललिता दोऊ वा मग जात ।
तुमहुँ जाइ माधुरी कुंज मैं पहिले हि क्यौं न दुरात ॥
वे उत औचक आइ परैं तब कीजौ अपनी घात ।
'हरीचंद' क्यौं इतहि खरे तुम बिना बात इठलात ॥१९॥

पूरबी

तुमहिं अनोखे बिदेस चले पिय आयो फागुन मास रे ।
फूले फूल फिरे सब पंथी यहि रही बिपत बतास रे ॥
या रितु मैं कोउ जात न बाहर भयो काम परकास रे ।
'हरीचंद' तुम बिनु कैसे बचिहै बिरहिन बिकल उदास रे ॥२०॥

काफी

लाल फिर होरी खेलन आओ ।
फेर वहै लीला को अनुभव हमको प्रगट दिखाओ ॥
फेर संग लै सखा अनेकन राग धमारहि गाओ ।
फेर वही बंसी धुनि उचरौ फिर वा डफहि बजाओ ॥
फिर वहीं कुंज वहै बन वेली फिर ब्रज-बास बसाओ ।
'हरीचंद' अब सही जात नहिं खबर पाइ उठि धाओ ॥२१॥

सिंदूरा

एरी कैसी भीर है होरी के दिन भारी ।
जाइ मनाइ कोउ लै आओ प्रानपिया गिरधारी ॥
खेलनवारे बहुत मिलैंगे राग रंग पिचकारी ।
'हरीचंद' इक सो न मिलैगो जो कहिहै मोहिं प्यारी ॥२२॥

विहाग

विनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं।
विरह-उसास उड़ाइ गुलालहि दृग-पिचकारी मेलौं ॥
गाओं विरह-धमार लाल तजि हो हो बोलि नवेली।
'हरीचंद' चित माहिं गलाऊँ होरी सुनो हो सहेली ॥२३॥

गौरी

एरी विरह वढ़ावन आयो फागुन मास री।
हौं कैसी अब करूँ कठिन परी गाँस री ॥
औरै रितु ह्वै गयी बयारहु और री।
औरै फूले फूल और वन ठौर री ॥
औरै मन ह्वै गयो और तन पीय को।
और चटपटी लगी काम की जीय को ॥
वन के फूलन देखि होत जिय सूल री।
विनु पिय मेटै कौन विरह की हूल री ॥
विसर्‍यौ भोजन पान-खान सुख-चैन री।
वही खुमारी चढ़ी रहत दिन-रैन री ॥
रजनी नींद न आवै जिय अकुलाय री।
चौंकि चौंकि हौं परौं चित्त घबराय री ॥
अटा अटा चढ़ि डोलौं पिय के हेत री।
कहूँ नहीं मेरे लाल दिखाई देत री ॥
सपने मैं जो कहुँ पिय-रूप दिखात री।
तौ यह वैरिन नींद चौंकि तजि जात री ॥
जौ कहुँ बाजन बाजै गोकुल-गैल री।
तौ उठि धाऊँ आवत जानूँ छैल री ॥
या घर मैं सखि क्यौं नहिं लागत आग री।
जाके डर हौं खेलन जात न फाग री ॥

बैरिन मेरी सास जिठानी हैं सबै।
देखन देत न मोहन को मुख री अबै॥
जरौ लाज यह ऐहै कौने काम री।
जो नहिं देखन देत पिया घनश्याम री॥
मोहिं अकेली निरबल अबला जान री।
तानि कान लौं खैंच्यो मदन कमान री॥
कहा करौं कहँ जाउँ बताओ मोहिं री।
कहै किन और उपाय सपथ है तोहिं री॥
जदपि कलंकिन कहत सबै ब्रज-लोग री।
तऊ मिटत नहिं मुख लखिबे को सोग री॥
रोअनहूँ नहिं देत प्रगट मोहिं हाय री।
क्यौं ऐसो दुख मिटै बताव उपाय री॥
फिरि डफ बाजत सुनि सखि आए श्याम री।
होरी खेलत प्राननाथ सुखधाम री॥
अब कैसे रहि जाय मिलौंगी धाइ कै।
लाज छाँड़ि जग नेह-निसान बजाइ कै॥
'हरीचंद' उठि दौरी भामिनि प्रीति सों।
बरजेहू नहिं रही मिली मन-मीत सों॥२४॥

ईमन कल्याण

तैंडा होरी खेल मैंडे जीउ नूँ भाँवदा।
तू वारी कोई दी सरमन करदा बुरी वे गालियाँ गाँवदा॥
पाय अबीर नैण विच साडे बंसी निलज बजाँवदा।
'हरीचंद' मैनूँ लगी लड़ तैंडी तूँ नहिं आस पुराँवदा॥२५॥

अहीरी

वह नटवर घन साँवरो मेरो मन ले गयो री ।
जब सों देखि लियो है वाको, तब सों भोजन-पान न भावै,
वैरिन लाज ह्वै गई मेरी विरह दै गयो री ॥
घर अँगना मोहिं नाँहिं सुहावै, वैठत ही घुमरी सी आवै,
लोग कहैं मोहिं देखि-देखि याकों कहा ह्वै गयो री ॥
'हरीचंद' ग्वालिन रसमाती, सास ननद की डर न डेराती,
लोकलाज तजि सँग मैं डोलै, कहा जानै का नंदलाल टोना सो
कै गयो री ॥
वह नटवर घन साँवरो मेरो मन लै गयो री ॥२६॥

गौरी

मैं अरी कहा करौं कित जाऊँ, सखी री मन लै गयो वह छैल ।
मेरी गलियन आइकै वंसी मधुर वजाय ।
जादू सो कछु करि गयो वह मेरो नाम सुनाय ॥ अरी मैं० ॥
तब सों कछु भावै नहीं हौं वन-वन फिरूँ उदास ।
कहुँ मोहिं कल आवै नहीं हौं व्याकुल लेहुँ उसास ॥ अरी मैं० ॥
तरु तर खग मृगन सों हौं पूछत डोलौं धाय ।
मेरे प्यारे लाल कों हो देत न कोउ बताय ॥ अरी मैं० ॥
सखी संग आवै नहीं जानि कलंकिन मोहिं ।
सोई हम दूजी भई हौं कहा कहौं री तोहिं ॥ अरी मैं० ॥
और कछू भावै नहीं विसर्‌यौ भोजन-पान ।
रुचि औरै कछु ह्वै गइ मेरी कहँ लौं करौं वखान ॥ अरी मैं० ॥
सोई वन घरहूँ सोई हो सोई सबै समाज ।
विष सों मोहिं लागै अरी सब मिले विना ब्रजराज ॥ अरी मैं० ॥

कोऊ नाहिं सुनावई हो खबर लाल की आय ।
तन मन वापै वारियै हो भेद जो देहि बताय ॥ अरी मैं० ॥
प्रेम प्रगट जग मैं भयो हो बाज्यौ नेह-निसान ।
तऊ आस पुरई नहीं हो कैसे चतुर सुजान ॥ अरी मैं० ॥
तोरि सिंखला गेह की हो लोक-लाज-भय खोय ।
'हरीचंद' हरि सों मिलौं होनी होय सो होय ॥ अरी मैं० ॥२७॥

पूरबी

एक बेर भरि नैन लखन दै फिर पिया जैयो बिदेसवा रे ।
तुम बिन प्रान रहै वा नाहीं यह जिय मोहिं अँदेसवा रे ।
'हरीचंद' फिर कठिन परैगी कहिहै कोउ न सँदेसवा रे ॥२८॥

कहाँ बिलमे कौन देसवा में छाये मोरे अबहुँ न आये पियवा रे ।
राह देखत मोरि अँखियाँ थकि गईं निसि बीति भयो भोरवा रे ॥
पाटी कर पटकत भई व्याकुल लागत हार पहरवा रे ।
'हरीचंद' पिय बिनु कैसी करिहै कौन लगै मोरे गरवा रे ॥२९॥

ईमन कल्यान

सुनौ चित दै सब सखियाँ बरनि सुनाऊँ श्याम सुँदर के खेल ।
कल हौं निकसी मारग वाही रोकी मेरी गैल ॥
अबिर उड़ाइ गाइ गारी बहु (डफ बजाइ कै) करी रँग की रेल ।
'हरीचंद' तबतें नहिं भूलत नैनन तें वह केलि ॥३०॥

डफ की

ऐसो उधम न करि अबै कंस जियै ।
यह ऊधम तेरो सुन पावै जो तो पकर मँगावै तोहिं लिये दिये ॥
नै कै चलि अटलानि बुरी है सदा रहत अभिमान कियै ।
'हरीचंद' या फागुन में क्यों निबहैंगी हम लाज लियै ॥३१॥

राग होरी विभास

आए कहाँ सों आज प्रात रस-भीने हो।
अति जँभात अलसात लाल रस-भीने हो ॥
कित खेले तुम रैन फाग रस-भीने हो।
कौन को दियो सोहाग लाल रस-भीने हो ॥
आज अहो विनही गुलाल रस-भीने हो।
नैन दोउ लाल लाल रस-भीने हो ॥
गाँव न मिली गुलाल प्यार रस-भीने हो।
जावक लग्यो लिलार लाल रस-भीने हो ॥
मिलत न चोआ वाके देस रस-भीने हो।
अंजन अधर सुवेस लाल रस-भीने हो ॥
कुमकुमा मोर द्वै चलाय रस-भीने हो।
ताको चिन्ह दिखाय लाल रस-भीने हो ॥
वाँध्यौ अँग-अँग भुज मृनाल रस-भीने हो।
दइ उर विनु गुन माल लाल रस-भीने हो ॥
रँग के वदले पीक लाय रस-भीने हो।
नीलो वसन उढ़ाय लाल रस-भीने हो ॥
को ऐसी माती खेलार रस-भीने हो।
जिन रिझयो रिझवार लाल रस-भीने हो ॥
नैन मिलाओ करौ वात रस-भीने हो।
काहे को सकुचात लाल रस-भीने हो ॥
कौन सो आसव कियो पान रस-भीने हो।
मत्त भये हौ सुजान लाल रस-भीने हो ॥
'हरीचंद' इमि कहत वाल रस-भीने हो।
भुज भरि लई गोपाल लाल रस-भीने हो ॥२२॥

राग पील्

रिझैया मान को कर जोरे ठाढ़ो द्वार ।
तू तो मानिनि बात न मानै करत न कछू विचार ॥
वह तो रसिया या दरसन को मानहि को रिझवार ।
वाके नैनन आछे लागैं बिथुरे सुथरे बार ॥
बिन भूषन तन कछुक वसन बिन बिन चोली बिन हार ।
मोहिं कहत छवि निरखि लैन दै तू मति करि मनुहार ॥
ठाढ़ो इक टक मुख निरखत है मनवत नाहिं बिचार ।
'हरीचंद' तू धन्य मानिनी धनि या छवि को प्यार ॥३३॥

सोरठ

दिन दिन होरी ब्रज में आओ ।
चिरजीओ जुग-जुग यह जोरी नित कर जोरि मनाओ ॥
नित बरसो रँग नितहि कुतूहल नित-नित खेल मचाओ ।
'हरीचंद' यह केलि-बधाई नित आनँद सो गाओ ॥३४॥

धमार सिंदूरा

एरी डफ धुँकार सुनि घर न रहौगी मिलौंगी मीत को धाय ॥ध्रु०॥
फागुन लहि उमग्यो जो मदन जिय सो अब रोकि न जाय ॥
प्राननाथ आवन सुनि फिर पग घर में क्यों ठहराय ।
'हरीचंद' गर लगौंगी पिया के जाने जगत बलाय ॥३५॥

ठेका या ब्रज को तेरे माथे कौन दयो ।
जो तू लँगर ढीठ उपाधी ऊधम रूप भयो ॥
काहु न डरत करत मन की नित ठानत रंग नयो ।
'हरीचंद' ब्रज डगर-डगर बदनामी बीज बयो ॥३६॥

होली काफी

पिय मनमोहन के सँग राधा खेलत फाग ॥ ध्रु० ॥
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ॥
रँग-रेलनि झोरी झेलनि में होत दृगन की लाग ।
'हरीचंद' लखि सो मुख शोभा-अयन सराहत भाग ॥३७॥

धमार देश

साइूला म्हारा भींजै न डारौ रंग ॥ ध्रु० ॥
मति नाखौ गुलाल आँखिन में सीखा छौकनि रौढ़ ॥
नाम लेइ म्हारो मति गावो गारी संग वजाइ कै चंग ॥
'हरीचंद' मद-मात्यो मोहन मति लागो म्हारे संग ॥३८॥

धमार काफी

सुंदर श्याम शिरोमणि प्यारो खेलत रस-भरि होरी जू ।
इत सब सखा लसत रँग-भीने उत वृषभानु-किशोरी जू ॥
नाचत गावत रंग वढ़ावत करन वजावत तारी जू ।
हँसत हँसावत रंग वढ़ावत गावत मीठी गारी जू ॥
श्री राधा हँसि मोहन पकरे अपने वश करि लीन्हें जू ।
रंग मचाइ नचाइ गवायो मन भाये सुख कीन्हें जू ॥
कहत लाल छूटन नहिं पैहौ विनु फगुआ वहु दीन्हें जू ।
मों वश परे भागि कित जैहौ वादि चतुरई कीन्हें जू ॥
राधा जू के पाय पलोटौ अरज करो कर जोरी जू ।
तव चाहौ छोखो तो छोरैं नृप वृपभान-किशोरी जू ॥
हा हा खात लाल कर जोरे करत वहुत अनुहारी जू ।
यह गति लखत देवगन व्याकुल ग्वाल हँसत दै तारी जू ॥
तीन लोक जाकी चरन छाँह वल जियत वसत सुख पाई जू ।
ताकी गोपीजन के आगे चलत न कछु ठकुराई जू ॥

शिव-ब्रह्मा-इंद्रादिक जाको परसत चरन डराहीं जू ।
ताको मुकुट उतारत गोपी तनिक शंक जिय नाहीं जू ॥
जा दासी माया इक फेरे जग पर-वस है नाचै जू ।
ताहि नचावत पकरि गोपिका लखि जिय अचरज राचै जू ॥
अस्तुति करत अधर सूखत है नेति कहत तउ वेदा जू ।
गारी ताहि निसंक देत गोपी जन करत न खेदा जू ॥
ध्यान धरत पूजत बहु भाँतिन तदपि ध्यान नहिं आवै जू ।
ताहि गुलाल लगाइ हँसत सब करत जोई मन भावै जू ॥
शिव समाधि-श्रम साधि करत नित तऊ झलक नहिं देखै जू ।
फेंट पकरि तेहि जान देत नहिं ब्रज-जुवती सुख लेखै जू ॥
जाको रुख चाहत त्रिभुवन में सुर मुनि नर भय पागे जू ।
हाथ जोरि सो अरज करत हैं राधा जू के आगे जू ॥
वेद-मंत्र पढ़ि साधि करम-विधि यज्ञ करत जेहि लागी जू ।
ताको मुख मॉडत केशरि सों ब्रज-युवती रस-पागी जू ॥
यह अवगति गति लखि न परत कछु देव विमानन भूले जू ।
मोहे फिरत सार नहिं जानत तऊ केलि-सुख फूले जू ॥
रमा पलोटत चरन सरस्वति गुन-गन गाइ सुनावै जू ।
ताके पद नूपुर दै गोपी निज सुख नाच नचावै जू ॥
बरनौं कहा बरनि नहिं आवै को समुझै जो गावै जू ।
वल्लभ-बल 'हरिचंद' कछुक सो वल्लभि-जन-उर आवै जू ॥३९॥

सिंधूरा धमार

हमैं लखि आवत क्यों कतराये ।
साफ कहत किन जिय की चलत जो
छाँह सों छाँह मिलाये ॥
होरी में का बरजोरी करोगे क्यों इतने इतराये ।
रूप गरब फागुन मदमाते ताहू पै अति रसिकाये ॥

जो तुम चाहत सो न इतै कछु चलो रहौ न लगाये ।
'हरीचंद' तुम्हरे व्यवहारन दूरहि से फल पाये ॥४०॥

होरी के पूजन को पद

आजु हरि खेलत रस-भरि सँग वृषभान-किसोरी ।
पूनो निसि डहडह उँजियारी बाँह बाँह में जोरी ॥
चाँदनि में गुलाल की चमकनि अरु बुकन की झोरी ।
जमुना तीर श्वेत बारू मधि अति शोभित भइ होरी ॥
इत सब सखा खेल बौराने उत मदमाती गोरी ।
अद्भुत छवि 'हरिचंद' देखि कै रह्यो हरषि तृन तोरी ॥४१॥

रेखता

बचे रहो जरा यह बदनाम फाग है ।
आँखों की भी हमसे तुमसे लाग है ॥
इस ब्रज का तो सभी चवाई लोग है ।
आँख लगाना यहाँ बड़ा एक भोग है ॥
मेरी तुमरी प्रीति बहुत मशहूर है ।
तिसमें भी होरी रँग चकनाचूर है ॥
लगी आँख भी छुटी आज तक है कभी ।
करो लाख तदबीर यहाँ क्यों नहिं सभी ॥
उतरे जी के साथ यह अजब खुमार है ।
'हरीचंद' बचना इससे दुशवार है ॥४२॥

समधिन मधुमास

होरी में समधिन आई ।
अहो फागुन त्योहार मनाई ॥
यथाशक्ति कीन्हों सबही ने समधिन को उपचार ।
समधिन जू ने बहुत करायो आदर शिष्टाचार ॥

समधिन की तो चुपरी चपरी चोटी सोंधो लाय।
समधिन को लखि रपटि परत है समधी को मन धाय॥
समधिन की तो अतिहीं चिकनी फिसिल फिसिल सब जात।
देहरिया रँग भीनि रही जहँ प्रविसत सबै बरात॥
सबै छुड़ावत समधिन को लखि बुक्का रँग मुख माँजि।
तब समधिन की चुवन लगत है सारी रँग मुख भीजि॥
छाती मीड़त सब समधिन कर रूप-छटा सब देखि।
डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन लेखि॥
समधिन जू लगवावत डोलत सब सों चोवा रंग।
फटी दरार परी समधिन की चोली उमिर उमंग॥
समधिन जू विपरीत करत तुम इतो नवन नहिं योग।
मानत तुम्हरी नृपहू सों वढ़ि थाप सबै ब्रज लोग॥
फैलि रही चहुँ दिशि समधिन की कीरति की नव वेलि।
तुमहिं देखि सब करत रंग सों होरी रसिक सिरेलि॥
ठाढ़ो होत तुमहिं देखत हीं आदर हित दरबार।
गाँव भरे की नारि तुमहिं इक आदर देत अपार॥
यहि विधि समधिन रंग बढ़त ब्रज कौन सकै सो गाय।
नित दूलह नित दुलहिन पै जन 'हरीचंद' बलि जाय॥४३॥

जोबन कैसे छिपाऊँ री रसिया परो पाछे।
झलकत तन द्युति सारी सों कढ़ि लगत तमासो गाऊँ री॥
मुखससि चमक नील घूँघट में ज्यों त्यों सकुचि चुराऊँ री।
ये उकसौंहैं अंचल बाहर इन कहँ कहाँ दुराऊँ री॥
बजमारे विधि क्यों सिरजे ये कहा करूँ कित जाऊँ री।
'हरीचंद' गोकुल में बसिकै पतिव्रत कैसे निभाऊँ री॥४४॥

यहि विधि सिरजे नाहिं री तेरे जोबन दोऊ ।
रहे दुरे कित ये सिसुता में जो अब प्रगट दिखाहिं री ।
उमगे परत हरत मन हरि को कंचुकि में न समाहिं री ।
'हरीचंद' निधि मदन धरी निज इनहिं संपुटनि माहिं री ॥४५॥

राग काफी

गिरिधर लाल रँगीले के सँग आजु फाग हौं खेलोंगी ।
सास ननद अरु गुरुजन की भय लाजहिं पाँयन ठेलोंगी ॥
चोवा चंदन अबिर अरगजा पिचकारिन रँग झेलोंगी ।
'हरीचंद' ब्रज-चंद पिया के कंठ भुजा गहि मेलोंगी ॥४६॥

रामकली ठेका धमार

कहत हौं बार करोरन होहु चिरंजी नित नित प्यारे देखि सिरावै हियो ।
एक एक आसिख सों मेरे अरब खरब जुग जियो ॥
जब लौं रवि ससि भूमि समुद ध्रुव तारागन थिर कियो ।
'हरीचंद' तब लौं तुम पीतम अमृत पान नित पियो ॥४७॥

होली डफ की

मैं तो रँगोंगी अबीरी रे पिया की पगिया ।
केसर सों सब बागो रँगिहौं लै जैहौं बाबा की बगिया ॥
रँग उड़ाइ के गारी गैहौं भागि कहाँ जैहै ठगिया ।
'हरीचंद' मनमानी करिहौं प्रान पिया के गर लगिया ॥४८॥

कैसे आऊँ मेरी पायल झुनक बजै कैसे आऊँ रे ।
जागत हैं सब सास ननदिया ऐसी लाज कहौ कौन तजै ॥४९॥

सोरठा

जीती सब बरसाने-वारी ।
आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी हारे मोहन गिरिधारी ॥

फगुआ दै हा हा करि छूटे अरु अनेक खाई गारी।
'हरीचंद' कोउ बिधि घर आए तन मन धन सरबस हारी ॥५०॥

इमन कल्यान

मोहिं मति बरजे री चतुर ननदिया होरी खेलन जाऊँ।
फिर ये दिन सपने से ह्वैहैं पाऊँ कै ना पाऊँ ॥
ऐसो सगुन बताउ जो पिय को द्वारहि पै गर लाऊँ।
'हरीचंद' जनमन की प्यासी कछु तौ प्यास बुझाऊँ ॥५१॥

होरी खेलन दै मोहि पिय सों ननदिया नाहक रोकै री।
सब जग तौ बरजहि तुहू क्यों बरबस टोकै री ॥
एक नारि दूजे मरमिन ह्वै कित दुख मैं झोंकै री।
'हरीचंद' कहवाइ सुघर क्यों बढ़वति सोकै री ॥५२॥

सिंदूरा

अब मैं घर न रहूँगी काहू के रोके, मोहिं मति बरजौ कोय।
ऐसो पिय लहि या फागुन को मरै अभागिन रोय ॥
जाऊँगी जहँ पिय होरी खेलत मिलूँगी जगत-भय खोय।
निधरक पिय के अधर पिऊँगी भेंटूँगी भरि भुज दोय ॥
मेटूँगी सब साध उधर के लोक-लाज-भय धोय।
'हरीचंद' पाऊँगी जनम-फल होनी होय सो होय ॥५३॥

लाल गुलाल लाल गालन मैं अति ही मन को मोहै।
सुंदर मुख भयो औरहु सुंदर भूलि जात जिय जो है ॥
सबहि भले कों भलो लगत है सोहै को सब सोहै।
'हरीचंद' तजि प्यारी को मुख भलन जोग अरु को है ॥५४॥

नहिं मानूँगी काहू की बात मैं पिय सँग आजु खेलौंगी फाग।
मोहिं घर के बरजौ जिन कोऊ परी आनि अब लाग ॥

मिल्यौ आइ मोहिं दाँव निकालूँगी अंतर को अनुराग।
'हरीचंद' वनमालिहि सौंपूँगी निधरक जोबन-बाग ॥५५॥

ठुमरी

झूम-झूम के मोरे आए पियरवा।
दौरि-दौरि लागे मोरे गरवा॥
'हरीचंद' लटकीली चाल चलि गर डोर मोतियन को हरवा ॥५६॥

चूम-चूम के मुख भागै सँवलिया।
घूम-घाम के आवे मेरो ही गलिया।
'हरीचंद' मोहिं गरवा लगावे मन भावै मेरे छल-चलिया ॥५७॥

दूर दूर चला जा तू भँवरवा।
आउ छली मत मेरे निअरवा।
'हरीचंद' नाहक तू डारत प्रेम-फाँस अबलन के गरवा ॥५८॥

कूकि-कूकि रही कारी कोइरिया।
फूँकि-फूँकि हिय विरह-दवरिया।
'हरीचन्द' पिय ऐसी समै मैं दूर बसे हनि विरह-कटरिया ॥५९॥

झूम-झूम रहे राते नयनवाँ।
आओ करो अब प्यारे सयनवाँ॥
'हरीचंद' सब रात जगे तुम निकसत नहिं मुख पूरे बयनवाँ ॥६०॥

उड़ि जा पंछी खबर ला पी की।
जाय विदेस मिलो पीतम से कहो विथा विरहिन के जी की॥
सोने की चोंच मढ़ाऊँ मैं पंछी जो तुम बात करो मेरे ही की।
'माधवी' लाओ पिय को सँदेसवा जरनि बुझाओ वियोगिन्न ती की॥६१॥

होली

मेरे जिय की आस पुजाउ पियरवा होरी खेलन आओ।
फिर दुरलभ ह्वैहैं फागुन दिन आउ गरे लगि जाओ॥
गाइ बजाइ रिझाइ रंग करि अबिर गुलाल उड़ाओ।
'हरीचंद' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनाओ॥६२॥

होरी नाहक खेलूँ मैं बन मे, पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं।
सूनो जगत दिखात श्याम बिनु बिरह-बिथा बढ़ी तन मैं॥
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं।
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकन छिन-छिन मैं।
'हरीचन्द' बिनु बिकल बिरहिनी बिलपति बालेपन मैं॥
पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मैं॥६३॥

बन मैं आगि लगी है फूले देखु पलास।
कैसे बचिहै बाल बियोगिन देखि बसंत-बिलास॥
चलत पौन लै फूल-बास तन होत काम परकास।
'हरीचंद' बिनु श्याम मनोहर बिरहिन लेत उसास॥६४॥

चहूँ दिसि धूम मची है हो हो होरी सुनाय।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयो बौराय॥
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बाजत डफ घहराय।
'हरीचन्द' माते नर नारी गावत लाज गँवाय॥६५॥

मोहन गोहन मेरे लग्योई डोलै छोड़ै छिनहुँ न साथ।
घर अँगना करि राख्यो मो घर सब छिन जोरें हाथ॥
झाँकत द्वार चलत पाछे लगि गावत मम गुन-गाथ।
'हरीचन्द' मैं कैसी करूँ मेरे चरन छुआवत माथ॥६६॥

इक-ताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।
सहज सलोनी सुंदर सूरत निरखत ही वलिहारी भई ॥
अव ना रहौं घर लाख कहो कोऊ सवही भाँति तुम्हारी भई ।
'हरीचन्द' सँग लागी डोलौं सुंदर रूप-भिखारी भई ॥६७॥

काफी पीलू

वीती जात वहार री पिय अवहुँ न आए ।
कैसे कै मैं दिन वितवौं आली जोवन करत उभार री,
पिय अवहुँ न आए ॥
कहा करौं कित जाओं वताओ यह समयो दिन चार री ।
अली 'माधवी' पिय-विनु व्याकुल कोउ न सुनत पुकार री ॥
पिय अवहुँ न आए ॥६८॥

होली खेमटा

खेलन में झुकि झूलै झुलनियाँ ।
अँगिया लाल लाल रँग सारी कारो लट लटकाए नगिनियाँ ॥
गावै हँसै वजाइ रिझावै गाल छुआवै अपनी छिगुनियाँ ।
'हरीचंद' रँग मस्त पिया के फिरै प्रेम-माती मतलिनियाँ ॥६९॥

होली डफ की

पीरी परि गई रसिया के वोलन सों ।
याद परी सव रस की वातैं वढ़ि गयो विरह ठठोलन सों ॥
चलि न सकी जकि रही ठौरही डोली नेक न डोलन सों ।
'हरीचंद' सुधि परी फेर पिय प्यारे के घूँघट खोलन सों ॥७०॥

पीरी परि गई रसिया के वोलन सों ।
आयो जानि छैल होरी को डरी लाज के खेलन सों ॥

एक भीति दूजे होरी सिर पर कैसे बचिहौं ठठोलन सों।
'हरीचंद' सब कोउ जानैंगे मेरी गलियन डोलन सों ॥७१॥

डफ की

अरे गुदना रे—गोरी तेरे गोरे मुख पैं बहुत खुल्यौ गुदना रे।
अरे रसिया रे—गोरी वापैं घायल मायल होय रह्यौ ॥
अरे दुपटा रे—गोरी तापैं सुरख अबीरी और फब्यौ।
अरे मोहना रे—गोरी तेरे संग फिरै घर-बार तज्यो ॥७२॥

गोरी कौन रसिक सँग रात बसी।
भरी खुमारी नैन खुलत नहिं सिर तें सारी जात खसी ॥
बेनी सिथिल खसित तेरे अभरन चलत डगमगी अधिक लसी।
'हरीचंद' पिय सँग निसि जागी चोली ढीली भई कसी ॥७३॥

तेरी बेसर को मोती थहरै।
या लटकन में मेरो मन लटकै खटकै धीरज नहि ठहरै।
'हरीचंद' तेरी सुरख लहरिया देखत मेरो मन लहरै ॥७४॥

तेरे श्याम बिंदुलिया बहुत खुली।
गोरे-गोरे मुख पर श्याम बिंदुलिया नैनन में प्यारे की घुली ॥
ताहू पै साँवरो गुदना सोहै भँवर रह्यौ मनो कमल कली।
'हरीचंद' पिय रीझ्यौ तेरो सँग न छाँड़ै गलिय गली ॥७५॥

मैं तो च क उठी डफ बाजन सों।
सोवत रही अपने आँगन में जागी गारी गाजन ॥
देख्यौ तो द्वारे मोहन ठाढ़े सजे छैल सब साजन सों।
'हरीचंद' मेरो नाम लयो नित गारी दई बिन लाजन सों ॥७६॥

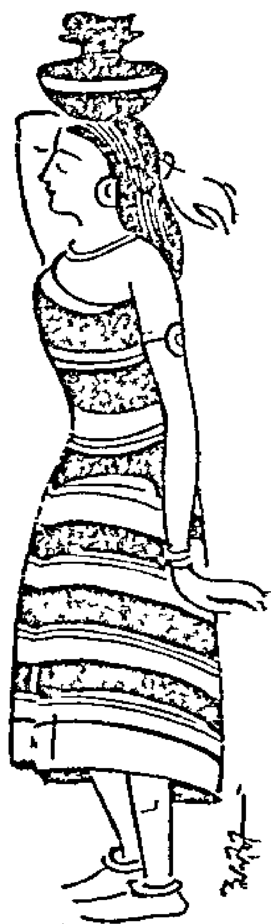
बस करु अब ऊधम बहुत भयो।
भींजि गई रँग सों मेरी सारी अबीर गुलालन बसन छयो ॥

झकझोरन मैं कर मेरो मुरक्यौ कंकन बाजू टूट गयो।
'हरीचंद' तेरे पाँव परत गारी मति दै अपजस बहुत दयो ॥७७॥

आजु मैं करूँगी निवेरो जो तू ठाढ़ो रहैगो रँग मैं।
अबही निकासूँगी सगरी कसर जो तू रोकत टोकत रह्यौ नित मग मैं॥
बाँधि भुजन सों निज बस करि कै मुख चूमौंगी प्रेम-उमग मैं।
'हरीचंद' अपनो करि छाँडूँगी मीर कहाऊँगी सगरे जग मैं ॥७८॥

नित नित होरी ब्रज में रहौ।
बिहरत हरि-सँग ब्रज-जुवतीगन सदा अनन्द लहौ॥
प्रफुलित फलित रहौ वृंदावन मधुप कृष्ण-गुन कहौ।
'हरीचंद' नित सरस सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ॥७९॥





मधु-मुकुल

मधुरिपु मधुर चरित्र मधु-पूरित मृदु मुद-रास।
हरिजन मधुकर सुखद यह नव मधु-मुकुल-प्रकास॥
हृदय बगीचा अस्रु जल बनमाली सुखवास।
प्रेम-लता मैं यह भयौ नव मधु-मुकुल-बिकास॥

सं० १९३७

बनारस लाइट यंत्रालय में
सन् १८८१ ई० में
मुद्रित

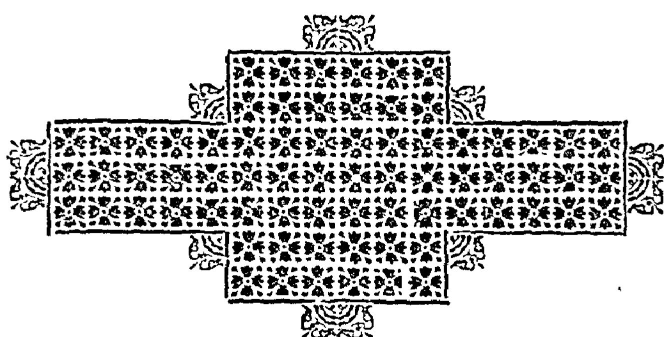
समर्पण

हृदयवल्लभ !

यह मधु-मुकुल तुम्हारे चरण-कमल में समर्पित है, अङ्गीकार करो। इसमें अनेक प्रकार की कलियाँ हैं, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यन्त सुगन्धमय कोई छिपी हुई सुगन्ध लिए, किन्तु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गन्ध का लेश नहीं। तुम्हारे कोमल चरणों में ये कलियाँ कहीं गड़ न जायँ, यही सन्देह है। तथापि तुम्हारे बाग के फूल तुम्हें छोड़ और कौन अङ्गीकार कर सकता है, इससे तुम्हीं को समर्पित है।

फागुन कृष्ण १
सं० १९२७

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र।



मधु-मुकुल

राग वसन्त

जै वृषभानु-नन्दिनी राधे मोहन प्रानपियारी ।
जै श्री रसिक कुँवर नँदनन्दन सुन्दर गिरिधरधारी ॥
जै श्री कुंज-नायिका जै जै कीरति-कुल-उँजियारी ।
जै वृन्दावन-चारु-चन्द्रमा कोटि मदन-मद-हारी ॥
जै व्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ामनि सखियन मैं सुकुमारी ।
जयति गोप-कुल-सीस-मुकुट-मनि नित्य-विहार-विहारी ॥
जयति वसन्त जयति वृन्दावन जयति खेल सुखकारी ।
जय अद्भुत जस गावत शुक मुनि 'हरीचंद' वलिहारी ॥१॥

ऋतु सिसिर सुखद अति ही सुदेस ।
सूचित वसंत भावी प्रवेस ॥
मुकुलित कचनार सुठौर ठौर ।
वन दरसाए नव बौर बौर ॥
कहुँ कहुँ पिक बोले बैठि डार ।
मनु रितुपति नव चोवदार ॥

चलि पवन सुखद छवि कहि न जाय।
रहे जल लहराय अनन्द चढ़ाय ॥
फूली अतिसी सरसों सुहात ।
मानो मिलि मदन वसन्त गात ॥
गेंदा फूले सब डार डार ।
मनु पाग पहिरि ठाढ़ी कतार ॥
गूँजे भँवरा सब ओर ओर ।
आवेस भयो तन मदन-जोर ॥
लखि विहरत जुगल लजाय मार ।
'हरिचन्द' हरपि गाई बहार ॥२॥

खेलत वसन्त राधा गोपाल ।
इत ब्रज-बाला उत ग्वाल-बाल ॥
गावत बहार दै विविध ताल ।
बाजत मृदंग आवज रसाल ॥
तहँ उड़त विविध बुका गुलाल ।
गारी दै दै बहु करत ख्याल ॥
बाढ़ी सोभा अति तौन काल ।
'हरिचंद' निरखि हरपित विसाल ॥३॥

स्याम सरस मुख पर अति सोभित बनिक अबीर सुहाई ।
नील कंज पर अरुन किरिन की मनहुँ परी परछाँई ॥
मनु अंकुर अनुराग सरस सिंगार माँझ छवि देई ।
किधौं नीलमनि मधि इक मानिक निरखत मन हरि लेई ॥
चन्द-वदन में मंगल को मनु अंग निरखि मन मोहै ।
'हरीचंद' छवि बरनि सकै सो ऐसो कवि जग को है ॥४॥

यह रितु वसन्त प्यारी सुजान।
नहिं ऐसी समय में कीजै मान ॥
लखि सोभा यह रितुराज की।
सब सुंदर सुखद समाज की ॥
फूले नव कुसुम अनेक भाँति।
मनु नव-रतनन की नवल पाँति ॥
हरि बैठे हैं तो बिनु उदास।
चलि वेगहि प्यारी पिय के पास ॥
चलिये बनि ठनि रितुराज जान।
'हरिचंद' कहै सो लीजै मान ॥५॥

प्यारी पौढ़ि रहौ अब समै नाहिं।
सब सखियाँ अपने घरन जाहिं ॥
सब दिन बीत्यौ खेलत बसन्त।
अति आनन्दित सब सुख समन्त ॥
चोवा चंदन बुक्का गुलाल।
रँग भीनि बसन ह्वै गयो लाल ॥
भरि रहो अंग-अंगनि अबीर।
सो पोंछि पहिन कै नवल चीर ॥
इमि सुनि हरि की बतियाँ ललाम।
श्रीराधा आई कुंज - धाम ॥
पौढ़े दोउ सुख सों एक पास।
तन मन वारयौ 'हरिचंद' दास ॥६॥

बिहाग धमार

अरी वह अबहिं गयो मुख माँड़ि।
करि बेसुध भरि रूप ठगौरी तलफत ही मोहिं छाँड़ि ॥

हौं आई जल भरन अकेली नाहक जमुना-घाट।
मारग ही में आइ कढ़्यौ वह साजे होरी ठाट॥
औचक पाछे सों मेरी गागरि दीनी सिर तें ढोरि।
नैन मूँदि मेरो मींजि कपोलन कंचुकि डारी तोरि॥
गाढ़े भुज कसि हिये लगायो चुंबन दै ब्रजराज।
औरहु कछु करि गयो ढिठाई मैं रहि गई करि लाज॥
अबहीं चल्यौ जात कछु मुरिके चितवत मन हरि लेत।
सैनन हा हा खात छबीलो ऊपर गारी देत॥
कहाँ गयो री कोउ बताओ रूप चटपटी लाय।
हौं इत रही कराहत ही सखि बेसुध करि करि हाय॥
'हरीचंद' तजि लाज काज सब नेह-निसान बजाय।
अब नहिं रहिहौं बरजौ कोऊ मिलिहौं हरि सों धाय॥७॥

डफ की

मैं तो मलौंगी अबीर तेरे गालन में।
मलि गुलाल आँखें आँजौंगी चोटी गुहौंगी बालन में॥
ब्याज कसक सब दिन की निकसै बेंदी दै तेरे भालन में।
'हरीचंद' तोहि पकरि नचाऊँ मीर बनूँ ब्रज-बालन में॥८॥

काफी

जुरि आए फाँके-मस्त होली होय रही।
घर में भूँजी भाँग नहीं है तौ भी न हिम्मत पस्त॥
होली होय रही॥
महँगी परी न पानी बरसा बजरौ नाहीं सस्त।
धन सब गया अकिल नहिं आई तौ भी मङ्गल-कस्त॥
होली होय रही॥

परवस कायर क्रूर आलसी अंधे पेट-परस्त ।
सूझत कुछ न बसन्त माँहि ये भे खराब औ खस्त ॥९॥

आजु भोरहि भोर खरी निखरी ।
गोरी काहू गाढ़े छैल के पाले परी ॥
चोली-बँद खुले केस तेरे छूटे रैन सुरत-संग्राम लरी ॥
आँख लाल अधर रँग फीको चोटी सिथिल तेरी फूल झरी ।
'हरीचंद' सगरी निसि जागी अंग सिथिल अलसान भरी ॥१०॥

ब्रज की होरी

अरे गोरी जोबन मद इठलाती,
चलै गज मस्त सी चाल ।
अरे गोरी गिनै न काहू वै मदमाती,
फिरत उतानी चाल ॥
अरे गोरी मत इतनो गरवावै,
यह ब्रज टेढ़ो गाँव ।
अरे गोरी अबहिं छैल वह आवै,
मोहन जाको है नाँव ॥
अरे गोरी गर लावै मनमानो करि,
मद तेरो देइ उतार ।
अरे गोरी 'हरिचंद' सँग लीने,
लँगर छैल लगवार ॥११॥

डफ बाजै मेरो यार निकट आयो ।
सुन री सखी मेरो नाम लेइ कै मधुरे सुर गारी गायो ।
मेरे घर के द्वार खरो है अबिरन सों मारग छायो ।
'हरीचन्द' अब घर न रहौंगी मिलि करिहै पिय मन-भायो॥१२॥

सिंदूरा काफी

मेरी आँखिन भरि न गुलाल लाल मुख निरखन दै।
होरीहू मैं काहें करत यह मुख-दरसन जंजाल।
प्रीति रीति नहिं जानत प्यारी मदमातो रस-ख्याल।
'हरीचंद' हिय हौस मिटै क्यों जब यह ऐंड़ी चाल।।१३।।

सिंदूरा

रे रसिया तेरे कारन ब्रज में भई बदनाम।
ऐसी होरी कोऊ खेलत बैंड़ो जैसी तू खेलत स्याम।
करत न लाज बकत मनमानी गर लावत पर-बाम।
'हरीचंद' कछु काम और नहिं एक यहै सब जाम।।१४।।

भीमपलासी

फिर गाई रस की सोइ गारी।
मदन बसीकर सिद्ध मन्त्र सी स्रवन परी धुनि आजि हहा री।।
फेर ओट डफ की करि चितई चितवनि प्रेम भरी सोइ प्यारी।
'हरीचंद' हिय लगी चटपटी व्याकुल भई लाज की मारी।।१५।।

सोरठ का मेल

ब्रज के नगर तैंने कान्हा, ऊधम बहुत मचायो रे।
होरी के मिस कुल-नारिन को गेह छुड़ायो रे।।
करत फिरत निज मनमानी गढ़ लाज ढहायो रे।
'हरीचंद' पिय बाट चलत हठि कंठ लगायो रे।।१६।।

मेरे निकट तू आउ हौस तेरी सबै पुजाऊँ रे।
निज बस कै रस लै अधरन को गर लपटाऊँ रे।।
काम-उमंग निकासि सुजन कसि हियो सिराऊँ रे।
'हरीचन्द' अपनो करि छोड़ूँ तब घर जाऊँ रे।।१७।।

काफी

प्यारे होरी है कै जोरी ।
जो तुम निधरक झुकेई परत हौ मानत नाहिं निहोरी ॥
कहा कहैंगी देखनवारी जो मेरी दुलरी तोरी ।
'हरीचन्द' मुख चूमि भजन की वदी कौन नै होरी ॥१८॥

बिहाग या काफी

अरे कोउ लाइ मिलाओ रे, प्रान-पिया मेरे साथ ।
कैसे भरो जोवन मेरो उमग्यौ मरत जिआओ रे ॥
इन दुखिया अँखियन को सुन्दर रूप दिखाओ रे ।
'हरीचन्द' दुख-अगिन दहकि रही धाइ बुझाओ रे ॥१९॥

श्याम बिनु होरी न भावै हो ।
फाग खेल तेहवार रंग सब जियहि जरावै हो ॥
को दुख मेटै करि कै दया उन्हें जाइ लै आवै हो ।
'हरीचंद' पिय लाइ इतै मोहिं मरत जिआवै हो ॥२०॥

पीलू काफी

अपुने रंग रँगी अँखियन मैं प्रानपियारे अबीर न मेलौ ।
देखन देहु मधुर मूरति मोहिं अटपट खेल पिया जनि खेलौ ।
आओ गर लगि तपन बुझाऊँ काहे करत हौ रँग को रेलौ ।
'हरीचन्द' गर लगि प्यारी के क्यों न सुरति-सुख-सिन्धु सकेलौ॥२१॥

जोगिया काफी

और रंग जिन डारौ रँगी मैं तो रंग तुम्हारे ।
कोऊ बात सों होऊँ जौ बाहर तौ म गारी उचारौ ॥
काहे कों बरबस लोग हँसावत निलज खेल निरवारौ ।
'हरीचंद' गर लगि कै मेरे जिय की हौस निकारौ ॥२२॥

काफी

फेर वाही चितवन सो चितयो ।
लगी काम-चाबुक सी हिय पर तन मन विकल भयो ।
भले लाज धीरज बुधि-बल सब गुरु-जन-भयहु गयो ।
'हरीचंद' निधरक उर मैं फिर काम को राज ठयो ॥२३॥

काफी

होरी है कै राम-राज रे ।
जो तू गिनत न कछू काहुवै करत आपुनेइ मन के काज रे ।
निधरक अँग परसत नारिन के गारी बकि-बकि लेत लाज रे ।
'हरीचंद' भयो छैल अनोखो बरजेहूँ नहिं रहत बाज रे ॥२४॥

पीलू काफी

यह दिन चार बहार, री पिय सौं मिलु गोरी ।
फिर कित तू कित पिय कित फागुन यह जिय माँझ विचार ।
जोबन-रूप-नदी बहती यह लै किन पायँ पखार ।
'हरीचंद' मति चूक समै तू करु सुख सौं तेहवार ॥२५॥

सिंदूरिया

ए री जोबन उमग्यौ फागुन लखिकै कोउ विधि रह्यौ न जात ।
मानत अब न मनाए मेरे जिय अति ही अकुलात ।
कहा करौं कित जाउँ सहेली कठिन काम की घात ।
'हरीचंद' पिय बिनु मेरी कोउ पूछत हाय न बात ॥२६॥

देस

पिया बिनु कटत न दुख की रात ।
तारे गिनत लेत करवट बहु होत न कठिन प्रभात ।
नैनन नींद न आवत क्योंहू जियरा अति अकुलात ।
'हरीचंद' पिय बिनु अति ब्याकुल मुरि-मुरि पछरा खात ॥२७॥

सिंदूरा

भलें मिलि नाँव धरौ सबरे ब्रज के अब तोहिं न छाड़ूँ छैल ।
गोहन लगी फिरौं निसु-बासर कुंज घाट बन गैल ॥
मुख सों लाज सिधारौ सुरग कों काहू की हौं न दबैल ।
'हरीचंद' तजि जाऊँ कहाँ जब सबहि कहत बिगरैल ॥२८॥

बिहाग या काफ़ी

आजु सखि होरी खेलन प्यारे पीतम आवैंगे मेरे धाम ।
रँग सों भरौंगी कछु न डरौंगी पुजवौंगी मन काम ॥
गाल गुलाल लगाइ माल गल दैकै करूँगी प्रनाम ।
'हरीचन्द' मुख चूमि भुजा भरि मेटूँगी दुख को नाम ॥२९॥

बिहाग या सिंदूरा

आजु सखि होरी खेलन पीतम ऐहैं फरकत बायों नैन ।
पुजवौंगी सकल मनोरथ जिय के सुख सों बिताऊँगी रैन ॥
दोउ भुज गल दै मुख चूमौंगी करूँगी उमगि सुख-सैन ।
'हरीचन्द' हिय सफल करूँगी सुनि वा मुख के बैन ॥३०॥

काफी

आजु मैं करूँगी निबेरो खेल को जो तू ठाढ़ो रहैगो रँग मैं ।
अबहीं निकासूँगी सगरी कसर जो तू रोकत टोकत रह्यौ नित मग मैं ॥
बाँधि भुजन सों निज बस करिकै मुख चूमौंगी प्रेम-उमग मैं ।
'हरीचन्द' अपनो करि छाड़ूँगी मीर कहाऊँगी सगरे जग मैं ॥३१॥

पीलू

बन-बन फिरत उदास री, मैं पिय प्यारे बिन ।
कहुँ न लगत जिय घाट बाट घर फिर-फिर लेत उसास री,
मैं पिय प्यारे बिन ।
कछु न सुहात धाम धन के सुख जियत मिलन की आस ।
'हरीचन्द' उमगेई आवत दोउ दृग होइ हरास ॥३२॥

उमग्यौ जोबन जोर री, पिय बिनु नहिं मानै।
देखि फाग-रितु बन द्रुम फूले कियौ मदन घनघोर री॥
बाढ़ी अँग-अँग काम-कसक अति सुनि-सुनि कोइल सोर री।
'हरीचन्द' प्यारे बिन मारत छिन-छिन मदन मरोर री॥३३॥

पीलू खेमटा

सलोनी तेरी सूरत मेरे जिय भाई।
तन मे मन मे नैनन मे छवि तेरी रही समाई॥
इन आँखिन कों और रुचत नहिं करौ अनेक उपाई।
'हरीचन्द' तू ही इक सरवस जीवन-धन सुखदाई॥३४॥

निवानी तेरी सूरत मेरे मन बसी।
नैन उदास अलक अरुझानी मेरे जिय सों फँसी॥
कोटि बनावट वारौं इन पैं सहजहि सोभा लसी।
'हरीचन्द' फाँसी गर डारत तनक मन्द मृदु हँसी॥३५॥

भैरवी या काफी

पिया मैं पल ना तजौं तेरो साथ।
एक ओर अब जगत होउ किन अब कलंक लियो माथ॥
जनम-जनम की दासी मैं तेरी तुम ही मेरे नाथ।
'हरीचन्द' अब तौ तेरो दामन पकस्यो गाढ़े हाथ॥३६॥

काफी

सखी री अब मैं कैसी करौं।
बिनु पीतम गर लगैं कौन बिधि जीवन के दिन भरौं॥
बिनु पीतम हिय मैं हिय मेले कठिन ताप किमि हरौं।
'हरीचन्द' पूछै किन उन सौं कब लौं या दुख जरौं॥३७॥

धनाश्री

फेर अब आई रैन बसन्त की ।
बदलि चली पौनहु सुगन्ध भरि तजि कै सीत हिमन्त की ॥
फिर आई दुखदाइन पिय विनु घरी वियोगिन अन्त की ।
'हरीचन्द' पाती लै आओ अबहूँ तो कोउ कन्त की ॥३८॥

यथा-रुचि

घर मैं छिनहूँ थिर न रहै ।
दौरि-दौरि झाँकति दुआर लगि पिय को दरस चहै ॥
रूप-सुधा पीअति अघाति नहिं पिय के गुनहिं कहै ।
'हरीचन्द' रस-माती पलहू दृग अन्तर न सहै ॥३९॥

सिंदूरा

बे-परवाही के सँग मन फँसि गयो कुदावँ ।
वह न गिनत त्रिनहू सों जा हित धरत सबै ब्रज नावँ ॥
बेढब फँसी करौं का सजनी कहा करूँ कित जावँ ।
'हरीचन्द' नहिं पूछत कोऊ मारि फिरौं सब गावँ ॥४०॥

इकताला

पिया प्यारे मैं तेरे पर वारी भई ।
सहज सलोनी सुन्दर सूरत निरखत ही बलिहारी भई ॥
अब ना रहौं घर लाख कहो कोऊ सब ही भाँति तुम्हारी भई ।
'हरीचन्द' सँग लागी डोलौं सुन्दर रूप-भिखारी भई ॥४१॥

बिहाग

सोई पिय के गर लपटाई ।
सीस भुजा दै पिय के हिय सों कसि कै हियो लगाई ॥
निधरक पियत अधर-रस उमगी तऊ न नेकु अघाई ।
'हरीचन्द' रस-सिन्धु-तरंगन अवगाहत सुख पाई ॥४२॥

भीमपलासी

फेर चलाई रँग पिचकारी।
गाई फेर वहै मीठे सुर प्रेम-भरी सोई गारी॥
फेर वहै चितवन चितई जो तन-मन-बेधन-वारी।
'हरीचन्द' फिर मदन बिबस भई मैं कुल-नारि बिचारी॥४३॥

काफ़ी सिंदूरा

इतरानो फिरि तू भले अपने मन मैं न गिनौं कछु तोहिं माल।
चार दिना को छैल छोहरा सोऊ भयो चहै रसिक लाल॥
गारी गावत डफहि बजावत ऐंडानो चलै मस्त चाल।
'हरीचन्द' छिन मैं सो भुलाऊँ पकरि नचाऊँ दै दै ताल॥४४॥

बिहाग

सोई सुख फिर चाहै पिय प्यारो।
एक बेर चलि फेर निकुंजन जहँ ब्रजराज दुलारो॥
जहँ रस-रंग बिलास किए बहु तुम सँग मिलि कै प्यारी।
वहीं बैठि सुख सोचि सकल सोइ बेबस होत मुरारी॥
तुव गुन-गन दृग भरि-भरि भाखत पिय व्याकुल ह्वै जाई।
राधा-नाम-अधार जिअत है प्यारो कुँअर कन्हाई॥
फेर-फेर सखियन सों पूछत चरित तिहारे आली।
तुव बैठनि बतरानि हँसनि सुधि करि उमगत बनमाली॥
चलु छित बेग कुंज-मन्दिर मैं लै पिय कों गर लाई।
'हरीचन्द' दै अधर-अमृत पिय-प्रानहि राखु बचाई॥४५॥

ईमन

गोरी-गोरी गुजरिया भोरी संग लै कान्हा
नट ललित जमुन-तट नव बसन्त करि होरी।
सोभा-सिन्धु बहार अंग प्रति दिपति देह दीपक-
सी छबि अति मुख सुदेस ससि सो री॥

आसा करि लागी पिय सों रट पंचम सुर गावत ईमन हट
मेघ बरन 'हरीचन्द' वदन अभिराम करी बरजोरी।
सारँग-नैनि पहिरि सुहा सारी भयो कल्यान मिले
श्री गिरिधारी छबि पर जन तृन तोरी ॥४६॥

होली

भारत में मची है होरी ॥
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
अपनी-अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुँ ओरी ॥
दुन्द सखि बहुत बढ़ो री ॥
धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सब को नयन भरो री।
दीन दसा अँसुअन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री ॥
भींजि रहे भूमि लटोरी ॥
भइ पतझार तत्व कहुँ नाहीं सोइ बसन्त प्रगटो री।
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोइ फूली सरसों री ॥
सिसिर को अन्त भयो री ॥
बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौरौ री।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अँधार छयो री ॥
रूप नहिं काहू लख्यो री ॥
हारौ भाग अभाग जीत लखि बिजय निसान हयो री।
तब स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल फगुआ माहिं लयो री ॥
शेष कछु रहि न गयो री ॥
नारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयो री।
मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहि भयो री ॥
उत्तर काहू न दयो री ॥
उठौ उठौ भैया क्यौं हारौ अपुन रूप सुमिरो री।

राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री ॥
  दीनता दूर धरो री ॥
कहाँ गए छत्री किन उनके पुरुषारथहि हरो री ।
चूड़ी पहिरि स्वाँग बनि आए धिक धिक सबन कह्यो री ॥
  भेस यह क्यो पकरो री ॥
धिक वह मात-पिता जिन तुमसो कायर पुत्र जन्यो री ।
धिक वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रगटो री ॥
  जनमतहि क्यो न मरो री ॥
खान-पियन अरु लिखन-पढ़न सों काम न कछू चलो री ।
आलस छोड़ि एक मत ह्वैकै साँची बुद्धि करो री ॥
  समय नहिं नेकु बचो री ॥
उठौ उठौ सब कमरन बाँधौ शस्त्रन सान धरो री ।
बिजय-निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरो री ॥
  छत्रीपन रँगन रँगो री ॥
आलस मैं कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसो री ।
कित गयो धन-बल राज-पाट सब कोरो नाम बचो री ॥
  तऊ नहिं सुरत करो री ॥
कोकिल एहि बिधि बहु बकि हारयौ काहू नाहिं सुनो री ।
मेटी सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरो री ॥
  काज नहिं तनिक सरो री ॥
चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपटो री ।
भयो पंक अति रँग को तामैं गज को जूथ फँसो री ॥
  न कोउ बिधि निकसि सको री ॥
खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचो री ।
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी ॥
  बजत डफ राग जमो री ॥

होरी सब ठाँवन लै राखी पूजत लै लै गोरी।
घर के काठ डारि सब दीने गावत गीत न गोरी ॥
झूमका झूमि रहो री ॥
तेज बुद्धि-बल-धन अरु साहस ऊधम सूरपनो री।
होरी में सब स्वाहा कीनो पूजन होत भलो री ॥
करत फेरी तब कोरी ॥
फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझो री।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री ॥
नाम जमघंट परो री ॥
फूँक्यौ सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री।
तब रोअन मिस चैती गांई भली भई यह होरी ॥
भलो तेहवार भयो री ॥४७॥

होली लीला

राग मधुमात सारंग वा गौरी

रँगीली मचि रही दुहुँ दिसि होरी, इत हरि उत वृषभानु-किसोरी।
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी, अरुन अबीर की झोरी ॥
इत जमुना निरमल जल लहरति तरल तरंगनि राजै।
उत गिरिराज फलित चिन्तित फल चिंतामनिमय भ्राजै ॥
ता मधि विपुल विमल वृन्दावन जुगल केलि-थल सोहै।
षटरितु रहत जहाँ कर जोरे वैकुंठहु को मोहै ॥
जाही जुही केतकी कुरवक बकुल गुलाब निवारी।
फूले फूल अनेकन लपटत लहरत केसर क्यारी ॥
लपटी लता तरोवर सों बहु फूलि फूलि मन भाई।
मनु मण्डप में दुलहा दुलहिन रहे सेहरन लाई ॥

कहुँ कहुँ सघन तरोवर सों मिलि मण्डल सुन्दर छायो।
पत्ररंध्र सों धूप चाँदनी मिलिकै लगत सुहायो॥
कहूँ कुटी कहुँ सघन कुटी कहुँ कदम खण्डिका छाई।
कहुँ वितान कहुँ कुँज-मंडप कहुँ छई छाँह मन-भाई॥
कहुँ कन्दरा सिलामनि वेदी विविध रतन सोपाना।
झरना झरत विमल जल के जहँ करत हंस कल गाना॥
फले सकल फल अमृत सरिस कहुँ कहूँ मौर बिस्तारा।
कहुँ फूलन पै मत्त भँवरगन उड़त करत झंकारा॥
कहूँ घाट छतरी कहुँ राजै सीतल सुभग तिवारी।
कहुँ बालुका बिछी अति कोमल स्वच्छ स्वेत सुखकारी॥
कहुँ कहुँ झुके तरोवर जल मैं मनु निज प्रिय को भेटैं।
मुकुर माँहि सोभा लखि अपनी कै जिय को दुख मेटैं॥
कहुँ कहुँ कुण्ड तलाव बावरी भरे फटिक से नीरा।
कहूँ झील लहरत अपने रँग देखि टुरत दृग-पीरा॥
त्रिविध पौन जब लै पराग मधु चहुँ दिसि आनि झकोरे।
विह्वल ह्वै मद-अंध करत तब गंध लिए जब दौरे॥
फूले जलनि कमल अरु कोई कहुँ सैवाल सुहाई।
कारण्डव जल-कुक्कुट सारस विहरत तहँ मन लाई॥
मोर चकोर सारिका सुकगन मिलि कल कलह मचाई।
डार डार प्रति बैठि कोकिलन काम-बधाई-गाई॥
सरसों अतिसी खेतन सोहैं कुसुम फूल बहु फूले।
नव पलास कचनार देत बिरहीजन के हिय हूले॥
सखिन जानि होरी को आगम पथ गुलाब छिरकायो।
कियो टेर केसर गुलाल को रंगन हौज भरायो॥
तोरि गुलाब पाँखुरिन मारग सोहत है अति छायो।
अगर धूप ठौरहि ठौरन दै बगर सुवास बसायो॥

पानदान झारी पिकदानी मुरछल चँवर अड़ानी।
फूल चँगेर माल बहु बिंजन लै मृगमद घन सानी॥
लिये सकल सुख-साज सहेली सरस कतारन ठाढ़ी।
मानहुँ मदन-सदन बिसुकरमा चित्र पूतरी काढ़ी॥
कोउ गावत कोउ नाचत आवै कोऊ भाव बतावै।
कोउ मृदंग बीना सुर-मण्डल ताल उपङ्ग बजावै॥
खेलत गेंद कहूँ कोउ नट सी कला अनेकन साजै।
आँख-मिचौनी होत तहाँ इक परसि और को भाजै॥
छड़ी लिए इक खड़ी अदब सों सबइ तमाम जनावै।
एक भँवर निरवारनवारी एक निरखि बलि लावै॥
आवत तहँ दोउ होरी खेलन परम प्रेम-रँग भीने।
कछु अलसात छके मद लोचन बाँह बाँह मैं दीने॥
अपुनो अपुनो जूथ अलग करि खेलत सब मिलि गोरी।
जान न देहु प्रान-प्यारे को यह कह्यौ ललित किसोरी॥
रोपि मध्य डाँड़ो जै कहिकै बिजय-निसान बजाई।
कियो खेल आरंभ सखी प्यारी की आज्ञा पाई॥
धरन लगीं मनमोहन पिय को घेरि घेरि ब्रज-नारी।
लाल कियो गोपाल लाल कों दै केसर पिचकारी॥
चोआ चन्दन बुक्का बन्दन केसर मृगमद रोरी।
अबिर गुलाल कुमकुमा कुमकुम अरु घनसार झकोरी॥
मींजि कपोल कोउ भाजत है धाइ फेंट कोउ खोलै।
कोउ मुख चूमि रहत ठोड़ो गहि इक गारी दै बोलै॥
इतनेहिं उत सों सखा-जूथ सब सजि सजि खेलन आए।
बाँधे पाग सुरंग फेंट मैं रँग रँग बसन बनाए॥
फेंटन पै तुर्रा की झलकनि मोर-पँखोआ सोहै।
बेनु सींग दल झाँझ ढोल डफ बाजन सुनि मन मोहै॥

गावत गारी अविर उड़ावत धूम मचावत डोलैं।
पकरि लेत तेहि जान देत नहिं हो हो होरी बोलैं॥
तिनसों कहि ब्रजराज लाड़िले सखियन धोखा दीन्हो।
मैं प्यारी के सँग आवत हो इन बीचहि गहि लीन्हो॥
धाइ धरौ इनकों इक इक करि रँग मैं सबन भिंजाओ।
गारी दै मन-भायो करि कै बहु विधि नाच नचाओ॥
ये अबला सबला भई भारी इनको सब मद गारौ।
आजु हराइ इन्हैं होरी मैं रँग के पिचुका मारौ॥
धाए सुनत ग्वाल मदमाते गहिरो खेल मचायो।
धूँधर करि गुलाल की चहुँ दिसि रंग-नीर बरसायो॥
एक घोरि कै मृगमद डारत इक लावत घनसारा।
चोआ तेल फुलेल एक लै अतर भिंजावत बारा॥
हरित अरुन पंडुर श्यामल रँग रंग गुलाल उड़ाई।
बिच बिच विविध सुगन्ध सनित बुक्का बगरत मन-भाई॥
कबहुँ बादले रंग रंग के कतरि मिहीन उड़ावैं।
तरनि किरिन मिलि अति छवि पावत चमकि सबन मन भावैं॥
परिमल अम्बर मृगमद पीसे सने कपूर सुहाए।
मेलि मेलि केवरा धूर में झोरिन पूरि उड़ाए॥
चोआ चोंटि चोंटि के अंगन तापर बिंदुली लावैं।
केसर छींटि चरचि रोरी सों लै रँग सों नहवावैं॥
गारी देत निलज डफ बाजत ऊँचे राग जमायो।
गूँजि रह्यौ सुर बर वृन्दावन हो हो शब्द सुनायो॥
एकन को गहि रहत एक एकन को इक मुख माँड़ैं।
करत निपट पट-रहित एक को हा हा करि करि छाँड़ैं॥
नारि नरन कों नारि बनावत नर नारिन नर साजैं।
गाँठ जोरि बर बदन चीति कै चूमि चूमि मुख भाजैं॥

फूल-छड़ी की मारि परत तब लाल उठत अकुलाई।
पुनि हो हो करि रेलि पेलि तिय-दलहि भजावत आई॥
अवनि अकास एक रँग देखियत तरुन अरुनई छाई।
लता पत्र प्रति रँगे रंग सों इक रँग परत लखाई॥
पटे अटारी अटा झरोखा मोखा छाजन छातैं।
मारग सहित सुरँग गुलाल सों लाल सबै दरसातैं॥
भींजे बसन सबै तिन मधि कोउ सीत-भीत अति काँपै।
काहू के पट छुटे लाज सों अपुनो तन कोइ ढाँपै॥
एकन को इक पकरि नचावत एक बजावत तारी।
आपुन हँसत हँसावत औरन देत कुफारी गारी॥
रंग जम्यो होरी को भारी मद-माते नर-नारी।
सबके नैनन में देखियत इक होरी-खेल-खुमारी॥
तिन मधि घूँघर मैं गुलाल के लसत जुगल लपटाने।
भींगे रंग सगबगे बागे रस-बस आलस साने॥
श्याम सरूप मनोहर मोहन कोटि काम लखि लाजै।
उमगत अंग अंग तें जोबन वय किसोर नव भ्राजै॥
मनु मानिक नीलम मिलाइ दोउ सरस पूतरी ढारी।
उलहत रोम रोम तें सोभा कवि-रसना-मति हारी॥
अंग अनंग भर्‍यो आगम के दिन सहजहि सुँदराई।
लखतहि मन मोहत जुवतिन को चढ़त तरल तरुनाई॥
पद-तल लाल प्रवाल चिन्ह धुज अंकुस मंडित सोहै।
नव पल्लव पर सरस ओस-कन से नख लखि मन मोहै॥
चरन मंजु मंजीर विविध नग-जटित न परत बखानै।
मनु मनिगन मिस मुनिजन को मन रहत चरन लपटाने॥
जुगल पींडुरी गुलफन की छवि लगत दृगन अति नीकी।
मनु वैदूर्य्य डार जुग सुंदर करत जगत छवि फीकी॥

कदलि-खंभ सम जंघ जुगल जेहि रमा पलोटन चाहै ।
तापै लपटि रह्यौ पीतांबर सोभा सुख अवगाहै ॥
मनु घन में घिरि दामिनि लपटी नीलहि कंचन-बेली ।
रस सिंगार में बिरह-लता सु-तमालहि पीत चमेली ॥
तापै कलित किंकिनी कूजति मनु रसना कविगन की ।
बंदनवार काम-मंदिर की विजय-घोस रति-रन की ॥
तापैं फेंटा ललित लपेटा पँचरँग सोभित ऐसे ।
सावन साँझ विविध रँग बादर दामिनि चूमत जैसे ॥
उदर उदार सचिक्कन कोमल भर्‌यौ सकल रस सोहै ।
लेत लपेट चितै चितवत नहिं भरत पेट दृग जोहै ॥
सब जग-मूल नाभिसर सोहत रूप-गाँठ मनु बाँधी ।
ता पर रमत रसिक रोमावलि रस-सरिता सर साधी ॥
जुवति गाढ़ रति निरदय समुदय सदय दीन हित साजै ।
सोभित उर जहँ अनुदिन नवल प्रिया-प्रतिबिम्ब बिराजै ॥
ता पर हार अपार परे मनिगन की अनगन माला ।
ओतप्रोत मनु जुवति मनोरथ सोत पोत मनि ज्वाला ॥
सब पर सोहत गुंजमाल बनमाल सहित आलम्बी ।
मनु अनुराग सहित सगरे रस रहे हरि-गल अवलम्बी ॥
मुक्तपाँति सोभित अति सुन्दर कौस्तुभ-मनि बिराजै ।
प्यारी मन को सरस सिंहासन छत्र मनहुँ छबि छाजै ॥
मुक्त भएहूँ रस के लोभी-जन हरि-गर लपटाने ।
पुन्य गोप-पद पाइ ओप-जुत चोप भरे सरमाने ॥
प्रियाबरोधन चतुर बाहु जुग देखत ही मन मोहै ।
अति आतुर तिय गर लगिबे कों नील बेलि सी सोहै ॥
मनिनपूर केयूर जुगल पर नौ-रतनी कसि बाँधी ।
नभ भमुंड के मुंड-दंड ध्रुव सह ग्रह पंगति नाँधी ॥

मनिबन्धन मनिबन्ध कलित कंगन पहुँची मन-भाई।
जुगल नवल पल्लव मैं मानहुँ कुसुम-लता लपटाई॥
जुवती-उर परसन अति चंचल कर जुग अति रँग माँड़ै।
हाथहिं हाथ लेत ये चित कों फेर कबहुँ नहिं छाँड़ै॥
ऊरधरेख चक्र-चिन्हन सों चिन्हित कर-तल देखे।
मनु गुलाल पाटी पैं अंकित किए मदन निज लेखे॥
पोर पोर अँगुरी मैं मुँदरी ऊपर नख-द्युति भारी।
विद्रुम कली अग्र मुक्ताफल मीना मध्य सँवारी॥
कदलिपत्र सी पीठ दीठ परि नीठ नीठ नहिं चालै।
ता पर पीत उपरना सोभित लपटी धूप तमालै॥
काजर पीकादिक छापित वर रंग भर्‌यौ मन मोहै।
सोना और सुगन्ध दोऊ मिलि नगन जर्‌यौ अति सोहै॥
कलकल कंठ कुंठ कर सोभित कंठ पीक-छवि छाजै।
मनहुँ नीलमनि सरस सुराही अमृत भरी अति राजै॥
चिबुक चारु मोहत मन जोहत करन करन छवि भारी।
जुगल कपोल गोल दरपन सम प्रतिबिम्बित जहँ प्यारी॥
सकल स्वाद रस-मूल अधर जुग कोमल अति अनियारे।
मनु द्वै लाल अँगूर लिए सुक लखि मुनि-मन मतवारे॥
कुन्द-कली सी दन्त-पाँति मैं बीरा रंग सुहायो।
मनु दरक्यौ दारिम लखि प्रमुदित नासा सुक उड़ि आयो॥
आगम सूचित रेख लेख तल अधर आभ अरुनायो।
हलकत बेसर मोती सुन्दर अति जिय लगत सुहायो॥
बरुनी नैन चपल पल भौंहन सोभा के मनु भौना।
धनुप जाल करि मनहुँ फँसाए खंजन के जुग छौना॥
प्रिया-रंग-माते अलसाने सरसाने रस-साने।
प्रिया-भाव के भरे अघट मनु सोहत जुगल खजाने॥

प्रिया-ध्यान में मुँदे रहन की खुले रहन की देखैं।
मुकित रहन की याद परे नित जिनकी बान बिसेखैं॥
खंजन मीन कमल नरगिस मृग सीप भौंर सर साधे।
मनु इनके गुन एकति करिकै अंजन-गुन दै बाँधे॥
जहँ जहँ परत दृष्टि इनकी वन गलियाँ अलियाँ मोहैं।
मानिक नील हीर से बरसत खिलत कंज से सोहैं॥
मनु इन मन चदि राख्यौ ब्रज में कहर चहूँ दिसि डारी।
जहाँ परैं कतलाम करैं तित सब नव जोबनवारी॥
प्रिया-रूप लखि रीझि मनहुँ श्रवनन सों कहन गुन धाए।
तिनहीं के प्रतिबिंब मकर जुग कुंडल करन सोहाए॥
मानिनि-मान पतिव्रत तिय को मुनि-मन ज्ञान-गरूरैं।
सोभा सब उपमानन की यह बदि बदिकै नित चूरैं॥
चंचल चपल चारु अनियारे फरकत सुथिर रहैं ना।
प्रिया-बिंब प्रतिबिंबित पुतरिन प्रिया-रूप के ऐना॥
मान तजत कोउ परी कराहत कोउ अति व्याकुल भारी।
चली निकट आवत कोउ धाई जित तित इनकी मारी॥
कारी छपकारी अनियारी बरुनी सघन सुहाई।
चुभत नोक जाकी नित मम उर रस छाजन सी छाई॥
केसर आड़ रेख पर सोभित लाल तिलक छवि भेखा।
मान महावर के जुग पद की सोभित मनु जुग रेखा॥
ललित लटपटी लाल पाग बिच अलक अधिक छवि देई।
मनु अनुराग सिंगार लपटि रहे निरखत जिय हरि लेई॥
चिक्कन चिलकदार चुनवारी कारी सोंधे भीनी।
नव घूँघरवाली अलकावलि लटकत तिय-मन छीनी॥
पाग-पेंच पर ललित हीर सिरपेंच भल्यौ रँग दमकै।
गरब भयौ छवि छीनि जगत की ओप-चोप करि चमकै॥

तापर मोर-पखौआ सुन्दर हलत अतिहि छवि पाई ।
जगत जीति सिंगार-सिखर पर धुजा मनहुँ फहराई ॥
सहज तियागन को मन लोभा लखि नख-सिख की सोभा ।
गोभा उठत प्रेम के जिय में देत मदन मन चोभा ॥
कोमल तासु गंध सोभा प्रति अंगन सरस सँवारी ।
मनहुँ नीलमनि अतर मेलि कै पुतरी साँचे ढारी ॥
तैसिहि श्रीवृषभानु-नन्दिनी रंग-भरी सँग राजै ।
रूपगर्विता जुवति-जूथ सत जा पद-नख लखि लाजै ॥
केहि अधिकार कहन सोभा को को पुनि सुनिबे लायक ।
बिनु ब्रजनाथ सदा जो तिनके अंतरंग पद-पायक ॥
हरि-अनुराग प्रगटि पद-तल जुग अरुन लखत मन मोहैं ।
पिय हिय अधर नैन लागनि की जासु वानि नित जोहैं ॥
पद-नख दिव्य फटिक से सुन्दर कवि पै नहिं कहि जाहीं ।
मानस मैं हरि होत रुद्र-बपु लहि जिनकी परछाहीं ॥
मेंहदी सुरँग महावर आभा मिलिकै अति दुति दमकै ।
प्रिया-अनय पर प्रीतम की अनुराग-मेंड़ मनु चमकै ॥
अनवट बिछिया पग पातन सो सोभित अति पद-पीठी ।
मनहुँ कमल पर कलित ओस-कन चन्द्र चन्द्रिका दीठी ॥
पायजेब गूजरी छड़े दोउ पग मैं पड़े सुहाए ।
पिय के उज्जल विविध मनोरथ मनु तिय-पद लपटाए ॥
चरनन की छवि किमि भाखैं ये जग के सब कवि छोटे ।
बारम्बार प्रिया सोए पर जे हरि आप पलोटे ॥
मानस मैं इनकी परछाहीं जब प्रगटै रँग भीने ।
पांग-पेंच चन्द्रिकन श्याम घन इन्द्र-धनुष छवि छीने ॥
बिनु श्रीहरि कै सखि समाज के जा पद-पंकज-धूरी ।
नहिं पाई शिव-अज अजहूँ लौं जद्यपि करत मजूरी ॥

सारी नील लपटि रही कटि लौं रँग अनुरूप सोहाई।
मनु हरि आप बसन-मिस निस-दिन रहत अंग लपटाई॥
अंचल हार माल मोतिन सो हिय अति सोभा पावै।
उमगि उमगि जेहि स्याम मनोहर बार बार उर लावै॥
निज जन अभय करन को दोऊ करन मेंहदी राजै।
कल पल तामैं मनु प्रवाल को पल्लव सोभा साजै॥
मुँदरी छल्ले बाँक आरसी कंकन पहुँची सोहैं।
कड़े पड़े हथफूल अनूपम देखत पिय मन मोहैं॥
इन हाथन ही हाथन-हाथन पिय को मन लै लीनो।
निज जन को नित भक्ति-दान बिनही प्रयास इन दीनो॥
इनहीं पै धरि हाथ पिया डोलत निरतत मद-माते।
धाय मिलत आगे पिय कों ये याही तें रँग-राते॥
पीठि परम सोभित चुटिला सो दीठि टरत नहिं टारी।
मानस मैं पिय प्रानन की जो एकहि राखनवारी॥
मुख-सोभा कापैं कहि आवै जहँ बानी मति हारी।
पिया-प्रान अवलम्ब एक सब उपमहिं दीजै वारी॥
पिय के जीवन-मूरि अधर दोउ कोमल पतरे सोभैं।
पिय की रसना सजल करत लखि अमृत-स्वाद के लोभैं॥
ठोड़ी नासा बेसर के बिच छोट । सो मुख राजै।
अति भोरो रंजित रँग पानन दन्तावलि मिलि छाजै॥
जुगल कपोलन झलकत लखियत करनफूल परछाहीं।
रूप-सरोवर चलित कमल मनु कविजन कहत लजाहीं॥
प्रतिबिंबित ताटंक नगन मैं जुगल कपोल सुहाए।
मनु द्वै आरसि मध्य चन्द्र प्रतिबिम्बन चढ़त लखाए॥
तनिक तरकुली कानन सोहत केस-पास छुरि आए।
पास प्रगट परिवेष किनारिन मिलिकै अति छबि छाए॥

करन पिया-सुख-करन मनोहर सोभित परम लखाहीं।
पीतम-वचन मुरलिका धुनि-सुनि प्रमुदित रहहिं सदाहीं॥
नैन सकल रस-ऐन ध्यान के द्वार छके रँग भारी।
पुतरिन के मिस सदा विराजत जिनमें श्याम-विहारी॥
सुन्दरता श्यामता बड़ाई चंचलता अरुनाई।
लाज सहित ये सिमिटि-सिमिटि सब इनहीं मैं मनु आई॥
सहजहि कजरा फैलि रह्यो लखतहि पिय-मन ललचाई।
अति भोरी चितवन चमकति सो पिय के मन बहु भाई॥
पलक पिया छवि ओट छवीली दया भरी अनियारी।
घनसारी कारी वरुनी राजत प्यारी झपकारी॥
भौंह जुगल छवि भरी धनुष सी किमि कवि पै कहि आवै।
मानहु मैं जिनपै कबहूँ नहिं कुटिलपनो दरसावै॥
रस सोहाग की आलबाल सों भाल ललित छवि छायो।
तनिक वेंदुली सह जापैं अति सेंदुर-बिन्दु सुहायो॥
केस सुदेस चमक चिकनारे कारे अति सटकारे।
खुले बँधे सवही विधि सोहत सघन सुघूँघरवारे॥
सारी मुख परिवेप किनारी मैं सुन्दर मुख दमकै।
मण्डल किरिनावलि तारावलि मैं ससि मानहुँ चमकै॥
सोभा सुंदरता सुवास कोमलता ललित लुनाई।
होड़ा-होड़ी उमड़ि रहे सब कवि पैं नहिं कहि जाई॥
सोभा फैलत रस बरसत सो उमगत सी तरुनाई।
पसरत तेज लुनाई लहकति उपजति सी छविताई॥
जितो जगत मैं रूप होत सब जाके तनिक विलोकें।
ताकी सोभा को कहि पावै रहत रसन कवि रोकें॥
प्रानपिया रिझवार पास मुख चितवत ही रहि जाहीं।
ह्वै बलिहार प्रान मन वारत छिन-छिन अति ललचाहीं॥

लिए रहत रुख भौंर निवारत इक टक वदन निहारैं।
तनिक हँसनि बोलनि चितवनि पैं अपुनो सरवस वारैं॥
सखी सहस तजि नित-नित जाके मोहन लागे डोलैं।
हँसत प्रिया के हँसे प्रान-प्यारी के बोले बोलैं॥
गुन गावत लै पान खवावत दावन रहत उठाएँ।
मुख चूमत माला सुरझावत दोउ कर लेत बलाएँ॥
चुटकि देत बलिहार कहत हैं बोलनि चलनि सराहैं।
अपने कों धन-धन करि मानत प्यारी-प्रेम उमाहैं॥
जुगल परस्पर रँगे प्रेम-रँग होरी खेलि न जानैं।
रहत दृगनही मैं अरुझाने यहि कों सरबस मानैं॥
प्रिया श्रमित लखि चलत कुंज को मन्थर गति अति सोहैं।
मरगजे बसन माल कुम्हिलानी बिथुरे कच मन मोहैं॥
हाथ-हाथ पै दिये एक रँग अरुन भए दोउ राजैं।
लखि बलिहार होत सखिजन सब सरस आरती साजैं॥
इक गावत इक तार बजावत इक कुसुमन झरि लाई।
इक तृन तोरत इक पद परसत इक लखि रहत लुभाई॥
बाजत बेनु मन्द मधुरे सुर गावत कछु-कछु प्यारी।
आवत चले कुंज रस-भीने श्यामा श्री गिरधारी॥
एहि विधि खेल होत नितही नित बृन्दावन छबि छायो।
सदा बसन्त रहत जहँ हाजिर कुसुमित फलित सोहायो॥
जदपि सकल दिन अति छबि बरसत बृंदा-विपिन अपारा।
तऊ सुखद सब सों निरभय यह होरी रंग विहारा॥
नित-नित होरी रहैं मनावत याही तें ब्रज-नारी।
विहरत कुल की संक छोड़िकै जामें गिरिवरधारी॥
सो होरी-रस परम गुप्त है अनुभवहू नहिं आवै।
शिव शुक सों बिरलो कोउ-कोऊ कछु पावै तो पावै॥

पै श्रीवल्लभ-चरन-सरन जो होय सोई कछु जानै ।
जो यह जानै सो फिर जग मैं और नहीं उर आनै ॥
बिनु श्रीवल्लभ-कृपा-कोर यह निरखेहू नहिं सूझै ।
जिमि गँवार मनि हाथ लेइ पै ताको मोल न बूझै ॥
श्रीवल्लभ-पद-रज-प्रताप सों यह लीला कहि गाई ।
मनि-सम पोहि-पोहि अति रुचि सों माला रुचिर बनाई ॥
रसिकन की सरवस्व परम निधि वल्लभियन की जानौ ।
जुगल अनन्य जनन की तौ यह मूरि सजीवन मानौ ॥
एहि कुरसिक-जन हाथ न दीजौ रहियौ सीस चढ़ाई ।
पुनि पुनि पढ़ि पुनि सुनि अनुभव करि लहियो रस अधिकाई ॥
विषय-विदूषित ज्ञान-करम मैं परे स्वर्ग सुख लोभे ।
ते या रसहि परसिहैं नाहिन निज अभिमान न सोभे ॥
केवल श्रीवल्लभ-पद-किंकर 'हरीचंद' से दासा ।
रहिहैं यह रस-सने सदा माँगत बरसाने बासा ॥४८॥

होली

फागुन के दिन चार, री गोरी खेल लै होरी ।
फिर कित तू औ कहाँ यह औसर क्यौं ठानत यह आर ॥
जोबन रूप नदी बहती सम यह जिय माँझ बिचार ।
'हरीचंद' गर लगु पीतम के करु होरी त्यौहार ॥४९॥

स्याम पिया बिनु होरी के दिनन में,
जिय की साध मेरी कौन पुजावै ।
गाइ बजाइ रिझाइ सबहि बिधि,
कौन भुजन भरि कंठ लगावै ॥
गाल गुलाल लगाइ लपटि गर,
कौन काम की कसक मिटावै ।

'हरीचन्द' मुख चूमि चार चहु,
फिर चूमन कों को ललचावै ॥५०॥

प्रान-पिया विनु प्रान लेन कों,
फिर होरी सिर पर घहरानी।
गावन लोग लगे इत उत सब
सुनि सुनि फिर हो चली मैं दिवानी ॥
फिर फूले टेसू सरसों मिलि
फिर कोइल कुहकत बौरानी।
'हरीचन्द' फिर मदन-जोर भयो
का मैं करौं विरहिन अकुलानी ॥५१॥

झिझौटी

रसभरी सरस रँगीली अँखियाँ मद सों भरीं।
मुँदि मुँदि खुलत छकी आलस सों ढुरि ढुरि जात ढरीं ॥
झूमत झुकत रंग निचुरत मनु मीन मँजीठ परीं।
'हरीचन्द' पिय छकत लखत ही सबहि भाँति निखरीं ॥५२॥

प्यारी तेरी भौंहैं जात चढ़ीं।
आलस बस है चंचलता तजि बाँकेपनहि मढ़ीं ॥
झुकि झूमत सरसानी अँखियाँ मनु रस-सिन्धु कढ़ीं।
'हरीचन्द' अधखुली रसीली कानन जात बढ़ीं ॥५३॥

पूरबी

नैन फकीरिनि हो रामा अपने सैंयाँ के कारनवाँ।
रूप-भीख माँगन के कारन छानि फिरत बन-बनवाँ ॥
रूप-दिवानी कल न परत कहुँ बाहर कबहुँ अँगनवाँ।
'हरीचन्द' पिय-प्रेम-उपासी छोड़ि धाम धन जनवाँ ॥५४॥

काफी

तुम वने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
जाव प्यारे तुम हमसे न वोलो जिय न जलाओ सदाई ।
सूनी सेज वरु मैं सो रहूँगी तुम मत आओ यहाँई ॥
तुम वने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
समझावत मानत नहिं नेकहु करि अपने मन-भाई ।
रहो खुसी से वहीं जाय के जहँ मुख अबिर मलाई ॥
तुम वने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
प्यारे कियो और कों प्यारी इत उत प्रीति लगाई ।
अपने मन के भले भए हौ झूठी वात वनाई ॥
तुम वने सौदाई, जगत में हँसी कराई ।
हमहिं लजावत मिलत और से जियरा जरावत आई ।
'माधवी' फाग आन-सँग खेलि रहौंगी मैं विप खाई ॥
तुम वने सौदाई, जगत में हँसी कराई ॥५५॥

होली की लावनी

इत मोहन प्यारे उत श्री राधा प्यारी ।
वृन्दावन खेलत फाग वढ़ी छवि भारी ॥ध्रु०॥
सव ग्वाल वाल मिलि डफ कर लिए वजावैं ।
इत सखियाँ हरि को मीठी गारी गावैं ॥
पचरंग अवीर गुलाल कपूर उड़ावैं ।
पिचकारिन सों रँग की वरसा वरसावैं ॥
लखि हँसत परस्पर राधा-गिरिवरधारी ।
वृन्दावन खेलत फाग वढ़ी छवि भारी ॥
इक ग्वालिन वनि वलदेव श्याम ढिग आई ।
कर पकरन मिस पकरयो हरि करि चतुराई ॥

यह लखत सखी सब घेरि घेरि के धाई।
गहि लिए श्याम रहिं बहु विधि नाच नचाई॥
फगुवा दै छूटे कोऊ विधि बनवारी।
बृन्दावन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी॥
बंसी लै भागति हरि की कोऊ नारी।
तब मोहन हा हा खात करत मनुहारी॥
सो लखि कै कोऊ हँसत खरी दै तारी।
भागत कोउ गाल गुलाल लाइ दै गारी॥
सो छबि लखि कै कोउ तन मन हारत वारी।
बृन्दावन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी॥
चहुँ ओर कहत सब हो हो हो हो होरी।
पिचकारी छूटत उड़त रंग की झोरी॥
मध ठाढ़े सुन्दर स्याम साथ लै गोरी।
वाढ़ी छबि देखत रंग रँगीली जोरी॥
गुन गाइ होत 'हरिचन्द' दास बलिहारी।
बृन्दावन खेलत फाग बढ़ी छबि भारी॥५६॥

होली की ग़ज़ल

गले मुझको लगा लो ए मेरे दिलदार होली में।
बुझे दिल की लगी मेरी भी तो ऐ यार होली में॥
नहीं यह है गुलाले सुर्ख उड़ता हर जगह प्यारे।
य आशिक की है उमड़ी आहे आतिशबार होली में॥
जवाँ के सदके गाली ही भला आशिक को तुम दे दो।
निकल जाए य अरमाँ जी का ऐ दिलदार होली में॥
गुलाबी गाल पर कुछ रंग मुझको भी जमाने दो।
मनाने दो मुझे भी जाने-मन त्यौहार होली में॥

अबीरी रंग अब्रू पर नहीं उसके नुमायाँ है।
अबीरी म्यान में है मग़रबी तलवार होली में ॥
है रंगत जाफ़रानी रुख अबीरी कुमकुमे कुच हैं।
बने हो खुद ही होली तुम तो ऐ दिलदार होली में ॥
'रसा' गर जामे मै ग़ैरों को देते हो तो मुझको भी।
नशीली आँख दिखला कर करो सरशार होली में ॥५७॥

बिहाग

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं।
बिरह उसाँस उड़ाइ गुलालहिं दृग-पिचकारी मेलौं ॥
गावौं बिरह धमार लाज तजि हो हो बोलि नवेली।
'हरीचन्द' चित माहिं लगाऊँ होरी सुनो सहेली ॥५८॥

धमार

आज है होरी लाल बिहारी।
आज तोहिं हम देहैं नई गारी ॥
तोहिं गारी कहा कहि दीजै।
अगिनित गुन क्यौं गनि लीजै ॥
तेरो चन्द बंस को धारी।
जाने भोगी गुरु की नारी ॥
तासों बुध भयो संकर जाती।
जासों तेरे कुल की पाँती ॥
तेरी कुल-जननी इला रानी।
तामैं दोऊ सुख सुद-दानी ॥
तेरी बेस्या सी कुल-माता।
जाको नाम उरवसी ख्याता ॥

जदुराज बड़े हैं ज्ञानी ।
जिन दीनी अपनी जवानी ॥
तेरो कंसराय सो मामा ।
तेरी माय करी बे-कामा ॥
तेरी रोहिनी तजि घर-बारा ।
अब ब्रज में करत बिहारा ॥
तेरो नन्द बहुत जस पायो ।
जिन बिरधापन सुत जायो ॥
तुम सकल गुनन में पूरे ।
नट बिट सब ही बिधि रूरे ॥
इमि कहत हँसत ब्रज-नारी ।
'हरिचन्द' मुदित गिरिधारी ॥५९॥

राग देस

बिहारी जी मति लागौ म्हारे अंक ।
या गोकुल रा लोक चबाई तुम तौ परम निसंक ॥
म्हारी गलिअन मति आओ प्यारा रूप भीख रा रंक ।
'हरीचन्द' थारे कारन म्हाने लाग्यौ छै जगरो कलंक ॥६०॥

बिहारी जी काँई छे तम्हारो यहाँ काज ।
तुम सौतिन रे मद रा मात्या रंग रँगीला साज ॥
रैन बसे जहाँ वहाँ सिधारो म्हाने तो लागै छे घणी लाज ।
'हरीचंद' थारे चरनन लागूँ छिमा करौ महाराज ॥६१॥

राग कलिंगड़ा

बिहारी जी घूमैं छो थारा नैणा ।
कौन खिलार संग निसि जाग्या कहा करो छो सैणा ॥

कौन री यह लाया छौ रे प्यारे रंगन रँग्यौ उपरैणा।
'हरिचन्द' थैं जनम रा कपटी कौन सुनै थारे वैणा ॥६२॥

राग धनाश्री

लाल मेरो अँचरा खोलै री।
गुरजन की नहिं मानै लाज मेरो अँचरा खोलै री।
पनियाँ लेन हौं निकसी मोसों हँसि हँसि बोलै री।
मीठी मीठी बात सों प्यारो अमृत घोलै री।
'हरीचंद' पिय साँवरो संग लागोई डोलै री ॥६३॥

राग सहाना

तैंड़े मुखड़े पर घोल घुमाइयाँ।
साँवलिये साजन छल-बलिये तुझ पर बल बल जाइयाँ॥
हुई दिवाणी मोहन दा जो इशक जाल गल पाइयाँ।
'हरीचन्द' हँस हँस दिल लीता अब यह बे-परवाइयाँ ॥६४॥

बिहाग

रे निठुर मोहिं मिल जा तू काहे दुख देत।
दीन हीन सब भाँति तिहारी क्यों सुधि धाइ न लेत॥
सही न जात होत जिय व्याकुल बिसरत सब ही चेत।
'हरीचन्द' सखि सरन राखि कै भल्यो निवाह्यो हेत ॥६५॥

काफी

अब तेरे भए पिया बदि कै।
दगे नाम सों यार तिहारे छाप तेरी सिर ऊपर लै॥
कहाँ जाहिं अब छोड़ि पियारे रहे तोहिं निज सरबस दै।
'हरीचंद' ब्रज की कुंजन में डोलेंगे कहि राधे जै ॥६६॥

सिंदूरा

आज कहि कौन रुठायो मेरो मोहन यार।
बिनु बोले वह चलो गयो क्यों बिना किए कछु प्यार॥
कहा करौं हौं कछु न बनत है कर मीड़त सौ बार।
'हरीचंद' पछितात रहि गई खोइ गले को हार॥६७॥

असावरी

तुम मम प्रानन तें प्यारे हो तुम मेरे आँखिन के तारे हो।
प्राननाथ हो प्यारे लाल हो आयो फागुन मास।
अब तुम बिनु कैसे रहोंगी तासों जीव उदास॥
प्रान-प्यारे यह होरी त्यौहार।
हिलि-मिलि झुरमट खेलिये हो यह बिनती सौ बार।
प्रान-प्यारे अब तौ छोड़ौ लाज।
निधरक बिहरौ मो सँग प्यारे अब याको कहा काज॥
प्रान-प्यारे जौ रहिहौ सकुचाय।
तौ कैसे कै जीवन बचिहै यह मोहि देहु बताय॥
प्रान-प्यारे जग में जीवन थोर।
तो क्यों भुज भरिकै नहिं बिहरौ प्यारे नंदकिशोर॥
प्रान-प्यारे तुम बिनु जिय अकुलाय।
तापै सिर पै फागुन आयो अब तो रह्यौ न जाय॥
प्रान-प्यारे तुम बिनु तलफै प्रान।
मिलि जैयै हौं कहत पुकारे एहो मीत सुजान॥
प्रान-प्यारे यह अति सीतल छाँह।
जमुना-कूल कदम्ब तरे किन बिहरौ दै गल-बाँह॥
प्रान-प्यारे मन कछु है गयो और।
देखि देखि या मधु रितु में इन फूलन को बे-तौर॥
प्रान-प्यारे लेहु अरज यह मान।

छोड़हु मोहिं न अकेली प्यारे मति तरसाओ प्रान ॥
प्रान-प्यारे देखि अकेली सेज ।
मुरछि मुरछि परिहौं पाटी पै कर सों पकरि करेज ॥
प्रान-प्यारे नींद न ऐहै रैन ।
अति व्याकुल करवट वदलौंगी ह्वैहै जिय वेचैन ॥
प्रान-प्यारे करि करि तुम्हरी याद ।
चौंकि चौंकि चहुँ दिसि चितऔंगी सुनै न कोउ फरियाद ॥
प्रान-प्यारे दुख सुनिहै नहिं कोय ।
जग अपने स्वारथ को लोभी वादन मरिहौं रोय ॥
प्रान-प्यारे सुनतहि आरत वैन ।
उठि धाओ मति विलम लगाओ सुनो हो कमलदल नैन ॥
प्रान-प्यारे सब छोड़्यौ जा काज ।
सोउ छोड़ि जाइ तौ कैसे जीवैं फिर व्रजराज ॥
प्रान-प्यारे मति कहुँ अनते जाहु ।
मिलि कै जिय भरि लेन देहु मोहिं अपनो जीवन-लाहु ॥
प्रान-प्यारे इनको कौन प्रमान ।
ये तो तुम विनु गौन करन कों रहत तयारहि प्रान ॥
प्रान-प्यारे पल की ओट न जाव ।
विना तुम्हारे काहि देखिहैं अँखियाँ हमैं वताव ॥
प्रान-प्यारे साथिन लेहु वुलाय ।
गाओ मेरे नामहिं लै लै डफ अरु वेनु वजाय ॥
प्रान-प्यारे आइ भरौ मोहिं अंक ।
यह तो मास अहै फागुन को यामै काकी संक ॥
प्रानप्यारे देहु अधर रस दान ।
मुख चूमहु किन वार वार दै अपने मुख को पान ॥
प्रान-प्यारे कव कव होरी होय ।

तासों संक छोड़ि कै विहरौ दै गल मैं भुज दोय ॥
प्रान-प्यारे रहौ सदा रस एक।
दूर करौ या फागुन मैं सब कुल अरु वेद-विवेक ॥
प्रान-प्यारे थिर करि थापौ प्रेम।
दूर करौ जग के सबै यह ज्ञान-करम-कुल-नेम ॥
प्रान-प्यारे सदा बसौ ब्रज देस।
जमुना निरमल जल बहौ अरु दुख को होउ न लेस ॥
प्रान-प्यारे फलनि फलौ गिरिराज।
रहौ अखण्ड सोहाग सबै ब्रज-बधू पिया के काज ॥
प्रान-प्यारे जाइ पछारौ कंस।
फेरौ सब थल अपुन दुहाई करि दुष्टन को धंस ॥
प्रान-प्यारे दिन दिन रहौ बसंत।
यही खेल ब्रज मैं रहौ हो सब विधि सुखद समन्त ॥
प्रान-प्यारे बाढ़ौ अविचल प्रीति।
नेह-निसान सदा बजै जग चलौ प्रेम की रीति ॥
प्रान-प्यारे यह विनती सुनि लेहु।
'हरीचंद' की बाँह पकरि दृढ़ पाछे छोड़ि न देहु ॥६८॥

होली वन्दर सभा

(होली जवानी मुतमुंगं परी के)

इत उत नेह लगाइ भये पिय तुम हरजाई।
जूठी पातर चाटत घूमत घर घर पूँछ डुलाई ॥
सौत भई अब सगी तुम्हारी हम तो भई हैं पराई।
पड़ी टुकड़े पर आई ॥
मिल जा तू प्यारे क्यों नाहक फिरत मनो बौराई।
विनती करत उस्ताद खयानत गलियन गलियन धाई ॥
रात सब लोग जगाई ॥६९॥

पिय मूरख इत आइ देहु मोहिं बोल सुनाई।
वह दिन भूल गये जु घाट पर तुमने दही गिराई॥
पोंछ उठाय रही पछताय न बोली हम सकुचाई।
तुम्हें कछु लाज न आई॥
दुख धोवन अरु रोग-हरन तुम आप-सरूप कहाई।
हम तो करि सन्तोष हैं बैठी बिरहा-बोझ उठाई।
करो सीतल हिय आई॥
आसन सों बसन्त में गावत हम तो मलार सदाई।
भई उस्ताद न घाट न घर की खरी बात यह गाई।
रही आखिर मुँह बाई॥७०॥

होली

कुंजविहारी हरि सँग खेलत कुंज-विहारिनि राधा।
आनँद भरी सखी सँग लीने मेटि विरह की बाधा॥
अबिर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिन्धु अगाधा।
घूँघट में झुकि चूमि अंक भरि भेंटति सब जिय साधा॥
कूजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ता धा।
वृन्दावन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा॥
मच्यौ खेल बढ़ि रंग परस्पर इत गोपी उत काँधा।
'हरीचन्द' राधा-माधव-कृत जुगल खेल अवराधा॥७१॥

तुम भौंरा मधु के लोभी रस चाखत इत उत डोलौ।
कलिन कलिन पर माते माते मधुरे मधुरे बोलौ॥
कहुँ गुंजरत कहूँ रस चाखत कहुँ नाचत मद-माते।
बिलमि रहत कहुँ कलियन फूलन रस लालच रस-राते॥
कहुँ मधु पिअत अंक कहुँ लागत करत फिरत कहुँ फेरा।
कहुँ कलियन बस परि दल में मुँदि रजनी करत बसेरा॥

तुमरो का परमान छाड़िले सबै बात मन-मानो ।
तुम सों प्रीति करै सो बावरि 'हरीचन्द' हम जानो ॥७२॥

शिवरात्रि का पद

आजु शिव पूजहु हे वनमाली ।
छोड़ि कुटी बाहर है बैठे ए दोउ शोभाशाली ॥
नहिं गंगा मृग-चरम नहीं कटि नहिं विभूति सिर राजै ।
नाहिं चन्द्र केवल कछु नागिन लटकत सिर पर छाजै ॥
तुम बड़भागी भक्त लाल चलि सेवन बहु विधि कीजै ।
'हरीचन्द' ऐसी भामिनि कों काहें रूसन दीजै ॥७३॥

संस्कृत राग बसन्त

हरिरिह विलसति सखि ऋतुराजे ।
मदनमहोत्सव वेषविभूषित वल्लवरमणिसमाजे ॥
प्रकटित यथावधि हृद्याहित युवतिसहस्रविकारे ।
स्वावेशाद्भुतमत्तीकृत नरलोक - भयापहसारे ॥
मुकुलितार्द्धमुकुलितपाटलगण शोभितोपवनदेशे ।
शकुनपंडुरीकृत सुविवाहार्थित सिद्धार्थकवेशे ॥
त्रिविधपवन-पूरित पराग पटलान्धमधुपझङ्कारे ।
आम्र-मञ्जरीवेष-विभूषित रतिसहचरी-विहारे ॥
कूजित केकावलि कलकण्ठप्रतिध्वनिपूरित तीरे ।
प्रकटित हृदयगतानुराग कमलच्छलयमुनानीरे ॥
पथिकवधूसधप्रायश्चितानलतनु - दग्धपलाशे ।
कान्तविरहपीतिमापीत वासन्ती कुसुमविकाशे ॥
रूपगर्वभरहसितमालतीदर्शितदन्तकदम्बे ।
कामविकाराञ्चितलतिका-कृत वरसहकारालम्बे ॥

मृगमदकश्मीरागुरुचन्दन-चर्चित युवति-समूहे ।
सुरललनावांछितविहारलोकत्रयसुकृतदुरूहे ॥
श्री वृषभानु - नन्दिनीमोदविनोदामोदविताने ।
कविवर गिरिधरदास-तनूभव 'हरिश्चन्द्र'-कृत गाने ॥७४॥

वसन्त

श्री वल्लभ प्रभु वल्लभिजन-विन तुम्हैं कहा कोउ जानै हो ।
निज निज रुचि अनुसारहि सव ही कछु को कछु अनुमानै हो ॥
करमठ श्रुतिरत कर्म-प्रवर्तक जज्ञ-पुरुष कहि भाखैं हो ।
ज्ञानी भाष्यकार आतम-रत विषय-विरत अभिलाखैं हो ॥
मरजादा-रत मानि, अचारज हरि-पद-रत सिर नावैं हो ।
पण्डितगन वादी-कुल-मंडन जानि सनेह वढ़ावैं हो ॥
गुप्त परम रस अमृत प्रेम वपु नित्य विहार विहारी हो ।
गो-गोपी-गोकुल-प्रिय सुन्दर रास रमत गिरिधारी हो ॥
प्रगटत निज जन मैं निज लीला आपुहि द्विज वपु लीन्हो हो ।
'हरीचन्द' विनु निज पद-सेवक औरन नाहीं चीन्हो हो ॥७५॥

वसन्त

देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली ।
लपटि रहीं सहकारन सों वहु मधुर माधवी-वेली ॥
फूले वर वसन्त वन वन मैं कहुँ मालती नवेली ।
ता पैं मदमाते से मधुकर गूँजत मधु-रस-रेली ॥
मदन महोत्सव आजु चलौ पिय मदन-मोहन सों भेंटैं ।
चोआ चन्दन अगर अरगजा पिय के अंग लपेटैं ॥
वहुत दिनन की साध पुजावैं सुख की रास समेटैं ।
'हरीचन्द' हिय लाइ प्रानप्रिय काम-कसक सव मेटैं ॥७६॥

होली

मेरे जिय की आस पुजाउ पियरवा होरी खेलन आओ ।
फिर दुरलभ ह्वैहैं फागुन दिन आउ गरे लगि जाओ ॥
गाइ बजाइ रिझाइ रंग करि अबिर गुलाल उड़ाओ ।
'हरीचन्द' दुख मेटि काम को घर तेहवार मनाओ ॥७७॥

होरी नाहक खेलूँ मैं बन में पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में ।
सूनो जगत दिखात श्याम-बिनु बिरह-बिथा बढ़ी तन मे ।
होरी नाहक खेलूँ मैं बन में पिया बिनु होरी लगी मेरे मन मे ॥
काम कठोर दवारि लगाई जिय दहकत छन छन मे ।
'हरीचन्द' बिनु बिकल बिरहिनी बिलपति बालेपन में ॥
होरी नाहक खेलूँ मैं बन मे पिया बिनु होरी लगी मेरे मन में ॥७८॥

बन में आगि लगी है फूले देखु पलासु ।
कैसे बचिहै बाल बियोगिनि देखि बसन्त-बिलास ॥
चलत पौन लै फूल-बास तन होत काम परकास ।
'हरीचन्द' बिनु श्याम मनोहर बिरहिन लेत उसास ॥७९॥

चहूँ दिसि धूम मची है हो हो होरी सुनाय ।
जित देखो तित एक यहै धुनि जगत गयो बौराय ॥
उड़त गुलाल चलत पिचकारी बाजत डफ घहराय ।
'हरीचंद' माते नर नारी गावत लाज गँवाय ॥८०॥

नित निन होरी ब्रज में रहौ ।
बिहरत हरि सँग ब्रज-जुवती-गन सदा अनँद लहौ ॥
प्रफुलित फलित रहौ वृन्दावन मधुप कृष्ण-गुन कहौ ।
'हरीचन्द' नित सरस सुधामय प्रेम-प्रवाह बहौ ॥८१॥

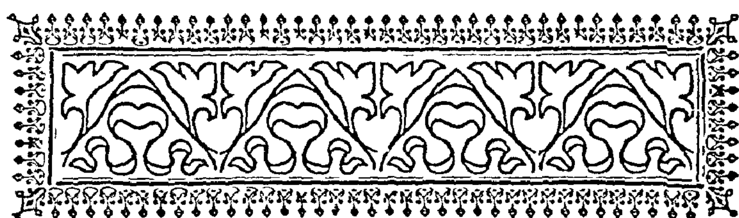
राग-संग्रह

सं० १९३७

हरिश्चंद्र-चंद्रिका मोहन-चन्द्रिका में

सं० १९३७ में

कुछ अंश प्रकाशित



राग-संग्रह

जल-विहार, सारंग

आजु हरि विहरत जमुना-तीर ।। ध्रु० ।।
श्यामा संग रंग भरि सोहत पहिने झीने चीर ।।
प्रथम समागम सकुचत प्यारी जब परसत बलवीर ।
उघरत अंग भीनि जल बसनन लाजि भजत तब तीर ।।
धीर समीर सोहायो लागत लै सोइ धीर समीर ।
'हरीचंद' संगम-गुन गावत छवि लखि धरत न धीर।। १।।

ठुमरी

अठिलात सँवरिया, मद ते भरी ।। ध्रु० ।।
कटि काछनि सिर मुकुट बिराजत
काँधे पर सोहै पटुका लहरिया ।।
पहुँची बाजू बनमाला अरु
अँगुरिन अँगुरिन सोहैं मुँदरिया ।
'हरीचंद' मेरे मन बसो सोइ
हरि-राधा सोहै जाकी नगरिया ।। २ ।।

गोवर्धन-पूजा, बिलावल

आजु बन उमगे फिरत अहीर ।
हेरी देन चदत नहिं काहू देखियत जित तित भीर ॥
इक गावत इक ताल बजावत एक बनावत चीर ।
इक नाचत इक गाइ खिलावत एक उड़ावत छीर ॥
हमरो देव गोवर्द्धन पर्वत सुंदर स्याम शरीर ।
कहा करैगो इन्द्र बापुरो जा बस केवल नीर ॥
सात दिवस गिरि कर धरि राख्यो बाम भुजा बलबीर ।
'हरीचंद' जीत्यो मेरे मोहन हार्यो इंद्र अधीर ॥ ३ ॥

ग्रीष्म ऋतु, सारंग

एरी फुहारन के दोउ कौतुक में उरझाने ।
धरत फूल फल नीर धार पर देखत रहत लुभाने ॥
कबहुँक चकई चलत चपल अध-ऊरध बहु गति ठाने ।
'हरीचंद' रिझवत सब सखि मिलि नवजल-केलि बहाने ॥ ४ ॥

ये युगल दोउ बैठे हो शीतल छाँह ।
सखी ठाढ़ी चारों ओर फूलीं मन माँह ।
तिन बिच प्यारी पिया दिये गल बाँह ॥ ५ ॥

बिहार, बिहाग

आजु दोउ बिहरत कुंजर कन्त ।
स्यामा-स्याम सरस रँग बाढ़े सुख को लहत न अन्त ॥
ज्यों ज्यों निसि भीनत रँग बाढ़त होत सुरत की कन्त ।
हारत कोउ न अभिरे दोऊ मदन-समर-सामन्त ॥
तहाँ न जाय सकत सखि-गनहूँ जहाँ कामिनी-कंत ।
'हरीचन्द' श्री बल्लभ-पद-बल ताहि अनुभवत सन्त ॥ ६ ॥

श्री नृसिंह चतुर्दशी-बधाई, सारंग

आजु अपमान अति ही निरखि भक्त को
वैकुंठ वन सिंह बहुत कोप्यो।
पटकि कर भूमि पै झटकि सिर केश रद
चाभि ओंठन तेज गगन लोप्यो॥
खंभ को फारि चिकारि केहरि-नाद
गर्भिनी-गर्भ गरजन गिरायो।
सटा फटकारि के नछत्रगन नभहिं
फेंकि ईत सी उतहि क्रोध छायो॥
कोटि मनु विज्जु इक साथ ही गिरि परीं
भयो अति घोर भुव सोर भारी।
सिन्धु-जल उच्छल्यौ गिरे पर्वत-शिखर
वृक्ष जड़ सों सबै दिये उजारी॥
देव-दानव-मनुज गिरे भय भागि
वस्त्र फटि गये कान सुधि तनक नाहीं।
आजु असमय प्रलय देखि शिव चौंकि कै
शूल धरि भ्रमत इत उत लखाहीं॥
सृष्टि को क्रम भंग जानि विधि बावरो
मूँड़ पै हाथ धरि बहुत रोयो।
दिसा दहिवो लगी भयो उल्का-पात
रुदित मूरति तेज अगिन खोयो॥
त्रस्त मधुकर पिवत नाहिं मधु वृक्ष को
गऊ निज वत्स-गन नाहिं चाटैं।
हवि अग्नि नहिं हरत डरत तहँ पौन नहिं
गौन करि सकत नभ धूरि पाटैं॥

चकित माया नटी भूलि निज नट-कला
जगत-गति जीव जड़ रोकि लीनी।
रमा शृंगार निज करत ही रहि गई
मनों सब चातुरी हारि दीनी ॥
जगत जाको खेल बनत बिगरत तनिक
भौंह के इत सों उत हलन माँहीं।
सोई त्रैलोक्यपति आजु कोप्यो जबै
तबै अब सबै कहँ सरन नाँहीं ॥
मारि हरिनाच्छ उर फार कर नखन सों
भार हर भूमि अति शोक टारो।
गोद प्रहलाद अहलाद-पूरब लियो
चाटि मुख चूमि जल नयन ढारो ॥
राज्य दै अभय पद आप पद्मा सहित
गये बैकुंठ जय जगत छायो।
प्रेम परधान परिनाम प्रेमिन उर
भक्त-वत्सल नाम साँच पायो ॥
सदा संकटहरन अकर कारन-करन
कृपा-कर नाम जिय जौन धारै।
सत्रु-संताप—जम-जातना-तापहर अचल
वर धाम निज सो विहारै ॥
सदा प्रभु सर्वदा गर्वहर अभय-कर
जनन-उर सौख्य-कर दुःखहारी।
पीर 'हरिचन्द' की हरहु करुनायतन
ग्रसित कलि काल तव सरनधारी ॥ ७ ॥

विरह, ठुमरी

अकुलात गुजरिया, दुख तें भरी ।
तनिकौ सुधि तन की नहिं जब तें
लागी हरि की तिरछी नजरिया ॥
तलफत रहत बिरह-दुख भारी
देत कोउ नहिं पिय की खबरिया ।
'हरीचन्द' पिय बिन अति व्याकुल
रोवत सूनी देखि सेजरिया ॥ ८ ॥

बिहाग

आजु रस कुंज-महल में बतियन रैन सिरानी जात ।
जाल रन्ध्र तें भरति चाँदनी चलत मंद कछु सीतल बात ॥
सनसनात निसि झिलमिल दीपक पात खरक बिच-बीच सुनात ।
रगमगे दोऊ भुज दिये सिरान्हे आलस-बस मुसकात जँभात ॥
मधुर बिहाग सुनात दूर सों लपटि रहे बिथकित सब गात ।
'हरीचन्द' दोउ रूप-लालची सिथिल तऊ जागे न अघात ॥ ९ ॥

ग्रीष्म ऋतु, फूल के शृंगार को पद

आजु सखी फूले हरि फूल कुंज माँहीं ।
प्यारी को सँग लिये दीन्हें गल-बाँही ॥
फूलन के अंगन सब अभरन अति सोहैं ।
देखि देखि ब्रज-जन के मन को अति मोहैं ॥
बिछिया पग राई बेलि चित की गति हरती ।
पंकज को पायजेब पायजेब करती ॥
मदनबान फूलन की कटि किंकिनी राजै ।
कलियन की चोली मधि यौवन अति भ्राजै ॥

चंपक की कली बनी चंपाकली भारी।
फूलन के हार कंठ सोहत रुचिकारी॥
झबिया कर फूलन के बाजूबंद दोऊ॥
फूलन की पहुँची कर राजत अति सोऊ।
फूलन की चूरी इमि दोऊ कर साजैं॥
चंदन के हार मनहुँ लपटि लता राजैं॥
पल्लव बसी अँगुरिन मे मुँदरी छबि देहीं।
देखत ही मोहन मन हाथन सो लेहीं॥
करना के करनफूल करन बीच धारे।
झुमका दोऊ झूमत छबि मानो मतवारे॥
फूलन की झुलनी नक-बेसर बिच धारी।
प्यारे को चित्त मनो पोहि धर्यो प्यारी॥
मदनबान फूलन की बंदी अनुरागै।
देखत ही लालन हिय मदन-बान लागै॥
बेना सिर फूलहि को देखत मन भूल्यो।
रूप की लता मे मनों एक फूल फूल्यो॥
बेनी सिर फूलन की सोहत छबि छाई।
अपने कर नंदलाल गूँथि कै बनाई॥
नख-सिख तें फूलन के अभरन भव भारी।
फूलन के लहँगा अरु फूलन की सारी॥
फूली छबि देखि देखि नन्दलाल फूल्यो।
भ्रमर होइ मेरो मन 'हरीचन्द' भूल्यो॥१०॥

आजु मरी ब्रजराज लाडिलो नव दूलह बनि आयो।
फूल सेहरो सीस बिराजै फूलन साज सजायो॥

फूलन के आभरन विराजत फूलन माल बनाई।
फूलन चँवर ढुरत दोऊ दिसि फूल-छत्र सुखदाई॥
घोड़ी सजी फूल के गहिने फूल लगाम बनाई।
फूले फूले सकल बराती तन-धन देत लुटाई॥
फूले देव विमानन फूले फूलन की झरि लाई।
'हरीचन्द' ऐसी जोरी पै फूलि फूलि बलि जाई॥११॥

ग्रीष्म, सारंग

आजु नंदलाल पिय कुंज ठाढ़े भये
स्रवन शुभ सीस पै कलित कुसुमावली।
मनहुँ निज नाथ मुखचंद सखि देखिकै
खसित आकाश तें तरल तारावली॥
वहत सौरभ मिलत सुभग त्रय-विधि पवन
गुंजरत महारस मत्त मधुपावली।
दास 'हरिचन्द' बृज-चन्द ठाढ़े मध्य
राधिका वाम दक्षिन सुचन्द्रावली॥१२॥

मकर संक्रांति

अहो हरि नीको मकर मनाये।
चित्र चमन धरि भले लाडिले पुन्य-समय घर आये॥
कहा परब कियो दियो दान रस तिल तन प्रगट लखाये।
'हरीचन्द' खिचरी से मिलि क्यों कित तिरवेनी न्हायें॥१३॥

श्री महाप्रभु जी की वधाई, सारंग

आजु भयो साँचो मंगल भुव प्रगटे श्री वल्लभ सुखधाम।
करुना-सिन्धु सकल रस-पोषक पतित-उधारन जाको नाम॥
दैवी जीवन अभयदान दै रसिक जनन के पूरे काम।
'हरीचन्द' प्रभु मंगल-मूरति गौर-श्याम तन एक ललाम॥१४॥

प्रबोधिनी, बिहाग

आजु सुहाग की राति रसीली ।
गावो नाचो करो बधाई कुंजन माँझ छबीली ॥
गावत घोड़ी देव मनावत रस बरषत भरपूर ।
'हरीचन्द' को टेरि टेरि कै देत सखी सब भूर ॥१५॥

श्री ठाकुरजी की बधाई, बिहाग

आयो समय महा सुखकारी ।
सब गुन-गान-संयुत मन-रंजित अतिसय परम सुशोभा-धारी ॥
रोहिनि नखत सात सुभ ग्रह सब कह कहिये उपमा मति हारी ।
दिसा प्रसन्न हँसत नभ निर्मल तारन की बाढ़ी छबि भारी ॥
मंगलमय धरनी सब राजत पुर आकर ब्रज गाँव सुखारी ।
नदी प्रसन्न सलिल तालन की कमलन सों भइ शोभा भारी ॥
द्विज-अलिकुल सन्नाद करन लगे बन-राजी फूलनि फुलवारी ।
पुन्य-गंध लै बह्यो महासुभ वायु सबिधि सुचि त्रिबिधि धयारी ॥
द्विज जाचन की सांति-अगिनि सब प्रगट भई कुंडन तें न्यारी ।
असुर-द्रोह सब साधू-जन के मन सुप्रसन्न भये ता बारी ॥
अजन जनम को समय जानि कै बजति लजति सब दुन्दुभि भारी ।
गाइ उठे गन्धर्ब रु किन्नर चारन साधु तुष्टि मन धारी ॥
नाचन लगीं देवि अप्सरा सह अति प्यारी सब घर की नारी ।
मुनि-देवता महा आनन्दित बरसत फूल भरि भरि थारी ॥
सागर के गरजन के पीछे मन्द मन्द गरजे जल-धारी ।
आधो राति उदित भयो चन्दा आनँद करत हरत अँधियारी ॥
देवि-रूपिनी देवी जू तें प्रगट भये श्री गिरवरधारी ।
निरखि नयन आनन्द सिथिल भे 'हरीचन्द' बलिहारी ॥१६॥

बाल-लीला, असावरी

आजु लख्यौ आँगन में खेलत जसुदा जी को बारो री ।
पीत झँगुलिया तनक चौतनी मन हरि लेत दुलारो री ॥
अति सुकुमार चन्द्र से मुख पै तनक डिठौना दीनो री ।
मानहुँ श्याम कमल पै इक अलि बैठो है रँग-भीनो री ॥
उर बघनहा बिराजत सखि री उपमा नहिं कहि आवै री ।
मनु फूली अगस्त की कलिका सोभा अतिहि बढ़ावै री ॥
छोटी छोटी सीस लटुरिया भ्रमरावलि जनु आई री ।
तैसी तनक कुल्हइया ता पै देखत अति सुखदाई री ॥
छुद्रघंटिका कटि में सोहत सोभा परम रसाला री ।
मनहुँ भवन सुन्दरता को लखि बाँधी बन्दन-माला री ॥
पीत झँगा अति तन पै राजत उपमा यह बनि आई री ।
मनु घन में दामिनि लपटानी छबि कछु बरनि न जाई री॥
कोटि काम अभिराम रूप लखि अपनो तन मन वारै री ।
'हरीचन्द' बृजचन्द-चरन-रज लेत बलैया हारै री ॥१७॥

दान-लीला, टोड़ी

ऐसी नहिं कीजै लाल, देखत सब बृज की बाल,
काहे हरि गये आज बहुतहिं इतराई ।
सूधे क्यों न दान लेव, अँचरा मेरो छाँड़ि देव,
जामें मेरी लाज रहै करो सो उपाई ॥
जानत बृज प्रीत सबै, औरहू हँसैंगे अबै,
गोकुल के लोग होत बड़ेई चवाई ।
'हरीचन्द' गुप्त प्रीति, बरसत अति रस की रीति
नेकहू जो जानै कोउ प्रकटत रस जाई ॥१८॥

मकर संक्रान्ति, टोड़ी

करत दोउ यहि हित खिचरी दान।
जामें सदा मिले रहैं ऐसेहिं गौर-श्याम सुख-खान।
चित्र वस्त्र धरि परम नेह सों जोरि पान सों पान।
'हरीचन्द' त्योहार मनावत सखि-जन वारत प्रान ॥१९॥

ग्रीषम ऋतु, सारंग

केसर-खौर श्याम-सुन्दर-तन निरखत सब मन मोहै।
मनु तमाल में चम्पक वेली लपटि रही अति सोहै॥
मनु घन में दामिनि लपटानी उपमा को कवि को है।
'हरीचंद' बन तें बनि आवत ब्रज-तिय मुख-छबि जोहै ॥२०॥

प्रबोधिनी, यथा

कुंजन मंगलचार सखी री।
थापे दीने कलस बधाये तोरन बाँधी द्वार॥
गावत सबै सोहाग छबीली मिलि सब ब्रज की बाम।
बन्ना बनि आयो नँद-नन्दन मोहन कोटिक काम॥
रंग-रँगीली घोड़ी चढ़ि कै सिहरो सोहत सीस।
देत असीस सासुरे की सब जीवो कोटि बरीस॥
बन्ना बन्नू पास बैठारी जोरि गाँठ इक साथ।
'हरीचन्द' को देत बधाई दुलहिन अपने हाथ ॥२१॥

दीनता, यथा रुचि

गुन-गान विट्ठलनाथ के कहँ लगि कोउ गावै।
अमित महिम लघु बुद्धि सों कछु कहत न आवै॥
दैवी-जन अपने किये कलि जीव उबारे।
माया-तिमिर मिटाय कै खल कोटि उधारे॥

अंगीकृत जाको कियो ताको नहिं त्याग्यो।
अपराधहि मान्यो नहीं भक्तन अनुराग्यो॥
सरन पर्‌यो त्रय ताप को मेट्यो छन माहीं।
'हरीचन्द' की गहि भुजा यामें सक नाहीं॥२२॥

बिहाग

गावत गोपी कोकिल-बानी।
श्रीवृषभानुराय से राजा कीरति सी जाकी पटरानी॥
गावत सारद नारद सुक मुनि सनकादिक ऋषि जानी।
गावत चारिउ वेद शास्त्र षट् कहि कहि अकथ कहानी॥
गावत गुन अज व्यासादिक शिव गीत परम रस-सानी।
मन क्रम बचन दास चरनन को गावत 'हरीचंद' सुखदानी॥२३॥

दान-लीला, सारंग

ग्वालिन दै किन गोरस दान।
करु न पुन्य यह गोवर्द्धन गिरि तीरथ सों बढ़ि मान॥
गहन चिकुर मुख पूरन बिधु पै छाया सम लखु आन।
बड़ो परब तुव भाग मिल्यो है करु न बिलम्ब सुजान॥
सिसुता पूरि प्रकट प्रति पद नव जोबन संधि-समान।
'हरीचंद' कंचन-अंगन दै हरि सुपात्र पहिचान॥२४॥

असीप, यथा-रुचि

चिरजीवो यह जोरी जुग-जुग चिरजीवो यह जोरी।
श्रीजसुदानन्दन मनमोहन श्रीवृषभानु-किशोरी॥
नित-नित ब्याह नित्य ही मंगल नित-नित सुख अति होई।
श्री वृन्दावन-सुख-सागर को पार न पावै कोई॥
एक रूप दोउ एक बयस दोउ दोऊ चन्द्र-चकोरि।
'हरीचंद' जब लौं ससि-सूरज तब लौं जीयो जोरि॥२५॥

ब्याहुला, यथा-रुचि

चलो सखी मिलि देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख- छवि पै वारौं, मेरी नवल किशोरी जू ॥
घँघरी लाल जरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख में शिर पै मौरी मेरी दुलहिया भोली जू ॥
नकबेसर कनफूल बन्यो है छवि कापै कहि आवै जू ।
अनवट बिछिया मुँदरी पहुँची दूलह के मन भावै जू ॥
ऐसी बना-बनी पै री सखि अपनो तन-मन वारी जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत 'हरीचंद' बलिहारी जू ॥२६॥

श्रीस्वामिनी जी की बधाई

चलीं बधाई गावन के हित सुन्दर बृज की नारी ।
अंचल उड़त हंस गति चंचल कर लै मंगल थारी ॥
पीत बसन कटि कसन रसन छवि रसनि कहौं किमि गाई ।
दामिनि पै सन्ध्या-घन तापै फिरि दामिनि लपटाई ॥
नूपुर रुनित भुनित कंकन कर हार चुरी मिलि बाजै ।
मनु अनंद भरि सब तन भूषन गाजत साजत राजै ॥
चौमुख चारु दीप थालन पर मंगल साज सजाई ।
मनहुँ सनाल कमल पर कमला कनक-लता चढ़ि धाई ॥
धावत खसत सुमन बेनी तें उपमा कह कवि हारैं ।
मनु कोमल पग गौनि चुकरगन फूल पाँवड़े डारैं ॥
ऊँचे सुर गावत छवि छावत बरसावत रस भाई ।
इक सों इक बढ़ि अतिहि उतायल कीरति-मंदिर आई ॥
निरखत मुख सुख अति हिय बाढ़्यो वारि सुनत मन दीनों ।
आज सखी नँद के घर को सुख साँच बिधाता कीनों ॥

नाचत मुदित करत कौतूहल गावत दै कर-तारी ।
'हरीचंद' आनँदमय आनँद जुगल इकत्र निहारी ॥२७॥

बिहार, केदार

चले दोउ हिलि मिलि दै गल-बाहीं ।
फैली घटा चहूँ दिसि सुंदर कुंजन की परछाहीं ॥
अपने कर पिय श्रम-जल पोंछत प्यारी कह नहिं नाहीं ।
'हरिचँद' बिजन डोलावत श्रम लखि बिधि हरि आदि सिहाहीं ॥२८॥

रथ-यात्रा, सारंग

चारु चल चक्र चित्रित विचित्रित परम
जगत-विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ ।
अति तरलतर बलाहक शैव्य सुग्रीव मनिपुप्प
तुरँग योजित चलत पथ सुपथ ॥
फहरत ध्वज उड़त नव पताका परम कलस
कल इन्द्र सम सकल चमकत अकथ ।
चक्र ता पर रह्यो तासु तल वायु सुत विनत
विनता-सुअन गरजि अरि करत हथ ॥
खंभ कूबर छत्र चारु डाँड़ी चारु विविध
मनि-जटित उचरित वेद शब्द कथ ।
झाँझ झनकत करत घोर घंटा घहटि घने
घुँघरू थिरत फिरत मिलि एक जथ ॥
झुकी सूरज-मुखी सुखी लखि जन दुखी
दैत्य-दल झलमलत झालरन मुक्त तथ ।
बैठि दारुक तदारुक करत अश्व को चलत
मन वेग-सम वेगति शब्द नथ ॥

देव-ऋषि करत जय-शब्द मुरछल ढुरत
सूत बंदी बिरद कहत बहु भाँति गथ।
थकित 'हरिचंद' दृग सरस सोभा निरख
हरषि सुमनन बरषि लह्यो चारों अरथ ॥२९॥

बाल लीला, यथा रुचि

छोटो सो मोहन लाल छोटे-छोटे ग्वाल बाल
छोटी-छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं।
छोटे-छोटे भँवरा चकई छोटी-छोटी लिये
छोटे-छोटे हाथन सों खेलैं मन मोहैं॥
छोटे-छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चहाँ ब्रज-बाल छोटी-छोटी छबि जोहैं।
'हरीचंद' छोटे-छोटे कर पै माखन लिये
उपमा बरनि सकैं ऐसे कवि को हैं ॥३०॥

आशिष, बिहाग

जुग जुग जीवो मेरी प्रान-प्यारी राधा।
जब लौं जमुन-जल रवि ससि नभ थल
तब लौं सुहाग लहौ सुजस अगाधा॥
नित नित रूप बाढ़ो परस्पर प्रेम गाढ़ो
नवल बिहार करि हरौ जन-बाधा।
'हरीचन्द' दै असीस कहत जीओ लख बरीस
तुम्हरे प्रगट भये पूरी सब साधा ॥३१॥

गणेश चतुर्थी को पद, राग यथा-रुचि

जय जय गोपी गणेश वृन्दावन चिन्तामनि
ऋद्धि-सिद्धि दायक ब्रजनाथ प्रान-प्यारे।

वनिता कुच-मोदक गहि वार-वार केलि-करन
प्रिया-वेनिका-भुजंग हस्त-कंज धारे ॥
मान-समय पद परसत अंकुसादि चिन्ह लसत
हँसत अभय वरद परम प्रान के रखवारे ।
शुंड दंड बाहु मेलि करनि सँग सुगज केलि
करत हैं 'हरिचंद' निरखि हरपि प्रानप्यारे ॥३२॥

निल्य, विहाग

जय श्री मोहन-प्रान-प्रिये ॥ ध्रु० ॥
श्री वृष-भानु-नन्दिनी राधे व्रज-कुल-तिलक त्रिये ॥
जा पद-रज सिव अज वंदत नित ललचत रहत हिये ।
तिन हरि सँग विहरत निसंक निसि-दिन गलबाँह दिये ॥
जा मुख-चन्द-मरीच देखि सब व्रज-नर-नारि जिये ।
तिनकी जीवन-मूरि होइकै सहजहि स्ववस किये ॥
इन्द्रादिक दिगपति जाके डर वरतत रुखहि लिये ।
'हरीचन्द' सो मान जासु लखि सहजहि बहुत भिये ॥३३॥

स्फुट, यथा-रुचि

जुरे हैं झूठे ही सब लोग ।
जैसे स्वामी परिकर तैसे तैसो ही संयोग ॥ ध्रु० ॥
वे तो दीनानाथ कहाये करि इत उत कछु काज ।
एक एक की लाख इन्होंने गाई तजि कै लाज ॥
जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो ।
मूँड्यो जिन्हैं मिटायो तिनको जग सों नाम धरायो ॥
आजु नाहिं तो कल या आसा ही में दीनहिं राख्यो ।
'हरीचन्द' मन लै निरमोहित श्वेत-कृष्ण नहिं भाख्यो॥३४॥

दीनता, देवगन्धार

जो पै श्री वल्लभ-सुत नहि जान्यो ।
कहा भयो साधन अनेक मैं करिकै वृथा भुलान्यो ॥
वादि रसिकता अरु चतुराई जो यह जीवन जान्यो ।
मर्यो वृथा विषयारस लम्पट कठिन कर्म में सान्यो ॥
सोइ पुनीत प्रीति जेहि इनसों वृथा बेद मथि छान्यो ।
'हरीचन्द' श्रीविट्ठल बिन सब जगत झूठ करि मान्यो॥२५॥

तथा, आसावरी

जे जन अन्य आसरो तजि श्री विट्ठलनाथहि गावैं ।
ते बिन श्रम थोरेहि साधन में भव-सागर तरि जावैं ॥
जिनके मात-पिता-गुरु विट्ठल और कहूँ कोउ नाहीं ।
ते जन यह संसार-समुद्रहि वत्स-खुरन करि जाहीं ॥
जिनके श्रवन कीरतन सुमिरन विट्ठल ही को भावै ।
ते जन जीवन-मुक्त कहावहि मुख देखे अघ जावै ॥
जिनके इष्ट सखा श्री विट्ठल और बात नहिं प्यारी ।
तिनके बस में सदा सर्वदा रहत गोवर्द्धन-धारी ॥
जिन मन-काय-करम-बच सब विधि श्रीविट्ठल-पद पूजो ।
ते कृत-कृत्य धन्य ते कलि में तिन सम और न दूजो ॥
जो निसि-दिन श्री विट्ठल विट्ठल विट्ठल ही मुख भाखैं ।
'हरीचन्द' तिनके पद की रज हम अपने सिर राखैं ॥२६॥

बधाई, राग कान्हरा

जो पै श्री राधा रूप न धरतीं ।
प्रेम-पंथ जग प्रगट न होतो ब्रज-बनिता कहा करतीं ॥
पुष्टिमार्ग थापित को करतो ब्रज रहतो सब सूनो ।
हरि-लीला काके सँग करते मंडल होतो ऊनो ॥

रास-मध्य को रमतो हरि सँग रसिक सुकवि कह गाते।
'हरीचन्द' भव के भय सों भजि किहिके सरनहिं जाते ॥३७॥

जय जय जय जय जय श्री राधा।
जब तें प्रगट भई बरसाने नासी जन के तन की बाधा।
सब सखि आनन्दित मन में अति चरन-कमल अवराधा।
'हरीचन्द' वृजचन्द पिया को प्रेम-पंथ जिन साधा ॥३८॥

श्री रामनौमी व दशहरा का कीर्तन, सारंग

जयति राम अभिराम छवि-धाम
पूरन-काम श्याम-वपु वाम सीता-विहारी।
चंड कोदंड-बल खंड-कृत दनुज-बल
अनुज-सह सहज सुभ रूपधारी ॥
रक्ष-कुल अनल बल प्रबल पर्जन्य सम
धन्य निज जन-पक्ष रक्ष-कारी।
अवध-भूपन समर विजित दूपन
दुष्ट विगत दूषन चतुर धर्मचारी ॥
खर प्रखर खर अगिन लंक दृढ़ दुर्ग
दल दलमलन बाहु मारीच-मारी।
वैश्रवन अनुज वट-श्रवन रावन-शमन
शमन भय-दमन 'हरिचन्द' वारी ॥३९॥

जगाने के पद

जागो मेरे प्रान-पियारे।
बलि बलि गई दिखावो ससि-मुख उठो जगत-उँजियारे ॥
मेटहु विरह-ताप दरसन दै बोलहु मधुरे बैन।
आलस भरे रैनि रँगराते खोलहु पंकज-नैन ॥

मेरे सरबस जीवन माधव प्रात भयो बलि जागो।
कछु अलसाय जँभाइ मंद हँसि 'हरीचन्द' गर लागो ॥४०॥

प्रबोधनी के पद, यथा-रुचि

जागो मंगल-मूरति गोविन्द विनय करत सब देव।
तुव सोये सबही जग सोयो लखहु न अपनो भेव ॥
बन्दी वेद खरे जस गावत अस्तुति करत जुहारी।
नारद सारद बीन बजावत जय जय वचन उचारी ॥
किन्नर अरु गंधर्व अप्सरा तुम्हरो ही जस गावैं।
बाजन विविध बजाइ तुम्हैं सब करि मनुहारि जगावैं ॥
जग के मंगल काज होत नहिं बिनु तुव उठे कृपाल।
तुव जागे सबही जग जागत तासों उठहु दयाल ॥
निद्रा तजहु रमापति केशव चहुँ दिसि मंगल माचै।
पंकज-नयन बिलोकि विमल जस 'हरीचन्दहू' बाँचै ॥४१॥

ग्रीष्म ऋतु

झीनो पिछौरा सोहै आजु अति झीनो पिछौरा सोहै।
चन्दन लेप नंदनंदन-तन देखत ही मन मोहै ॥
पारिजात मंदार रची लसि फूल-छरी कर लीन्हे।
साँझ समय बन तें बनि आवत गोधन आगे कीन्हें ॥
गोरज छुरित अलक सब सुन्दर ब्रज-बालन दरसायो।
'हरीचन्द' मुख-चन्द देखिकै बासर-ताप नसायो ॥४२॥

दीनता, यथा रुचि

तुम सम नाथ और को करिहै।
हमसे हीन दीन जनहू पै कौन कृपा बिसतरिहै ॥
को निज बिरद सम्हारन कारन दौरि दीन दुख हरिहै।
जानि छुधित 'हरिचन्द' असन को भेजि छुधा परिहरिहै॥४३॥

अशीष, कान्हरा

तिहारो घर सुवस वसो महरानी ।
कीरति जू तुम्हरे घर प्रगटीं बृज-जननी ठकुरानी ॥
जाके भये सकल सुख वरसै जिमि सावन को पानी ।
अति आनंद भयो गोधन में हम यह आगम जानी ॥
कोउ गावै कोउ देत वधाई वेद पढ़त मुनि ज्ञानी ।
'हरीचन्द' प्रगटी श्री राधा मोहन के मन-मानी ॥४४॥

दीनता, यथा-रुचि

तेई धनि धनि या कलियुग में जिन जाने श्री विट्ठलनाथ ।
जीवन जगत सुफल तिनहीं को जौन विकाने इनके हाथ ॥
धरम-मूल इक इनकी पद-रज इनके दासहि सदा सनाथ ।
भक्ति-सार इनको आराधन इनहीं को गावत श्रुति गाथ ॥
इनके विनु जे जीवत जग में ते सब श्वास लेत जिमि भाथ ।
'हरीचन्द' चलु सरन इनहिं के धरिकै चरनन पर निज माथ ॥४५॥

सेहरा, यथा-रुचि

दूलह श्री बृजराज फूलि वैठे कुंजन आज ।
फूलन को सेहरो फूलन के अभरन फूलन के सब साज ॥
फूलि सखि गीत गावैं देव फूल वरसावैं फूल्यो सकल समाज ।
फूली श्रीराधाप्यारी देखि फूली बृजनारी 'हरीचन्द' फूल्यो अति आज॥४६

दान-एकादशी और वावन-द्वादशी

दान लेन द्वै ही जन जान्यो ।
कै तुम नन्दराय के ढोटा कै वामन जिन वलि छल ठान्यो ॥
तीन पैर कहि छोटे पग सों उन छल करि कै देह वढ़ाई ।
तुम गोरस के मिस कछु औरे रस लीनो छलिकै बृजराई ॥

वे छोटे कपटी तुम खोटे एकहि से विधि रचे सँवारी।
'हरीचंद' वे तो बावन रहे तुम छप्पन निकसे गिरधारी ॥४७॥

दान एकादशी

देखे आजु अनोखे दानी।
जाचकपन में इती ढिठाई लाल कौन यह बानी॥
रार करत कै गोरस माँगत सो कछु बात न जानी।
'हरीचंद' कुल-दीपक ढोटा कौन रीति यह ठानी ॥४८॥

नित्य, टोडी

देखौ जू नागर नट, ठाढ़ो जमुना के तट,
पर मग कोउ चलन न पावै।
काहू को हरत चीर, काहू को गिरावै नीर,
काहू की ईंडुरी दुरावै॥
स्याम बरन तन सीस टिपारो
सोभा कहि नहिं आवै।
'हरीचंद' हँसि हँसि नयनन आवत
तन-मन सबहि चोरावै ॥४९॥

मकर संक्रांति का और संक्रान्ति के दिन गायबे को पद,
राग यथा रुचि

दुतिय नृप भानु छठा तजु मान।
करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय कटि पंचमी सुजान॥
तो सम मातो नीय और कोउ नव मन दम तू बाल।
तुव बिन आठ वेदना पावत व्याकुल पिय नँदलाल॥
दसम केतु पीड़त पिय कों अति निज दुख अगिनि बढ़ाय।
करु अभिषेक अमृत एकादस कुच पिय के हिय लाय॥

द्वादश विनु जल तिमि हरि तुव विन लग तनि प्रथम न नेक।
'हरीचन्द' ह्वै तृतिय पिया सँग करु संक्रमन्न विवेक ॥५०॥

नित्य, यथा-रुचि

दोउ मिलि पौढ़े सुख सों सेज।
करत भावती रस की बतियाँ बाढ़े मदन मजेज॥
बतियन ही कछु अनरस ह्वै गयो प्रिया रही करि मान।
बोलत नहिं कछु मौन ह्वै रही भौंह जुगल-धनु तान ॥५१॥

ब्याहुला, यथा-रुचि

दोउ जन गाँठि जोरि बैठारे।
बिहँसत दोउ मुख देखि परस्पर चितवत होत सुखारे॥
दूलह दुलहिन को आनँद लखि बढ़्यो अनंद अपार।
'हरीचन्द' को पकरि नचावत गारि देत ब्रजनार ॥५२॥

ग्रीष्म ऋतु, यथा-रुचि

दोउ मिलि विहरत जमुना-तीर मैं।
करि कर के जलयंत्र चलावत भींजि रही लट नीर मैं॥
इत उत तरत सखी जन सोहत मनहुँ कमल जल भीर की।
छींट उड़ावत हँसत हँसावत बोलनि मनु पिक कीर की॥
साँवरे अंग गौर तन सोहत लपटनि भींजे चीर की।
'हरीचन्द' लखि तन मन वारत छवि राधा-बलबीर की ॥५३॥

विरह

न जानी ऐसी हरि करिहैं।
हमरे ह्वै द्विजन के ह्वै हैं दया न जिय धरिहैं॥
होत सामनो जिनि हँसि चितवत भाव अनेक कियो।
तिन अब मिलतहि सकुचि इतै सों मुखहू फेरि लियो॥

मान्यो तिन्हैं काम नहिं हमसों तासों निठुर भये ।
'हरीचन्द' ब्रजनाथ नाम की लाजहि क्यों मिटये ॥५४॥

नित्य, यथा रुचि

नागरी रूप-लता सी सोहै ।
कमल सो वदन पल्लव से कर पद देखत ही मन मोहै ॥
अतसी-कुसुम सी बनी नासिका जलज-पत्र से नयन ।
बिम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि मदन-बान सी सयन ॥
गाल गुलाब कान झुमका मनु करनफूल के फूल ।
बेनी मानों फूल की माला लखि कै मन रह्यो भूल ॥
बाहु सुढार मृनाल-नाल सम फूल सरिस सब अंग ।
फूलन ओट लगे हैं द्वै फल बाढ़त देखि अनंग ॥
जानु बनी रम्भा की खम्भा सोभा होत अपार ।
गूलरि-फूल-सरिस कटि राजत कविजन लेहु बिचार ॥
नारंगी सी एँड़ी राजत पद-तन मनहुँ प्रवाल ।
और आभरन बिबिध फूल बहु कर पहुँची उर माल ॥
चम्पै सी देह दमक दवना सी चमक चमेली रंग ।
मालति महक लपट अति आवत कोमल सब अँग अंग ॥
रसिक सिरोमनि नंदलाल सोई भँवर भये हैं आइ ।
देखि देखि छबि राधा जू की 'हरीचंद' बलि जाइ ॥५५॥

जल-बिहार

नाव चढ़ि दोऊ इत उत डोलैं ।
छिरकत कर सों जल जंत्रित करि गावत हँसत कलोलैं ॥
करनधार ललिता अति सुंदर सखि सब खेवत नावैं ।
नाव-हलनि मैं पिया-बाहु मैं प्यारी डरि लपटावैं ॥

जेहि दिसि करि परिहास झुकावहिं सवही मिलि जल-यानै।
तेहि दिसि जुगुल सिमिटि झुकि परहीं सो छवि कौन वखानै॥
ललिता कहत दाँव अव मेरी तू मों हाथन प्यारी॥
मान करन की सौंह खाइ तौ हम पहुँचावैं पारी।
हँसत हँसावत छींट उड़ावत विहरत दोऊ सोहैं॥
'हरीचंद' जमुना-जल फूले जलज सरिस मन मोहैं॥५६॥

बधाई, यथा-रुचि

प्रगटे रसिक जनन के सरवस।
जसुमति-उदर अलौकिक वारिधि श्याम कला-निधि निधि-रस॥
पसरित चन्द्रकला सो पूरव उज्ज्वल विमल विसद जस।
'हरीचंद' ब्रज-वधू चकोरी सहजहि कीन्हीं निज वस॥५७॥

प्रगटे प्राननहूँ तें प्यारे।
नंद-भवन आनंद-कलानिधि जसुमति मात दुलारे॥
आजु भयो साँचो आनँद भुव फले मनोरथ सारे।
'हरीचंद' गोपिन के सरवस सव ब्रज के रखवारे॥५८॥

वियोग

पिया विनु वीत गये वहु मास।
दिन दिन मदन सतावत अति ही वाढ़त विरह-हरास।
छन छन छीजत छकत छवीली छलकत छाँड़ि अवास।
वेगि कृपा करि आवहु माधव 'हरीचन्द' गुन-रास॥५९॥

दूती, यथा-रुचि

प्यारी मो सों कौन दुराव।
कहि किन अरी अनमनी सी क्यों काहे को जिय चाव॥

काहे को अँसुवन सों मुख धोवत चारी नेकु बताव।
'हरीचंद' क्यों कहत न मोसों प्यारी लाइ मिलाव ॥६०॥

नित्य बिहार, बिहाग चौताल

प्यारी के कुंज पिय प्यारो आवत
हरिहि धाय भुजन भरि लीनो।
उमँगि मिले छतियन सों लपटे दोऊ
चलत न मारग रुक्यो रँग-भीनो॥
जित की तित रहि खरी सखियाँ
सब छूटत भुजन अलिंगन दीनो।
'हरीचंद' जब बहुत सँभराये तब
क्योंहूँ गमन महलन में कीनो ॥६१॥

बिहाग तथा

प्यारी लाजन सकुची जात।
ज्यों ज्यों रवि प्रतिबिंब सामुहे आरसि माँह लखात॥
कहत लाख यहि दूर राखिये बल करि कँपैत गात।
'हरीचंद' रस बढ़त अधिक अति ज्यों-ज्यों तीय लजात ॥६२॥

संक्रांति, यथा-रुचि

प्यारे इतही मकर मनावहु।
तातो खिचरी सुखद अरोगो हम कहँ सुख उपजावहु॥
बड़ो परब है आजु श्याम घन कहूँ न चित्त चलावहु।
'हरीचंद' मिलि देहु महा सुख मेरी लगन पुजावहु ॥६३॥

प्यारे जान न देहौं आज।
कोटिन मकर करो नहिं छाँड़ौं प्राणनाथ ब्रजराज॥

मीन मेख बिनु बात करत तुम कहूँ मिथुन ललचाने।
धनि धनि पिय तुम तुल नहिं दूजो सब के घटन समाने॥
करकत हिय बीछी सी बातैं सौतिन सँग जो कीनी।
तासों राखौं लाय हिये अब करि करि अधिक अधीनी॥
तौ वृषभानु राय की कन्या जौ अब तुमहिं न छाँड़ौं।
बड़ो परब यह पुन्य उदय मोहिं मिलि तुमसों रँग माँड़ौं॥
दच्छिन होन देउँ नहिं कबहूँ करौ लाख चतुराई।
'हरीचंद' मेरे अयन बिराजौ सदा अबै बृजराई॥६४॥

पिया सों खिचरी क्यों तू राखत।
कहा मान करि बैठि रही है कछुक बचन नहिं भाखत॥
यह संक्रम खिचरी को आली मानहिं दूरि न राखत।
'हरीचंद' पिय सों खिचरी सी मिलि क्यों रस नहिं चाखत॥६५॥

प्यारी जू के तिल पर हौं बलिहारी।
सब सखियन की डीठि डिठौना रति-रतिपति मद-हारी॥
श्याम सरूप बसत बनि सूछम सोइ दरसावत प्यारी।
'हरीचंद' हरि पीर-मिटावन एक यहै गुनकारी॥६६॥

परम्परा, छप्पै

प्रथम नौमि गोपी पति-पद-पंकज अरुनारे।
पुनि शिव-नारद-व्यास बहुरि सुक मुनि मतवारे॥
विष्णु स्वामि पुनि बन्दि बिल्वमंगल-पद बंदत।
श्री वल्लभ-चरनारविन्द जुग नौमि अनन्दत।
श्री विट्ठल तिनकी दोऊ विधि संतति जो अबलौं प्रगट।
तेहि बंदत नित 'हरीचंद' यह परम्परा मत की उघट॥६७॥

जाड़े में सैन समय गाइवे के पद

प्यारी को खोजत है पिय प्यारो।
मिलि रहि दीपावलि में झिलिमिलि फैलो बदन उजारो॥
नूपुर-धुनि सुनि जानि नवेली गहि ल्यायो पिय न्यारो।
'हरीचंद' गर लाइ मनायो दीप-दान त्योहारो॥६८॥

बधाई

प्रगटी सुन्दरता की खान।
श्री वृषभानु राय के मंदिर राधा परम सुजान॥
गावत गोपी गीत बधाई बाजत तूर निसान।
अम्बर देव फूल बरसावत चढ़ि चढ़ि दिव्य विमान॥
जाचक भये अजाचक सिगरे पाइ सविधि सनमान।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया की जोरी अति सुखदान॥६९॥

ग्रीष्म ऋतु में, राग वृन्दावनी सारंग

प्यारी मति डोलै ऐसी धूप में।
तेरे मैं तो वारी गई री।
जाके हेतु फिरत तू बन बन सो तोहिं आपुहि बोलै॥
तेरे मैं तो वारी गई री।
चलि किन कुंज उसीर-महल तू करु पिय संग कलोलै॥
तेरे मैं तो वारी गई री।
'हरीचंद' मिलि ठीक दुपहरी सुरति अमृत रस घोलै॥
तेरे मैं तो वारी गई री॥७०॥

पिय मेरे अंकन सुरथ विराजौ।
सुरँग चूनरि झालरि झूमत मोती-लर बहु साजौ॥
किंकिनि कलहु घंटिका बाजनि चँवर चिकुर चल सोहै।
अंचर व्यजन चलनि मनमोहन सबही विधि जिय मोहै॥

कोक-कला कल चक्र चपलवर तुरँग उछाह लगाये।
नेह-डोर-चल सेज-भूमि पै करि मनुहार चलाये॥
अधर-सुधा-मधु भेंट करौंगी स्वेद कुसुम बरसाई।
'हरीचंद' बलि वेगि पधारौ जानि-सिरोमनि राई॥७१॥

नित्य, राग पट

प्रात समय उठतहिं श्रीवल्लभ यह मंगलमय लीजै नाम।
कोटि विघन-वारन पंचानन सब विधि समरथ पूरन काम॥
अघ-नासन करुनानिधि दीनानाथ पतितपावन सुखधाम।
सुमिरन मात्र हरन जन-आरति मोहन कोटि कोटि रति-काम॥
रहिये इनकी सरन सदा चलि बिकि जैये इन कर बिनु दाम।
'हरीचंद' निरभय इन चरननि छत्र-छाँह कीजै बिश्राम॥७२॥

गरमी में सेहरे को पद, राग यथा-रुचि

फूल्यो सो दूलह आजु फूल ही को साजै साज
फूल सी दुलही पाइ फूल्यो फूल्यो डोलै।
केसरी बन्यो है बागो मोतिन की कोर लगो
फूल झरै जब वह मुख बोलै॥
फूल को सिहरो सीस फूलन की माल कंठ
फूले फूले नयन दोऊ लगे अनमोलै।
'हरीचंद' बलिहारी निज कर गिरिधारी
कली सी दुलहिया को घूँघट खोलै॥७३॥

फूलहु को कँगना नहीं छूटत कैसे हो बलबीर जू।
जानि परी सब आजु तुम्हारी नामहिं के रनधीर जू॥
दूध पिवायो जसुदा मैया जा दिन कों सो आयो।
चोरि चोरि कै माखन खायो सो बल कहाँ गँवायो॥

तारी दै दै हँसीं सखी सब आजु परी मोहि जानी।
सुनि कै तिनकी बात दुलहिया घूँघट में मुसक्यानी ॥
कोटि जतन कोऊ करि हारो लगी लगन नहिं टूटै।
'हरीचंद' यह प्रेम-डोरना को कैसे करि छूटै ॥७४॥

फूल को सिंगार करत अपने हाथ प्यारो।
फूलन की कलियन को आभरन सँवारो ॥
पाटी पारि अपने हाथ बेनी गुथि बनावै।
सीसफूल करनफूल लै लै पहिरावै ॥
कंचुकि पहिरावत मैं चपलई कछु कीनी।
प्यारी मुसकाय आँखि नीची करि लीनी ॥
किंकिनि पहिराय झवा लहँगा पहिरायो।
देखि देखि मुदित होत प्यारो मन-भायो ॥
पायल पहिरावन को चित्त जबै कीनो।
प्रान-प्यारी सोचि चरन तब छिपाय लीनो ॥
प्यारी को सँकोच जानि प्यारे इमि भाख्यो।
मान समय कोटि बार इनहिं सीस राख्यो ॥
पायल मग बाँधि फूल-माला पहिराई।
अपने कर नंदलाल आरसी दिखाई ॥
प्यारी तब धाइ पिया-कंठहि लपटाई।
'हरीचंद' बार बार लखिकै बलि जाई ॥७५॥

रास के पद

फिरि लीजै वह तान अहो पिय फिरि लीजै वह तान।
नि नि ध ध प प म म ग ग रि रि सा सा मोहन चतुर सुजान ॥
उदित चन्द्र निर्मल नभ-मंडल थकि गये देव-बिमान।
कुनित किंकिनी नूपुर बाजत झनझन शब्द महान ॥

मोहे शिव ब्रह्मादिक वहि निसि नाचत लखि भगवान।
'हरीचंद' राधा-मुख निरखत छूट्यो सुर-तिय मान ॥७६॥

विहार, बिहाग

बैठे दोउ अपने सुख मिलि।
ऊँचे महलन के चौवारे
सरद-चाँदनी चहुँ दिसि रही खिलि ॥
प्रिया करत कछु विनय लाल सुनि
सहि न सकत जिय विवस जात हिलि।
कहि चस वल 'हरिचंद' अंश पर
दुरत अधर में अमर रहत रिलि ॥७७॥

अगहन में राजभोग समय, सारंग

चारो असि मेरो लाल सोइ उठत प्रातकाल
कहा तीर कैसो चीर झूठही अँगराती।
चोरी लाइ छिनारो लावत
तुम ग्वालिन मद-माती ॥
इहि मिस नित उठि देखन आवत
अपनो मन क्यों नहिं समुझावति।
यौवन के रस चूर फिरत
तुम घर घर में इतराती ॥
'हरीचंद' घरन जाहु, लालहिं मति दोष लाहु,
कहत वात क्यों वनाइ कापै इठलाती ॥७८॥

बिहार, केदारा

बैठे लाल जमुना जू के तट पर।
ग्रीष्म ऋतु जान अति सुख मान
मान संग सव गोपी चतुरतर ॥

व्यजन चँवर ढुरत चहुँ दिसि तें
सोभित सुभग नवल वर।
'हरीचंद' चंद-बदन हरि को छवि लखि
कोटि काम वारि गयो एक एक पद-नख पर ॥७९॥

तथा, कलिंगड़ा

बीती निसि तिय सोवन दीजै यह ललिता लै बीन बजायो।
चौंकि परे दोउ भोर जानि तब रसमसे नैननि आलस आयो॥
सौंरे जानि हार उर के पिय करि मनुहार बियादि सुनायो।
'हरीचंद' संगम-सुख-शोभा सो कैसे कहि जात सुनायो ॥८०॥

रास को पद, भैरव

वृन्दावन उज्जल बर जमुना-तट नंदलाल
गोपिन सँग रहस रच्यो सरद जामिनी।
निरतत गोपाललाल सँग में बृज-बाल बनी
अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी॥
लाग डाँट सुर-बँधान गावत अचूक तान
ततथेइ ततथेइ थेई गति अभिरामिनी।
गोपिन सँग श्याम सुँदर मंडल-मधि सोभित अति
बिहरत बहु रूप मानों मेघ दामिनी॥
थाक्यो नभ चंद देखि रैनि गति सिथिल भई
लखि हरि गजपति संग गज-गामिनी।
'हरीचंद' सोभा लखि देव-मुनि नभ चकित
मानों हरि साथ सबै ब्रज-भामिनी ॥८१॥

वामन द्वादशी की बधाई, सारंग

बलि कीनो सो कौन करै ।
सरबस हरिहि समर्पि प्रेम सों जगत-सीख हित को निदरै ॥
द्विज-सनमान-दान बच-पालन दृढ़ व्रत को हठि नाहिं टरै ।
आतम-समर्पन दास्य भाव निज करि आग्रह को जीय धरै ॥
हरि जग स्वामि प्रगटि दिखरायो जामें संका सकल जरै ।
प्रभु-प्रतिकूल गुरुहि निज छाँड़्यो यह अनन्य मति को विचरै ॥
राजहु गये साप गुरु दीनों आपु बँधे पै कौन डरै ।
'हरीचंद' दृढ़ता की दुन्दुभि जग बजाइ इमि कौन तरै ॥८२॥

बेदन में निज महिमा थापन गये त्रिबिक्रम आजु मुरारी ।
सब सग व्यापकता दिखराई सबन प्रत्यक्ष दीन-हितकारी ॥
औरहु एक भेद है यामें जो प्रगट्यो या भेष खरारी ।
बामनहूँ बपु सब सों ऊँचे त्रिभुवन-दायक जदपि भिखारी ॥
जग-दाता बिराट बपु की फिरि कहौ महिम को कहै बिचारी ।
'हरीचंद' छोटे-पनहूँ में जब सब ही सों बढ़ि बनवारी ॥८३॥

बलिहि छलन गये आपु छलाये ।
माँगत दान दियो अपुने को बाँधि एक छन जनम बँधाये ॥
प्रनतारतिहर भगत-बछल प्रभु साँच नाम निज करि दिखराये ।
'हरीचंद'सुर-काज करन गये असुरराज थिर करि हरि आये ॥८४॥

बलि की मति पर बलि बलिहारी ।
सिखयो जगहि समर्पन जिन निज गुरु की आयसु टारी ॥
हरि सों बढ़ि सुपात्र जग नाहीं बलि सों बढ़ि कै दाता ।
भूमि-दान सम दान नहीं यह थापी तीनहुँ बाता ॥
दृढ़ बिस्वास अचल निज मत हठ कबहुँ न डिगत डिगाये ।
याही तें पहरू करि हरि को रहत द्वार बैठाये ॥

सेवक-स्वामि अनन्य भये मिलि गति नहिं परत लखाई।
इनमें को बढ़ि को घटि यह किमि 'हरीचंद' कहि गाई॥८५॥

भोजन के पद, राग यथा रुचि

भोजन करत किशोर-किशोरी।
कुंज महल में परि गै परदा सखि ठाढ़ी चहुँ ओरी॥
ललिता लै आई भरि थारी ताती खिचरी कोरी।
तामें घृत डार्यो बहुतै करि रुचि बाढ़ी नहिं थोरी॥
हँसत परसपर खात खवावत बँधे प्रेम की डोरी।
'हरीचंद' बलि बलि जोरी पर बरनि सकै सो को री॥८६॥

संक्रान्ति के पद, राग यथा-रुचि

भागन पाइये जू लालन वैस-संधि-संक्रौन।
तिय तिथि पाइ व्यापि गई तन मे चलौ किन राधा-रौन॥
बाल-तरुनई-मिलन पुन्य-छन अति थोड़े ही बेर।
ललिता बनि ज्योतिषी बतावत समय न पैही फेर॥
कुंज-कुटी तीरथ मे चलि कै करहु स्वेद-अस्नान।
'हरीचंद' अलि याचक को मिलि देहु दोऊ सुखदान॥८७॥

मकर संक्रौन सखी सुखदाई।
मकर कुंडल सों मकर विलोचनि क्यों न मिलत तू धाई॥
मकरकेतु को भय नहिं मानत घर मे रही छिपाई।
वे तुव बिनु भे मकर बिना जल व्याकुल सुकरन पाई॥
मान मान तजु मान-धरम कर कर धरि लै गर लाई।
'हरिचंद' तजु मकर राधिके रहु त्यौहार मनाई॥८८॥

स्फुट, यथा रुचि

मन तुहिं कौन जतन बस कीजै।
काहू सों जिय भरत न तेरो कहाँ कहाँ चित दीजै॥

ज्ञान कर्म कुल नेम धर्म सों होत न तोहिं संतोष ।
घर घर भटकत डोलत धायो किये अनेक भरोस ॥
कामादिक नित काम तिहारे सो नहिं क्योंहूँ मानै ।
सहस सहस नित करत मनोरथ ताहि कौन विधि जानै ॥
कछु पूरो नहिं परत पतन नित तौहू चाह बढ़ावै ।
'हरीचंद' क्यों छाँड़ि न सब को पिय-पद में चित लावै ॥८९॥

बाल-लीला, बिलावल

मनिमय आँगन प्यारी खेलै ।
किलकि किलकि हुलसत मनहीं मन गहि अँगुरी मुख मेलै ॥
बड़भागिनि कीरति सी मैया गोहन लागी डोलै ।
कबहुँक लै झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलै ॥
अष्ट सिद्धि नव निधि जेहि दासी सो व्रज सिसु-वपुधारी ।
जोरी अविचल सदा विराजो 'हरीचंद' बलिहारी ॥९०॥

तथा, आसावरी

मेरो लाड़िलो गोपाल माई साँवरो सलोना ।
जाके हित लाई मैं सुरँग खिलौना ॥
छाँड़ो हठ वारने हों वार वार जाऊँ ।
मुख देखि लालन को नैनन सिराऊँ ॥
बृज को उँजियारो मेरो छोटो सो लाला ।
मानै मेरोई कह्यो ऐसो सुभ चाला ॥
तुम्हरे हित खोजूँ लाल दुलही इक छोटी ।
मिलि खेलै लालन के रहै संग जोटी ॥
माखन मिसरी हौं देहौं चाखो मेरे प्यारे ।
छाँड़ो मचलाई लाल नन्द के दुलारे ॥

हौं तो सँग लागी फिरौं पलकहू न त्यागों।
पालने झुलाऊँ गीत गाऊँ अनुरागों ॥
हौं तो माता हूँ तेरो मेरी बात मानो।
'हरीचंद' बलिहारी आर नाहिं ठानो ॥९१॥

रथ-यात्रा, सारंग

मेरे मन-रथ चढ़ि पिय तुम आवो।
चारु चक्र बुधि बल छल साहस लगन की डोर लगावो।
चपल तुरंग मनोरथ बहु विधि निर्भय छत्र छवावो।
'हरीचंद' गर लागि हमारे प्रेम-ध्वजा फहरावो ॥९२॥

बधाई, यथा-रुचि

मंगल मय ब्रज-वासी लोग।
मंगलमय हरि जिन घर प्रकटे मिटे अमंगल भव के सोग॥
मंगल ब्रज वृन्दावन गोकुल मंगल माखन दधि घृत भोग।
'हरीचंद' वल्लभ-पद मंगल गोपी-कृष्ण-संयोग ॥९३॥

मान को पद, बिहाग

मेरी री मत कोउ होउ बसीठि।
मैं उनकी वे मेरे रहिहैं सदा दिए मैं पीठि॥
मैं मानिन वे मनावनहारे मेरी उनकी मिलि दीठि।
'हरीचन्द' मिलिहौं मैं उनसों लै मनुहार न नीठि ॥९४॥

नित्य, यथा-रुचि

मेरेई पौरि रहत ठाढ़ो टरत न टारे नन्दराय जू को ढोटा।
पाग रही मुख ढरकि छबीली यामैं बाँधौ है मंजुल चोटा॥

चितवत हँसि फिरि मों तन हेरत कर लै वेनु बजावत।
धरि अधरन वह ललन छबीलो नाम हमारोइ गावत॥
कर लै कमल फिरावत चहुँ दिसि मों तन दृष्टि न टारै।
'हरीचंद' मन हरि लै हमरो हँसि हँसि पाग सँवारे॥९५॥

मारग रोकि भयो ठाढ़ो जान
न देत मोहिं पूछत है तू को री।
कौन गाँव कह नाम तिहारो
ठाढ़ी रह नेक गोरी॥
कित चलि जात तू बदन दुराए
एरी मति की भोरी।
साँझ भई अब कहाँ जायगी
नीकी है यह साँकरी खोरी॥
बहुत जतन करि हारि ग्वालिनी
जान दियो नहिं तेहि घर ओरी।
'हरीचन्द' मिलि विहरत दोऊ
रैननि नन्दकुँवर श्री वृषभानुकिसोरी॥९६॥

ग्रीष्म को पद, यथा-रुचि

मौज भरे दोउ हौज किनारे
बैठे करत प्रेम की बतियाँ।
ग्रीपम ऋतु लखि सखिन बनायो
मंजु कुंज रचि पुहपन-पतियाँ॥
शीतल पवन परसि जल-कन मिलि
सीतल भई सरससी रतियाँ।
'हरीचंद' अलसाने दोऊ मुरि मुरि
विहँसि रहत लगि छतियाँ॥९७॥

राग, यथा-रुचि

मोहन लाल के रस सानी ।
तन की सुधि न भवन की बुधि कछु डोलत फिरत दिवानी ॥
उघरि कहत पिय गुन सब ही से गावत कोकिल-बानी ।
बिथुरी अलक सरकि रह्यो अंचल चचल चखन लखानी ॥
पिय - रस - मत्त छकी आसव सी पिय के रूप लुभानी ।
पिय के ध्यान मूँदि रही लोचन अन्तरगति प्रकटानी ॥
उझकि ललकि चौंकति भुज भरि भरि झमि सुख रहत भुलानी ।
निज मन हँसत मौन ह्वै बैठति रोवति कहत कहानी ॥
'हरीचन्द' इक रस हरि के रँग दिन-निसि जात न जानी ।
प्रेम-समुद तन - नाव डुबोयेहु प्रेम - ध्वजा फहरानी ॥९८॥

विजय दशमी, मारू

मान गढ़-लंक पर विजय को मानिनी
आज ब्रजराज रघुराज बनि कै चढ़े ।
भृकुटि-धनु नयन-शर विकट संधानि कै
मुकुट की ढाल करवाल अलकन कढ़े ॥
कोकिला कड़कि उघरत कड़खैत ही
बदत बन्दी बिरद भँवर आगे बढ़े ।
कोक की कारिका बानरी सैन लै
दास 'हरिचंद' रति-विजय आनँद मढ़े ॥९९॥

आशीष, कान्हरा

माई तेरो चिरजीवो गोविन्द ।
दिन दिन बढ़ो तेज बल धन जन ज्यों दूइज को चंद ।
पालो गोकुल गोपी गो सुन गाय गोप सानंद ।
हरो सकल भय निज भक्तन को नासौ सब दुख-दुन्द ॥

हर्षित देखि गोद में अनुदिन रोहिनि जसुदानंद ।
लगौं वलाय प्रान-प्यारे की मम वैननि 'हरिचंद' ॥१००॥

जाड़े में पौढ़िवे को पद, विहाग

रजाई करत रजाई माँहीं ।
राजा कृष्ण राधिका रानी दिये वाँह में वाँहीं ॥
सुखद सेज सोइ राजसिंहासन छत्र ओढ़ना सोहै ।
चँवर चिकुर डोलत चहुँ दिसि तें को वह जो नहिं मोहै ॥
वजत निसान जीति जग कंकन किंकिन को वहु भाँती ।
झरत वादला मोती दीनी सोइ दीनन मनि - पाँती ॥
वँधुआ मदनहिं वाँधि मँगायो लै पाइन तर पेल्यो ।
कियो खिराज सकल सुख संपति आनँद-सिंधु सकेल्यो ॥
तव वंदीजन वेद श्वास कढ़ि पढ़्यो विरद अकुलाई ।
कियो स्वेद अभिपेक रीझि कच-खसित कुसुम झर लाई ॥
राजतिलक सिर दियो महावर अधर-सुधा नजरानो ।
तिहि लहि सर्वस दियो सरोपा साथ नील पट वानो ॥
नाची वेसर वारिमुखी तहँ परमानँद रह्यो छाई ।
'हरीचंद' अवसर तव लखि कै प्रेम-जगीर लिखाई ॥१०१॥

रास, यथा-रुचि

राधिकानाथ के साथ व्रज-वाल सव
नवल जमुना-पुलिन रास राच्यो आज ।
लेत संगीत गत शव्द उघटत विविध
एक गावत राग सुरन साँच्यो आज ॥
तत्तथेई तत्तथेई प्रकट धुनि होत तहँ
वजत किंकिनि चुरी आनंद माच्यो आज ।

थकित सुर गगन 'हरिचंद' निज तियन सह
देखि जब मुदित नंदनंदन नाच्यो आज॥१०२॥

नित्य, बधाई

राधिका मंगल की नव वेलि।
जा दिन प्रकटी बरसाने में सब सुख धरेउ सकेलि॥
नित नव आनँद नित नव मंगल नित नव नौतन केलि।
'हरीचंद' विहरति प्रीतम सों कंठ भुजा उर मेलि॥१०३॥

बिहार, बिहाग

रसिक गिरिधर सँग सेज सोई भली।
रीझि पिय देत सुखदान कीरति-लली॥
उझकि झुक चूमि मुख लूटि रस अधर-सुख
मेटि जिय दुसह दुख करत नव रँग-रली।
भुजन सों भुज बँधे अंग प्रति अँग सधे
कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन-कली॥
अंग उमगे रंग पिया प्यारी संग प्रेम-रति
जंग पद मदन-मद दलमली।
सखी 'हरिचंद' रही रीझि तन-मन वारि
करत गुन-गान रसमत्त चहुँ दिसि अली॥१०४॥

रसबस में निसि जात न जानी।
कहत सुनत कछु हँसत हँसावत दृग जोरत छन-सरिस बिहानी।
आलस बिबस जम्हात परस्पर कहि बलिहार मधुर सुर बानी॥
रूप लालची दृग नहिं झपकत जागत ही निसि सकल सिरानी॥
अरुझे प्रेम-फंद नहिं सुरझत मुख चूमत हरि राधा रानी।
'हरीचंद' सखि-गन सोइ गावत जुगल-प्रेम की अकथ कहानी॥१०५।

नित्य

लालन पौढ़े हौं बलि जाऊँ ।
चाँपौं चरन कहानी भाषौं करि मनुहार सोवाऊँ ॥
सीत-भीत परदा बहु डारौं नवल अँगीठी लाऊँ ।
सरस रंग परिमल कोमल अति चारु रजाई उढ़ाऊँ ॥
मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को करि मनुहार मनाऊँ ।
'हरीचंद' पौढ़ो प्रिय लालन हौं तेरे बलि जाऊँ ॥१०६॥

स्फुट

लाल यह तौ तुरकन की चाल ।
दुख देनो गल रेति रेति कै करनो ताहि हलाल ॥
जो वध करनो होइ बधो तौ क्यों खेलत यह ख्याल ।
एक हाथ में काम बनैगो छूटैंगे भव-जाल ॥
कै मारो कै तारो मोहन कै मोहिं करौ निहाल ।
'हरीचंद' मति यों तरसावो बहुत भई नँदलाल ॥१०७॥

रथ, सारंग

लाल नहिं नेकौ रथहि चलावै ।
गली साँकरी अटकि रह्यौ रथ नहिं कहुँ इत उत जावै ।
उत वृषभानु-कुमारि अटा पै ठाढ़ी दृष्टि न टारै ।
इत नँदलाल रसिकवर सुन्दर इक टक उतहि निहारै ॥
ये हँसि हँसि के कमल फिरावत वे दोउ नैन नचावैं ।
ये पीताम्बर लै जु उड़ावैं वे मधुरे सुर गावैं ॥
रीझे रसिक परस्पर दोऊ 'हरीचंद' मन माहीं ।
ये इत अपनो रथ न चलावत वे न अटा सों जाहीं ॥१०८॥

स्फुट, यथा-रुचि

लाल लाल कर पद लाल अधर रस
लाल लाल नयन तासों सॉंचे लाल भये हो।
लाल माल बिनु गुन लाल पीक छाप तन
लाल लाल ही महावर सिर पै दये हो ॥
पीरो पट छोरि लाल पट भलो ओढ़ि आये
अनुराग प्रगट दिखावत नये हो।
'हरीचंद' अरुन सिखा-धुनि सुनि चौंकि
अरुन उदय से आज अरुन भेष लये हो ॥१०९॥

राग, यथा-रुचि

लखि सखि आजु राधिका रास।
जमुना-पुलिन सरल कोमल कल जहँ मल्लिका बिकास ॥
उदित चन्द्र पूरन नभ-मंडल पूरन ब्रज-तिय आस।
मंद सुरन पिय पास बने सजि निकर चिकुर भल पास ॥
प्रचलित पवन रवन हित महकत मह मह दवन-सुवास।
दवन मदन मद मंद गवन सुख भवन जहाँ हरि-व्यास ॥
बजत मृदंग उपंग चंग मिलि भजनन जति तति जास।
बढ़्यो रंग रति रंग दंग लखि अंग उमंग प्रकास ॥
मुरली रली भली बाजत मिलि बीन लीन सुर खास।
ताल देत उत्ताल बजावत ताल ताल करि हास ॥
उघटत श्री राधे राधे मधुर धुनि बन सब आस।
हरि राधा की बचन-रचन लखि बलिहारी हरि-दास ॥११०॥

स्फुट, देस

वेग आओ प्यारे बनवारी हमारी ओर।
दीन बचन सुनतै उठि धाओ नेकु न करहु अबारी ॥

कृपा-सिन्धु छाँड़ौ निठुराई अपनो विरद सम्हारी।
थाने जग दीनदयाल कहै क्यों हमरी सुरत विसारी॥
प्रान दान दीजै मोहिं प्यारा हौं छू दासी प्यारी।
क्यों नहिं दीन वचन सुनो लालन कौन चूक छे म्हारी॥
तलफैं प्रान रहैं नहिं तन मा विरह व्यथा बढ़ी भारी।
'हरीचंद' गहि बाँह उबारौ तुम तो चतुर विहारी॥१११॥

विहार

वे देखो पौढ़े ऊँचे महल दोऊ
झलकत रूप झरोखन आई।
हँसनि मुरनि बतरानि परस्पर
कछुक दूर तें परत लखाई॥
फैली अंग-प्रभा दीपक में जाल-
रंध्र सों घिरि घिरि आई।
'हरीचन्द' कंकन-किंकिनि-रव निसि के
उझीर भरो मधुर कछु सुनाई॥११२॥

रथ-यात्रा

वह देखो सखि सेन-ध्वजा फहरात।
ज्यों ज्यों रथ नियरे आवत है त्यों त्यों मन अकुलात॥
खंजन से भये नैन सखी के चक्रित इत उत डोलैं।
आवत प्राननाथ रथ चढ़ि कै सजनी यहु मुख बोलैं॥
जहँ लगि दृष्टि जात प्यारी की यह छवि होत रसालैं।
मानहुँ आदर सों पिय के हित कमल पाँवड़े डालैं॥
अति अनुराग संग बैठन को प्यारी मन की जानी।
'हरीचंद' लै रथ बैठाये तिया अतिहि सुख मानी॥११३॥

पालना

वारी वारी हौं तेरे मुख पै वारी मैं तेरे लटकन पै वारी।
पालना झूलो हो हठ छाँड़ो बलि बलि गइ महतारी ॥
छोटी सी दुलहिनि तोहि ब्याहौं अपने बाबा की दुलारी।
तुम झूलो हौं हरखि झुलावों 'हरीचंद' बलिहारी ॥११४॥

वारी मेरे लालन झूलो पलना।
हौं बलि जाउँ बदन की मोहन मानहुँ बात हमारी।
माखन लेहु ललन बृज-जीवन वारने गै महतारी।
अँचरा छोरहु तुमहिं झुलाऊँ 'हरीचंद' बलिहारी ॥११५॥

स्फुट, यथा-रुचि

सखी मेरे नयना भये चकोर।
अनुदिन निरखत श्याम चन्द्रमा सुन्दर नन्द-किशोर।
तनिक वियोग भये उर बाढ़त बहु बिधि नयन मरोर ॥
होत न पल की ओट छिनकहूँ रहत सदा दृग जोर।
कोउ न इन्हैं छुडावनहारो अरुझे रूप झकोर ॥
'हरीचंद' नित छके प्रेम-रस जानत साँझ न भोर ॥११६॥

गरमी को पद

सखी मोहिं ग्रीषम अति सुखदाई।
जामें शोभा श्याम अंग की प्रति छन परत लखाई ॥
बिनु अंतरपट मिलत पियारो अंग अंग सों लाई।
'हरीचंद' लखि कै सुख पावत गावत केलि बधाई ॥११७॥

फूल-सिंगार

सखियन आज नवल दुलहिन को फूल-सिंगार बनायो हो।
फूलन के आभरन मनोहर रचि रचि कै पहिरायो हो ॥

फूलनि वेनी गुही मनोहर फूलन मौर सुहायो हो।
फूलन के कँगना कर बाँधे फूलनि मंडप छायो हो॥
फूलनि चोली फूलनि सारी फूलनि लहँगा भायो हो।
दुलहिन दुलहा गाँठि जोरि कै एक पास वैठायो हो॥
फूली फूली सब सखियन मिलि फूल्यो मंगल गायो हो।
फूली जोरी देखि नयन सों 'हरीचंद' सुख पायो हो॥११८॥

मकर संक्रान्ति, टोड़ी

सुखद अति खिचरी को त्योहार।
मिलि बैठे दोउ कुंज सखी री नीके नयन निहार॥
पहिरि छींट वागो अति सुंदर ओढ़े सुखद रजाई।
सिसिर प्रवेस दिखावत गावत तान गान सुखदाई॥
सखी सबै मिलि नेम पुजावत करत जुगल की सेवा।
ताती खिचरी भोग लगावत भेंट करत बहु मेवा॥
करत दान तिल गौर श्याम दोउ हँसि-हँसि पीतम प्यारी।
'हरीचंद' निज रीझि प्रान-धन डारत छिन-छिन वारी॥११९॥

श्री गिरिधरजी की बधाई

सदा तुम मायावाद निवारेउ।
जब जब प्रबल भयो मिथ्या मत तब तब प्रकटि विदारेउ॥
प्रथमहि होय विष्णु स्वामी प्रभु यह मारग विस्तारेउ।
फिरि श्री वल्लभ ह्वै अगिनि काठ कटु माया मत छिन जारेउ॥
अब के कासी लखि असुरासी उधरन तासु विचारेउ।
कृष्णावति ते श्री गोपाल-गृह जदु-कुल द्विज अवतारेउ॥
नाम जगतगुरु सुनत श्रवन-पुट पावन अमृत पारेउ।
कियो ग्रंथ बहु घर थिर थाप्यो माया-वाद विदारेउ॥

श्री गिरिधर गिरिधर ह्वै प्रकटे पुष्प-पंथ-गिरि धारेउ।
प्रबल प्रवाह इन्द्र-धारा सों निज ब्रज लोग उबारेउ॥
कासी में गोकुल करि दीन्हो श्रुति-रहस्य उचारेउ।
'हरीचन्द' को जानि आपनो करुना करि निसतारेउ॥१२०॥

प्रदीप, यथा रुचि

सदा ब्रज सुबस बसो बरसानो।
जहँ प्रगटी रस की निधि राधे बाजत प्रगट निसानो॥
जुग जुग अविचल राज रजो दोउ रावलि अरु महारानो।
'हरीचन्द' के सीस रहौ नित नील पीत को बानो॥१२१॥

बिहार, बिहाग

सुंदर सेजन बैठे प्रीतम-प्यारी।
झिलमिलात दीप-ज्योति रँग-भरे
सँग दोऊ सोवत ऊँची अटारी॥
रिझवत हिलि-मिलि करि रस-बतियाँ
. फैली बदन उँजयारी।
दीप सों परस्पर मुख अवलोकत
'हरीचन्द' बलिहारी॥१२२॥

दीनता

श्री वल्लभ की सरि करै कौन।
प्रगटे प्रभु गुविन्द-मन-चाहक भक्त कारनै जौन॥
परम पतित तारन करुनामय रसनिधि बुधता-भौन।
'हरीचन्द' जो इनहिं भजत नाहिं महा अभागे तौन॥१२३॥

श्री वल्लभ प्रभु मेरे सरवस ।
पचौ वृथा करि जोग जज्ञ कोउ
हम को तो इक इहै परम रस ॥
हमरे मात पिता पति बंधू
हरि गुरु मित्र धरम धन कुल जस ।
'हरीचन्द' एकहि श्री वल्लभ
तजि सब ध्यान भये इनके बस ॥१२४॥

श्री बड़े गिरिधर जी को पद

श्री विट्ठल-सुत गुननिधान श्री रुक्मिनि जीवन-प्रान
वन्दे श्री गिरधर प्रभु षटगुन सम्पन्न धीर ।
अति ही रिझवार रसिक सकल कलागुन-प्रवीन
बंधुन सिर छत्रछाँह मेटत जन-पीर ॥
सेवा-रस परस पात्र पंडित-जन मंडित कर
खंडित कुल मायामति छंडित भव-पीर ।
श्री रानी प्राननाथ गावत श्रुति बिसद गाथ
'हरीचन्द' हाथ माथ धरत बलवीर ॥१२५॥

श्रीरघुनाथजी को पद

श्रीविट्ठल-नंदन जग-वन्दन जय जय श्री रघुनाथ ।
जानकि-रमन समन जन अघ सल पितु-पद रजगुन गाथ ॥
सेवा रोचक मोचक भव-रुज कृत वल्लभी सनाथ ।
'हरीचन्द' अनुभव बियोग कृत सदा सहायक साथ ॥१२६॥

श्रीगोपीनाथजी को पद

श्री वल्लभ-सुत प्रथम प्रगट लीला रस भाव
गुप्त जय जय श्री गोपीनाथ भक्तन सुखदाई ।

गावत गुन वेद चार तऊ नहीं पावैं पार
महिमा कोउ कहि न सकत गोप-वंश-राई ॥
पुष्टि पथ करन - काज प्रगटे हैं भूमि आज
गावत सब ब्रज-जन मिलि आनँद-बधाई ।
'हरीचन्द' जस गावै बहुत बधाई पावै
देखत त्रैलोक सब बलि बलि जाई ॥१२७॥

श्रीवल्लभ गृह महामंगल भयो प्रकट भये श्री गोपीनाथ ।
मर्यादा श्रुति रूप रमन हित संकर्षन जन कियो सनाथ ॥
अक्षर ब्रह्म रूप सुभ सोहत अनुज धाम जगधाम स्वरूप ।
जोग ज्ञान कर्म्मादिक मारग थापन हित प्रगटे द्विज भूप ॥
संवत पंद्रह सौ सुभ सरसठि आश्विन कृष्ण द्वादशी जानि ।
श्री महालक्ष्मी जी के उदर तें प्रगटे हैं सब सुख की खानि ॥
पुष्टि प्रवेस हेतु अधिकारी करन कियो लीला-विस्तार ।
कहि जय जय वल्लभ-सुत दोऊ 'हरीचंद' जन भयो बलिहार ॥१२८॥

श्री घनश्याम जी को पद

श्री विट्ठल घर अतिहि उछाह ।
रानी पद्मावति सुत जायो
पूरी अपने जन की चाह ॥
आश्विन बदी तेरसि रविवासर
बाढ़्यो गोकुल प्रेम प्रवाह ।
'हरीचंद' वैराग प्रकट गुन
जय जय जय श्री कृष्णावति-नाह ॥१२९॥

श्री गोविन्द राय जी को पद

श्री गुविन्द राय जयति सुन्दर सुखधाम ।
देवि देव मेटि सकल कृष्ण-रूप थापन नित
सुंदर वरन निज भक्तन अभिराम ॥
सुंदर मर्याद रूप लोक-रीति स्ववस भूप
श्री भागवत थापन सुखमय सुआद जाम ।
'हरीचंद' विट्ठलसुत भक्ति भाव भूरि संयुत
राज-भाव विनसे हरि सुजन पूरन काम ॥१३०॥

श्री बालकृष्ण जी को पद

श्री रुक्मिनि-नन्दन, जय जग-वन्दन,
बाल कृष्ण सुख—धाम ।
सुन्दर रूप नयन रतनारे
भक्तन पूरन काम ॥
रस वात्सल्य-करन अनुभव नित
विरह विधूनन हरि मुख नाम ।
'हरीचंद' विट्ठल सुखदायक प्रिय
उनहारि रूप अभिराम ॥१३१॥

श्री गोकुलनाथ जी को पद

श्री वल्लभ निज मत राखि लियो ।
जीति सभावादी कठोर बहु माला तिलक दियो ॥
अद्भुत अचरज बहुत दिखाये खल नृप निरखि भियो ।
'हरीचंद' मर्याद राखि निज जग जस प्रगट कियो ॥१३२॥

श्री यदुनाथ जी को पद

श्रीजदुपति जय जय महराज ।
विरह गुप्त अनुभवत प्रगटि जग महँ विराग को साज ।
निवसत रह लघु कहत सुनत लहु छाँड़ि जगत के काज ।
'हरीचंद' परमारथ-पूरन गोविंद भक्ति जहाज ॥ १२३॥

साँझी को पद

आजु दोउ खेलत साँझी साँझ ।
नंदकिशोर राधा गोरी जोरी सखियन माँझ ॥
कुसुम चुनन मे रुनमुन बाजत कर-चूरी पग-झाँझ ।
'हरीचंद' विधि गरव गरूरी भई रूप लखि बाँझ ॥ १२४॥

महारानी तिहारो घर सुफल फलो ।
सुन री कीरति तैं कन्या जनि सब ब्रज-जन को कियो भलो ।
कोउ गावत कोउ हँसत मोद भरि कोउ अति आनँद रलो ।
देखि चंद्र-मुख कुँवरि लली को वारि-फेरि तन-मन सकलो ॥
आनँद-मगन सबै ब्रज-बासी सब जिय को दुख पगनि दलो ।
'हरीचंद' जुग-जुग चिरजीवो जुगल कहानी जुगुल चलो ॥१२५॥

दीनता, यथा रुचि

हमरे निर्धन की धन राधा ।
साधन कोटि छोड़ि इनहीं को चरन-कमल अवराधा ॥
इनके बल हम गिनत न काहू करत न जिय कोउ साधा ।
'हरीचंद' इन नख-सिख मेरी हरी तिमिर भव-बाधा ॥१२६॥

श्री महाप्रभु जी की बधाई

आजु ब्रज साँची बजत बधाई ।
रति-पथ प्रगट करन को द्विज-बपु वल्लभ प्रगटे आई ॥

दैवीजन-हित कारन भूतल लीला फेरि दिखाई ।
'हरीचंद' भूले लखि निज जन लियो बाँह गहि धाई ॥१३७॥

आजु प्रेम-पथ प्रगट भयो भुव जनमे श्रीवल्लभ पूरन-काम ।
कठिन काल कलि देखि दया करि आपुहि चलि आये द्विजधाम ॥
वहे जात अपने जन लखि कै धर्‌यो बाँह गहि कहि हरि-नाम ।
'हरीचंद' रसमय वपु सुन्दर एकै राधा सुंदर श्याम ॥१३८॥

निज पथ प्रगट करन कों द्विज ह्वै आपुहि प्रगट भये हरि आज ।
माधव कृष्ण एकादशि गुरु दिन लक्ष्मण भट-गृह पूरन काज ॥
दैवीजन मन अति हुलसाने फूल्यो व्रज को सकल समाज ।
'हरीचंद' मिलि नाचत गावत मिले भक्त-जन तजि जग-लाज ॥१३९।

आजु व्रज घर घर बजत वधाई ।
द्विज-वपु लै नँदनंदन प्रगटे लक्ष्मण भट घर आई ॥
फेर वहै लीला सोई रस निज जन हेत दिखाई ।
'हरीचंद' से अधम जानि निज तारे भुज गहि धाई ॥१४०॥

मान को पद, यथा-रुचि

नेकु निहारु नागरी हौं वलि ।
इती रुखाई प्रान-पिया पै मान न करु सिख मान री उठि चलि ।
फूलत लय विरचत उत प्यारो बिरह-हुतासन जात चलो गलि ।
तू इत वैठी भौंह तनेनत नहिं सोहात मोहिं यह रूखो कलि ॥
खसित निसानायक पश्चिम दिसि आधी सों वढ़ि रैन चली ढलि ।
अरुनसिखा-धुनि सुनियत कहुँ कहुँ सीरी पवन चली सुगंध रलि ॥
चलि किन कुंजभवन तू भामिनि अपनी सौतिन को छलबल छलि ।
प्रथम मान पुनि सहजहि मिलिबो सुनि वैरिनि रहि जैहैं जलि जलि ॥

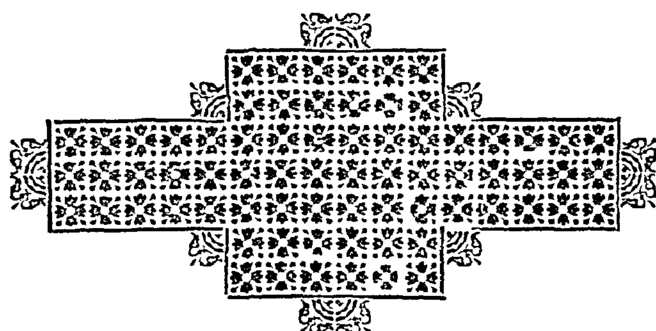
कसि कंचुकि नयनन दै काजर नूपूर छाँड़ि अतर अंगन मलि ।
बिन बिलंब उठि मिलु प्यारे सों बिरह-दवागि मिले श्रम-जल दलि ॥
भाग भरी अनुराग भरी सखि पीतम सरस सोहाग फलन फलि ।
'हरीचंद' सखि-साथ गमन छवि नयनन तें नहिं जाइ कबहुँ टलि॥१४१॥



वर्षा-विनोद

सं० १९३७

हरिश्चंद्र-चंद्रिका और मोहन चंद्रिका
खं २ सं० २-६ में
सं० १९२७ में प्रकाशित



वर्षा-विनोद

कजली

प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा ।
ओढ़ौ सुरुख चूनरि तापै श्याम चदरा ॥
देखो बिजुरी चमक्के बरसै अदरा ।
'हरीचंद' तुम बिन पिय अति कदरा ॥ १ ॥

अगगग अगगग अगगग घन गरजै
सुनि सुनि मोरा जिय लरजै ।
जुगनूँ चमकै बादल रमकै
बिजुरी दमकै झमकै तरजै ॥
ऐसी समय चले परदेसवाँ
पिय नहिं मानत मोरी अरजै ।
ऐसन नहिं कोइ पटुका गहि कै
पिय 'हरिचंदहि' जो बरजै ॥ २ ॥

घिर घिर आए बादर छाए रिमझिम जल बरसै।
चम चम चपला चमकै घन झमकै झुकि झुकि बिरछन परसै॥
सूनी सेज परी मैं व्याकुल पिय की सूरत नहिं दरसै।
बिनु 'हरिचंद' पियरवा सावन में हाय मोरा जियरा तरसै॥ ३॥

मन-मोहना हो झूलैं झमकि हिंडोर।
एक तो सावन ए दूजे घन उनए
तीजे फूल नए छए फूले चहुँ ओर॥
चलु लाज तजु री देखु चमकै बिजुरी
बग-पाँति जुरी मोरा करि रहे सोर।
सोभा कहौं कस री मैं तो देखत हारी
भई बलिहारी 'हरिचंद' तृन तोर॥ ४॥

दोउ मिलि झूलैं फूलैं हो कुंज हिंडोरे री सखी।
बृन्दावन चहुँ ओर सों हो फूल्यौ शोभा देत हो॥
जमुना नीर तीर पर सुन्दर झलमल लहरा लेत हो।

दोहा

बिजुरी चमकै जोर से नभ छाए घनघोर हो।
मोर सोर चहुँ ओर करैं दादुर बन कीनी रोर हो॥
सखी झुलावैं प्रेम सों हो पहिरे रँग रँग चीर हो।
झूलैं प्यारी राधिका सँग पीतम श्याम सरीर हो॥
सोभा नहिं कहि जात हो तहँ बढ़यो सखी आनन्द हो।
लखि गलबाहीं दोऊ को दीने बलिहारी 'हरिचन्द' हो॥
दोउ मिलि झूलैं फूलैं हो कुंज हिंडोरे री सखी॥ ५॥

लावनी

बीत चली सब रात न आए अब तक दिल-जानी।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी॥

अँधेरी छाय रही भारी।
सूझत कहूँ न पंथ सोच करै मन मन में नारी ॥
न कोई समझावनवारी।
चौंकि चौंकि के उझकि झरोखा झाँक रही प्यारी ॥
विरह से व्याकुल अकुलानी।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ॥
सूझै पंथ न कहीं हाथ से हाथ न दिखलाता।
एक रंग धरती अकास का कहा नहीं जाता ॥
किसी का बोल नहीं सुनाता।
बूँद बजैं टपटप मारग कोई नहिं जाता आता।
सोए घर घर सब पट तानी ॥ खड़ी अकेली० ॥
सन सन करके रात खनकती झींगुर झनकारैं।
कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारैं ॥
साँप खँडहर पर ठनकारैं।
गिरैं करारे टूट टूट के नदी छलक मारैं ॥
पिया बिन सब ही दुखदानी ॥ खड़ी अकेली० ॥
ठंढी पवन झकोरे आँचल उड़ उड़ फहरावै।
विरहिन इत सों उत डोलै कोइ नाहीं जो समुझावै।
पिय बिन को जो गर लावै।
'हरीचन्द' बिनु बरसा में को कसक मिटा जावै ॥
कहाँ बिलमै, को मनमानी ॥ खड़ी अकेली० ॥६॥

गज़ल

न आया वो दिलबर औ आई घटा।
तो हसरत की बस दिल पै छाई घटा ॥

चढ़ा शाम को बाम पर गर वो माह ।
शफ़क़ का नया रंग लाई घटा ॥
नहै जुल्फ तेरी ये बिजली नहीं ।
चमकती है बिजली है छाई घटा ॥
बहाने से बिजली के छेड़ा मुझे ।
नया राग परदे में लाई घटा ॥
मुझे तेरी जुल्फों का ध्यान आ गया ।
जो देखी सियह सिर पै छाई घटा ॥
जमीं है 'हरी चन्द' गजलें पढ़ो ।
'रसा' देखो कैसी है छाई घटा ॥७॥

मल्हार

हरि बिनु बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि चमकि डरवावत मोहिं अकेली जानी ॥
रात अँधेरी हाथ न सूझै मैं बिरहिनी बिलखानी ।
'हरीचन्द' पिय-बिनु बरसा में हाथ मींजि पछतानी ॥८॥

ऊधो हरि जू सों कहियो जाइ हो जाइ ।
बिनु तुव प्रान परे संकट मैं घट सों निकसत आइ हो आइ ॥
बढ़त बिरह दुख छिन छिन मोहन रोअत पछरा खाइ हो खाई ।
'हरीचन्द' व्याकुल ब्रज देखत वेगहि आओ धाइ हो धाइ ॥९॥

पिय-बिनु सूनी सेजिया सों पिन सी मोरा जियरा डसि डसि लेत ।
रैन डरारी कारी भारी व्याकुल पिय-बिनु चेत ॥
तड़पत करवट लेत अकेली धीर कोऊ नहिं देत ।
पिय 'हरिचन्द' बिना को गरवाँ लगि कै हाय निबाहै हेत ॥१०॥

ठुमरी हिंडोले की

लचकि मचकि दोउ झूलि रहे जमुना-तट सुरँग हिंडोरे में ।

व्रज-नारी सब आईं मिलि झूलन कों पहिरे चुनरी रँग बोरे में ॥
बरसत घन बूँद परैं छतियाँ बहै सीतल पवन झकोरे में ।
'हरीचन्द' कहा छवि बरनि सकै सुख बाढ्यो प्रेम-हलोरे में ॥११॥

खेमटा

कहनवा मानो हो दिल-जानी ।
निसि अँधियारी कारी बिजुरी चमकै रुम झुम बरसत पानी ॥
हाथ जोर ठाढ़ी अरज करत हौं सुनत नहीं मेरी बानी ।
तुम ही अनोखे बिदेस-जवैया 'हरीचन्द' सैलानी ॥१२॥

न जाय मो सों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ।
झुलाओ धीरे डर लागै भारी बलिहारी हो
बिहारी मो सों ऐसो झोंका सहीलो न जाय ।
देखो कर धर मेरी छाती धर धर करै
पग दोउ रहे थहराय हाय ।
'हरीचन्द' निपट मैं तो डरि गई प्यारे
मोहिं लेहु झट गरवाँ लगाय ॥ न जाय० ॥१३॥

सोरठ

मेरे नैनों का तारा है, मेरा गोविन्द प्यारा है ।
वो सूरत उसकी भोली सी वो सिर पगिया मठोली सी,
वो बोली मैं ठठोली सी बोलि दृग बान मारा है ॥
व घूँघरवालियाँ अलकैं व झोंकेवालियाँ पलकैं,
मेरे दिल बीच हलकैं छुटा घर-बार सारा है ।
दरस सुख रैन दिन लूटै न छिन भर तार यह टूटै,
लगी अब तो नहीं छूटै प्रान 'हरिचन्द' वारा है ।
मेरे नैनों का तारा है, मेरा गोविन्द प्यारा है ॥१४॥

मेरी हरि जी सों कहियो बात हो बात।
तुम बिन ब्रज सूनो मेरे प्यारे अब देख्यौ नहिं जात हो जात ॥
सूखी लता पेड़ मुरझाने गउ भई दुबरे गात हो गात।
जमुना जरित बृन्दावन उजरौ पीरे भए सब पात हो पात ॥
जसुदा-नन्द बिकल रोअत हैं कहि कहि के हा तात हो तात।
सो दुख देख्यौ जात न नैनन देखि दुखी तुब मात हो मात ॥
ब्रज-नारिन की दसा कहा कहौं रोअत बीतत रात हो रात।
'हरीचन्द' मिलि जाओ पियारे करौ न हम सों घाव हो घात ॥१५॥

एतो हरि जी सों कहियो रोय हो रोय।
तुम बिन रहत सदा ब्रज-सुन्दरि
अँसुअन सों पट धोय हो धोय ॥
निस-दिन बिरह सतावत व्याकुल
रही हैं सब सुख खोय हो खोय।
'हरीचन्द' अब सहि न सकत दुख
होनी होय सो होय हो होय ॥१६॥

संस्कृत की कजली

हरि हरि हरिरिह विहरत कुंजे मन्मथ मोहन वनमाली।
श्री राधाय समेतो शिखिशेखर शोभाशाली ॥
गोपीजन-विधुवदन-वनज-वन मोहन मत्तअली।
गायति निज दासे 'हरिचन्द्रे' गल-जालक माया-जाली ॥१७॥

हरि हरि धीर समीरे विहरति राधा कालिंदी-तीरे।
कूजति कल कलरव केकावलि-कारंडव-कीरे ॥
वर्षति चपला चारु चमत्कृत सघन सुघन नीरे।
गायति निज पद-पद्मरेणु-रत कविवर 'हरिश्चन्द्र' धीरे ॥१८॥

मलार

मेरे गल सों लग जाओ प्यारे घिरि आई बदरिया घोर ।
बड़ी बड़ी बूँदन बरसन लागीं बोलत दादुर मोर ॥
बिजुरी चमक देखि जिय डरपै पवन चलत झकझोर ।
'हरीचंद' पिय कंठ लगाओ राखो अपनी कोर ॥१९॥

आज घन अगगग गरजै हो सुनि सुनि कै जिय लरजै ।
बड़ी बड़ी बूँद घिरि घिरि बरसै बिजुरी तरजै ॥
ऐसी समय पिय कंठ न लागत मानत नहिं मेरी अरजै ।
'हरीचन्द' पिय जात बिदेसवाँ कोइ नहीं बरजै ॥२०॥

सावन आयो मन-भावन पिय बिनु रह्यो न जाय ।
घन की गरज सुन लरजौं मिलन कों जिय ललचाय ॥
खबर न आई पिय प्यारे की करौं मैं कौन उपाय ।
'हरीचंद' पिया को जो पाऊँ लेहुँ मैं गरवाँ लाय ॥२१॥

ऊधो जी मिलाओ पियारे को हमहिं सुनाओ न जोग ।
हम नारी जोग का जानैं हो हमरे लेखे सो रोग ॥
बरसा आई बन हरे भए घर फिरे पंथी लोग ।
'हरीचंद' लाओ मेरे श्यामहि मिटै बिरह-दुख-सोग ॥२२॥

ऐसे सावन में सँवलिया मोरा जोबन लूटे जाय ।
नैन-बान घायल करि दीनों जुलुफन बीच फँसाय ॥
मुख मोरा चूमि करै मन-मानी गरवा लेत लगाय ।
सरवस रस लेके 'हरिचन्द' बेदरदी खड़ा खड़ा मुसकाय ॥२३॥

मल्लार की ठुमरी

कुंजन में मोहिं पकरी री।
ए माई री ढीठ मोहन पिया गरे लागे
जो जो जिय आई सोई सोई करी री॥
मैं निकसी दधि बेंचन कारन
औचकि आइ गही गिरधारन बरजि रही री।
मेरो बरज्यौ न मान्यो
बरजोरी कर बहियाँ धरो री॥
'हरीचंद' अति लँगर कन्हाई,
करत फिरत ब्रज मे मन-भाई,
ना जानौ कैसे ऐसे ढीठ लँगर के धोखे फन्द परी री॥२४॥

तरजीह-बंद

चमक से बर्क़ के उस बर्क़-वश की याद आई है।
घुटा है दम घटी है जाँ घटा जब से ये छाई है॥
कौन सुनै कासों कहों सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं ए बदरा बदराह॥
बहुत इन जालिमों ने आह अब आफत उठाई है।
अहो पथिक कहियो इती गिरधारी सों टेर।
दृग भर लाई राधिका अब बूड़त ब्रज फेर॥
बचाओ जल्द इस सैलाब से प्यारे दुहाई है॥
बिहरत बीतत स्याम सँग जो पावस की रात।
सो अब बीतन दुख करत रोअत पहरा सात॥
कहाँ तो वह करम था अब कहाँ इतनी रुखाई है।
बिरह जरी लखि जोगनिनि कहै न उहि कइ बार।
अरी आव भजि भीतरैं बरसत आजु अँगार॥

नहीं जुगनूँ हैं यह बस आग पानी ने लगाई है ॥
लाल तिहारे विरह की लागी अगिन अपार।
सरसैं बरसैं नीरहूँ मिटै न झर झंझार ॥
बुझाने से है बढ़ती आग यह कैसी लगाई है।
बन बागन पिक बटपरा तकि विरहिन मन मैन।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन ॥
गजब आवाज ने इन जालिमों के जान खाई है ॥
पावस घन अँधियार में रह्यौ भेद नहिं आन।
राति द्यौस जान्यो परै लखि चकई चकवान ॥
नहीं बरसात है यह इक क़यामत सिर पर आई है।
पावक-झर तें मेंह-झर दाहक दुसह विसेखि।
दहै देह वाके परस याहि दृगनहीं देखि ॥
लगी है जिनकी लौ तुमसे बस उनकी मौत आई है ॥
धुरवा होहिं न अलि यहै धुआँ धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत कों पावस प्रथम पयोद ॥
नहीं बिजली है यह इक आग बादल ने लगाई है।
वेई चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ।
छिन बिछुरे जिन के न इहि पावस आयु सिराइ ॥
यहाँ तो जाँ-बलब हैं जबसे सावन की चढ़ाई है ॥
बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत विदेस ॥
भला शरमाओ कुछ तो जी में यह कैसी ढिठाई है।
रटत रटत रसना लटी तृपा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥
दिलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है ॥
बरखि परुख पाहन पयद पंख करो टुक टूक।

तुलसी परो न चाहिए चतुर चातकहि चूक ॥
जवाँ पर तेरे आशिक के भला कब आह आई है।
दुखित धरनि लखि बरसि जल घनउ पसीजे आय।
द्रवत न तुम घनस्याम क्यौं नाम दयानिधि पाय ॥
खुदा ने बुत तेरी पत्थर की बस छाती बनाई है ॥
जौ घन बरसै समय सिर जो भरि जनम उदास।
तुलसी जाचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
सिवा खंजर यहाँ कब प्यास पानी से बुझाई है।
चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़त भली घटे घटैगी कानि ॥
शहीदों ने तेरे बस जान प्यासे ही गँवाई है ॥
ऐसो पावस पाइहू दूर बसे ब्रजराइ।
आइ धाइ 'हरिचन्द' क्यौं लेहु न कंठ लगाइ ॥
'रसा' मंजूर मुझको तेरे कदमों तक रसाई है ॥२५॥

राग मलार

वृन्दावन करो दोउ सुख-राज।
फिरी निसंक दिए गल-बहियाँ लीने सखी-समाज ॥
विहरो कुंज कुंज तरु तरु तर पुलिन पुलिन तजि लाज।
प्रति छन नए सिंगार बनाओ सजौ सकल सुख-साज ॥
छिन छिन बढ़ौ प्रेम प्रेमिन को पुरवहु सगरो काज।
'हरीचंद' की रानी (श्री) राधे गोपराज महराज ॥२६॥

भींजत साँवरे सँग गोरी।
अरस परस आनन रस भूली बाँह बाँह मैं जोरी ॥
कदम तरे ठाढ़े दोउ ओढ़े एकहि अरुन पिछोरी।
चुअत रंग अँग बसन लपटि रहे भींजि भींजि दुहुँ ओरी ॥

जल-कन स्रवत सगवगी अलकन करत जुगुल चित-चोरी ।
गावत हँसत रिझावत हिलि-मिलि पुनि पुनि भरत अँकोरी ॥
बरसत घेरि घेरि घन उमँगे चपला चमक मचो री ।
बोलत मोर कोकिला तरु पर पवन चलत झकझोरी ॥
अति रस रहस बढ़्यो बृन्दावन हरित भूमि तरु खोरी ।
'हरीचन्द' छवि टरत न दृग तें निरखि भींजती जोरी ॥२७॥

बरषा में कोउ मान करत है
तू कित होत सखी री अयानी ।
यह रितु पीतम-गर लागन की
तू रूसत कित होइ सयानी ॥
देखु न कैसी छइ अँधियारी
बरसि रह्यो रिमझिम लखु पानी ।
'हरीचन्द' चलि मिलु पीतम सों
लूट न रति-सुख पिय-मन-मानी ॥२८॥

डरपावत मोरवा कूकि कूकि ।
पावस रितु बरसत कछु बादर पवन चलत है झूकि झूकि ॥
पिय बिनु जानि अकेली मो कहँ देत मदन तन फूँकि फूँकि ।
'हरीचन्द' बिनु हरि कामिनि के उठत बिरह की हूकि हूकि ॥२९॥

पछितात गुजरिया, घर में खरी ।
अब लगि श्याम सुँदर नहिं आए दुखदाइनि भइ रात अँधरिया ॥
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिय बिन मोरी सूनी अटरिया ।
'हरीचन्द' हरि के आवतही बसि गई मोरी उजरी नगरिया ॥३०॥

दियो पिय प्यारी कों चौंकाय ।
सुख सोये मिलि जुगल अटारिन अंग अंग लपटाय ॥

इन घन गरजि बरसि बूँदन दिये काँची नींद जगाय ।
अलसाने नहिं उठत सेज तें भींजि रहे अरुझाय ।
'हरीचन्द' इतना लै कीनों क्योंहूँ वचन उपाय ॥३१॥

डरत नहिं घन सों रति-रस-माते ।
हार्यौ बरसि गरजि बहु भाँतिन टरै न वीर तहाँ ते ॥
गिरवर अटा सुहावनि लागत घन दरसात जहाँ ते ।
तहँई जुगल लपटि रस सोए नींद भरे अलसाते ॥
रस-भीने आलस सों भीने भीने जल बरसाते ।
औरहु गाढ़ अलिंगन करि कै सोए सुखद सुहाते ॥
भोर भयो नहिं गिनत सखी-गन लखि कै कछु सकुचाते ।
'हरीचन्द' घन दामिनि हारी जीति जुगल इतराते ॥३२॥

प्रीत तुव प्रीतम कों प्रगटैयै ।
कैसे कै नाम प्रगट तुव लीजे कैसे कै बिथा सुनैयै ॥
को जानै समुझै जग जिन सों खुलि कै भरम गँवैयै ।
प्रगट हाय करि नैनन जल भरि कैसे जगहिं दिखैयै ॥
कबहुँ न जानै प्रेम-रीति कोउ मुख सों धुरे कहैयै ।
'हरीचन्द' पै भेद न कहियै भले ही मौन मरि जैयै ॥३३॥

आजु मलरु प्यारे की लखि कै मो घर महा मंगल भयो आली ।
जदपि हौं गुरुजन के भय सों नीके नहिं चितए बनमाली ।
उठे कुंज सों मरगजे बागे जागे आवत रति-रन-साली ।
हौं भय सों सखियन के चितई लोचन भरि नहिं रोचन लाली ।
उनहूँ नैन कोर हँसि चितई मन लै गए ठगौरी घाली ।
'हरीचन्द' भयो ओरहि मंगल कारज ह्वै है सिद्ध खुसाली ॥३४॥

हमारी श्री राधा महारानी ।
तीन लोक को ठाकुर जो है ताहू की ठकुरानी ।।
सब ब्रज की सिरताज लाडिली सखियन की सुखदानी ।
'हरीचन्द' स्वामिनि पिय कामिनि परम कृपा की खानी ।।३५।।

मलार खेमटा

पथिक की प्रीति को का परमान ।
रैन बसे इत भोर चले उठि मारि नैन को बान ।।
ये काहू के भये न होयँगे स्वारथ लोभी जान ।
'हरीचन्द' इनके फन्दन परि वृथा गँवैये प्रान ।।३६।।

हिंडोरना आजु झकोरवा लेत ।
झूलत स्यामा-स्याम रँग-भरे लपटि बढ़ावत हेत ।।
बरसत घन तन काम जगावत गावत तारी देत ।
'हरीचंद' अरुझे पिय प्यारी बीर सुरत-रन-खेत ।।३७।।

परज

घेरि घेरि घन आए कुंज कुंज छाइ धाए
ऐसी या समय कोउ मान करै बाउरी ।
देखि तो कुंज की सोभा बोलि रहे मोर
कीर हरी भूमि भई संग चलि आउ री ।।
पावस रितु सबै नारी मिलैं पीतम सों
तू ही अनोखी एतो करत चवाउ री ।
'हरीचंद' बलिहारी मग देखै गिरधारी
उठु चलु प्यारी मति बात बहराउ री ।।३८।।

दोउ मिलि आजु हिंडोले झूलैं ।
कंचन खंभ फूल सों बाँधे सोभित सुभग कलिंदी-कूलैं ।।

मुलवत चहुँ दिसि नवल नागरी सोभा को रतिहूँ नहिं तूलैं ।
गावत हँसत हँसाइ रिझावत पिय-छबि लखि मन ही मन फूलैं ॥
चलत चपल दृग कोर परसपर भेटत कठिन मदन की सूलैं ।
'हरीचन्द' छबि-रासि पिया-पिय दरसत ही जिय दुख उनमूलैं ॥३९॥

राग देश

हिंडोरा कौन झूलै थारे लार ।
तुम अटपटे थारी झूलन अटपटी हूँ तो घणी सुकुमार ॥
तुम झूलो थाने हूँ जू झुलाऊँ थारो चरित अपार ।
'हरीचंद' ऐसी कहै छे राधिका मोहन-प्रान-अधार ॥४०॥

कजली

दोउ झूलैं आजु ललित हिंडोरे सखियाँ ।
लखि सोभा मेरी सुनो री सिरानी अँखियाँ ॥
फूले फूल बहु कुंज झुकि रही डलियाँ ।
वहाँ बोलैं मोर कोकिला गावत अलियाँ ॥
परैं मद मंद फुही दीने गल-बहियाँ ।
स्याम भींजत बचावैं प्यारी करि छहियाँ ॥
छबि बाढ़ी अनूप तहाँ तीन घरियाँ ।
तन मन 'हरिचन्द' बलिहारी करियाँ ॥४१॥

भारत में यहि समय भई है सब कुछ
बिनहिं प्रमान हो दुइ-रंगी ।
आर्य पुराने पुरानहिं मानैं
आर्य भए क्रिस्तान हो दुइ-रंगी ॥
क्या तो गदहा को चना चढ़ावैं
कि होइ दयानँद जायँ हो दुइ-रंगी ।

क्या तो पढ़ैं कैथी कोठिवलियै
कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइ-रंगी ॥
एही से भारत नास भया सब
जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइ-रंगी ।
होउ एक मत भाई सबै अब
छोड़हु चाल कुचाल हो दुइ-रंगी ॥४२॥

सखी चलो री कदम्ब तरे छोड़ि काम धाम ।
झूलैं रमकि हिंडोरे जहाँ राधा-घनश्याम ॥
सोभा देखिकै सिराने नयन पूरे मन-काम ।
'हरिचंद' देखो उरझी गरे में बन - दाम ॥४३॥

एरी सखी झूलत हिंडोरे श्यामा-श्याम बिलोको वा कदम के तरे ।
एरी सोभा देखत ही बनि आवै बिरिछ सोहैं हरे हरे ॥
एरी तहाँ रमकत प्यारी झूलैं दिये बाँह पिय के गरे ।
एरी छवि देखत ही 'हरिचन्द' नैन मेरे आवत भरे ॥४४॥

देखो भारत ऊपर कैसी छाई कजरी ।
मिटि धूर में सपेदी सब आई कजरी ॥
दुज वेद की रिचन छोड़ि गाई कजरी ।
नृप-गन लाज छोड़ि मुँह लाई कजरी ॥४५॥

तोरे पर भए मतवार रे नयनवाँ ।
लोक-लाज-जस-अजस न मानैं सरस रूप रिझवार रे नयनवाँ ॥
मदिरा प्रेम पिये मतवारे सब से करत त्रिगार रे नयनवाँ ।
'हरीचंद' पिय रूप दिवाने करत न तनिक विचार रे नयवनाँ ॥४६॥

बिनु साँवरे पियरवा जिय की जरनि न जाय।
जिय नहिं बहलत प्रान-प्रिया-बिनु कीने लाख उपाय॥
काले बादर देखि बिरह की हूक उठत जिय आय।
'हरीचन्द' स्याम बिनु बादर उलटी आग देत दहकाय॥४७॥

बिजुरी चमकि चमकि डरवावै मोहिं अकेली पिय बिनु जानि।
बादर गरजि गरजि अति तरजै पँच-रँग धनुहीं तानि॥
मोरवा बैरी कड़खा गावैं मनमथ-बिरद बखानि।
पिय 'हरिचंद' गरें लगि मरत जियाओ अरज लेहु यह मानि॥४८॥

काहे तू चौका लगाय जयचँदवा।
अपने स्वारथ भूलि लुभाए
काहे चोटी-कटवा बुलाए जयचँदवा।
अपने हाथ से अपने कुल के
काहे तैं जड़वा कटाए जयचँदवा॥
फूट के फल सब भारत बोए
बैरी के राह खुलाए जयचँदवा।
और नासि तैं आपो बिलाने
निज मुँह कजरी पुताय जयचँदवा॥४९॥

टूटै सोमनाथ के मंदिर केहू लागै न गोहार।
दौरो दौरो हिंदू हो सब गौरा करें पुकार॥
की केहु हिंदू के जनमल नाहीं की जरि भैलैं छार।
की सब आज धरम तजि दिहलैं भैलैं तुरुक सब इक बार॥
केहू रहल गोहार न गौरा रोवैं जार-बिजार।
अब जग हिंदू केहू नाहीं झूठै नामै के बेवहार॥५०॥

धन धन भारत के सब छत्री जिनकी सुजस-धुजा फहराय।
मारि मारि कै सत्रु दिए हैं लाखन बेर भगाय॥
महानंद की फौज सुनत ही डरे सिकन्दर राय।
राजा चन्द्रगुप्त ले आए बेटी सिल्यूकस की जाय॥
मारि बल्लूचिन विक्रम रहे शकारी पदवी पाय।
बापा कासिम-तनय मुहम्मद जीत्यौ सिन्धु दियो उतराय॥
आयो मामूँ चढ़ि हिंदुन पै चौबिस बेरा सैन सजाय।
खुम्मानराय तेहिं बाप-सार लखि सब विध दियो हराय॥
लाहौर-राज जयपाल गयो चढ़ि खुरासान पर धाय।
दीनो प्रान अनन्दपाल पर छाँड्यौ देस धरम नहिं जाय॥५१॥

ध्रुवपद मलार

आयो पावस प्रचंड सब जग मैं मचाई धूम
कारे घन घेरि चारों ओर छाय।
गरजि गरजि तरजि तरजि बीजु चमक चहुँ दिसि
सों बरखत जल-धार लेत धरनि छिपाय॥
मोर रोर दादुर-रव कोकिल कल झींगुर झनकारन
मिलि चारहु दिसि तुम कलह घोर सी मचाय।
'हरीचंद' गिरिधारी राधा प्यारी साथ लिये
ऐसी समै रहे मिलि कंठ लपटाय॥५२॥

तेरेई पयान-हित पावस प्रबल आयो
उठि चलि प्यारी देखि छाई अँधियारी भारी।
पथ दिखाइ दामिनी रही चमकि तेरे गवन हेत
रवन संग मिलै क्यों न निसि अति कारी कारी॥
गोप सबै गेह गए है गयो इकन्त कुंज
सीरी पौन चलि रही देखि प्यारी प्यारी।

'हरीचंद' मान छोड़ि उठि चलु साथ मेरे
बैठे बाट हेरि रहे पिय गिरधारी वारी ॥५३॥

ख्याल मलार तिताला

ए घिरि घिरि कै मेघवा बरसै,
पिय बिनु मोरा जियरा तरसै।
बड़ी बड़ी बूँदन बरसत धायो घेरि घेरि
चहुँ दिसि तें छायो चपला चमकि मेरे प्रान परसै ॥
झोकत पवन जोर पुरवाई अति अँधियारी कहूँ
पंथ न लखाइ इत उत जुगनूँ चमकत दरसै।
'हरीचंद' पिय गरवाँ लगाओ मेरे तन की तपन
बुझाओ तोहि मिलि मेरो तन मन हरसै ॥५४॥

दूसरी चाल की

देखो बूँदन बरसै दामिनि चमकै घिरि
आए बदरा गरे से लग जाओ।
घन की गरज सुन उमगत मेरो जिय
ऐसी समै मोहिं मत तरसाओ ॥
भरि गईं नदी भूमि भई हरी हरी
मग भए अगम दूर मत जाओ।
'हरीचंद' बलिहारी मिलो प्यारे गिरधारी
पूरो मनोरथ तपत बुझाओ ॥ देखो० ॥५५॥

ख्याल मलार ताल झपक

पिया बिनु बिरह-बरसा आई।
सघन घन दामिनि दमकि संग चमकि जुगनूँ
रमकि बदरन झमकि बरसत बूँद अति झर लाई।

रैन कारी डरारी भारी छाई अँधारी बिनु
पिय बिहारी गिरधारी के प्यारी घबराई ।
'हरीचंद' न धीर धरै पीर भई
भारी बनवारी बिना मुरझाई ॥५६॥

सूरदासी मलार आड़ा वा तिताला

यह रितु रूसन की नहिं प्यारी ।
देखु न छाय रहे घन झुकि झुकि भूमि छई हरियारी ॥
सीरी पवन चलत गरुई है काम बढ़ावन-हारी ।
बन उपवन सब भए सुहावन औरहि छवि कछु धारी ॥
फूली जुही मालती महँकी सुनि कोकिल किलकारी ।
लहकि लहकि लपटीं सब बेली पीतम-गल भुज डारी ॥
मगन भए जड़ जीव सबै जब तब तूँ रहति क्यों न्यारी ।
'हरीचंद' गर लगु पीतम के गाढ़े भुज भरि नारी ॥५७॥

सावनी

पिय बिनु सखी नींद न आवै साँपिन सी भई रैन ।
व्याकुल तड़पूँ अकेली पीतम बिनु नहिं चैन ॥
कैसे मैं जीऊँ बिनु प्यारे ही बरसत टप टप नैन ।
'हरीचंद' कटत न सावन मारत मोहन मैन ॥५८॥

धुरपत टोड़ी वा गौड़ मलार चौताला

ताथेई ताथेई ताथेई नाचै री मदन-मोहन रास रंग
बधुन संग लाग डाँट लेत उरप-तिरप महामोद बढ़्यो
ब्रज-जुवतिन-मध्य आनन्द राँचै री ।
ततधा ततधा ततधा बाजै मृदंग सरस तकिटधा
तकिटधा तकिटधा छबि लखि महा मोद माँचै री ॥

अलाग लाग लेत गावत गुनिजन बंधान
तान मान बँध्यौ थिरक्यौ लय बिच बिच
बाजै मुरलि सुख साँचै री।
छबि लखि शिव मोहे आय नाचत डमरू बजाय
डिमि डिमि डिमि डिमिर डिमिर जस तहाँ
'हरीचंद' बिमल बाँचै री॥ तार्थेई० ॥५९॥

लावनी

बरसा रितु सखि सिर पर आई पिय बिदेस छाए।
हमैं अकेली छोड़ आप कुबरी सों बिलमाए॥
सँदेसे भी नहि भेजवाए।
वादे पर वादा झूठा कर अब तक नहिं आए।
बिथा सो कही नहीं जाती।
पिया बिना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती॥
रातै अँधेरी पंथ न सूझै घोर घटा छाई।
रिमझिम रिमझिम बूँदैं बरसैं झोंकै पुरवाई॥
पपीहन पी पी रट लाई।
सुधि कर पीतम प्यारे की मेरी अँखियाँ भरि आई।
बिरह से दरकी सखि छाती।
पिया बिन मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती।
बाग बगीचे हरे भरे सब फूली फुलवारी।
भरे तलाय नदी नद नारे मिटी राह सारी॥
बिपति यह पड़ी सखी भारी।
कैसे आवैं मोहन उन बिन व्याकुल मैं नारी।
याद कर तबियत घबराती।
पिया बिन मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती।
जुगनूँ चमकैं चार दिसा मे भई बड़ी सोभा।

हरी भूमि पर वीर-वहूटी देखत मन लोभा ॥
नए नए विरछन के गोभा ।
देख देख के कामदेव मेरे जिय मारै चोभा ॥
हुई जोवन-मद से माती ।
पिया विना मैं व्याकुल तडपूँ नींद नहीं आती ॥
वरसा रितु में पीतम के सँग फिरैं सभी नारी ।
झूलैं वागों जाय हिंडोरा गावैं दै तारी ॥
पहिन के रँग रँग की सारी ।
मैं किसके सँग सोऊँ सखी री विपति वड़ी भारी ॥
करूँ क्या तवियत लहराती ।
पिया विना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ॥
दादुर वोलैं नाचैं मोरा वरसा रितु जानी ।
विजुली चमकै वादल गरजै वरस रहा पानी ॥
सेज सूनी लखि पछितानी ।
हाथ पटक पाटी पर रो रो पिय विन विलखानी ।
कोई नहिं आकर समझाती ।
पिया विना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ॥
कहाँ जाऊँ क्या करूँ कोई ततवीर न दिखलाती ।
खड़ी द्वार पर राह देखती मींजत पछताती ॥
न भेजी अव तक भी पाती ।
'हरीचंद' को जाके कोई इतना तो समझाती ।
कटै कैसे दुख की राती ।
पिया विना मैं व्याकुल तड़पूँ नींद नहीं आती ॥६०॥

वारह-मासा

पिय गए विदेस सँदेस नहिं पाय सखी मन-भावनी ।
लाग्यो असाढ़ वियोग वरसा भई अरम्भ सुहावनी ॥

अदरा लगी बदरा घुमड़ि रहे बिपति यह उनई नई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

सावन सुहावन दुख-बढ़ावन गरजि घन बन घेरहीं।
दामिनि दमकि जुगनूँ चमकि मोहिं दुखी जान तरेरहीं॥
पपिहा पिया को नाम रटि रटि काम-अगिन जगावई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

भादों अँधेरी रात टपकै पात पर पानी बजै।
डरि काम के भय सुन्दरी मिलि नाह सों सेजिया सजै॥
मैं भींजि मारग देखि पिय को रोय तजि आसा दई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

सखि कार मास लग्यौ सुहावन सबै साँझी खेलहीं।
निसि चन्द पूरन चाँदनी में नाह गह भुज मेलहीं॥
मोहिं चाँदनी भई धूप रोअत रात बीति सबै गई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

कातिक पुनीत नहाइ सब दै दीप उँजियारी करैं।
हम प्रान-पिय-बिनु बिकल बिरहागिनि दिवारी सी जरैं॥
अँधियार पिय बिनु हिए चौपड़ कौन हँसि हँसि खेलई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

अगहन लग्यौ पाला पड़्यौ सब लपटि पिय सों सोवहीं।
बिनु प्रान-प्रियतम मिले हम करि हाय बहु बिधि रोवहीं॥
दो भए दिन इक रैन आली लाख जुग सी लागई।
बिनु स्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई॥

सखि पूस लाग्यौ सब बैठे प्रानपिय औरे कहीं।
यह रात जाड़े की बिना पिय साथ के बीतत नहीं॥
उन निठुर सब सुख छीनि हमरो राह मधुबन की लई।

बिनु श्याम सुन्दर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

सखि माघ में कोयल कुहूकी काम को आगम भयो।
फूली बसन्त सुखेत सरसों आम बन बौर्‌यौ नयो ॥
यह पंचमी तिहवार की भई हाय दुखदाइनि दई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

फागुन महीना मस्त सब मिलि निलज गारी गावहीं।
डारैं अबीर गुलाल चोवा रंग संग उड़ावहीं ॥
बिनु प्रान-पिय मैं आप बिरहिनि होय होरी जरि गई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

सखि चैत चाँदनि लगी सुखद बसंत ऋतु बन आइयो।
चटके गुलाब सुहावने जग काम को बल छाइयो ॥
बिनु प्रानपिय दुख दुगुन भयो मनो आज भइ बिरहिन नई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

बैसाख मास अरम्भ ग्रीषम औरहू दुख बाढ़हीं।
इक तो बियोगिन आप दूजे दुसह ग्रीषम डाढ़हीं ॥
बन नयो पल्लव काम-बान समान उर बेधा दई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

सखि जेठ में दिन भयो दूनो कटत कोऊ बिधि नहीं।
बन पात पातन ढूँढ़ि हारी नहिं मिले प्यारे कहीं ॥
पाती न पाई श्याम की सखि बयस सब योंही गई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥

इमि खोजि बारह मास पिय को हारि भामिनि भौनही।
धरि रूप जोगिन को रही औलम्ब करि इक मौनही ॥
'हरिचंद' देख्यौ जगत को सब एक पिय मोहन-मई।
बिनु श्याम सुंदर सेज सूनी देख के ब्याकुल भई ॥६१॥

कजली

मोहिं नंद के कँधाई बेलमाई रे हरी।
बहे पुरवाई औ बदरिया झुकि आई रामा,
कुंज में बुलाई बृजराई रे हरी।
बँसिया बजाई सुनि सखी उठि आई रामा,
सब जुरि आई रस बरसाई रे हरी।
माधवी भी जाई जिय अति हुलसाई रामा,
कजरी सुनाई मन भाई रे हरी।
मिलु उर लाई प्यारी पिय को लुभाई रामा,
नाहिं 'हरीचंद' पछताई रे हरी ॥६२॥

मलार

हरि बिनु काली बदरिया छाई।
बरसत घेरि घेरि चहुँ दिसि तें दामिनि चमक जनाई ॥
कोइलि कुहुकि कुहुकि हिय मेरे बिरहा-अगिन बढ़ाई।
दादुर बोलत ताल-तलैयन मानहुँ काम-बधाई ॥
कौन देस छाये नँद-नन्दन पातीहू न पठाई।
'हरीचंद'-बिनु बिकल बिरहिनी परी सेज मुरझाई ॥६३॥

सखी फिरि पावस की ऋतु आई।
पिया बिना फिर पी पी करि कै इन पापिन रट लाई ॥
फिर बदरी झुकि झुकि कै आई बिपति-फौज उठि धाई।
देखि अकेली कुटिल काम फिर खींचि कमान चढ़ाई ॥
फिर बरसत वैसी ही बूँदैं चहुँ दिसि सों झरि लाई।
फिर दुख-नदी उमड़ि हियरा सों नैनन के मग आई ॥
फिर चमकी चपला चहुँधा तें बिरहिन फेरि डराई।
फिर इन मोरन बोलि बोलि कै मोहन-सुधि जु दिवाई ॥

फिर ये कुंज हरे भए देखियत जहँ हरि केलि कराई ।
'हरीचंद' फिर विकल विरहिनी परी सेज मुरझाई ।।६४।।

फिरि आई बदरी कारी, फिर तलफैंगे पापी प्रान ।
बिनु पिय बची फेर याही दुख देखन के हित नारी ।।
अति व्याकुल तलफत कोउ नाहिंन कछु समुझावन-हारी ।
देखि दसा रोवत द्रुम-बेली धीर सकत नहिं धारी ।।
कोकिल-कूक सुनत हिय फाटत क्यौं जीवै सुकुमारी ।
'हरीचंद' बिनु को समुझावै कहि कहि प्रान-पियारी ।।६५।।

मो मन श्याम घटा सी छाई ।
बरसत है इन नैनन के मग पिय बिनु बरसा आई ।।
मन-मोहन बिछुरे सों सब जग सूनो परत लखाई ।
'हरीचंद'-बिनु प्रान बचन को नाहिं लखात उपाई ।।६६।।

राग मलार, चौताला

श्याम घटा छाई श्याम श्याम कुंज भयो
श्यामा-श्याम ठाढ़े तामैं भींजत सोहैं ।
तैसिय श्याम सारी प्यारी तन सोहैं भारी
छवि देखि काम-बाम चंचलाहू मोहैं ।।
तैसोई मकुट मानों घन दामिनि पर
बग-पंगति तापै मोर नचो है ।
'हरीचंद' बलिहारी राधा अरु गिरधारी
सो छवि कहि सकै ऐसो कवि को है ।।६७।।

राग मलार

अनोखी तुही नई एक नारि ।
पावस रितु मैं मान करै कोउ लखि तो हृदै बिचारि ।
जोगीहू घन घटा देखिकै धावत ध्यान बिसारि ।।

बड़े बड़े ज्ञानी बैरागी करत भोग तप हारि।
तू कामिनि क्यों धीर धरत है यह अचरज मोहिं भारि॥
कर जोरे गिरधर पिअ ठाढ़े करत बहुत मनुहारि।
'हरीचंद' हठ छोड़ि दया करि भुज भरि कोप बिसारि॥६८॥

खंडिता

आजु तौ जँभात आत दोऊ दृग अलसात
भींजत भींजत लाल आए मेरे अँगना।
लटपटी पाग तें कुसुँभी रँग बरसि रह्यौ
अकेले कहाँ ते आए सखा कोऊ सँग ना॥
निसि के उनींदे जागे कौन तिया-रस पागे
देखो तौ कपोलन पैं रह्यौ कहुँ रँग ना।
'हरीचंद' बलिहारी देखियै जू गिरधारी
नील पट अरुझ्यौ है काहू को कँगना॥६९॥

सारंग

आजु ब्रज बाजत महा बधाई।
परम प्रेमनिधि श्री चन्द्रावलि चद्रभानु नृप-जाई॥
प्रफुलित भई कुंज द्रुम-बेली कीरादिक सुख पाई।
परम रसिक-बर नन्दलाल-हित प्रगट भूमि पै आई॥
चन्द्रभानु नृप दान देत बहु हय गय सकल लुटाई।
चन्द्रकला रानी सुखदानी ताकी कूख सिराई॥
आये नन्दादिक सब मिलिकै महीभान घर धाई।
प्रगटी सखी स्वामिनी की ब्रज सब मिलि नाचत गाई॥
चंपक-लता बहुरि चन्द्रावलि तनया जुगुल सुहाई।
प्रगटे ब्रज सुतहू तें दूनो करत उछाव बनाई॥

गुप्त रूप कोउ लखत नहीं कछु भेद न जान्यौ जाई।
'हरीचंद' श्री विट्ठल-पद लखि लख्यो भेद सुखदाई ॥७०॥

आजु ब्रज दूनो वढ़्यो अनंद।
भादौं सुदी पंचमी स्वाती वुध प्रगटे जदु-चन्द ॥
अग्रज श्री गिरिधारन जू के लीला ललित अमंद।
रोहिनि माता उदर प्रगट भये हरन भक्त के दंद ॥
दान देत हर्षे नँद - जसुमति हय गय रतनन कंद।
'हरीचंद' अलि आनँद फूले गावत देव सुछंद ॥७१॥

असावरी

आनँद-सागर आजु उमड़ि चल्यो ब्रज में प्रगटे आइ कन्हाई।
नाचत ग्वाल करत कौतूहल हेरी देत कहि नन्द दुहाई ॥
छिरकत गोपी गोप सबै मिलि गावत मंगलचार वधाई।
आनँद भरे देत कर-तारी लखि सुरगन कुसुमन झर लाई ॥
देत दान सन्मान नंद जू अति हुलास कछु वरनि न जाई।
'हरीचंद' जन जानि आपुनो टेरि देत सव वहुत वधाई ॥७२॥

यथा-रुचि

आजु ब्रज होत कुलाहल भारी।
वरसाने वृषभानु गोप के श्री राधा अवतारी ॥
गावत गोपी रस मैं ओपी गोप वजावत तारी।
आनँद-मगन गिनत नहिं काहू देत दिवावत गारी ॥
देत दान सम्मान भान जू कनक माल मनि सारी।
जो जाँचत तासों वढ़ि पावत 'हरीचंद' वलिहारी ॥७३॥

आजु वन ग्वाल कोऊ नहिं जाई।
कहत पुकारि सुनौ री भैया कीरति कन्या जाई ॥

छावहु गाय सिगरि बच्छ सह सुवरन सींग मढ़ाई।
मोर-पंख मखतूल झूल धरि अँग अँग चित्र कराई॥
आजु उदय साँचो सब गावहु मिलिकै गीत बधाई।
'हरीचंद' वृषभानु बबा सों बहुत निछावरि पाई॥७४॥

आनंदे मुख हेरि हेरि।
ब्रज-जन गावत देत बधाये नचत पिछौरी फेरि फेरि॥
उनमत गिनत न ग्वाल कछू ब्रज सुन्दरि राखी घेरि घेरि।
हेरी दै दै बोलत सबही ऊँचे सुर सों टेरि टेरि॥
छिरकत हँसत हँसावत धावत रावत दधि-घृत झेरि झेरि।
'हरीचंद' ऐसो मुख निरखत तन-मन वारत बेरि बेरि॥७५॥

आनँद आजु भयो बरसाने जनमी राधा प्यारी जू।
त्रिभुवन सुखदानी ठकुरानी जननी जनक-दुलारी जू॥
सुर नर मुनि जेहि ध्यान धरत हैं गावत वेद पुकारी जू।
सो 'हरिचंद' बसत बरसाने मोहन प्रान-अधारी जू॥७६॥

राग बिलावल

आजु भौन वृषभानु के प्रगटीं श्रीराधा।
दूरि भई है री सखी त्रिभुवन की बाधा॥
को कवि जो छबि कहि सकै कछु कहि नहिं आवै।
आनँद अति परगट भयो दुख दूरि बहावै॥
डारहिं सब ब्रज-गोपिका तन-मन-धन वारी।
'हरीचंद' श्री राधिका-पद पै बलिहारी॥७७॥

भैरव

आजु तौ आनन्द भयो का पै कहि जावै।
झूलैं सब गोपि-ग्वाल इत उत बहु डोलैं॥

बाढ़्यो अति हिय हुलास जय जय मुख बोलैं ।
पहिरि पहिरि सुरँग सारी आईं ब्रज-नारी ॥
गावैं हिय मोद भरी दै दै कर-तारी ।
दान देत भानु राय जाको जो भावै ॥
'हरीचंद' आनँद भरि राधा-गुन गावै ॥७८॥

कान्हरा

आई भादौं की उँजियारी ।
आनँद भयो सकल ब्रज-मंडल प्रगटी श्री वृषभानु-दुलारी ॥
कीरति जू की कोख सिरानी जाके घर प्यारी अवतारी ।
'हरीचंद' मोहन जू की जोरी विधना कुँवरि सँवारी ॥७९॥

आजु बरसाने नौबत बाजैं ।
बीन मृदंग ढोल सहनाई गह गह दुंदुभि गाजैं ॥
सब ब्रज-मंडल शोभा बाढ़ी घर घर सब सुख साजैं ।
'हरीचंद' राधा के प्रगटे देव-वधू सब लाजैं ॥८०॥

आजु ब्रज आनँद बरसि रह्यो ।
प्रगट भई त्रिभुवन की शोभा सुख नहिं जात कह्यो ॥
आनँद-मगन नहीं सुधि तन की सब दुख दूरि बह्यो ।
'हरीचंद' आनन्दित तेहि छन चरन की सरन गह्यो ॥८१॥

आजु कहा नभ भीर भई ?
सजनी कौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई ?
बालक से चारहु को आये ? तीन नयन को को है ?
ओढ़ि बघम्बर सरप लपेटे जटा धरे सिर सोहै ?
तीन चार अरु पंच सप्त षटमुख के मिलि क्यों नाचैं ?
बड़ी जटा मुख तेज अनूपम को यह वेदहि बाँचैं ?

वीन वजावति कौन लुगाई हंस चढ़ी क्यों डोलै ?
को यह यंत्र वजाय रही है जै जै जै जैं बोले ?
को यह लिये तमूरा ठाढ़ो को नाचै को गावै ?
इत आवै कोउ वात न पूछत पुनि नभ लौं चलि जावै ?
अति आचरज भरीं सब तन मे वात करैं व्रज-नारी।
प्रगट भई वृषभानु राय घर मोहन-प्रान-पियारी।
आनँद बढ़्यो कहत नहिं आवै कवि की मति सकुचाई॥
राधा-स्याम-चरन-पंकज-रज 'हरीचंद' बलि जाई॥८२॥

आजु प्रकट भई श्री राधा आजु प्रकट भई।
गोपिका मिलि घर-घरन सों भानु-नगर गई॥
आइ नन्द-जसोमति मिलि होत अधिक अनन्द।
भानु बरसाने,उदय भो प्रगट पूरन चन्द॥
होत जय जयकार वहि पुर देव वरषैं फूल।
'हरीचंद' सब गोपिका के मिटे उर के शूल॥८३॥

सारंग

आजु दधि-काँदो है बरसाने।
छिरकति गोपी-गोप सबै मिलि काहू को नहिं माने॥
आनन्दित घर की सुधि भूली हम को हैं नहिं जाने।
दधि-घृत-दूध उड़ै लै सिर सों फिरहिं अतिहि सरसाने॥
वह आनँद कापै कहि आवै भयो जौन महराने।
श्री वल्लभ-पद-पद्म-कृपा सों 'हरीचंद' कछु जाने॥८४॥

कजरी

श्याम-विरह में सूझत सब जग
हम को श्यामहि श्याम हो इक-रंगी।

जमुना श्याम गोवरधन श्यामहि
श्याम कुंज वन धाम हो इक-रंगी ॥
श्याम घटा पिक मोर श्याम सब
श्यामहि को है काम हो इक-रंगी ।
'हरीचंद' याही तें भयो है
श्यामा मेरो नाम हो इक-रंगी ॥८५॥

मलार

अनत जाइ बरसत इत गरजत बे-काज ।
तुम रस-लोभी मीत स्वारथ के सुनहु पिया ब्रजराज ॥
दामिनि सी कामिनि अनेक लिए करत फिरत हौ राज ।
'हरीचंद' निज प्रेम-पपीहन तरसावत महराज ॥८६॥

पिय सँग चलि री हिंडोरे झूल ।
या सावन के सरस महीने मेटि अरी जिय सूल ॥
देखि हरी भई भूमि रही सब बन-द्रुम-बेली फूल ।
यह रितु मानिनि-मान-पतिव्रत देत सबै उन्मूल ॥
होत सँजोगिनि सुख बिरहिन के हिए उठत है हूल ।
'हरीचंद' चल ऐसी समय तू मिलु गहि पिय भुज-मूल ॥८७॥

राग भैरव

प्रात काल ब्रज-बाल पनियाँ भरन चलीं
गोरे गोरे तन सोहै कुसुँभी को चदरा ।
ताही समै घन आए घेरि घेरि नभ छाए
दामिनि दमक देखि होत जिय कदरा ॥
बोलत चातक मोर सीतल चलैं झकोर
जमुना उमड़ि चली बरसत अदरा ।

'हरीचंद' बलिहारी उठि बैठो गिरिधारी
सोभा तौ निहारौ चलि कैसे छाए बदरा ॥८८॥

खंडिता

प्रात क्यों उमड़ि आए कहा मेरे घर छाए
ए जू घनश्याम कित रात तुम बरसे।
गरजत कहा कोऊ डर नहिं जैहैं भागि
झुकि झुकि कहा रहे चलौ अटा पर से॥
सजल लखात मानौ नील पट ओढ़ि आए
कहौ बौरे दौरे तुम आए काके घर से।
'हरीचंद' कौन सी दामिनि सँग रात रहे
हम तौ तुम्हारे बिना सारी रैन तरसे ॥८९॥

सारंग

आये ब्रज-जन धाय धाय।
नाचत करत कोलाहल सब मिलि तारी दै दै गाय गाय॥
जुरे आइ सिगरे ब्रज-बासी टीको बहु बिधि लाय लाय।
'हरीचंद' आनँद अति बाढ़्यो कहत नंद सों जाय जाय॥९०॥

आजु भयो अति आनँद भारी।
प्रगटी श्री वृषभानु-दुलारी॥
गोपी सब टीको लै आवैं।
मिलि मिलि रहसि बधाई गावैं॥
नाचत गोप देत सब तारी।
तन मन की कछु सुधि न सम्हारी॥
दान देति हैं मनि-गन हीरा।
हेम पटम्बर पीअर चीरा॥

सुख बाढ़्यो तेहि छन अति भारी ।
'हरीचंद' छवि लखि बलिहारी ।।९१।।

आजु श्री वल्लभ के आनंद ।
प्रगट भये व्रज-जन-सुखदायी पूरन परमानंद ।।
गावत गीत सबै व्रज-वनिता सोहत हैं मुख-चंद ।
वेद पढ़त द्विजवर बहु ठाढ़े देत असीस सुछंद ।।
गुप्त रूप कोउ प्रगट न जानत हलधर सब सुखकंद ।
गोपीनाथ अनाथ-नाथ लखि मन वारत 'हरिचंद' ।।९२।।

आजु व्रज होत कोलाहल भारी ।
नंदराय घर मोहन प्रकटे भक्तन के सुखकारी ।।
जित तित ते धाईं टीको लै अति आकुल व्रज-नारी ।
निरखन कारन श्याम नवल ससि उमँगी सजि सजि सारी ।।
गावत गोप चोप भरि नाचत दै दै के कर-तारी ।
बाजे बजत उड़त दधि माखन छीर मनहुँ धन वारी ।।
दान देत नँदराय उमँगि रस रतन धेनु बिस्तारी ।
'हरीचंद' सो निरखि परम सुख देत अपनपौ वारी ।।९३।।

परज

एरी आज बाजै छे रंग बधावना ।
कीरति-उदर-उदयगिरि प्रगट्यो अद्भुत चन्द्र सोहावना ।।
आजु सुफल भयो नन्द महोत्सव नर-नारी मिलि गावना ।
'हरीचंद' वृषभानु बबा सों प्रेम बधायो पावना ।।९४।।

सारंग

कुंज कुंज रथ डोलै मदन मोहन जू को
श्वेत ध्वजा तामें उड़ि उड़ि सोहै ।

तैसोई सघन घन छाय रहेउ नभ
बीच देखत ही मनमथ-मन मोहै ॥
दौरत मे फरहरत पीताम्बर
मनु दामिनि घन नाचै ।
श्वेत ध्वजा बग-पाँति छवि कछु कहि न
जात निरखत अति मन आनंद राचै ॥
द्रुम द्रुम कुंज कुंज बन बन
तीर तीर घूमत रथ फिरि आवै ।
'हरीचंद' बलि जाय छवि देखि सुख
पाय तन मन धन सब वारिकै लुटावै ॥९५॥

बिहाग

गावत रंग-बधाई सब मिलि गावत रंग-बधाई ।
कीरति के प्रकटी श्री राधा मोहन के मन भाई ॥
नर-नारी सब मिलि के आई गावत गीत सुहाई ।
'हरीचंद' कछु जस बरनन करि बहुत निछावरि पाई ॥९६॥

राइसा

गावो सखि मंगलचार बधायो वृषभानु की ।
सुनि चलीं गृह गृह तें साजनि सबै सजाय ।
बरनि छवि कछु कहि न आवै चन्द उदय भयो आय ॥
भयो अति आनंद तेहि छन कह्यो कापै जाय ।
ग्वाल नाचैं तारि दै दै देत बहुत बनाय ॥
एक गावत एक नाचत एक परसत पाय ।
गारि देत दिवाय सब को सुख कह्यो नहिं जाय ॥
देत सब कोऊ बधाई रतन बसन लुटाय ।
रंक भये कुबेर मानहु दान पाइ अघाय ॥

भयो जौन अनंद तेहि छन कौन पै कहि जाय।
'हरीचंद' वहुत दीनों दान तहाँ वुलाय ॥९७॥

सारंग

ग्वाल सव हेरि हेरि वोलैं।
कीरति के कन्या जायी यह सुख सों कहि डोलैं॥
आनँद-मगन गनत नहिं काहू माठ दही के रोलैं।
'हरीचंद' को देत वधाई भक्ति मन मोलैं॥९८॥

गावत सबै वधाय धाय।
आनँद भरे करत कौतूहल वहुधा यंत्र वजाय जाय॥
गोपी आई मंगल कर लै कुमकुम मुखन लगाय गाय।
श्री-मुख लखि आनंदत सवही नयनन रहीं वलाय लाय॥
रावल-गली सुगन्धिन छिरकी वहु विधि वसन विछाय छाय।
'हरीचंद' सोभा लखि सुर नभ तिय सव रहीं लुभाय भाय॥९९॥

यथा-रुचि

गोकुल प्रकटे गोकुलनाथ।
प्रमुदित लता गोवर्द्धन जमुना सव व्रजवासी किये सनाथ॥
इक गावत इक ताल वजावत इक नाचत गहि गहि कै हाथ।
एक वसन पट देत वधाई इक लावत घसि चन्दन साथ॥
आनँद उमगे गनत न काहू वाल वृद्ध सव एकहि साथ।
'हरीचंद' सुर फूलन वरपत सुक नारद गावत गुन-गाथ॥१००॥

परज

घर घर आजु वधाई वाजै।
टीको लै आवति व्रज-वनिता कीरति को घर राजै॥
इक गावत इक करत कोलाहल मनु पायो है राजै।
'हरीचंद' छवि कहि नहिं आवै कवि-मति या थल लाजै॥१०१॥

यथा रुचि

चंद्रभानु घर बजत बधाई।
श्री चंद्रावलि ब्रज प्रकटाई॥
हरित भये तरु पल्लव शोभा।
कुंज-भवन बाढ़ी अति शोभा॥
बोलि उठे कल कोकिल कीरा।
डोली तिहि छन त्रिबिध समीरा॥
उनये घन मनु आनँद छायो।
गरजि मन्द दुन्दुभी बजायो॥
भादों सित पंचमी सुहाई।
स्वाती सोम पहर निसि आई॥
चंद्रकला की कोख सिरानी।
चंद्रावलि प्रकटी सुखदानी।
गुन भेद नहिं कछु प्रगटायो।
सो श्री विट्ठल प्रकट लखायो॥
रूप प्रकट छवि नयन निहारी।
'हरीचंद' सर्बस बलिहारी॥१०२॥

ढाढी

चलो आज घर नंद महर के प्रेम-बधाई गावैं।
भादों कृष्ण अष्टमी दिन श्री कृष्णचंद्र-जस गावैं॥
तोरन तनी पताका द्वारन भवन भीर भइ भारी।
री ढाढ़िन कर पगन समेटे चलियो भवन मँझारी॥
जहाँ इन्द्र-चन्द्रादि देवता कर बाँधे हैं ठाढ़े।
कौन सुनैगो आज हमारी प्यारी कर हित गाढ़े॥
प्रेम-पंथ को पग है न्यारो ताते मन यह आवै।
'हरीचंद' लखि लाल लड़ैतो नव निधि रिधि सिधि पावै॥१०३॥

जसोदा माई लेहु हमारी बधाई ।
धन्य भाग तेरे सुनु प्यारी जनम्यो कुँवर कन्हाई ॥
चिरजीवो जब लौं जमुना-जल गंगा-जल सब देवा ।
जब लौं धरा अकास और है जब लौं हरि की सेवा ॥
तब लौं चिरजीवो जग भीतर 'हरीचंद' तव लाला ।
मंगल गीत विनोद मोद मति मंगल होइ रसाला ॥१०४॥

हिंडोला रायसा

झूलत राधा रंग भरी कुंज-हिंडोरे आज ।
सँग सब सखी सुहावनी साजे सुन्दर साज ॥
झूलन आये मोहन सुंदर मदन मुरारी ।
गावत ऊँचे सुर भरि सँग मिलि ब्रज की नारी ॥
ताल मुरज डफ आवज साथ पखावज चंग ।
बाजत लय सुर साजत बीना और उपंग ॥
बिच बिच बंसी गूँजत मधुर मधुर घन-घोर ।
धुनि सुनि जासु कोइलियन तरुन मचाई रोर ॥
इक उतरत इक झूलत एक चढ़त तहँ धाय ।
एक रहत गहि डोरी दूजी देत झुलाई ॥
इक नाचत इक गावत एक बजावत तार ।
एक जुगल छवि लखि कै तन-मन डारत वार ॥
रमकनि मैं रँग बाढ़्यौ छवि कछु कही न जाइ ।
झोंटा लगि रहे डारन विविध वसन फहराइ ॥
सोभा को कहि भाषै झूलत बाढ़ी जौन ।
'हरीचंद' लखि लखि कै कवि-मति रसना मौन ॥१०५॥

बिहाग

नाचति बरसाने की नारी ।
जिनके घर प्रकटी श्री राधा मोहन-प्रान-पियारी ॥

नाचत शिव सनकादि मुनीश्वर नारदादि व्रतधारी ।
नाचत वेद पुरान रूप धरि डारत तन-मन वारी ।।
अति आनंद बढ़्यो बरसाने प्रकटी श्रीवृषभान-कुमारी ।
'हरीचंद' आनन्दित अति मन होत निरखि बलिहारी ।।१०६।।

नन्द बधाई बाँटत ठाढ़े ।
भई सुता बाबा भानुराय के प्रेम-पुलक तन बाढ़े ।।
काहू को सोना काहू को रूपा काहू के मनि-गन दीनो ।
जिन जो माँग्यो तिन सो पायो कह्यो सबनि को कीनो ।।
काहु को धेनु बसन काहू को दियो सबनि मन-भायो ।
आनँद भयो कहत नहिं आवै 'हरीचंद' जस गायो ।।१०७।।

नागरी मंगल रूप-निधान ।
जब तें प्रकट भई बरसाने छायो आनंद महान ।।
दिन दिन सुख उमड़त घर घर में छन छन होत कल्यान ।
'हरीचंद' मोहन की प्यारी राधा परम सुजान ।।१०८।।

मलार

पिय बिन बरसत आयो पानी ।
चपला चमकि चमकि डरपावत मोहिं अकेली जानी ।।
कोयल कूक सुनत जिय फाटत यह बरषा दुखदानी ।
'हरीचंद' पिय स्याम सुँदर बिनु बिरहिनि भई है दिवानी।।१०९।।

सारंग

ब्रज-जन काँवर जोरि जोरि ।
आये मन-भाये लै दधि घृत निज निज गृह तें दौरि दौरि ।।
गोपी आईं गीतन गावत पाइँ परत मुख लोरि लोरि ।
करत निछावरि देखि प्रिया-मुख तन के भूषन छोरि छोरि ।।

दधि-काँदो माच्यो आँगन में देत माठ सब फोरि फोरि।
लूटत झपटत खात मिठाई वारत छिन में कोरि कोरि ॥
गिनत न कोऊ काहू को कछु पट भूषन दै तोरि तोरि।
'हरीचंद' सुख कहत न आवै आनँद वाढ़्यो खोरि खोरि ॥११०॥

राग मलार हिंडोला

गिरधरलाल हिंडोरे झूलैं।
पँच-रंग फूल हिंडोर बनायो निरखि निरखि जिय फूलैं ॥
को कहि सकै भई जो सोभा कालिंदी के कूलैं।
'हरीचंद' यह कौतुक लखिकै देव विमानन भूलैं ॥१११॥

राग परज

ए जी आज झूलै छे श्याम हिंडोरें।
वृन्दावन री सघन कुंज में जमुना जी लेताँ हलोरें ॥
सँग थारे वृषभानु-नन्दिनी सोहै छे रँग गोरे।
'हरीचंद' जीवन-धन वारी मुख लखताँ चित चोरे ॥११२॥

ईमन

कमल नैन प्यारी झूलै झुलावै पिय प्यारी।
कबहुँक झोंटा देत कबहुँ लगावै कंठ
कबहुँ सँवारत सारी, करत मनुहारी ॥
कबहुँ सँग झूलै सोभा देखि देखि फूलै कबहुँ
उतरि झोंटा देत भारी भारी, डरत सुकुमारी।
'हरीचंद' बलिहारी झुकि आई घटा कारी
बरसत घोर वारी मुकुट, छावत गिरिधारी ॥११३॥

राग अड़ानो

सावन आवत ही सब द्रुम नए फूले
ता मधि झूलत नवल हिंडोरे।

तैसिय हरित भूमि तामै बीरबधू सोहै
तैसीयै लता झुकि रही चहुँ कोरे ॥
तैसोई हिंडोरो पँच-रँग बन्यो सोहत
तैसी ही ब्रज-बधू घेरे सब ओरे।
'हरीचंद' बलिहारी तापै झूलै राधाप्यारी
मोहन झुलावैं झोंटा देत थोरे थोरे ॥११४॥

बारह-मासा

मास असाढ़ उमड़ि आए बदरा ऋतु बरसा आई।
बोलै मोर सोर चहुँ दिसि घन-घोर घटा छाई ॥
पपीहन पी पी रट लाई।
भयो अरम्भ वियोग फिरी जब काम की दुहाई ॥
देखि मेरी तबियत घबराती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
सावन मास सुहावन लागै मन-भावन नाहीं।
झूलैं काके संग हिंडोरा देकर गल-बाहीं ॥
बरसि घन कुंजन के माहीं।
कौन बचावै आप भीजि मोहि रखि अपनी छाँहीं ॥
याद करि दरकत सखि छाती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
भादों मास अँधेरो लखि कै रही धीर खोई।
व्याकुल सूने घर में तड़पूँ पास नहीं कोई ॥
अकेली मैं सेजों सोई।
बूँद झमक दामिनी चमक लखि कै करवट रोई ॥
बिथा सो नहीं सही जाती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥

क्वार मास सब साँझी खेलैं सरद विमल पानी।
मैं व्याकुल बिनु प्रान-पिया के कहत न मुख बानी॥
उँजेरी रात न मन मानी।
चन्दा उलटी अगिनि लगावे मोहिं विरहिनी जानी॥
कोई करवट नहिं कल पाती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती॥
कातिक मास पुनीत जानि सब न्हातीं बृज-नारी।
मानि दिवाली दीप-दान दे करती उँजियारी॥
पिया बिन मेरे अँधियारी।
भई वियोगिन व्याकुल मैं सब रैन चैन हारी॥
बिपति यह सही नहीं जाती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती॥
अगहन आया सब मन भाया पड़ा जोर पाला।
लपटि लपटि पीतम से सोईं घर घर में बाला॥
ओढ़ कर शाल औ दुशाला।
मैं घर बीच अकेली तड़पूँ बिना नंदलाला॥
भई सौ जुग की इक राती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती॥
पूस मास में सीत जोर है दुगुन रात होती।
बिना पियारे प्राननाथ मैं किससे लपट सोती॥
सेज सूनी लखि कै रोती।
तड़प तड़प कर विरह-बोझ मैं किसी भाँति ढोती॥
भई मेरी पत्थर की छाती।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती॥
माघ मास में मदन जोर भयो रितु बसंत आई।

बौरे बौर फूल वन फूले मोरन रट लाई ॥
फिरी जग काम की दुहाई ।
कोकिल कूक सुनत जिय दरकत मुरछित घबराई ॥
न पाई मोहन की पाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
फागुन खेलैं फाग रंग गावैं मीठी बोली ।
चलै रंग की पिचकारी उड़ै अबिर - झोली ॥
देखि मेरे हिय लागी होली ।
भयो काम को जोर दरकि गई जोबन से चोली ॥
जाय यह कोई समझाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
चैत चाँदनी देख भया दुख सखी मेरा दूना ।
कामदेव ने अंग अंग मेरा जला जला भूना ॥
पिया बिन मैं अब जीऊँ ना ।
कहाँ जाऊँ क्या करूँ दिखाता सारा जग सूना ॥
धरनि में मैं समाय जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
लगा मास बैसाख सखी दिन गर्मी के आए ।
सब सँजोगियों ने खसखाने घर में लगवाए ॥
फूल के बँगले बनवाए ।
चन्दन लेप फुहारे छूटे गुलाब छिरकाए ॥
करूँ मैं क्या बियोग-माती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
जेठ मास गरमी सखि पड़ती बड़ी पीर भारी ।
दिन नहिं कटता किसी भाँति घबराती मैं नारी ॥
भई मेरे जोबन की ख्वारी ।

वारी वैस छोड़ के मुझको बिछुड़े बनवारी ॥
हाय करि रोती पछिताती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिय के नींद नहीं आती ॥
बारह मास पिया बिन खोए रोइ रोइ हारे ।
बन बन पात पात करि ढूँढ़ा मिले नहीं प्यारे ॥
मेरे प्रानों के रखवारे ।
'हरीचंद' मुखड़ा दिखलाओ आँखों के तारे ॥
पीर अब सही नहीं जाती ।
कैसे रैन कटै बिनु पिया के नींद नहीं आती ॥११५॥

मलार

ए मैं कैसे आऊँ ए दिलजानी हो देखो रिमझिम बरसत पानी ।
जो मेरी भींजे सुरुख चूँदरी तो घर सास रिसानी ।
'हरीचंद' पिय मोहिं बचाओ पीत पिछोरी तानी ॥११६॥

सारंग

ब्रज जनमत ही आनँद भयो ।
श्री वृषभानु-भवन के भीतर सब सुख आन नयो ॥
गाँव गाँव तें टीको आयो भीतर भवन लयो ।
'हरीचंद' आनंद भयो अति दुख बहि दूरि भयो ॥११७॥

ब्रज में रस-निधि प्रगट भई ।
चन्द्रभानु नृप भाग फले ब्रज प्रगटी सुता नई ॥
हरि राधा को प्रेम परम जो सोइ मूरति चितई ।
कहि 'हरिचंद' मान लीला रस करि हित भूमि गई ॥११८॥

यथा-रुचि

भद्रू इक बात नई सुनि आई ।
आजु भई कीरति के कन्या बाजत रंग-बधाई ॥

नर-नारी सब हैं मिलि आई कीरति घर छवि छाई ।
अति आनंद कहन नहिं आवै 'हरीचंद' बलि जाई ॥११९॥

मलार

मनोरथ करत द्वार पर ठाढ़ी ।
करि करि ध्यान स्याम सुंदर को पुलकावलि तन बाढ़ी ॥
ऐहैं री या मारग सों हरि कमल-नयन घनश्याम ।
बेनु बजावत कमल फिरावत हँसत गरे बन-दाम ॥
करि करि बहु पकवान मिठाई भरि भरि राखत थार ।
अपने हाथन गूँथि बनावत रचि फूलन के हार ॥
द्वारे मेरे रथ ठाढ़ो करि मोकों अति सुख दैहैं ।
जो हम रचि रचि कै राखे हैं सो प्रभु रुचि सों खैहैं ॥
दै बीरा आरती करौंगी ब्यजनैं हाथ डुलैहैं ।
तन मन धन न्योछावर करिहैं देखि देखि सुख पैहैं ॥
औ जो कहुँ घन बरसन लागे ताहि निवारन काज ।
भींजत उतरि मेरे घर ऐहैं जहँ सुख को सब साज ॥
सुफल काम सब मेरो हैहैं जो कछु चित्त बिचारेउ ।
ऐसे ग्वालिनि करति मनोरथ रथ को दूरि निहारेउ ॥
हरि आये बादरहू आये बरसन लाग्यो पानी ।
ताके घर प्रभु उतरि पधारे भींजत आपुहि जानी ॥
अति आनद भयो ताके चित मिलि प्रभु अति सुख दीनो ।
'हरीचन्द' प्रभु अन्तरजामी सुफल मनोरथ कीनो ॥१२०॥

कान्हरा

यह निधि धर्महि तें पाई ।
कीरति मैया तू बड़भागिनि जो तेरे घर आई ॥
जाको ध्यान धरत सनकादिक संभु समाधि बड़ाई ।

सो निधि तजि वैकुंठ धाम को बरसाने में आई ॥
जाते ब्रज विहरत आनँद भरि श्री गोकुल के राई ।
सो निधि बार बार उर धरि कै 'हरीचन्द' बलि जाई ॥१२१॥

सारंग

रथ चढ़ि नन्दलाल पीय करत हैं वन फेरा ।
आजु सखी लालन सँग विहरिवे की वेरा ॥
रतन-खचित सुन्दर रथ दिव्य बरन सोहै ।
छतरी ध्वज कलस चक्र सुर-नर-गन मोहै ॥
छाई घन घटा चारु आनँद बरसावैं ।
प्रमुदित घनश्याम तहाँ राग मलार गावैं ॥
और कोऊ संग नाहिं हरि अरु ब्रज-नारी ।
हाँकत रथ अपने हाथ राधा सुकुमारी ॥
कुंज कुंज केलि करत डोलत हरि राई ।
'हरीचन्द' जुगुल रूप लखि कै बलि जाई ॥१२२॥

यथा-रुचि

रास-रस ब्रज में प्रगट भयो ।
फूली फिरत सबै ब्रज-बनिता तन को ताप गयो ॥
लीला-रूप शील-गुन-सागर ब्रज आनंद भयो ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पिया को आनँद अतिहि दयो ॥१२३॥

श्याम संग श्यामा रंग भरी राजत ।
अरध ओट घूँघट पट कीन्हे लखि रति मन्मथ लाजत ॥ध्रु०॥
नील निचोल मध्य मुख ससि की फैली घटा सुहाई ।
झिलमिल ज्योति एक मिलि दीखति महलन अलि छबि छाई ॥
श्यामहु बने श्याम रँग बागे अनुरागे पिय प्यारी ।
'हरीचन्द' लखि जुगुल माधुरी सरवस ठान्यो वारी ॥१२४॥

असावरी

सुनत जनम वृषभानु-लली को उठि धाई ब्रज-नारी।
मंगल साज लिये कर कंजन पहिरे रँग रँग सारी॥
जो जैसे तैसे उठि धाईं सुनतहि स्वामिनि-नामा।
भादो नदी सरिस उमगाईं चहुँ दिसि ब्रज की बामा॥
बेनी सिथिल खसित कच सुमरन लुलित पीठ पर सोहैं।
काजर नयन श्रवन-तल तरवन देखत ही मन मोहैं॥
झुम झुम मंडित मुख ससि सोभित बेंदी हीर जगाई।
अधर तमोल रंग सों भीने गावत सरस बधाई॥
आनँद उमगे गात गात सब हिय अति अधिक उछाह।
सब घर पुत्र भयो धन बाढ़्यो सब ही के मनु ब्याह॥
लोचन तृषित दरस बिनु ब्याकुल पगहू सो बढ़ि धावै।
चौंकि चौंकि चितवत चारहु दिसि मग मनु कंज बिछावैं॥
आइ जुरीं वृषभानु-भवन में मुख निरखत सुख पायो।
पद परि सखा चूमि निरखि दृग जन्म सुफल करवायो॥
धनि दिन धनि निसि धनि छिन धनि पल धनि यह घरी सोहाई।
जामें तीन लोक की स्वामिनि भानु-भवन प्रगटाई॥
नाचत गावत करत कुलाहल प्रेम उमगि अकुलानी।
हँसत प्रमोद करत मन फूलत बोलत कोकिल-बानी॥
अति रस-मत्त बदत नहि काहू उछलित रस आवेसा।
अंचल खुलत नाहिं सुधि तन की भई एक ही भेसा॥
सब ब्रज को शृंगार रूप रस भाग सुहाग सुहायो।
मोहन की सरबस संपति सँग मिलि बरसाने आयो॥
को कहि सकै कहा कहि भाषै कवि पै नहिं कहि जाई।
जो सुख सोभा ता छन बाढ़ी अनुभव नयन लखाई॥

नंद-भवन तें बढ़ि सुख तेहि छन क्योंहूँ करि प्रगटायो।
'हरीचंद' वल्लभ-पद-बल से केवल यह लखि पायो ॥१२५॥

हमारे तन पावस वास कस्यो। ध्रु०॥
बरसत नैन-वारि सब ही छन दुख-घन उमड़ि पस्यो॥
जुगनूँ चमकि अँगार-विरह की श्वासा बान भस्यो।
'हरीचंद' हिय करो मिलि सीतल ना-तरु गात जस्यो ॥१२६॥

हमारे भाई श्यामा जू की जीति।
हारो सदा जहाँ पिय प्यारो यहै प्रीति की रीति॥
प्रेम होड़ में बहु नायक बनि खोई श्याम प्रतीति।
जदपि निरंतर लखत रहत रुख तऊ नाम की भीति॥
होत अधीन भौंह फेरन में यहै यहाँ की गीति।
'हरीचन्द' याही सों सब सों सरस जुगल की भीति ॥१२७॥

हम जो मनावत सो दिन आयो।
कीरति-सुता प्रगट बरसाने गायो गीत बधायो॥
करि सिंगार चलीं घर घर तें मंगल साज सजायो।
हाथन कंचन-थार विराजै चौमुख दीप जगायो॥
आई मिलि वृषभानु गोप के अति आनँद उर भायो।
थापे दीने कलस धराये टीको सबन लगायो॥
गावत गोपी तन मन ओपी द्वार निसान बजायो।
'हरीचंद' तेहि समय जाइ के बहुत बधाई पायो ॥१२८॥

राव जू आजु बधाई दीजै।
तुम्हरे प्रकट भई श्री राधा कह्यौ हमारो कीजै॥
गोपिन को मनि-गन आभूपन दै दै आशिप लीजै।
ग्वालन पाग पिछौरी दीजै यातें सब दुख छीजै॥

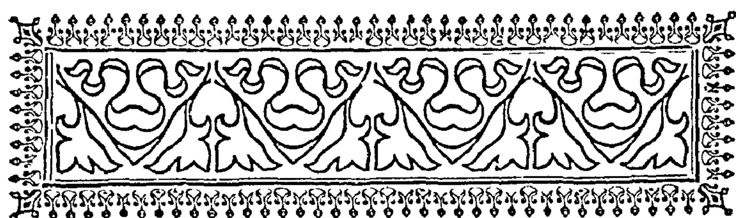
तुम्हरी सुता जगत ठकुरानी जायो मुख लखि लीजै ।
'हरीचंद' वृषभानु-सुता के चरन-कमल-रस पीजै ॥१२९॥

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज ।
भोरी गोरी पिय-रस बोरी लाज-सुहाग-जहाज ॥
ब्रज-रानी कीरति सुख-दानी पूरनि जसुमति-काज ।
नंद बबा की नयन-पूतरी मोहन की सुख-साज ॥
भानु राय के घर की दीपक पालनि भक्त-समाज ।
'हरीचंद' पिय-सहित करौ नित अविचल ब्रज मे राज ॥१३०॥



विनय-प्रेम-पचासा

सं० १९३८



विनय-प्रेम-पचासा

जै जै श्री बृन्दावन-देवी ।
जो देवन को देव कन्हाई सोऊ जा पद-सेवी ॥
अगम अपार जगत-सागर के जाके गुन-गन खेवी ।
'हरीचन्द' की यहै वीनती कबहूँ तो सुधि लेवी ॥१॥

वचन दीन-जन सों जुगति नई निकारी लाल ।
बहरावन हित हम सबन भए बाल-गोपाल ॥
जनम करम पढ़ि आपु को बहँकि जाइँ से और ।
हम दामन तजिहैं नहीं अहो छली-सिरमौर ॥
जदपि वास तव मैं अहैं जीवहिं दोसी नाथ ।
पै निरघृन कौतुक लखत तुम क्यों वाके साथ ॥
भयो पाप सों पाप बिनु जग न जियत छन एक ।
ऐसे जीवहिं होइ क्यों तुव पद-पदम विवेक ॥
न्याय-परायन साँच तुम साँचे अहौ दयाल ।
देखैं निवहत उभय गुन किमि मेरे अघ-काल ॥
जो हम जैसो कछु करैं तुम तैसो फल देहु ।
तौ जग की गति आपहू करी बिसारि सनेहु ॥२॥

राग यथा रुचि

नैनन में निवसौ पुतरी ह्वै हिय में बसौ ह्वै प्रान।
अंग अंग संचरहु सक्ति ह्वै ए हो मीत सुजान॥
मन मे वृत्ति वासना ह्वै कै प्यारे करौ निवास।
ससि सूरज ह्वै रैन-दिना तुम हिय-नभ करहु प्रकास॥
बसन होइ लिपटौ प्रति अंगन भूपन ह्वै तन बाँधो।
सोवो ह्वै मिलि जाऊ रोम प्रति अहो प्रानपति माधो॥
ह्वै सुहाग-सेंदुर सिर बिलसौ अधर राग ह्वै सोहौ।
फूल-माल ह्वै कंठ लगौ मम निज सुबास मन मोहौ॥
नभ ह्वै पूरौ मम आँगन में पवन होइ तन लागौ।
ह्वै सुगंध मो घरहि बसावहु रस ह्वैके मन पागौ॥
श्रवनन पूरौ होइ मधुर सुर अंजन ह्वै दोउ नैन।
होइ कामना जागहु हिय में करहु नींद बनि सैन॥
रहौ ज्ञान में तुमही प्यारे तुम-मय तन मम होय।
'हरीचंद' यह भाव रहै नहिं प्यारे हम तुम दोय॥३॥

राग असावरी

जुगल-केलि-रस वल्लभियन विनु और कहा कोउ जानै।
बिनु अधिकारी कौन और या गुप्त रसहिं पहिचानै॥
तर्क वितर्क महा चतुराई काव्य-कोप-निपुनाई।
कबहूँ याके निकट न आवत लाख करौ न बनाई॥
कै तौ जगत-विषय की तिन मों गंध भयानक आवै।
कै विज्ञान महा तम बढ़िकै सगरे रसहि सुखावै॥
जौ कोउ कोमल कमल तंतु सो महा मत्त गज बाँधै।
तौ या मरमहि समुझि सकै कछु पै जौ एकहि साधै॥

साधन जिते जगत मैं गाए तिनको फल कछु औरै।
यह तौ उनकी कृपा साध्य इक साधन करै सो बौरै ॥
जुपै प्रवाह छुट्यौ तौ लागी आइ महा मरजादा।
जद्यपि यह नीकी प्रवाह सों रंग तऊ है सादा ॥
अतिहि निकट परलोक लोक दोउ जो या में कछु बोलै।
तनिकहु पग खिसक्यौ तौ डूब्यौ अमृत मैं विष घोलै ॥
रात दिना के सुनै किये जे अति अभ्यासित भाव।
तिन सों कैसे बचै कहो मन कोटिक करौ उपाव ॥
जिमि बिनु आयसु कठिन दुर्ग में सकै न कोऊ जाय।
तैसेहिं उनकी कृपा बिना नहिं याको और उपाय ॥
पद पद पै अघ धरे करोरन वृत्ति सहज अधगामी।
काम क्रोध उपजत छिन छिन मैं होउ भले कोउ नामी ॥
इन रिपुगन को जीवन कों जौ तप आदिक कछु साधै।
तौ अभिमान जानकारी को आइ सकल अँग बाँधै ॥
सूछमता को परम प्रान जो ताको अंतर निकारै।
तो या रसहि कछुक कछु जानै औरन आन बिचारै ॥
कहिए जुपै होइ कहिबे की पुनि भाखे न कहाई।
'हरीचंद' बिनु वल्लभ-पद-बल यह निधि नहिं लहि जाई ॥ ४ ॥'

तोसों और न कछु प्रभु जाचौं।
इतनो ही जाँचत करुना-निधि तुम ही मैं इक राचौं ॥
खर कूकुर लौं द्वार द्वार पै अरथ-लोभ नहिं नाचौं।
या पाखान-सरिस हियरे पै नाम तुम्हारोइ खाचौं ॥
विस्फुलिंग से जग-दुख तजि तव बिरह-अगिन तन ताचौं।
'हरीचंद' इक-रस तुमसों मिलि अति अनन्द मन माचौं ॥ ५ ॥'

प्यारे यह नहिं जानि परी ।
नाथ समुझि यह बलो तुमहिं कै तुम मोहिं प्रभो बरी ॥
हम भाजत पै तुम गहि राखत बरबस करत निबाह ।
उलटी गति दिखराति मनों तुमहीं कहँ मेरी चाह ॥
हम अपराध करत नहिं चूकत बिचलावत बिश्वास ।
तुम तेहि छमा करत गहि गहि भुज औरहु खींचत पास ॥
दास होइ हम अति अभिमानी बंचक निमक-हराम ।
तुम स्वामी समरथ करुनामय क्यों बनि रहे गुलाम ॥
जो हम कहँ करनी चाहत हो सो तुम उलटी कीन्ही ।
प्रियतम ह्वै प्रेमी समान सब चाल जनन सों लीन्ही ॥
यह उदारता कहँ लौं गाओं बनै तुमहि सों नाथ ।
नाहीं तौ 'हरिचंद' पतित को कौन निबाहै साथ ॥६॥

याही सों घनश्याम कहावत ।
द्रवत दीन - दुरदसा बिलोकत करुना रस बरसावत ॥
भीगे सदा रहत हिय रस सों जन-मन-ताप जुड़ावत ।
'हरीचंद' से चातक जन के जिय की प्यास बुझावत ॥७॥

हरि-तन करुना-सरिता बाढ़ी ।
दुखी देखि निज जन बिनु साधन उमगि चली अति गाढ़ी ॥
तोरि कूल मरजादा के दोउ न्याव-करार गिराए ।
जित तित परे करम फल-तरुगन जड़ सों तोरि बहाए ॥
अचल बिरुद गंभीर भँवर गहि महा पाप गन बोरे ।
असहन पवन बेग अति बेगहि दीने महान हलोरे ॥
भरि दीने जन हृदय-सरोवर तीनहुँ ताप बुझाई ।
'हरीचंद' हरि-जस-समुद्र में मिली उमगि हरखाई ॥८॥

प्रभु की कृपा कहाँ लौं गैये ।
करुना में करुनानिधि ही के इती बड़ाई पैये ॥
डार डार जौ अघ मेरे तौ पात पात वह बोलै ।
नदी नदी जो पाप चलत तौ बिंदु बिंदु वह डोलै ॥
थल थल में छिपि रहत जु यह वह रेनु रेनु ह्वै धावै ।
दीप दीप जौ यह समान वह किरिन किरिन बनि जावै ॥
काकी उपमा वाहि दीजिये व्यापक गुन जेहि माँही ।
हिय अन्तर अँधियार दुराने अघहु नाहिं बचि जाहीं ॥
सिंधु लहरहू सिंधुमयी है मूढ़ करै जो लेखे ।
नाहीं तो 'हरिचंद' सरीखे तरत पतित कहुँ देखे ॥९॥

प्रभु हो जो करिहौ सोइ न्याव ।
सुगति कुगति सब ही अति समुचित हम पतितन के दाव ॥
जौ तृन-मात्रहु न्याव करौ प्रभु करि शास्त्रन पै नेह ।
तौ हम कठिन नरक के लायक यामैं कछु न सँदेह ॥
पै जो ढरौ नाथ करुना-दिसि तौ का मेरे पाप ।
कोटि कोटि वैकुंठ सुलभ तर तनिक कटाक्ष-प्रताप ॥
जौ हमरी दिसि लखहु उचित तौ सब विधि दंड-विधान ।
'हरीचंद' तौ यही जोग पै तुम प्रभु दयानिधान ॥१०॥

जिन नहिं श्री वल्लभ-पद गहे ।
ते भवसिंधु-धार मैं साधन करत करत-हू बहे ॥
परम तत्व जानत नहिं कोऊ जद्यपि शास्त्रन कहे ।
ते इनके किंकर-जन ही के कर-अमलक ह्वै रहे ॥
नवनीत-प्रिय हाथ लगत नहिं स्तुति-पय बरबस महे ।
'हरीचंद' बिनु वैश्वानर-बल करम-काठ किन दहे ॥११॥

कहाँ लौं निज नीचता बखानौं।
जब सो तुमसों बिछुरे तब सों अघ ही जनम सिरानौं॥
दुष्ट सुभाव बियोग खिस्याने संग्रह कियो सहाई।
सूखी लकरी वायु पाइ कै चलौ अगिन उलहाई॥
जनम जनम को बोझ जमा करि भारी गाँठ बँधाई।
उठि न सकत गर पीठ टूटि गई अब इतनी गरुआई॥
बूड़त तेहि लैके भव-धारा अब नहिं कछुक उपाई।
'हरीचंद' तुम ही चाहौ तौ तारो मोहिं कन्हाई॥१२॥

प्रभु मैं सेवक निमक-हराम।
खाइ खाइ के महा मुटैहों करिहौं कछू न काम॥
बात बनैहौं लंबी-चौड़ी बैठ्यौ बैठ्यो धाम।
त्रिनहु नाहिं इत उत सरकैहौं रहिहौं बन्यौ गुलाम॥
नाम बेंचिहौं तुमरो करि करि उलटो अघ के काम।
'हरीचंद' ऐसन के पालक तुमहि एक घनश्याम॥१३॥

उमरि सब दुख ही माँहि सिरानी।
अपने इनके उनके कारन रोअत रैन बिहानी॥
जहँ जहँ सुख की आसा करिकै मन बुधि सह लपटानी।
तहँ तहँ धन संबंध जनित दुख पायो उलटि महानी॥
सादर पियो उदर भरि बिष कहँ धोखे अमृत जानी।
'हरीचंद' माया-मंदिर सों मति सब बिधि बौरानी॥१४॥

रैन सिरानी रोअत रोअत।
सपनेहुँ चौंकि तनिक नहिं जाग्यौं बीती सबही सोअत॥
गई कमाई दूर सबै छुन रहे गाँठ को खोअत।
औरहु कजरी तन लपटानी मन जानी हम धोअत॥

स्वाद मिलै न मजूरी को सिर टूट्यौ बोझा ढोअत ।
'हरीचंद' नहिं भर्यौ पेट पै हाथ जरे दोउ पोअत ॥१५॥

नाहिंनै या आसा को अंत ।
बढ़त द्रौपदी-चीर-सरिस सब जुरे तंत में तंत ॥
बरन बरन प्रगटत ही आवत तन विराट अनुहारी ।
थक्यौ दुसासन जीव बापुरो खींचत खींचत हारी ॥
जिमि तित बसन बढ़ाइ कहाए भगत-बछल महराज ।
तैसहि इतै घटाइ राखिए 'हरीचंद' की लाज ॥१६॥

करनी करुनानिधि केसव की कैसे कहि कहि गाऊँ ।
अधम जीव परिमित मति रसना एक पार क्यौं पाऊँ ॥
जग मैं जैसी होत तितोही जगत जीव कहि जानै ।
तुम तो सब विधि करत अलौकिक किमि तेहि नाथ बखानै ॥
मात पिता तिय मुनिहू जो अघ सहि न सकैं लखि भारी ।
सो तुम तुरत छमत करुनानिधि निज दिसि लखि बनवारी ॥
कहँ लौं कहौं दयानिधि तुम सों जानहु अंतरजामी ।
'हरीचंद' से अधिहि चाहिए तुमरेहि ऐसो स्वामी ॥१७॥

लखहु प्रभु जीवन केरि ढिठाई ।
निज निंदा मेटन हित तुम महँ प्रेरक शक्ति लगाई ॥
बुरो भलो सब करत बुद्धि-बस मनहू की रुचि पाई ।
कहैं सबै हरि करत जीव को दोस नहीं कछु भाई ॥
दैव करम संयोग आदि बहु सब्दन लेत सहाई ।
अपने दोस और पर थापत लखहु नाथ चतुराई ॥
शास्त्रनहू कछु प्रेरकता कहि उलटो दियो भुलाई ।
सब मैं मिल्यौ सबन सों न्यारो कैसे यह न बुझाई ॥
मिल्यौ कहैं तो पाप पुन्य दोउ एकहि सम ह्वै जाई ।

जुदो कहैं किमि तुम बिनु दूजो सत्ता नाहि लखाई ॥
कर्त्ता बुधि-दायक जग-स्वामी करुनासिंधु कन्हाई ।
'हरीचंद' तारहु इन कहँ मति इनकी लखौ खुटाई ॥१८॥

प्रभु हो ! कब लौं नाच नचैहो ।
अपने जन के निलज तमासे कब लौं जगहि दिखैहो ॥
कब लौं इन बिमुखन के मुख सो निज गुन-गनहि लजैहो ।
कब लौं जिन पै सतत हँसत जग तिनसों हमहिं हँसैहो ॥
छिन छिन बूड़त जात पंक लखि मोहिं कब चित्त द्रवैहो ।
जनम जनम के निज 'हरिचंदहि' कब फिरिकै अपनैहो ॥१९॥

छप्पय

जीव-धर्म मों कुटिल मंद-मति लोक-विनिन्दित ।
काम-क्रोध-मद-मत्त सदा संसार मलिन मति ॥
अथिर अबोध अधीर अधरमी अति अज्ञानी ।
पुरुपारथ सों रहित निबल अति पै अभिमानी ॥
सब भाँति नष्ट लखि दास निज जानि कृपा करि धाइए ।
प्रभु महा हीन 'हरिचंद' को दीन जानि अपनाइए ॥२०॥

कवित्त

भजौं तौ गुपाल ही कों सेवौं तो गुपालै एक
मेरो मन लाग्यो सब भाँति नंदलाल सों ।
मेरे देव देवी गुरु माता पिता बंधु इष्ट
मित्र सखा हरि नातो एक गोप-बाल सों ॥
'हरीचंद' और सों न मेरो संबंध कछु
आसरो सदैव एक लोचन बिसाल सों ।
माँगौं तो गुपाल सों न माँगौं तो गुपाल ही सों
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझौं तो गुपाल सों ॥२१॥

द्वारहि पै लुटि जायगो वाग औ आतिसवाजी छिनै में जरैगी।
ह्वैहैं विदा टका लै हय-हाथिहु खाय-पकाय वरात फिरैगी।
दान दै मातु-पिता छुटिहैं 'हरिचंद' सखीहु न साथ करैगी।
गाय-बजाय जुदा सब ह्वैहैं अकेली पिया के तू पाले परैगी॥२२॥

पूजिहौं देवी न देव कोऊ किंन वेद-पुरानहु ऊँचे पुकारौ।
काहू सों काम कछू नहिं मोहिं सबै अपनी अपनी को सम्हारौ।
हौं वनिहौं कै नसाइहौं यासौं यहै प्रन है 'हरिचंद' हमारौ।
मानिहौं एक गुपालहि को नहिं और के वाप को यामें इजारौ॥२३॥

नैनन के तारे दुलारे प्रान-प्यारे मेरे
दुख के दरन सुख-करन विसाल हैं।
मेरो ध्यान मेरो ज्ञान मेरे वेद औ पुरान
विविध प्रमान मेरे एक नंदलाल हैं।
'हरीचंद' और सों न काम सपनेहूँ मोहिं
मेरे सरवस धन जसुदा के वाल हैं।
मेरी रति मेरी मति मेरे पति मेरे प्रान
मेरे जग माहिं सबै केवल गुपाल हैं॥२४॥

सकल की मूलमयी वेदन की भेदमयी
ग्रंथन की तत्वमयी वादन के जाल की।
मन-वुद्धि-सीमामयी सृष्टिहु की आदिमयी
देवन की पूजामयी जीवमयी काल की।
ध्यानमयी ज्ञानमयी सोभामयी सुखमयी
गोपी-गोप-गाय-ब्रज-भागमयी भाल की।
भक्त-अनुरागमयी राधिका-सुहागमयी
प्राणमयी प्रेममयी मूरति गोपाल की॥२५॥

पाहि पाहि प्रभु अंतरजामी ।
तुमसों छिपी न कछु करुनानिधि कहा कहौं खग-गामी ।।
तुम्हरो कहत सबै मोहिं मोहन जदपि पतित मैं सामी ।
ताकी लाज राखि 'हरिचंदहिं' बखसौ चरन-गुलामी ।।२६।।

कहा कहौं कछु कहि न रही ।
बिधि तें अब लौं पंडित कबियन रचि-पचि सबहिं कही ।।
महा अधम हम दीनबंधु तुम सब समरथ अघ-हारी ।
कह्नो यहै अनेकन बिधि सों युक्त अनेक बिचारी ।।
नेति नेति जेहि बेद पुकारत तासों बाद बढ़ाई ।
फल कछु नाहिं उलटि खीझन-भय यामैं कह चतुराई ।।
सब जानत सब करन जोग तुम नेकु जु पै इत हेरौ ।
लखि सरनागत पतित दीन 'हरिचंद' सीस कर फेरौ ।।२७।।

मिटत नहिं या मन के अभिलाख ।
पुजवत एक जबै बिधि तन तें होत और तन लाख ।।
दिन प्रति एक मनोरथ बाढ़त तृष्णा उठत अपार ।
घृत जिमि अग्नि सिद्धि निमि जग मैं होत एक तें चार ।।
जोग ज्ञान जप तीरथ आदिक साधन तें नहीं जात ।
'हरीचंद' बिनु कृष्ण-कृपा-रस पाएँ नहिंन अघात ।।२८।।

अहो हरि हम बदि बदि कै अघ कीन्हें ।
लोक बेद निंदत जेहि अनुदिन ते हम हठि सिर लीन्हे ।।
जामैं जान्यौ दोष अधिक अति सो कीनो चित लाई ।
तुमसों बिमुख होन की कीन्हीं लाखन खोज उपाई ।।
जान्यौ जिन्हैं प्रतच्छ भयंकर नरक-गमन को हेतू ।
तेइ आचरन किये नितही नित कहौं कहा खग-केतू ।।

नाम रूप अपराध अनेकन जानि जानि विस्तारे।
थके वेद जम अघहू थाके पै हम अजहुँ न हारे॥
बहुत कहाँ लौं कहौं प्रानपति सुनत सुनत अकुलैहो।
तुमरो नाम बेंच अब करने यह हमही में पैहौ॥
तुम्हरे विरद-पनो सों मेरो पतित-पनो अधिकाई।
'हरीचंद' तारे इतने पै पावन पतित कन्हाई॥२९॥

नेह हरि सों नीको लागै।
सदा एक-रस रहत निरंतर छिन छिन अति रस पागै॥
नहिं वियोग-भय नहिं हिंसा जहँ सतत मधुर ह्वै जागै।
'हरीचंद' तेहि तजि मूरख क्यौं जगत-जाल अनुरागै॥३०॥

प्रभु मोहिं नाहिं नैकहू आस।
सब विधि मैं तजिबेही लायक यह जिय दृढ़ विश्वास॥
शास्त्रन के अघ की जु कहानी तिनकी नहिं कछु बात।
करुनामय की करनिहु सों मैं दंडहि जोग लखात॥
जिन दोसन सों सकुल दुसासन कों तुम कीन्हो नास।
ते तिनहूँ सों बढ़ि मेरे मैं करत इकत्रहि बास॥
शूद्र तपी सुनि बध्यो जाहि तुम तपत जदपि सो साँच।
महानीच हम भंड तपस्वी सो रहिहैं किमि बाँच॥
मिथ्या अपजस सुनि सुनीच-मुख तजी सिया सी नारि।
सत्य सत्य हम महाकलंकिहि तजिहौ क्यौं न मुरारि॥
जिन कर्मन सों असुर स-कुल बारंबार सँहारे।
ते अघ कौन नहीं हैं हम मैं भाखहु नंद-दुलारे॥
हाँ जो पै मरजाद मिटावहु करुना-नदी बढ़ाई।
तौ या महापतित 'हरिचंदहि' सकहु नाथ अपनाई॥३१॥

प्रेम में मीन-मेष कछु नाहीं ।
अति ही सरल पंथ यह सूधो छल नहिं जाके माहीं ॥
हिंसा द्वेष ईरखा मत्सर मद स्वारथ की बातैं ।
कबहूँ याके निकट न आवैं छल-प्रपंच की घातैं ॥
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की पीतम सुख सुखकारी ।
अपुनो कोटिकोटि सुख पिय के तनिकहि पर बलिहारी ॥
जहँ न ज्ञान अभिमान नेम व्रत विषय-वासना आवै ।
रीझ खीझ दोऊ पीतम की मन आनंद बढ़ावै ॥
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम और जगत नहिं जानै ।
'हरीचंद' यह प्रेम-रीति कोउ विरले ही पहिचानै ॥३२॥

तुम जो करत दीनन सों मोहन सो को और करै ।
महापतित जन वेद-विनिंदित को तिन को उधरै ॥
सब विधि हीनन सों करि नेहहि कौन दया वितरै ।
'हरीचंद' की बाँह पकरि कै को भव पार करै ॥३३॥

गोपालहि रुचत सहज व्यौहार ।
निहछल बिनु प्रपंच निरकृत्रिम सब विधि बिना विकार ॥
सहज प्रेम पुनि नेम सहजही सहज भजन रस-रीति ।
सहज मिलनि बोलनि चलनि सब सहजहि प्रीति प्रतीति ॥
हाव भाव चितवनि कटाक्ष अनुराग सहज जो होय ।
भावै सोई मेरे हरि को करौ कोटि कछु कोय ॥
पूजा दान नेम व्रत के पाखंड न हरि को भावैं ।
वादि रसिकता ज्ञान ध्यान जौ हरि-पद नेह न लावैं ॥
तासों सहज प्रेम-पथ वल्लभ सहजहि प्रगटि चलायो ।
'हरीचंद' को सहजहि निज करि निज जस सहज गँवायो ॥३४॥

प्रभु हो अपुनो विरुद सम्हारो ।
जथा-जोग फल देन जनन की या थल बानि बिसारो ॥
न्यायी नाम छाँड़ि करुनानिधि दया-निधान कहाओ ।
मेटि परम मरजाद श्रुतिन की कृपा-समुद्र वहाओ ॥
अपुनी ओर निहारि साँवरे विरदहु राखहु थापी ।
जामैं निबहि जाँहि कोऊ विधि 'हरिचंदहु' से पापी ॥३५॥

महिमा मेरे गोविंदजू की कही कौन पैं जाई ।
परम उदार चतुर चिंतामनि जानि सिरोमनि-राई ॥
सेवा तनिक बहुत करि मानत ऐसे दीनदयाला ।
तुलसी-दलहि मेरु करि समझत ऐसो कौन कृपाला ॥
निज जन के अपराध कोटि सत तृनहूँ सों लघु मानै ।
करनी लखत न कबहुँ भक्त की अपुनो करिकै जानै ॥
दीन सुदामा अजामेल गज गनिका याके साखी ।
बारंबार पुरान वेद कथि सोइ मुनिवर बहु भाखी ॥
कहँ लौं कहौं कहत नहिं आवै करत नाथ जोइ जोई ।
'हरीचंद' से कलि के खल पैं कृपा तुमहिं सों होई ॥३६॥

ऐसे तुमही सों निबहै ।
ऐसे अधमन को करुनानिधि तुम बिनु कौन चहै ॥
मेटि सकल मरजाद श्रुतिन की पतितन को अपनाओ ।
तिनके दोस कोटि सब भूलो नित नित दया बढ़ाओ ॥
बहुत कहाँ लौं कहौं और सों कबहुँ न यह बनि आई ।
'हरीचंद' तुम सों स्वामी नहिं तो बादिहि सब काई ॥३७॥

वह अपनी नाथ दयालुता तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वह जो कौल भक्तों से था किया तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
सुनि गज की जैसे ही आपदा न विलंब छिन का सहा गया ।

वहीं दौड़े उठ के पियादे-पा तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
व जो चाहा लोगों ने द्रौपदी की कि शर्म उसकी सभा में लें ।
व बढ़ाया वस्त्र को तुमने जा तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
व अजामिल एक जो पापी था लिया नाम मरने पै बेटे का ।
व नरक से उसको बचा दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
व जो गीध था गनिका व थी व जो व्याध था व मलाह था ।
इन्हें तुमने ऊँचों की गति दिया तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
खाना भील के वे जूठे फल कहीं साग दास के घर पै चल ।
युँही लाख किस्से कहूँ मैं क्या तुम्हे याद हो कि न याद हो ॥
जिन बानरों में न रूप था न तो गुनहि था न तो जात थी ।
उन्हें भाइयों का सा मानना तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
व जो गोपी गोप थे ब्रज के सब उन्हें इतना चाहा कि क्या कहूँ ।
रहे उनके उलटे रिनी सदा तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
कहो गोपियों से कहा था क्या करो याद गीता की भी जरा ।
यानी वादा भक्त-उधार का तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥
या तुम्हारा ही 'हरिचंद' है गो फसाद में जग के बंद है ।
व है दास जन्मों का आपका तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥३८॥

मजा कहीं नहिं पाया जग में नाहक रहा भुलाया ।
छिन के सुख की लालच जित तित स्वान लार टपकाया ॥
यह जग में जिसको अपना कर झूठा भरम बढ़ाया ।
तिन स्वारथ फँसि कूकर सूकर सब दुतकार बनाया ॥
अपना अपना अपना करकै बहुत बढ़ाई माया ।
अन्त सबै तजि दीनो मल सम जिनको अति अपनाया ॥
साँचे मीत स्यामसुंदर सों छिनहुँ न नेह बढ़ाया ।
'हरीचंद' मल मूत कीट बनि नर-जीवनहिं गँवाया ॥३९॥

तुझ पर काल अचानक टूटैगा ।
ग़ाफ़िल मत हो लवा बाज ज्यौं हँसी-खेल में लूटैगा ॥
कव आवैगा कौन राह से प्रान कौन विधि छूटैगा ।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन-दरपन फूटैगा ॥
तव न वचावैगा कोई जव काल-दंड सिर कूटैगा ।
'हरीचंद' एक वही वचैगा जो हरिपद-रस घूँटैगा ॥४०॥

जीव तू महा अधम निर्लज्ज ।
अव तो लाजु कछुक सिर गरज्यो आइ काल को वज्ज ॥
फूलि न जौ तू ह्वै गयो राजा वावू अमला जज्ज।
सव वकरी ही से मरि जैहैं लै दिन चार गरज्ज ॥
विष से विषयन कों तजियै तौ डूवन ही के कज्ज ।
'हरीचंद' हरि-चरन-अमृत-सर तजि जग छीलर मज्ज ॥४१॥

हरि-माया भठियारी ने क्या अजव सराय वसाई है ।
जिसमें आकर वसते ही सव जग की मति वौराई है ।
होके मुसाफ़िर सव ने जिसमें घर सी नेंव जमाई है ।
भाँग पड़ी कूएँ में जिसने पिया वना सौदाई है ॥
सौदा वना भूर का लड्डू देखत मति ललचाई है ।
खाया जिसने वह पछताया यह भी अजव मिठाई है ॥
एक एक कर छोड़ रहे हैं नित नित खेप लदाई है ।
जो वचते सो यही सोचते उनकी सदा रहाई है ॥
अजव भँवर है जिसमें पड़कर सव दुनिया चकराई है ।
'हरीचंद' भगवंत-भजन-विनु इससे नहीं रिहाई है ॥४२॥

डंका कूच का वज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई ।
देखो लाद चले सव पंथी तुम क्यों रहे भुलाई ॥

जब चलना ही निह्चै है तो ले किन माल लदाई ।
'हरीचंद' हरि-पद बिनु नहिं तो रहि जैहो मुँह बाई ॥४३॥

मृत्यु-नगाड़ा बाजि रहा है सुन रे तू गाफिल सब छन ।
गगन भुवन भरि पूरि रहा गंभीर नाद अनहद घन घन ॥
उनपति पहिले से बजता था बजता है औ बाजेगा ।
इसी शब्द में गुन लै होंगे सदा एक यह राजेगा ॥
यह जग के सामान बीचही भए बीच मिट जावैंगे ।
परस रूप रस गंध अंत में शब्दहि माहिं समावैंगे ॥
काल रूप सच्चिदानंद घन साँचो कृष्ण अकेला है ।
'हरीचंद' जो और है कुछ वह चार दिनों का मेला है ॥४४॥

जग की लात करोरन खाया ।
मन में अब तो लाजु बेहाया ॥
अपना अपना करके पाली देह रहा बौराया ।
इंद्रिन को परितोष करन हित अध भर-पेट कमाया ॥
स्वारथ लोभी जग आगे दुख रोया लाज गँवाया ।
लाज गई औ धरम डुबाया हाथ कछू नहिं आया ॥
साँचे मीत पतित-पावन भरि करन दीन पर दाया ।
अरे मूढ़ 'हरिचंद' भागु चलु अब तो उनकी छाया ॥४५॥

यारो इक दिन मौत जरूर ।
फिर क्यों इतने गाफिल होकर बने नशे में चूर ॥
यही चुड़ैलें तुम्हें खायँगी जिन्हें समझते हूर ।
माया मोह जाल की फाँसी इससे भागो दूर ॥
जान बूझकर धोखा खाना है यह कौन शऊर ।
आम कहाँ से खाओगे जब बोते गये बबूर ॥

राजा रंक सभी दुनिया के छोटे बड़े मजूर ।
जो माँगो बाँधित को मारै वही सूर भर-पूर ॥
झूठा झगड़ा झूठा टंटा झूठा सभी गरूर ।
'हरीचंद' हरि-प्रेम बिना सब अंत धूर का धूर ॥४६॥

यारो यह नहिं सच्चा धरम ।
छू छू कर या नाक मूँद कर जो कि बढ़ाया भरम ॥
बंधन ही में डालैंगे यह बुरे-भले सब करम ।
प्रान नहीं सुधरा तौ कोरा बैठे धोओ धरम ॥
झूठे साधन छोड़ो जी से दीन बनो तुम परम ।
'हरीचंद' हरि-सरन गहो इक यही धरम का मरम ॥४७॥

चेत चेत रे सोवनवाले सिर पर चोर खड़ा है ।
सारी बैस बीत गई अब भी मद में चूर पड़ा है ॥
सहि अपमान स्वान-सम निरलज जग के द्वार अड़ा है ।
जरा याद उस समय की भी कर सबसे जौन कड़ा है ॥
देखु न पाप नरक में तेरा जीवन जनम सड़ा है ।
'हरीचंद अब' तौ हरि-पद भजु क्यों जग-कींच गड़ा है ॥४८॥

क्यों बे क्या करने जग में तू आया था क्या करता है ।
गरभ-बास की भूल गया सुध मरनहार पर मरता है ॥
खाना पीना सोना रोना और विपय में भूला है ।
यह तो सूअर में भी हैं तू मानुस बनि क्या फूला है ॥
एक बात पशुओं में बढ़कर तुझसे पाई जाती है ।
तू ज्ञानी हो पापी है वहाँ पाप-गंध नहिं आती है ॥
जो विशेप था तुझ में पशु से उसे भूल तू बैठा है ।
तो क्यौं नाहक हम मनुष्य हैं इस गरूर में ऐंठा है ॥

जान बूझ अनजान बना है देखो नहिं पतियाता है।
'हरीचंद' अब भी हरि-पद भज क्यौं अवसरहि गँवाता है ॥४९॥

अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है क्या भूला है।
तेरा असिल रूप क्या है तू जिसके ऊपर फूला है॥
हड्डी चमड़ी लहू मांस चरबी से देह बनाई है।
भीतर देखो तो घिन आवै ऊपर से चिकनाई है॥
लार पीप मल मूत पित्त कफ नकटी खूँट औ पोटा है।
नीली पीली नस कीड़ो मे भरा पेट का लोटा है॥
तनिक कहीं खुल जाय तो थू थू कर सब नाक सिकोड़ैगा।
जरा गलै या पचै मरै तो देख सभी मुँह मोड़ैगा॥
भरी पेट में मल की गठरी ऊपर न्हाड सुधरता है।
तिसको छू कर वायु चलै तो नाक बंद सब करता है॥
मल से उपजा मल में लिपटा मति-मलीन तू घूरा है।
इस शरीर पर इतना फूला रे अन्धे मगरूरा है॥
जिसके छुटते ही तू गंदा मिलने ही से सजता है।
'हरीचंद' उस परमातम को, गदहे क्यों नहिं भजता है॥५०॥



फूलों का गुच्छा

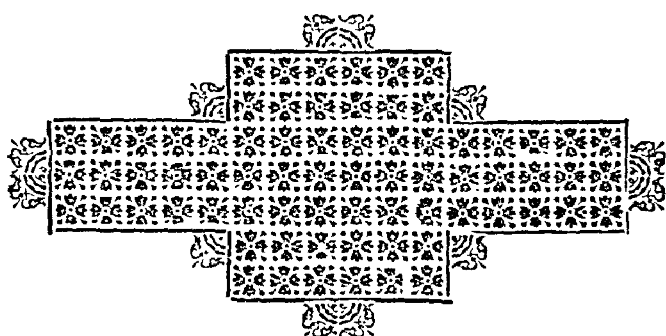
सं० १९३९.

समर्पण

मेरे प्राणप्रिय मित्र !

क्या तुमने यह नहीं सुना है "रिक्तपाणिर्न पश्येद्वै राजानं भेषजं गुरुं" अर्थात् राजा और वैद्य और गुरू को कोरे हाथों नहीं देखना। तो मैं आज अनेक दिन पीछे तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ, इससे यह "फूलों का गुच्छा" तुम्हारे जी बहलाने के लिए लाया हूँ जो अंगीकार करो तो परिश्रम सफल हो। यह मत संदेह करना कि मैं राजा वा वैद्य वा गुरू इनमें कौन हूँ, क्योंकि मेरे तो तुम्हीं राजा और तुम्हीं वैद्य और तुम्हीं गुरू हो।

१४ सितम्बर १८८२ ॥१९३९॥ } केवल तुम्हारा हरिश्चंद्र।



फूलों का गुच्छा

नहीं का बाक़ी वक्त नहीं है ज़रा न जी में शरमाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ॥
कहाँ गई वह पिछली बातें कहाँ गया वह था जो प्यार।
किधर छिपाया चाँद-सा मुखड़ा दिखलाता जा यार॥
बेहोशी में घबड़ा घबड़ा करके यही कहता हूँ पुकार।
मर्ज बढ़ गया बहुत इससे बचना अब है दुश्वार॥
करो आरज़ू दिल की मेरे पूरी सूरत दिखलाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ॥
गरचे उम्र भर खराब रुसवा ज़लीलो परेशान रहा।
हमेशा मुझको तुम्हारे मिलने का अरमान रहा॥
जिया बेहयाई से अब तक कितना भी हैरान रहा।
जान न दे दी, हमेशा कौल का तेरे ध्यान रहा॥
पै मरने के सिवा है अब तदबीर कौन वह बतलाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ॥

तुम्हें कहै जो झूठा प्यारे उसे ही बनाए झूठा।
मुझको तुमसे नहीं कुछ बाकी है करना शिकवा॥
इसमें तुम्हारा कसूर क्या है होता है किस्मत का लिखा।
मर जायेंगे पर न इस जबाँ से होगा तेरा गिला॥
हुई जो होनी थी इस्से तुम ज़रा न जी मे शरमाओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ॥
हम तो खैर हसरत लाखों ही जी में अपने ले के चले।
पर य खौफ़ है तुम्हें बेरहम न प्यारे कोई कहै॥
हँस के रुखसत करो न जी मे तो कुछ भी अरमान रहे।
कोई जुदा गर होय तो मिलते हैं सब जाके गले॥
'हरीचंद' से भला रस्म इतनी तो अदा करके आओ।
लब पर जाँ है, भला अब तो प्यारे मिलते जाओ॥ १॥

तुम्हीं निहाँ गर हो तो जहाँ मे सब य आशकारा क्या है।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब ज़ुहूर प्यारे किसका है॥
तेरा रंग गर नहीं है तो क्या दुनियाँ में दिखलाता है।
तेरी शक्ल बिन कहाँ से सूरत हर शय पाता है॥
तुझे हाथ गर नहीं तो खुद क्या यह जहान बन जाता है।
तुझे नहीं है जो मुँह तो किसका सबद सुनाता है॥
तुममें झलक गर नहीं तो किससे रोशन यह कारखाना है।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब ज़ुहूर प्यारे किसका है॥
खयाल के बाहर तुम हो तो यह खयाल सब है किसका।
तुम तो चुप हो तो फिर यह शोर जहाँ मे है कैसा॥
तुम्हें कान गर नहीं है तो आवाज़ कौन यह है सुनता।
ध्यान के बाहर जो तुम हो तो यह ध्यान कैसे आया॥
दूर समझ से हो तो यह फिर कैसे सबने समझा है।

तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहूर प्यारे किसका है ॥
तुझे न जिसने याद किया वह खुद अपने को है भूला ।
बिगड़ा बस वह न तेरा जोयाँ जो ऐ यार बन्ना ॥
सब कुछ उसने खोया जिसने तुझे न ऐ दिलबर पाया ।
अंधा है वह जिसको यह नूर नहीं कुछ दिखलाया ॥
हर जा पर गर नहीं हो तुम तो फिर य तमाशा कैसा है ।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहूर प्यारे किसका है ॥
तुझे कोई काबे में हाजिर कोई दैर में बतलाता ।
भूले हैं सब अक्ल में बेशक इनके फ़र्क पड़ा ॥
अरे नहीं एक-जाई तू तो हाजिर रहता है हर जा ।
फिर बकने से भला इन बातों के हासिल है क्या ॥
बेवकूफ है 'हरीचंद' जो इसमें कुछ भी कहता है ।
तुम्हीं छिपे हो तो यह सब जुहूर प्यारे किसका है ॥२॥

छुड़ा के दीनों ईमाँ मुझको जहाँ में काफिर ठहराया ।
दैरो हरम को इबादत को क्यौं मुझसे छुड़वाया ॥
पिला पिला के शराब क्यों मस्ताना मुझको बनवाया ।
बना के मेरा तमाशा क्यौं आलम को दिखलाया ॥
अपना अपना क्यौं मुझको दुनियाँ में प्यारे कहलाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ॥
कहाँ गई वह बातें प्यारी प्यारी तेरी ऐ दिलदार ।
कहाँ गया वो तुम्हारा आगे का सा मुझ पर प्यार ॥
कहाँ गई वह मीठी निगाहें हर दम जो थीं दिल के पार ।
कहाँ छिपाया निमानी सूरत तू ने मेरे यार ॥
दिखा के अपना जल्वा फिर क्यों रुख फेरा क्यौं शरमाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यौं मुझको अपनाया ॥

क्यों वह मै थी मुझे पिलाई जिसका न उतरै कभी नशा ।
दो आलम मे मुझे ऐ प्यारे क्यों बदनाम किया ॥
का[illegible] कहलाया मुझको दैरो हरम दोनों से गँवा ।
हम[illegible] मे किया क्यों मुझे मेरे प्यारे रुसवा ॥
मेरे [illegible]क़ का नक्कार' दो आलम मे क्यों बजवाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ॥
होके तुम्हारा गुलाम अब मैं किसका प्यारे कहलाऊँ ।
आके तुम्हारे दर पै प्यारे किसके घर पर जाऊँ ॥
इसी शर्म में मरता हूँ मैं अपना नाम क्या बतलाऊँ ।
अपने दिल को यार किस तरह कहो मैं समझाऊँ ॥
यही चाल थी तो फिर क्यों तू गरीब-परवर कहलाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ॥
अब तो न छोड़ूँ तेरा क़दम प्यारे जो होनी हो सो हो ।
यार निबाहो तुम भी बाक़ी हैं जिंदगी के दिन दो ॥
कहाँ मैं जाऊँ किसको ढूँढ़ूँ किसका होकर रहूँ कहो ।
मैं तो प्यारे तुम्हारा हूँ तुम मेरे प्यारे हो ॥
'हरीचंद' मेरा है मैं उसका हूँ यह था क्यों फ़रमाया ।
था जो छोड़ना तो फिर पहले क्यों मुझको अपनाया ॥ ४ ॥

दिल में दिलबर ने जल्वा दिखला के बनाया मस्ताना ।
मज़ा न पाया बयाँ जिसका गूँगे का गुड़ खाना ॥
जब से यार ने अपने इश्क़ की मै से मुझे सरशार किया ।
अपनी नरगिसी निमानी आँखों का बीमार किया ॥
भोली सी उस सूरत पर मुझको निसार सौ बार किया ।
जुल्फ़ दिखाकर पेंच में लट के झट गिरफ्तार किया ॥
तब से सब कुछ छोड़ हुआ उस मस्ती से मैं दीवाना ।

मजा न पाया क्यों जिसका गूँगे का गुड़ खाना ॥
कोई मुझे कहता काफ़िर बे-ईमाँ कोई बतलाता ।
कोई मुझसे बोलने में भी जबाँ से [illegible] ॥
हाल देख कर हँसता कोई तर्स कोई मु[illegible]ा ।
कोई मुझको आनकर रो रो कर है सम[illegible]ा ॥
पर मैं क्या समझूँ कि रंग में अपने हूँ खुद मस्ताना ।
मजा न पाया क्यों जिसका गूँगे का गुड़ खाना ॥
यह वह शै है जिसकी खोज में हर कोई हैरान रहा ।
हर शख़सों ने आज तक इसकी बाबत बहुत कहा ॥
कोई मजाज़ी कहता हक़ीक़ी नाम किसी ने है रक्खा ।
कोई मसजिद कोई बुतखाने में नित है जाता ॥
पै हमने तो सीधा ताका उस साक़ी का मैखाना ।
मज़ा न पाया क्यों जिसका गूँगे का गुड़ खाना ॥
यह वह रंग है जिसमें रँगा उसपर न दूसरा रंग चढ़ा ।
यह वह मै है न उतरा महशर तक भी जिसका नशा ॥
बग़ैर इसमें डूबे किसी को ज़रा न इसका पता लगा ।
बिन मस्ती के इश्क़ के कोई नहीं हुशियार बना ॥
'हरीचंद' क्या इससे हासिल है व फ़क़त हमने जाना ।
मज़ा न पाया क्यों जिसका गूँगे का गुड़ खाना ॥ ५ ॥

खाक किया सबको तब यह अकसीर है कमाया हमने ।
सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ॥
अपना बेगाना किया दोस्त को दुशमन ठहराया हमने ।
दीन व ईमाँ बिगाड़ा धरम सब डुबाया हमने ॥
काम रंज से रहा चैन दम भर न कहीं पाया हमने ।
दोनों जहाँ के ऐश को खाक में मिलाया हमने ॥

जिसका नाम है शरम उसी को जग में शरमाया हमने ।
सबको खोया यार अपने को तब पाया हमने ॥
जब से दिल मे मेरे वह दिलबर जलवा-अफरोज हुआ ।
मिला मजा वह नहीं इस दुनियाँ मे सानी जिसका ॥
जब से आँखो मे उसके मिलने का मेरी छा गया नशा ।
सब कुछ भूला कुछ ऐसा हासिल मुझको हुआ मजा ॥
काम किसी से रहा न ऐसा नशा है जमाया हमने ।
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ॥
छिपा न उसका इश्क-राज आखिर को सब कुछ फाश हुआ ।
बे-दीनी का व शुहरा हुआ कि काफिर सब ने कहा ।
हुई यहाँ तक बरबादी घर-बार खाक मे सभी मिला ॥
ली बदनामी हुआ बेशर्मी छया दर-दर रुसवा ।
बे-ईमाँ बे-दीं काफिर अपने को कहलाया हमने ॥
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ॥
मिला मेरा दिलबर मुझको अब किसी बात की चाह नहीं ।
कोई खफा हो या खुश हो कुछ मुझको परवाह नहीं ॥
सिवा यार के कूचे जाना दैरो-हरम की राह नहीं ।
सब कुछ मेरा यार है और कोई अल्लाह नहीं ॥
'हरीचंद' क्या बयाँ हो गूँगे होकर गुड़ खाया हमने ।
सब को खोया यार अपने को तब पाया हमने ॥६॥

श्री राधा-माधव जुगल-चरन-रस का अपने को मस्त बना ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ॥
यह वह मै है जिसके पीने से और ध्यान छुट जाता है ।
अपने में औ दिलबर में फिर कुछ भेद नहीं दिखलाता है ॥
इसके सुरूर से मस्त हरेक अपने को नजर बस आता है ।

फिर और हवस रहती न ज़रा कुछ ऐसा मज़ा दिखाता है ॥
टुक मान मेरा कहना दिल को इस मैखाने की तर्फ़ झुका ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा ॥

यह वह मै है जिसका कि नशा जब आँखों में छा जाता है ।
मैखाना काबा बुतखाना सब एकी सा दिखलाता है ॥
हुशियार समझता अपने को जग को अहमक बतलाता है ।
वह काम खुशी से करता जिसके नाम से जग शर्माता है ॥
जिसका कि नाम है शर्म आप वह इस मै से जाती शरमा ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा ॥

हुशियार वही है आलम में इस मै से जो सरशार बने ।
हो कार उसी का पूरा जो इस दुनियाँ से बे-कार बने ॥
हो यार वही उसका जो इस जग में सब से अग़यार बने ।
पहिने कमाल का जामा वह जिसका कि गरेबाँ तार बने ॥
गर लुत्फ़ उठाना हो इसका तो तू भी मेरा मान कहा ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा ॥

गो दुनिया में उस दाना को हर शख्स बड़ा नादान कहे ।
पर उसे मज़ा वह हासिल है जिससे वह हेच सब को समझे ॥
कभी न उतरै उसका नशा जिसके सिर इसका भूत चढ़ै ।
हँसते-हँसते इस दुनिया से झट उसका बेड़ा पार लगे ॥
इतबार न हो तो देख न ले क्या 'हरीचंद' का हाल हुआ ।
पी प्रेम-पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा ॥७॥

यह वह गोरख-धंधा है जिसका न किसी पर भेद खुला ।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ॥
कहाँ से औ किस तरह से किसने क्यों यह पैदा किया जहाँ ।
किसने सूरत खड़ी की किसने इसमें डाली जाँ ॥

मिली कहाँ से अक्ल बशर को अक्ल सख्त यह है हैराँ।
क्या है बोलता वयाँ से इसके वस हारी है जबाँ॥
फिर अखीर में कहाँ जायगा इसका नतीजा होगा क्या।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ॥
कोई बनानेवाला खुद है या खुद ही यह बनता है॥
बदन है सोई जॉ है या वहाँ दूसरा बैठा है।
बुरी-भली बातों का नतीजा कहीं जाके कुछ मिलता है॥
या मन माने वही करना दुनिया में अच्छा है।
इसको मुअम्मा कहते हैं मुशकिल है हल करना जिसका।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ॥
गरचे खुदा है कोई तो हो फिर उसके मानने से है क्या।
मानै भी तो किस तरह कैसे कोई देवे बता॥
काबे में जाकर के झुका सिर करै उसको डर कर सिज्दा।
या कोई बुत बना कर उसकी नित कर ले पूजा॥
होके एक-मत मजहबवालो कुछ तो इसमें कहो जरा॥
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ।
एक किसी ने माना किसी ने दो व किसी ने तीन कहा॥
मिला बताया किसी ने उसे जहाँ से कहा जुदा।
बुत में किसी ने पूजा किसी ने उसको पुकारा कह के खुदा॥
अपनी अपनी तौर पर गरज कि सब ने है खींचा।
मगर न तै यह हुआ हकीकत में य माजरा है कैसा॥
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ॥
मैंने तो पहिचाना प्यारे तुमको तै कर सब झगड़े।
बने बनाये तुम ने सब को मन में मौजूद रहे॥
नाम तुम्हारा दिलवर है हैं बुत व खुदा दोनों झूठे।
यह सब जलवा तुम्हारा ही है जिधर चाहे देखे॥

'हरीचंद' के सिवा किसी पर ज़रा न तेरा भेद खुला।
वह झगड़ा है फैसला जिसका कुछ अब तक न हुआ ॥८॥

दिलवर के इश्क में दिल को एक मिलावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे ॥
दिलवर को एक कर के अपने में साने।
इस दुनिया को इक अजब तमाशा जाने ॥
मैं क्या हूँ इसको जी देकर पहिचाने।
अपने को अपना सिरजनहारा माने ॥
यह भेद का परदा आँखों से हट जावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे ॥
वह मै पी ले उतरै न नशा फिर जिसका।
वह सुरूर[1] हो जिसका बयान क्या करना ॥
सब दुनिया को बस जाने एक तमाशा।
इस धारा में अपने को समझै बहता ॥
जब सब आलम यह नज़र खेल सा आवे।
अपने को खोए तब अपने को पावे ॥
कुछ भले-बुरे में फर्क न जी से रक्खे।
काले गोरे का एक रंग बस सूझे ॥
दुशमन को दोस्त को एक नजर से देखे।
मैखाना मसजिद मंदिर एकी समझे ॥
दो की गिनती भूले न ज़बाँ पर लावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे ॥
जब अपना ही अपने को होए सौदा।
अपनी आँखों से देखे आप तमाशा ॥
खुद अपनी करने लगै आप ही पूजा।

अपने ही नशे से आप बने मस्ताना ॥
रग रग से अनल्हक यही सदा बस आवे।
अपने को खोए तब अपने को पावे॥
तब 'हरीचंद' मैं क्या कहूँ यह दिखलाता।
जब चिनगारी से आप आग हो जाता॥
पत्ते से पेड़ बंदे से खुदा कहलाता।
जब अपने को हर शै मे हाज़िर पाता॥
जुज़ से कुल क़तरे से दरिया बन जावे।
अपने को खोए तब अपने को पावे॥ १॥

मिलै न मुझसे उसका दिल जिस दिल में वह दिलाराम न हो।
मुँह न दिखावै जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो॥
लगै आग उस मैखाने मे जहाँ न वह साकी होवै।
बरगशतः हो व मजलिस जहाँ दौर उसका न चलै॥
जिसमें उसका नशा न हो वह जहरे हलाहल होए मै।
बरहम होए वह सुहबत जहाँ न उसका जिक्र रहै॥
वीरान. वह बाग हो जिसमें मेरा वह गुलफाम न हो।
मुँह न दिखावै जिसके मुँह मे दिलबर का नाम न हो॥
पुरज़े हो वह किताब जिसमें तेरा यार बयान न हो।
गारत हो वह दीन जिसमें तुम्ह पर ईमान न हो॥
ढहै वह काबा जहाँ वक्त सिजदे के तेरा ध्यान न हो।
टूटै वह बुत तुम्हारी झलक जिसमें ए जान न हो॥
काफिर हो वह कुफ्र से तेरे यार जो कि बदनाम न हो।
मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो॥
हम तो पीकर शराब तेरी मस्त हुए ऐसे प्यारे।
सबको खोकर तुम्हें ए यार हमने पाया न्यारे॥

मजा मिला वह जिससे हेच दिखलाते हैं मजहब सारे।
छोड़के सबको बैठे मैखाने में आसन मारे॥
दूर हो वह नाचीज़ हाथ में जिसके इश्क का जाम न हो।
मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलबर का नाम न हो॥
कभी न देखैं नजर उठाकर गरचे सामने खड़ा हो शाह।
या फ़कीर हो, नहीं कुछ इसकी भी मुझको परवाह॥
यार हो रिश्तेदार हो मुझको खाक नहीं कुछ उनकी चाह।
फ़क़त मिलो तुम मेरे दिलवर औ मेरा करो निबाह॥
'हरीचंद' तेरे कहलाकर और किसी से काम न हो।
मुँह न दिखावे जिसके मुँह में दिलवर का नाम न हो॥१०॥

हज़ार लानत उस दिल पर जिसमें कि इश्के दिलदार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अशक का तार न हो॥
हिज्र की तलखी नहीं है जिसमें तलख जिन्दगानी वह है।
ज़ीस्त नहीं है सरासर बस सरगरदानी वह है॥
सुलझे रहना इसके जाल से निरी परेशानी वह है।
जीना क्या है अगर इस जाँ में नहीं जानी वह है॥
है ज़िंदा दर-गोर व जिसको मरने का आज़ार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अशक का तार न हो॥
बे महबूब मज़ेदारी गर हुई तबीअत में तो क्या।
झूठी है सब शायरी अगर नहीं दिल कहीं फ़िदा॥
नाहक दीदारी है सारी गर न इश्क का तीर लगा।
दुनियादारी भी है इक बोझ सिर्फ़ उलफ़त के बिना॥
बेचारा है वही जो ज़ुल्मे दिलवर से लाचार न हो।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अश्क का तार न हो॥
मिलें जहन्नुम में वह बातें जिनका कुछ भी उसूल न हो।

क्यों वह काबिल है बनता जिसमें वह मक़बूल न हो ।।
सिजदा है य सर का मारना जिसमें कुछ भी हुसूल न हो ।
फाजिल है वह बना क्यों दुनियाँ में जो फ़ुजूल न हो ।।
क्यो माला फेरे है वह गुल जिसके गले का हार न हो ।
फूटें आँखें वे जिनमे बँधा अश्क का तार न हो ।।
क्यों वह दौलतमंद है जिसके पास जरे बेकसी नहीं ।
क्या आजादी है उसको जिसकी अक्ल कुछ फँसी नहीं ।।
बगैर उसके वस्ल के सब रँड़-रोना है यह हँसी नहीं ।
उजड़ा है वह मोहनी छवि जिस दिल में बसी नहीं ।।
'हरीचंद' सब अभी खाक मे मिलै जिसमे वह यार न हो ।
फूटें आँखें वे जिनमें बँधा अश्क का तार न हो ।।११।।

तुम गर सचे हो तो जहाँ को कहते हैं सब क्यों झूठा ।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग मे सब है किस का ।
जो झूठा होता है उसकी बातें होती हैं झूठी ।।
ज्यों सपने की मिली संपत कुछ काम नहीं करती ।।
सच्चों के तो काम हैं जितने वह सच्चे होते हैं सभी ।
फिर बकते हैं भला क्यों सब के जहाँ झूठा है अजी ।।
भला कहीं शीशे से हीरा हुआ किसी ने है देखा ।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग मे सब है किसका ।
तुम ने बनाया या कि बने खुद तो यह माया है कैसी ।।
एक जो हो तुम तो फिर यह कौन दूसरी आके घुसी ।
गरचे काम उसका है तो फिर तेरी क्या तारीफ रही ।।
तुम करते हो तो क्यों कहते हैं हुई किस्मत की लिखी ।
है जो तुम्हारे शरीक तो फिर ला-शरीक क्यों नाम पड़ा ।
तुम निर्गुन हो तो फिर यह गुन जग में सब है किस का ।।

जहाँ अगर झूठा है तो फिर मतवालों को क्या है काम।
फिर मजहब में भला क्यों करता है हर शख्स कलाम॥
वेद वगैरह भी तो जहाँ में हैं फिर क्या है इनसे काम।
इनके सिवा भी कहोगे जो कुछ सब झूठा है मुदाम॥
खुद झूठा जो होगा उसका कहना भी सब है झूठा।
तुम निर्गुन हौ तो फिर यह गुन जग में सब है किस का॥
सभी शोर करते हैं साँप का रस्सी में यह धोखा है।
भूले हैं वह, जहाँ गर दो हो तो यह बात बनै॥
यह तो तब हो जब कि साँप रस्सी यह कायम हों दो शै।
यहाँ तुम्हारे सिवा है कोई दूसरा कौन कहै॥
'हरीचंद' तू सच है तो जग क्यौं अपने मुँह झूठ बना।
तुम निर्गुन हौ तो फिर यह गुन जग में सब है किसका॥१२॥

ढूँढ़ फिरा मैं इस दुनिया में पश्चिम से ले पूरब तक।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक॥
मसजिद मंदिर गिरजों में देखा मतवालों का जा दौर।
अपने अपने रँग में रँगा दिखाया सब का तौर॥
सिवा झूठी बातों व बनावट के न नजर आया कुछ और।
एक एक को टटोला खूब तरह हमने कर गौर॥
तेरे न दरशन हुए मुझे मैं बहुत खोज कर बैठा थक।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक॥
जो आकिल पंडित शायर हैं उनको भी जाकर देखा।
झगड़े ही में उन्हें हमने हर दम लड़ते पाया॥
जिसे बुरा कहता है एक उसको कहता कोई अच्छा।
कोई पुरानी लीक पीटै है कोई कहता है नया॥
जहाँ पै देखा नजर पड़ी व्हाँ यह झूठी कोरी बक बक।

कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ॥
जिनको आशिक सुनते थे उनके भी जाकर देखे ढंग ।
माशूकों के कहीं कुछ नजर पड़े हर तरह के रंग ॥
वही बँधी बातें हैं वही सुहबत है वही हैं उनके संग ।
गरज कि इनसे मेरी जाँ आई है अब बहुत ब-तंग ॥
मतलब की बातों को छोड़ कर और नहीं कुछ है बेशक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ॥
कोई मान कर सवाब तेरा इश्क़ जहाँ में करते हैं ।
कोई गुनह से खौफ़ दोजख का करके डरते हैं ॥
कोई मजाज़ी इश्क़ में अपने मतलब का दम भरते हैं ।
कोई मरके मिले वैकुंठ इसी पर मरते हैं ॥
'हरीचंद' पर इनमें से पहुँचा कोई नहि तेरे तलक ।
कहीं न पाई मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक ॥१३॥



प्रेम-फुलवारी

'इश्क चमन महबूब का वहाँ न जावे कोय।
जावे तो जीवै नहीं जिए तो बौरा होय॥
सीस काट आगे धरौ तापर राखौ पाँव।
इश्क चमन के बीच में ऐसा हो तो आव॥'

'सींचन की सुधि लीजौ मुरझि न जाय।'

सं० १९४०

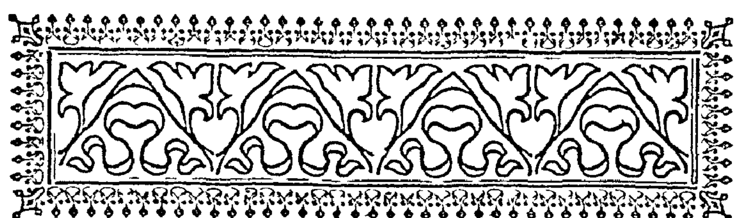
मेडिकल हाल प्रेस में
सन् १८८३ में प्रकाशित
कुछ अंश नवोदिता हरिश्चन्द्र-चंद्रिका
में १८८४ में प्रकाशित

मेरे प्यारे,

तुम्हें कुंजों में वा नदियों के तटों पर फिरते प्रायः देखा है और इससे निश्चय होता है कि तुम बड़े सैलानी हो। पर यों मन-मानी सैल करने में तुम्हारे कोमल चरनों में जो कंकरियाँ गड़ती हैं, वह जी में कसकती हैं। इससे मैंने रच रच कर यह फुलवारी बनाई है, सींचते रहना, यह भला मैं किस मुँह से कहूँ। पर जैसे इधर उधर सैल करते फिरते हो, वैसे ही कभी कभी भूले भटके इस "फुलवारी" में भी आ निकलोगे तो परिश्रम सफल होगा।

केवल तुम्हारा

हरिश्चंद्र



प्रेम-फुलवारी

भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥
जेहि लहि फिर कछु लहन की आस न चित में होय।
जयति जगत-पावन-करन प्रेम बरन यह दोय ॥ २ ॥
चंद मिटै सूरज मिटै मिटैं जगत के नेम।
यह दृढ़ श्री 'हरीचंद' को मिटै न अविचल प्रेम ॥ ३ ॥

प्रेम-फुलवारी की भूमि

राग बिहाग

श्री राधे मोहिं अपनो कब करिहौ।
जुगल-रूप-रस-अमित-माधुरी कब इन नैननि भरिहौ ॥
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को बास बितरिहौ।
'हरीचंद' कब भव बूड़त तें भुज धरि धाइ उबरिहौ ॥ १ ॥

अहो हरि बस अब बहुत भई।
अपनी दिसि बिलोकि करुना-निधि कीजै नाहिं नई ॥
जौ हमरे दोसन कों देखौ तौ न निबाह हमारो।
करिकै सुरत अजामिल-गज की हमरे करम बिसारो ॥
अब नहिं सही जात कोऊ बिधि धीर सकत नहिं धारी।
'हरीचन्द' को बेगि धाइकै भुज भरि लेहु उबारी ॥ २ ॥

पियारे याको नाँव नियाव।
जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो कीनो भलो बनाव॥
बिनु कछु किये जानि अपुनो जन दूनो दुख तेहि देनो।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो॥
'हरीचंद' यह भलो निवेरौ ह्वैकै अंतरजामी।
चोरन छाँड़ि छाँड़ि कै डाँड़ौ उलटो धन को स्वामी॥ ३॥

जानते जो हम तुमरी बानि।
परम अवार करन की जन पैं, हे करुना की खानि॥
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल।
करते नहिं बिस्वास बेद पै जिन तोहिं कह्यौ कृपाल॥
अब तो आइ फँसे सरनन मैं भयो तुम्हारो नाम।
'हरीचंद' तासों मोहिं तारो बान छोड़ि घनश्याम॥ ४॥

प्यारे अब तो सही न जात।
कहा करैं कछु बनि नहिं आवत निसि दिन जिय पछिलात॥
जैसे छोटे पिंजरा में कोउ पंछी परि तड़पात।
त्योंही प्रान परे यह मेरे छूटन को अकुलात॥
कछु न उपाव चलत अति ब्याकुल मुरि मुरि पछरा खात।
'हरीचंद' खींचौ अब कोउ विधि छाँड़ि पाँच अरु सात॥ ५॥

नाहिं तो हँसी तुम्हारी ह्वैहै।
तुमहीं पै जग दोस धरैगो मेरो दोस न दैहै॥
बेद पुरान प्रमान कह्यो को मोहिं तारे बिनु लैहै।
तासों तारो 'हरीचंद' को नाहीं तो जस जैहै॥ ६॥

फैलिहै अपजस तुम्हरो भारी।
फिर तुमकों कोऊ नहिं कहिहै मोहन पतित-उधारी॥

वेदादिक सब झूठ होंइगे ह्वै जैहै अति ख्वारी।
तासों कोउ विधि धाइ लीजिए 'हरीचंद' को तारी ॥ ७ ॥

तुम्हरे हित की भाखत बात।
कोउ विधि अब की तार देहु मोहिं नाहीं तो प्रन जात ॥
बूँद चूकि फिरि घट ढरकावत रहि जैहौ पछितात।
बात गए कछु हाथ न ऐहै क्यौं इतनो इतरात ॥
चूक्यौ समय फेर नहिं पैहौ यह जिय धरि के तात।
तारि लीजिए 'हरीचंद' को छाँड़ि पाँच अरु सात ॥ ८ ॥

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित-उधारी ॥
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यौं अहीर कुल भायो।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यौं गुंजा-हार धरायो ॥
क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्यौ।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यौं स्वाद बिसार्यौ ॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस।
जग-निंदित 'हरिचंदहु' को अपनावहिंगे करि दास ॥ ९ ॥

सम्हारहु अपुने को गिरिधारी।
मोर-मुकुट सिर पाग पेंच कसि राखहु अलक सँवारी ॥
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी।
चक्रादिकन सान दै राखौ कंकन फँसन निवारी ॥
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकिनी खींचहु करहु तयारी।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी ॥
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीने तारी।
बानो जुगओ नीके अब की 'हरीचंद' की बारी ॥१०॥

हम तो लोक-भेद सब छोड़्यौ ।
जग को सब नाता तिनका सो तुम्हरे कारन तोड़्यौ ॥
छाँड़ि सबै अपुनो अरु दूजेन नेह तुम्हहिं सो जोड़्यौ ।
'हरीचंद' पै केहि हित हम सों तुम अपुनो मुख मोड़्यौ ॥११॥

जो पै सावधान ह्वै सुनिए ।
तौ निज गुन कछु बरनि सुनाऊँ जो उर में तेहि गुनिए ॥
हम नाहिंन उन में जिनको तुम तारे गरब बढ़ाई ।
बोलि लेहु पृथुराजहि तो कछु मो गुन परै सुनाई ॥
चित्रगुप्त जौ यदि हमरे गुन निज खातन लिखि लेहीं ।
तौ हम पाप आपुने तिनको हारि तुरत सब देहीं ॥
एक समै औगुन गिनिबे को नागराज प्रन कीनौ ।
नहिं गिनि गए सेस वहु रहि गयो सोई नाम तब लीनौ ॥
सबै कहत हरि-कृपा बड़ेरी अब हीं परिहि लखाई ।
पै जो मो अघ-भय न भागि कै रहै न हृदय दुराई ॥
बहुत कहाँ लौं कहौं प्रानपति इतने ही सब मानौ ।
'हरीचंद' सों भयो सामना नीके जुगओ बानौ ॥१२॥

पिया हौं केहि बिधि अरज करौं ।
मति कहुँ चूकि होइ बे-अदबी याही डरन डरौं ॥
भोरहि सों मेला सो लागत नर-नारिन को भारी ।
न्हात खात बन जात कुंज में केहि बिधि लेहुँ पुकारी ॥
महल टहल में रहत लुभाने साँझहि सों सब राती ।
तहँ को बिघन बनै कछु कहि कै एहि डर धरकत छाती ॥
बड़े बड़े मुनि देव ब्रह्म शिव जहँ मुजरा नहिं पावैं ।
तहँ हम पामर जीव कहो क्यों घुसि कै अरज सुनावैं ॥

एक बात बेदन की सुनिकै कछु भरोस जिय आयो।
'हरीचंद' पिय सहस-श्रवन तुम सुनतहि आतुर धायो ॥१३॥

प्रेम-फुलवारी के वृक्ष

प्राननाथ तुमसों मिलिबे को कहा जुगति नहिं कीनी।
पचि हारी कछु काम न आई उलटि सबै बिधि दीनी॥
हेरि चुकी वहु दूतिन को मुख थाह सबन की लीनी।
तब अब सोचि-बिचारि निकाली जुगति अचूक नवीनी॥
तन परिहरि मन दै तुव पद मैं लोक तृगुनता छीनी।
'हरीचंद' निधरक बिहरौंगी अधर-सुधा-रस-भीनी ॥१४॥

इन नैनन को यही परेखो।
वह सुख देखि पिया-संगम को फेर बिरह-दुख देखो॥
नहिं पाखान भए पिय बिछुरत प्रेम-प्रतीत न लेखो।
'हरीचंद' निरलज ह्वै रोवत यह उलटी गति पेखो ॥१५॥

देख्यौ एक एक कों टोय।
प्राननाथ बिनु बिरह सँघाती और नाहिंनै कोय॥
मात-पिता धन-धाम मीत जग निज स्वारथ को होय।
'हरीचंद' जो सोऊ बिछुरै तौ न मरै क्यों रोय ॥१६॥

पियारे क्यों तुम आवत याद।
छूटत सकल काज जग के सब मिटत भोग के स्वाद॥
जब लौं तुम्हरी याद रहै नहिं तब लौं हम सब लायक।
तुमरी याद होत ही चित मैं चुभत मदन के सायक॥
तुम जग के सब कामन के अरि हम यह निहचै जानैं।
'हरीचंद' तो क्यों सब तुमरे प्रेमहिं जग मैं सानैं ॥१७॥

पियारे ऐसे तो न रहे ।
जैसे भए कठोर अबै तुम तैसे कबहुँ न हे ॥
हम वह नाहिं कहा, कै मुरछित लखि तुम भुज न गहे ।
कहाँ गई वे पिछली बतियाँ जो तुम बचन कहे ॥
जो तुम तनिक मलिन मुख देखत छिनहू नाहिं सहे ।
सो 'हरिचंद' प्रान बिछुरत कित बदन छिपाय रहे ॥१८॥

एहि उर हरि-रस पूरि गयो ।
तन मैं मन मैं जिय मैं सब ठाँ कृष्ण हि कृष्ण भयो ॥
भर्यौ सकल तन-मन तौहू नहि मान्यौ उमड़ि बह्यौ ।
नैनन सों बैनन सों रोक्यो नाहिंन परत रह्यौ ॥
लघु घट तामैं रूप-समुद रह्यो क्यौं न उमगि निकरै ।
तापैं लाए ज्ञान कहो तेहि जिय कित लाइ धरै ॥
कौन कहै गखिबे की उलटो बहि जैहै या धार ।
'हरीचंद' मधुपुरी जाहु तुम ह्याँ नहिं पैहो पार ॥१९॥

रहैं क्यौं एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन मैं हरि-रस छायो तेहि क्यौं भावै कोय ॥
जा तन-मन मैं रमि रहे मोहन तहाँ ग्यान क्यौं आवै ।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्याँ को जो पतिआवै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
'हरीचंद' ब्रज तो कदली-बन काटौ तो फिरि फूलै ॥२०॥

गमन के पहिले ही मिल जाहु ।
नाहीं तो जिय ही रहि जैहै तुव मुख-देखन लाहु ॥
जान देहु सब और चित्त के मिलि रस करन उमाहु ।
'हरीचंद' सूरति वो अपनी बारेक फेर दिखाहु ॥२१॥

नैन भरि देखन हू मैं हानि ।
कैसे प्रान राखिये सजनी नाहिं परत कछु जानि ॥
या ब्रज के सब लोग चवाई त्यों बैरिन कुल-कानि ।
देखत ही पिय प्यारे को मुख करत चवाव बखानि ॥
मिलिबो दूर रह्यौ बिन बातहिं बैठि करहिं सब छानि ।
'हरीचंद' कैसी अब कीजे या ललचौंहीं बानि ॥२२॥

प्राननाथ जौ पैं ऐसी ही तुम्हें करन ही हाँसी ।
तौ पहिले ही क्यौं न कह्यौ हम मरतीं दै गल फाँसी ॥
जिय-जारन क्यौं जोग पठायो तोरि प्रीति तिनुका-सी ।
'हरीचंद' ऐसी नहिं जानी ह्वैहैं हरि बिसुवासी ॥२३॥

हरि सँग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करैं ।
जो सरीर हरि सँग लपटानी वापैं कैसे भसम धरैं ॥
जिन श्रवनन हरि-बचन सुन्यौ है ते मुद्रा कैसे पहिरैं ।
जिन बेनिन हरि निज कर गूँथीं जटा होइ ते क्यौं निकरैं ॥
जिन अधरन हरि-अमृत पियो अब ते ज्ञानहिं कैसे उचरैं ।
जिन नैनन हरि-रूप बिलोक्यौ तिन्हैं मूँदि क्यों पलक परैं ॥
जा हिय सों हरि-हियो मिल्यौ है तहाँ ध्यान केहि भाँति धरैं ।
'हरीचंद' जा सेज रमे हरि तहाँ बघम्बर क्यौं बितरैं ॥२४॥

फेरहू मिलि जैये इक बार ।
इन प्रानन को नाहिं भरोसो ए हैं चलन तयार ॥
जौ छतियन सों लगि नहिं बिहरो प्यारे नंद-कुमार ।
तौ दूरहि सों बदन दिखाओ करौ लाल मनुहार ॥
नहिं रहि जाय बात जिय मेरे यह निज चित्त बिचार ।
'हरीचंद' न्यौतेहु के मिस बृज आओ बिना अवार ॥२५॥

भईं सखि ये अँखियाँ बिगरैल ।
बिगरि परीं मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल ॥
भई मतवार घरत पग डगमग नहिं सूझत कुल-गैल ।
तजिकै लाज साज गुरुजन की हरि की भई रखैल ॥
निज चवाव सुनि औरहु हरखत करत न कछु मन मैल ।
'हरीचंद' सब संक छाँड़ि कै करहिं रूप की सैल ॥२६॥

हौस यह रहि जैहै मन माहीं ।
चलती बार पियारे पिय को बदन बिलोक्यौ नाहीं ॥
बैदन के बदले पिय प्यारे थाइ गही नहिं बाहीं ।
'हरीचंद' प्यासी ही जैहैं अधर-सुधा-रस चाहीं ॥२७॥

कहाँ गए मेरे बाल-सनेही ।
अब लौं फटी नहीं यह छाती रही मिलन अब केही ॥
फेर कबै वह सुख धौं मिलिहै जिअत सोचि जिय एही ।
'हरीचंद' जो खबर सुनावै देहुँ प्रान-धन तेही ॥२८॥

याद परैं वे हरि की बतियाँ ।
जो बन-कुंजन बिहरत मधुरी कहीं लाइकै छतियाँ ॥
कहँ वे कुंज कहाँ वे खग-मृग कहँ वे बन की पतियाँ ।
'हरीचंद' जिय सूल होत लखि वही उँजेरी रतियाँ ॥२९॥

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो क्यों मन-मोहन अपुने मुख सों रस-बात कही ॥
हम जानी सुख सों बीतैगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी बिधिना नै कछू नाहिं निबही ॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरैं चाल गही ।
'हरीचंद' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही ॥३०॥

अब वे उर मैं सालत बातैं ।
जो नँद-नंदन ब्रज मैं कीनी प्रेम-प्रीति की घातैं ॥
वेई कुंज वही द्रुम पल्लव वही उँजेरी रातैं ।
एक प्रान-प्यारो ढिग नाहीं विष सम लागत तातैं ॥
क्रूर अक्रूर प्रान हरि लै गयो आयो दुष्ट कहाँ तैं ।
'हरीचंद' विदरत नहिं छतियाँ भई कुलिस की छातैं ॥३१॥

अब तौ लाजहु छूटि गई री ।
ठोंकि-बजाइ नगारौ दै के हौं पिय-बसहि भई री ॥
नहिं छिपाव कछु रह्यौ सखिन सों खुल्यो भेद सबई री ।
परतछ ह्वै रोवत पिय के हित ऐसी रीति लई री ॥
बकि बकि उठत नाम प्रीतम को है यह रीति नई री ।
'हरीचंद' जग कहत भले ही यह अब बिगरि गई री ॥३२॥

अरे कोउ कहौ सँदेसो श्याम को ।
हमरे प्रान-पिया प्यारे को अरु भैया बलराम को ॥
बहुत पथिक आवत हैं या मग नित-प्रति वाही गाम को ।
कोऊ न लायो पिय को सँदेसो 'हरीचंद' के नाम को ॥३३॥

तुव मुख देखिबे की चाट ।
प्रान न गए अजहुँ मो तन तें लागी आस-कपाट ॥
नैन फेर चाहत हैं देख्यौ लीने गो-धन ठाट ।
वेनु बजावत सो मुख लालन वाही जमुना-घाट ॥
अटक्यौ जीव फँस्यौ जग मैं फिर तुव मिलिबे की बाट ।
'हरीचंद' हिय भयो कुलिस लौं गयो न अब लौं फाट ॥३४॥

निलज इन प्रानन सों नहिं कोय ।
सो संगम-सुख छाँड़ि अजहुँ ये जीवत निरलज होय ॥

गए न संग प्रान-प्रीतम के रहे कहा सुख जोय ।
'हरीचंद' अब सरम मिटावत बिना बात ही रोय ॥३५॥

अब मैं कैसे चलूँगी क्यौं सुधि मोहिं दिलाई ।
पनघट ही पै पिय प्यारे को क्यौं दियो नाम सुनाई ॥
दूर रह्यौ घर गति-मति भूली पग न धर्यौ अब जाई ।
'हरीचंद' हौं तबहि लौं काज की जब लौं रहूँ भुलाई ॥३६॥

हाय हरि बोरि दई मँझ-धार ।
कीन्ही थल की नहिं बेरे की भली लगाई पार ॥
नेह की नाव चढ़ाय चाव सो पहिले करि मनुहार ।
अब कहो बिन अपराध तजी क्यौं सुनिहै कौन पुकार ॥
लोक-लाज घर भूमि छुड़ाई करो घात सौ बार ।
'हरीचंद' तापैं उतराई माँगत हौ बलिहार ॥३७॥

नैन ये लगि कै फिर न फिरे ।
बिथुरी अलकन मैं फँसि फँसिकै रहि गए तहीं घिरे ॥
पचि हारे गुरुजन सिख दैकै नाहिन रहत थिरे ।
'हरीचंद' प्रीतम सरूप मैं डूबे फिर न तिरे ॥३८॥

पिय सों प्रीति लगी नहिं छूटै ।
ऊधौ चाहौ मो समझाओ अब लौं नेह न टूटै ॥
सुंदर रूप छोड़ि गीता को ज्ञान लेइ को कूटै ।
'हरीचंद' ऐसो को मूरख सुधा त्यागि बिख घूटै ॥३९॥

निठुर सों नाहक कीनी प्रीति ।
अब पछिताय हाय करि रहि गई उलटि परी सब रीति ॥
हम तन मन धन जा हित खोयो उन मानी न प्रतीति ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनों बलि बिधना की नीति ॥४०॥

पुरानी परी लाल पहिचान।
अब हमकों काहे को चीन्हौ प्यारे भए सयान ॥
नई प्रीति नए चाहनवारे तुमहूँ नए सुजान।
'हरीचंद' पै जाइँ कहाँ हम लालन करहु बखान ॥४१॥

सखी री ये उरझौंहैं नैन।
उरझि परत सुरझ्यौ नहिं जानत सोचत समुझत हैं न ॥
कोऊ नाहिं बरजै जो इनको बने मत्त जिमि गैन।
'हरीचंद' इन बैरिन पाछे भयो लैन के दैन ॥४२॥

सखी री ये अँखिया रिझवारि।
देखत ही मोहन सों रीझीं सब कुल-कानि बिसारि ॥
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों नेकु न सकीं सम्हारि।
सुंदर रूप बिलोकत रपटीं काँचे घट जिमि वारि ॥
अब बिनु मिले होत हैं ब्याकुल रोअत निलज पुकारि।
अपुने फल करि हमहिं कनौड़ी और दिवावत गारि ॥
लोक-लाज कुल की मरजादा तृन-सम तजी बिचारि।
'हरीचंद' इनको को रोकै बिगरीं जगहि बिगारि ॥४३॥

सखी री ये बिसुवासी नैन।
निज सुख मिले जाइ पहिले पै अब लागे दुख दैन ॥
दगा दई ह्वै गए पराए बिसरायो सब चैन।
'हरीचंद' इनके बेवहारन जानि नफा कछु है न ॥४४॥

मरम की पीर न जानै कोय।
कासों कहौं कौन पुनि मानै बैठ रहीं घर रोय ॥
कोऊ जरनि न जाननवारी बे-महरम सब लोय।
अपुनो कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊँ सोय ॥

लोक-लाज कुल की मरजादा बैठि रही सब सोय।
'हरीचंद' ऐसहि निबहैगी होनी होय सो होय ॥४५॥

मोह कित तुमरो सबै गयो।
सोई हम सोई तुम तौ अब ऐसो काह भयो ॥
मान समै जिनको नेकहु दुख तुम कबहूँ न सम्हारे।
तेई नैन रोवत निसि-बासर कैसे सहत पियारे ॥
तनिकहु लखि मम मुख मुरझानो करि मनुहार मनाओ।
सोई परी धरनि पै देखत क्यों तुरतै नहिं धाओ ॥
हाय कहा हौं कहौं प्रान-पिय तुम आछत गति ऐसी।
'हरीचंद' पिय कहाँ दुराये कहो प्रीति यह कैसी ॥४६॥

जो पिय ऐसो मन मोहिं दीनो।
तौ क्यौं एक निरालो जग नहिं मो निवास हित कीनो ॥
इन जग के लोगन सों मो सों यानिक बनि नहिं आवै।
उन करोर के मध्य एक क्यौं हम सो निबहन पावै ॥
कै तो जगहि छोड़ाओ हम सों राखौ कै ढिग मोहिं।
'हरीचंद' दुख देहु न इतनो बिनय करत हौं तोहिं ॥४७॥

खुलि कै दुखहु करन नहिं पावैं।
कैसे प्रान रहैं जो सब बिधि हम ही भार उठावैं ॥
नैनन सदा चबाइन के डर दृग भरि पियहि न देख्यौ।
ताको दुख तो सह्यो कोऊ बिधि जानि करम को लेख्यौ ॥
रोवनहू मे हानि भई अब प्रगट हाय नहिं होई।
तो केहि बिधि जिय धीरज राखैं सो भाखौ सब कोई ॥
सब बिधि हमहिं बिपति तो ऐसे जीवनहू पै ख्वारी।
'हरीचंद' सोयो बिधिना किन जाग हमारी बारी ॥४८॥

पियारे तजी कौन से दोस ।
इतनी हमहू तो सुनि पावैं फेर करैं संतोस ।।
तुमरे हित सब तज्यो आस इक तुम्हरी ही चित धारी ।
एक तुम्हारे ही कहवाए जग मैं गिरवरधारी ।।
जो कोउ तुमरो होइ सोई या जग मैं बहु दुख पावै ।
यह अपराध होइ तौ भाखौ जासों धीरज आवै ।।
कियो और तो दोस कछू नहिं अपनी जान पियारे ।
तुमरे ही ह्वै रहे जगत मैं एक प्रेम-प्रन धारे ।।
जो अपुने ही को दुख देनो यहै आप को बानो ।
तो क्यौं नहिं ताको अपने मुख प्यारे प्रगट बखानो ।।
जासों चतुर होइ जग मैं कोउ तुम सों प्रेम न लावै ।
'हरीचंद' हम तौ अब तुमरे करौ जोई मन भावै ।।४९।।

सुरतिहू अब नहिं आवै स्याम की ।
प्राननाथ आरति-नासन मन-मोहन सब सुख-धाम की ।।
वेई नैन वही मन औ तन वही चटपटी काम की ।
भये कुलिस लौं सब पिय बिछुरे निसि बीतत चौ-जाम की ।।
सुनियत लाल कहानिन मैं अब जैसे सीता-राम की ।
'हरीचंद' कहा को कहा कीनो बलि या गति बिधि बाम की ।।५०।।

अब मैं कब लौं देखूँ बाट ।
भोर भयो हौं ठाढ़ि ही रहि गइ पकरे द्वार-कपाट ।।
हार पहार भए बिछुरे अरु बिख भए सुख के ठाट ।
सूनी सेज पिया बिनु देखत क्यों न गयो हिय फाट ।।
बिरह-सिंधु मैं डूबी ग्वालिनि कहुँ दिखात नहिं घाट ।
'हरीचंद' गहि बाँह उठाओ जिय मति करहु उचाट ।।५१।।

होय हरि द्वै मे ते अब एक।
कै मारो कै तारो मोहन छाँड़ि आपनी टेक।
बहुत भई सहि जात नहीं अब करहु बिलंब न नेक।
'हरीचंद' छाँड़ो हो लालन पावन-पतित-बिबेक ॥५२॥

नावरि मोरी झाँझरी हो जाय परी मँझधार।
निसि अँधियारी पानी लगत उलटो बहत बयार॥
सूझत नहिं उपाय बिनु केवट कोइ न सुनत पुकार।
'हरीचंद' डूबत कुसमय मैं धाइ लगाओ पार ॥५३॥

कोऊ ना बटाऊ मेरी पीर को।
सब अपने स्वारथ को कोऊ देनहार नहि धीर को॥
कसकत सो बन रास बिलसिबो हरि-सँग जमुना-तीर को।
उलहत हियो नैन भरि आवत लखि थल धीर समीर को॥
कहा करौं कित जाउँ न भूलत हँसि हँसि हरिबो चीर को।
'हरीचंद' कोउ हाल कहत नहिं गोपराज बलबीर को ॥५४॥

अबिरल जुगल कमल-दृग बरसत सखि पै खीजत होइ खिस्यानी।
आजु कुंज क्यौं सेज बिछाई तापै दई पिछौरी तानी॥
हौं धोखे ही गई सयन कौं चितत पिय-सँजोग सुखदाई।
द्वारहि तें अभिलाख लाख करि भरि आनँद फूली न समाई॥
ढकी सेज लखि कै पिय सोए जानो भइ जिय अमित उमाही।
नूपुर खोलि चली हरुए गति पीतम-अधर-सुधा-रस चाही॥
निकट जाइकै लाइ जुगल भुज जबै गाढ़ आलिंगन कीनो।
तब सुधि आई पिय घर नाहीं उन तो गौन मधुबन को कीनो॥
मुरछि परी करि हाय साथ ही मानहुँ लता मूल सों तोरी।
बेसुधि लखि आईं ब्रज-बनिता बैठि रहीं घेरे चहुँ ओरी॥

छिरकत नीर गुलाब वदन पैं आँचर पौन करत कोउ नारी ।
व्याकुल सखि-समाज सब रोअत मनु आजुहिं बिछुरे गिरिधारी ।।
इतनेहू पै प्रान गए नहिं फिरहू सुधि आई अध-राती ।
हौं पापिनि जीवति ही जागी फटी न अजौं कुलिस की छाती ।।
फिर वह घर-व्यवहार वहै सब करन परैं नित ही उठि माई ।
'हरीचंद' मेरे ही सिर विधि दीनी काह जगत-अमराई ।।५५।।

रहे यह देखन कों दृग दोय ।
गए न प्रान अबौं अँखियाँ ये जीवति निरलज होय ।।
सोई कुंज हरे हरे देखियत सोई सुक पिक कीर ।
सोई सेज परी सूनी है विना मिले बलबीर ।।
वही झरोखा वही अटारी वही गली वही साँझ ।
वहै नाहिं जो वेनु बजावत ऐहै गलियन माँझ ।।
ब्रजहू वही वही गौवें हैं वही गोप अरु ग्वाल ।
बिडरे सब अनाथ से डोलत व्याकुल विना गुपाल ।।
नंद-भवन सूनो देखत क्यों गयो नहीं हिय फाट ।
'हरीचंद' उठि वेगहि धाओ फेरहु ब्रज की वाट ।।५६।।

नंद-भवन हौं आजु गई हो भूले ही उठि भोर ।
जागत समय जानि मंगल-मुख निरखन नंद-किशोर ।।
नहिं वंदीजन गोप गोपिका नाहिंन गौवें द्वार ।
नहिं कोउ मथत दही नहिं रोहिनि ठाढ़ी लै उपचार ।।
तब मोहिं सुरत परी घर नाहिंन सुंदर श्याम तमाल ।
मुरछित धरनि गिरी द्वारहि पै लखि धाई ब्रज-बाल ।।
लाई गेह उठाइ कोउ विधि जीवन गए अँदेस ।
'हरीचंद' मधुकर तुव आए जागी सुनत सँदेस ।।५७।।

हठीले पिय हो प्यारिहु को हठ राखौ ।
तुव रूसे सों काम चलै नहि मधुर वचन मुख भाखौ ॥
आओ मधुबन छाँड़ि फेरहू दूर कूबरिहि नाखौ ।
'हरीचंद' को मान राखिकै अधर-सुधा-रस चाखौ ॥५८॥

अथ प्रेम फुलवारी के फूल

प्रीति की रीत ही अति न्यारी ।
लोग वेद सब सो कछु उलटो केवल प्रेमिन प्यारी ॥
को जानै समुझै को याको बिरली जाननहारी ।
'हरीचंद' अनुभव ही लखिये जामैं गिरवरधारी ॥५९॥

श्रीराधे सोभा कहा कहिये ।
रसना अधम बहुरि अधिकारी कोऊ नहिं लहिये ॥
कासों कहिये को समुझै एहि समुझि चित्त रहिये ।
परम गुप्त रस सब सों कहि कहि कैसे चित दहिये ॥
बिनु तुव कृपा अपार सिंधु रस केहि प्रकार बहिये ।
'हरीचंद' एहि सोच छोड़ि सब मौन रह्यो चहिये ॥६०॥

अहो मम प्राननहू तें प्यारे ।
ब्रज के धन प्रेमिन के सरबस इन अँखियन के तारे ॥
गद्दर कंठ होत क्यों सुनतहि गुन-गान परम तिहारे ।
उमगत नैन हियो भरि आवत उलहत रोमहु न्यारे ॥
प्राननाथ श्रीराधा जू के जमुना-नंद-दुलारे ।
'हरीचंद' जुग जुग चिरजीअहु भक्तन के रखवारे ॥६१॥

पियारे थिर करि थापहु प्रेम ।
परम अमृतमय जब लौं रवि-ससि प्रेमिन पैं करि छेम ॥

दूर करहु जग वंचनहारे ज्ञान करम कुल नेम ।
'हरीचंद' यह प्रीत-दुन्दुभी नितहीं गाजौ एम ॥६२॥

छोड़ि कै ऐसे मीठे नाम ।
मित्र प्रानपति पीतम प्यारे जीवितेस सुख-धाम ॥
क्यौं खोजत जग और नाम सब करिकै युक्ति सहेत ।
ईश्वर ब्रह्म नाम हौआ सो श्रवन न जो सुख देत ॥
तजि कै तेरे कोमल पंकज पद को दृढ़ विस्वास ।
'हरीचंद' क्यों भटकत डोलत धारि अनेकन आस ॥६३॥

अहो मेरे मोहन प्यारे मीत ।
क्यौं न निवाही मम जीवन लौं परम प्रेम की रीत ॥
इतनेहू पै तोहिं न आई मेरी यार प्रतीत ।
'हरीचंद' बलिहार रावरे भली करी यह नीत ॥६४॥

विहरिहैं जग-सिर पै दै पाँव ।
एक तुम्हारे ह्वै पिय प्यारे छाँड़ि और सब गाँव ॥
निंदा करौ बताओ बिगरी धरौ सबै मिलि नाँव ।
'हरीचंद' नहिं कबहुँ चूकिहैं हम यह अब को दाँव ॥६५॥

निछावरि तुम पै सो कहा कीजै ।
सब कछु थोरो लगत जगत मैं कैसे इनको लीजै ॥
राज-पा घर-बार देह मन धन संबंधी जात ।
नेम-धरम कुल-कानि लाज सब तृनहू से न लखात ॥
प्रेम-भरी तुमरी चितवनि की समता को जग कौन ।
'हरीचंद' तासों नहिं कहिए कछु रहिए गहि मौन ॥६६॥

न जानों गोविंद कासों रीझै ।
जप सों तप सों ज्ञान ध्यान सों कासों रिसि करि खीझै ॥

बेद पुरान भेद नहिं पायो कह्यो आन की आन।
केह जप तप कीनों गनिका नै गीध कियो कह दान ॥
नेमी ज्ञानी दूर होत हैं नहिं पावत कहुँ ठाम।
ढीठ लोक बेदहु ते निंदित घुसि घुसि करत कलाम ॥
कहुँ उलटी कहुँ सीधी चालैं कहुँ दोहुन तें न्यारी।
'हरीचंद' काहू नहिं जान्यौ मन की रीति निकारी ॥६७॥

प्रेम फुलवारी के फल

रे मन करु नित नित यह ध्यान।
सुंदर रूप गौर स्यामल छवि जो नहिं होत बखान ॥
मुकुट सीस चंद्रिका बनी कनफूल सुकुंडल कान।
कटि काछिनि सारी पग नूपुर बिछिया अनवट पान ॥
कर कंकन चूरी दोउ भुज पै बाजू सोभा देत।
केसर खौर बिंदु सेंदुर को देखत मन हरि लेत ॥
मुख पैं अलक पीठ पैं बेनी नागिनि सी लहरात।
चटकीलो पट निपट मनोहर नील-पीत फहरात ॥
मधुर मधुर अधरन बंसी-धुनि तैसी ही मुसकानि।
दोउ नैनन रस-भीनी चितवनि परम दया की खानि ॥
ऐसो अद्भुत भेष बिलोकत चकित होत सब आय।
'हरीचंद' बिन जुगल-कृपा यह लख्यो कौन पैं जाय ॥६८॥

श्री राधे चंद्रमुखी तुव नाम।
तदपि चकोर-मुखी सी व्याकुल निरखत ससि-घनश्याम ॥
तैसेहि जदपि आप नव घन से मोहन कोटिक काम।
तदपि दरस तुव प्यास नैन जुग चातक रहत मुदाम ॥
कौन कहै कै समुझै यामें जो कछु करै कलाम।
'हरीचंद' ह्वै मौन निरखिए जुगल-रूप सुखधाम ॥६९॥

आजु महा मंगल भयो भोर।
प्राननाथ भेंटे मारग मैं चितयो प्रेम-भरी दृग-कोर॥
करौं निछावरि प्रान जीवनधन तनिकहिं निरखत भौंह मरोर।
स्याम सरूप सुधा-रस सानी बानी बोलत नंदकिशोर॥
कोटि काम लावन्य मनोहर चितवत प्रेम भरी दृग-कोर।
नेह भर्‌यौ सब अंग सलोनो आनँद-रस भींज्यो प्रति पोर॥
सिद्ध होयगो सगरो कारज प्रातहि मिलौ प्रानपिय मोर।
'हरीचंद' जुग जुग चिरजीओ माँगत ग्वालिनि अंचल छोर॥७०॥

आजु चलि कुंजन देखहु छाई बिमल जुन्हाई।
पत्र रंध्र में थिर थिर आवत ता तर सेज बिछाई॥
समय निसीथ इकंत भयो अति कहुँ कहुँ खग बोलत सुख पाई।
ललिता दूर बजावत बीना मधुर मृदंगहु परत सुनाई॥
आलिंगन परिरंभन को सुख लूटत तहाँ जुगल रसदाई।
'हरीचंद' वारत तन मन सब गावत केलि बधाई॥७१॥

कहत हौं वार करोरन होहु चिरंजी नित
नित प्यारे देखि सिरावै हियो।
एक एक आसिख सों मेरे
अरब खरब जुग जियो॥
जब लौं रवि-ससि-भूमि-समुद-
ध्रुव-तारा-गन थिर कियो।
'हरीचंद' तब लौं तुम प्रीतम
अमृत पान नित पियो॥७२॥

लाल के रंग रँगी तू प्यारी।
याही तें तन धारत मिस कै सदा कसूँभी सारी॥

लाल अधर कर पद सब तेरे लाल तिलक सिर धारी ।
नैनन्हू में डोरन के मिस झलकत लाल बिहारी ॥
तन-मै भई नहीं सुध तन की नख-सिख तू गिरधारी ।
'हरीचंद' जग बिदित भई यह प्रेम-प्रतीत तिहारी ॥७३॥

हमारे ब्रज की रानी राधे ।
जिन निज बस करि मोहन सह सब ब्रज-नर-नारी नाधे ॥
परम उदार धाइ सुमिरन के पहिलेहि नासत बाधे
कहि 'हरिचंद' सोच उनकी मोहिं जे नहिं इनहिं अराधे ॥७४॥

सखियो याद दिवावति रहियो ।
समय पाइकै दसा हमारिहू कबहुँ जुगल सों कहियो ॥
केलि कोप अरु काज समय तजि सुख में तुम रुख लहियो ।
करि मनुहार जोरि कर दोऊ मेरी बिथा उलहियो ॥
जो कछु क्रोध करैं तो ताको बिनती कर कर सहियो ।
कहियो कबौं धाइकै बाहैं 'हरिचंदहु' की गहियो ॥७५॥

पिया मुख चूमत अलकन टारि ।
सोई बाल मुँदी पलकन की छबि रहे लाल निहारि ॥
कबहुँ अधर हलके कर परसत रहत भँवर निरवारि ।
अंजन मिसी सिंदूर निरखि रहे टरत न इक पल टारि ॥
जागी भरि आलस भुज सों गहि पियतम को भुज नारि ।
खींचि चूमि मुख पास सोवायो 'हरीचंद' बलिहारि ॥७६॥

पियारे केहि बिधि देहुँ असीस ।
नित नित तौ हम कहत जियो तुम मोहन कोटि बरीस ॥
तऊ न बोध होत मेरे जिय नित उठि यहै मनाऊँ ।
कबहुँ न बदन पिया प्यारे को मुरझ्यो देखन पाऊँ ॥

तुम जीवो तुमरे जन जीवैं जव लौं सागर वारी।
कह्यौ कहत अरु नितहि कहैंगे जीओ लाल विहारी॥
भाग लहौ सव ही प्रेमी-जन सुवस वसौ वृजवासी।
'हरीचंद' जग जुगल विराजैं प्रीति-रीति परकासी॥७७॥

रहौं मैं सदा जुगल-भुज छहियाँ।
अव मत छाँड़ौ राधा-मोहन पकरि दीन की वहियाँ॥
सदा वसाओ श्री वृंदावन नित नव कुंजन महियाँ।
'हरीचंद' इक-रूप निवाहौ अव पन विगरै नहियाँ॥७८॥

तुम्हें कोउ खोजत है हो राधे।
ना जानै कौन साँवरो सो ढोटा पीरी कटि वाँधे॥
वड़े वड़े नैन भरि रहे जल सों वचन कहत आवे आधे।
वन वन पात पात करि खोजत प्यारी प्यारी रट नाधे॥
कोमल मुख कुम्हलाइ रह्यौ वाको खरो प्रीति-पथ साधे।
'हरीचंद' सखि चलु न दया करि हरि-विरहा की वाधे॥७९॥

टरौ इन अँखियन सों अव नाहिं।
निवसो सदा सोहागिन राधा पुतरी सी दृग माहिं॥
नील निचोल तरकुली कानन सिर सिंदूर मुख पान।
काजर नैन सहज ही भोरी मन-मोहनि मुसकान॥
सदा राज राजौ वृंदावन सुवस वसौ व्रज देस।
वरसौ प्रेम-अमृत प्रेमिन पै नितहि श्याम घन भेस॥
देखि यहै अव दूजो देखन परे न जव लौं प्रान।
'हरीचंद' निवहौ स्वासा लगि यहै प्रेम की वान॥८०॥

श्री स्वामिनी जी की स्तुति ❁

श्री राधे तुही सुहागिनि साँची।
और कामिनिन को सुख-संपति तुव रस आगे काँची ॥
प्रेम सिद्ध तुव द्वार नटी लौं रहत रैन-दिन नाची।
'हरीचंद' याही सो सब तजि हरि-मति तुव रँग राँची ॥८१॥

राधे तुही सुहागिनि पूरी।
जाको त्रिभुवन-पति सेवक लौं अनु-छिन करत मजूरी ॥
और सबन को सुख-सामाँ तुव आगे परम अधूरी।
'हरीचंद' याही तें सोहत तोही को सेंदुर-चूरी ॥८२॥

राधे तुव सोहाग की छाया जग मे भयो सोहाग।
तेरो ही अनुराग-छटा हरि सृष्टि-करन अनुराग ॥
सत-चित तुव कृति सो बिलगाने लीला प्रियजन भाग।
पुनि 'हरिचंद' अनंद होत लहि तुव पद-पदुम-पराग ॥८३॥

हमारी प्यारी सखियन की सिरताज।
ताहू की महरानी जो सब ब्रज-मंडल-महराज ॥
सील सनेह सरस सोभा-निधि पूरनि जन-मन-काज।
'हरीचंद' की सरबस जीवनि पालनि भक्त-समाज ॥८४॥

स्यामा प्यारी सखियन की सरदार।
अति भोरी गोरी रस-बोरी सहजहि परम उदार ॥
लाज-कृपा सों भरे बड़े दृग बड़े छूटे तिमि बार।
'हरीचंद' तनिकहिं बस कीनो श्री ब्रजराज-कुमार ॥८५॥

❁ यह अंश मल्लिक चंद्र और कंपनी द्वारा प्रकाशित सन् १८८३ ई० वाले संस्करण में नहीं है। ८१ से ९१ पद तक नवोदिता हरिश्चंद्र-चंद्रिका नवंबर सन् १८८४ की संख्या से उद्धृत किये गये हैं। सं०।

राधा प्यारी सखियन की सिरमौर ।
जदपि बहुत जुवती ब्रज मैं पै पिय कहँ रुचत न और ।।
जा मुख-पंकज-मधु की लालच बन्यो रहत मनु भौंर ।
पान खवावत चरन पलोटत ढोरत बिंजन चौंर ।।
मुख चूमत ललचाइ कबहुँ पुनि कबहूँ भरत अँकोर ।
निज सुख जुगल रमत नित नित श्री वृन्दावन निज ठौर ।।
ऐसी स्वामिनि तजि को बरबस भरमै इत उत दौर ।
'हरीचंद' सब तजि याही तें सेवत इनकी पौर ।।८६।।

हमारी सरबस राधा प्यारी ।
सब ब्रज-स्वामिनि हरि-अभिरामिनि श्री वृषभानु-दुलारी ।।
वृंदावन-देवी सुख-सेवी सहज दीन-हितकारी ।
'हरीचंद' गुन-निधि सोभा-निधि कीरति की सुकुमारी ।।८७।।

प्यारी कीरति-कीरति-बेलि ।
प्रफुलित रूप-रासि - कुसुमावलि गुन-सुगंध-रस रेलि ।।
सिंची प्रेम - जीवन हरि बारौ जन-भव-आतप-ठेलि ।
'हरीचंद' हरि कलप-तरोवर लपटी सुखहिं सकेलि ।।८८।।

हमारी प्रान-जीवन-धन श्यामा ।
ब्रज-जन-तरुनि-चक्र-चूड़ामनि पूरनि हरि-मन-कामा ।।
अति अभिरामा सब सुख-धामा हरि-बामा मनि-दामा ।
'हरीचंद' तजि साधन सबरे रटत एक तुव नामा ।।८९।।

राधे, सब विधि जीति तिहारी ।
अखिल लोक-नायक रस-सरबस तिन की दृग उँजियारी ।।
तजिकै जुवति सहस्र रहत तुव दिसि टक एक निहारी ।
'हरीचंद' आनँदकँद आनँद दान करति बलिहारी ।।९०।।

आजु भुव साँचो भयो अनंद ।
जन-हिय-कुमुद विकासन प्रगट्यौ ब्रज-नभ पूरन चन्द ॥
जो आनंद छिप्यो हो अब लौं तोहिं प्रगटि दिखरायो ।
मरजादा परवाह दुहुँन सो प्रेम छानि बिलगायो ॥
भटकत फिरत श्रुतिन के बन में परम पंथ नहिं सूझ्यो ।
जो कछु कह्यौ कहूँ कोउ सास्त्रन ताको मरम न बूझ्यो ॥
भक्ति कही तौ नेह बिना की नेहहु व्यसन बिना को ।
व्यसनहु कह्यौ जुपै कहुँ कहुँ तौ परखन चार दिनां को ॥
परम नेह सो एक भाव रस इनही प्रीति दिखाई ।
'हरीचंद' भक्तन-हिय बाजी जासों प्रेम-बधाई ॥९१॥

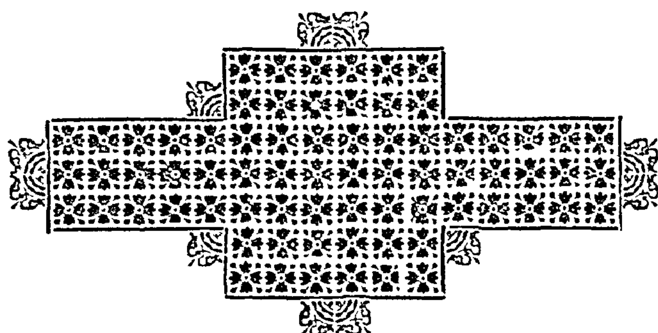
जय जय भक्त-बच्छल भगवान ।
निज जन पच्छ रच्छ-कर नित प्रति सहजहि दयानिधान ॥
अधम-उधारन जन-निस्तारन बिस्तारन जस-गान ।
'हरीचन्द' करुनामय केसव सब ब्रज-जन के प्रान ॥९२॥

जय जय करुनानिधि पिय प्यारे ।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति ब्रज-जन लोचन-तारे ॥
अगिनित गुन-गन गने न आवत माया नर-वपु धारे ।
'हरीचंद' श्रीराधा-वल्लभ जसुदा-नंद-दुलारे ॥९३॥



कृष्ण-चरित्र

सं० १९४०



कृष्ण-चरित्र

आजु हरि छलि कै लाए प्यारी ।
पार उतारन मिस नौका पै रसिक-राज गिरिधारी ॥
औघट घाट लगाइ नाव निज विहरत करि मनुहारी ।
'हरीचंद' सखि लखत चकित चित देत प्रान-धन वारी ॥ १ ॥

जुगल-छवि नैनन सों लखि लेहु ।
ठाढ़े बाहुँ जोरि कुंजन मैं अवसर जान न देहु ॥
साँझ समय आगम बरसा के फूल्यौ बन चहुँ ओर ।
लहरत कालिन्दी जल झलकत आवत मन्द झकोर ॥
प्रथम फूल फूल्यौ आमोदित रसमय सुखद कदम्ब ।
ता तट ठाढ़े जुगल परसपर किए बाहुँ-अवलम्ब ॥
पसरित महामोद दसहू दिसि मत्त भौंर रहे भूलि ।
'हरीचंद' सखि सरवस वार्यो सो छवि लखि जिय फूलि ॥ २ ॥

आजु ब्रज भई अटारिन भीर ।
आवत जानि सुरथ चढ़िकै पथ सुंदर स्याम-सरीर ॥
अटा झरोखन छज्जन छाजन गोखन द्वारन द्वार ।
मुख ही मुख लखिए जुवतिन के सोभा बढ़ी अपार ॥

फूली मनौ रूप-फुलवारी हरि-हित साधि सनेह।
कै चंदन की वंदन-माला बाँधी ब्रजपति गेह॥
करत मनोरथ विविध भाँति सब साजैं मंगल-साज।
'हरीचंद' तिनको दरसन दै दुख मेट्यौ ब्रजराज॥ ३॥

हरि हम कौन भरोसे जीएँ।
तुमरे रुख फेरे करुनानिधि काल-गुदरिया सीएँ॥
यों तो सब ही खात उदर भरि अरु सब ही जल पीएँ।
पै धिक धिक तुम बिन सब माधो वादिहि सासा लीएँ॥
नाथ बिना सब व्यर्थ धरम अरु अधरम दोऊ कीएँ।
'हरीचंद' अब तो हरि बनिहै कर-अवलम्बन दीएँ॥ ४॥

नाथ बिसारे तें नहिं बनिहै।
तुम बिनु कोउ जग नाहिं मरम की पीर पिया जो जनिहै॥
हँसिहै सब जग हाल देखि- कोउ नाहिं दीनता गनिहै।
उलटी हमहिं सिखापनि दैहै मेरी एक न मनिहै॥
तुम्हरे छोड़ कहाँ हम जैहैं कौन बीच मैं सनिहै।
'हरीचंद' तुम बिनु दयालुता और कोउ नहिं ठनिहै॥ ५॥

नवल नील मेघ-बरन दरसत त्रयताप-हरन
परसत सुख-करन भर्त्त-सरन जमुन-वारी।
सोभित सुंदर दुकूल प्रफुलित कल कमल फूल
मेटत भव-सूल भक्ति-मूल ताप-हारी॥
कोमल बर बालु रचित बेदि बिबिध लटनि खचित
नव लता-प्रतान सचित नचित भृंग भारी।
चंचल चल लोल लहर कलि फल करवाल कहर
जग-जन जम-जाल जहर भक्तन-सुखकारी॥

जल-कन लै त्रिविध पौन करत जवै कितहुँ गौन
परसत सुख-भौन सीत सोहत संचारी।
अवगाहत मनुज-देव करत सकल सिद्ध सेव
जानत नहिं भेव भेद वेद मौन-धारी॥
ब्रजवर-मंडल-सिंगार गोप-गोपिका अधार
प्राननाथ-कंठहार जुगल वर विहारी।
पुष्टि-सुपथ पुष्टि करत सेवा को फल वितरत
'हरीचन्द' जस उचरत जयति तरनि-वारी॥ ६॥

आजु सुर मुनि सकल ब्रजपुराधीश को
रत्न-अभिषेक वर वेद-विधि सों करत।
सकल तीरथ विमल गंग-जमुनादि नद
चतुसागर-मिलित नीर कलसन भरत॥
रिग-यजुर-साम-अथर्वनिक वेद-ध्वनि
स्तोत्र-पौराण-इतिहास मिलि उच्चरत।
शंख-भेरी-पणव-मुरज-ढक्का वाद घनित
घंटा-नाद बीच बिच गुंजरत॥
विविध सर्व्वौषधी मलय-मृगमद-मिलित
वारि घनसार-केसर सुगंधित परत।
कुसुम रेल तुलसि मिश्रित सुमंत्रित सविध
पूर्व्व अधिवासितोदक घटन तें ढरत॥
श्याम अभिराम तन पीत पट सुभग अति
वारि सों अंग सटि लखत ही मन हरत।
झरित कुल केस कुंचितन तें नीर-कन
मनहुँ मुक्तावली नवल उज्जल झरत॥

बदत बंदी बिरद मूत चारन चारु चरित
गावत खरे तान मानन भरत।
देत आसीस द्विज हस्त श्रीफल किए
सुर जुहारत दरे रुख लिए जिअ डरत॥
घोष-सीमन्तिनी गान मंगल शब्द
श्रवन-पुट जात दुख दुरित दारिद हरत।
दास 'हरिचन्द' के हृदय-मधि तौन छबि -
रचित वल्लभ-कृपा-बल न टारे टरत॥ ७॥

मेरे प्यारे जी अरज लीजो मान हो मान।
अब तुमरो दुख सहि न सकत हम
मिलि जाओ मीत सुजान हो जान।
एक बेर ब्रज में फिर आओ
इतनो देहु मोहिं दान हो दान॥
'हरीचंद' अब चलन चहत हैं
तुम बिन मेरे प्रान हो प्रान॥ ८॥

प्रात समै प्रीतम प्यारे को मंगल बिमल नवल जस गाऊँ।
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति भोरहि निरखत नैन सिराऊँ॥
सेवा करौं हरौं त्रैविधि - भय तब अपने गृह-कारज जाऊँ।
'हरीचंद' मोहन बिनु देखे नैनन की नहिं तपन बुझाऊँ॥ ९॥

प्रात समै हरि को जस गावत
उठि घर घर सब घोष-कुमारी।
कोउ दधि मथत सिंगार करत कोउ
जमुना न्हान जात कोउ नारी॥

हरि-रस मगन दिवस नहिं जानत
मंगलमय ब्रज रहत सदा री।
'हरीचंद' लखि मदन-मोहन-छवि
पुनि पुनि जात सबै बलिहारी ॥१०॥

हरि को मंगलमय मुख देखो।
सुंदर स्याम अंग-छवि निरखत जीवन जनम सुफल करि लेखो ॥
देखि प्रथम पिय प्यारे को मुख तब जग और काज़ अवरेखो।
'हरीचंद' ब्रजचंद लखें बिनु जगतहि बादि बृथा करि पेखो ॥११॥

आनंद-निधि सुख-निधि सोभा-निधि वल्लभ-बदन बिलोकौ भोर।
मंगल परम भक्त-सुखदायक तृपित-करन जन-नैन-चकोर ॥
सकल कला-पूरन गुन-सागर नागर नेही नवल-किसोर।
'हरीचंद' रसिकन के सर्वस इन पैं वारौं मैन करोर ॥१२॥

हरि मोरी काहें सुधि बिसराई।
हम तो सब विधि दीन हीन तुम समरथ गोकुल-राई ॥
मों अपराधन लखन लगे जौ तौ कछु नहिं बनि आई।
हम अपुनी करनी के चूके याहू जनम खुटाई ॥
सब विधि पतित हीन सब दिन के कहँ लौं कहौं सुनाई।
'हरीचंद' तेहि भूलि बिरद निज जानि मिलौ अब धाई ॥१३॥

देखो माई हरि जू के रथ की आवनि।
चलनि चक्र फहरानि धुजा को वह तुरगन की धावनि ॥
जापै जुगल दिए गल-बाँही सोभित नैन मिलावनि।
बीरी खानि चहूँ दिसि चितवनि हँसि मुरि कै बतरावनि ॥

घेरें सखी चारु चारों दिसि नव मलार की गावनि।
'हरीचंद' चित तें न टरति है सो सोभा सुख-पावनि ॥१४॥

धनि वे दृग जिन हरि अवलोके।
रथ चढ़ि कै डोलत ब्रज-बीथिन
ब्रज-तिय द्वार द्वार गति रोके ॥
इक कर रास रासपति लीने
झूमत चलत तुरंग नचावत।
दूजे कर साँटी लै दृग की
साँटी ब्रज-तिय-चित्त लगावत ॥
इत उत चितवत चलत चपल चख
हँसत हँसावत गावत डोलैं।
छकत रूप लखि निरखनहारे
काहू सों हँसि कै मृदु बोलैं ॥
संग भीर आभीर-जनन की
मुरछल चँवर डुलावत धावैं।
'हरीचंद' ते धन धन जग में
जे यह सोभा निरखि सिरावैं ॥१५॥

कछु रथ हाँकनहू में भाँति।
यह कछु औरहि चलनि-चलावनि औरे रथ की काँति ॥
कहूँ ठिठकि रथ रोकि घरिक लौं ठाढ़े रहत मुरारि।
कहुँ दौरावत अतिहि तेज गति कहुँ काहू सों रारि ॥
काहु को अंग परसि रथ चालनि काहु देनि दौराय।
चाबुक चमकि तनक काहू तन मारनि देनि छुआय ॥
काहू के घर की फेरी दै घूमनि करि रथ मंद।
बार बार निकसनि वाही मग में जानी 'हरीचंद' ॥१६॥

वह धुज की फहरानि न भूलति ।
उलटि उलटि कै मो दिस चितवनि
रथ हाँकनि हरि की जिय सूलति ॥
लै गए सब सुख साथहि मोहन
अब तो मदन सदा हिय हूलत ।
सो सुख सुमिरि सुमिरि कै सजनी
अजहूँ जिय रस-बेली फूलत ॥
लै आओ कोउ मो ढिग हरि कों
बिरह-आगि अब तन उनमूलत ।
'हरीचन्द' पिय-रंग बावरी
ग्वालिनि प्रेम-डोर गहि झूलत ॥ १७ ॥

आजु दोउ बैठे मिलि वृंदावन नव निकुंज
सीतल बयार सेवैं मोद भरे मन मैं ।
उड़त अंचल चल चंचल दुकूल कल
स्वेद फूल की सुगंध छाई उपवन मैं ॥
रस भरे बातैं करैं हँसि हँसि अंग भरैं
बीरी खात जात सरसात सखियन मैं ।
'हरीचन्द' राधा प्यारी देखि रीझे गिरिधारी
आनँद सों उमगे समात नहिं तन मैं ॥ १८ ॥

गंगा पतितन कों आधार ।
यह कलि-काल कठिन सागर सों तुमहिं लगावत पार ॥
दरस-परस जल-पान किए तें तारे लोक हजार ।
हरि-चरनारबिंद-मकरंदी सोहत सुंदर धार ॥
अवगाहत नर-देव-सिद्ध-मुनि कर अस्तुति बहु बार ।
'हरीचन्द' जन-तारिनि देवी गावत निगम पुकार ॥१९॥

जयति कृष्ण-पद-पद्म - मकरंद रंजित
नीर नृप भगीरथ बिमल जस-पताके ।
ब्रह्म-द्रवभूत आनन्द मन्दाकिनी
अलकनंदे सुकृति कृति - विपाके ॥
शिव-जटा-जूट-गह्वर - सघन-वन - मृगी
विधि - कमंडलु - दलित-नीर - रूपे ।
कपिल-हुंकार भस्मीभूत निरयगत
स्पर्श - तारित सगर - तनुज भूपे ॥
जन्हुतनया हिमालय - शिखर - निर्झर
वर भेद भंजित इंद्र हस्ति गर्वे ।
असह धारा-प्रवह वारि-निधि मानहृत
मिलित शतधा रचित वेग खर्व्वे ॥
विविध मंदिर गलित कुसुम-तुलसी-निचय
भ्रमर - चित्रित नवल विमल धारे ।
सिद्ध सीमंतिनी सुकुच-कुंकुम-मिलत
छिलित रंजित सुगंधित अपारे ॥
लोल कल्लोल लहरी ललित वलित बल
एक संगल छितिय तर तरंगे ।
झरति झर झर झिल्लि सरस झंकार
वर वायु गत रव वीन-मान भंगे ॥
मकर-कच्छप-नक्र-संकुलित जीवंजय
शीत पानीय तृष्णादि नाशे ।
कलित कूजित सुकारंड-कलरव नाद
कोकनद कुमुद कल्हार काशे ॥
निज महिम बल प्रबल अर्कसुत नर्क-भय
दूर कृत पतित-जन कृत पवित्रे ।

पान मज्जन मरण स्मरण दर्शन मात्र
निखिल अघ-राशि नाशन चरित्रे ॥
मुक्ति - पथ-सोपान विष्णु - सायुज्य-प्रद
परम उज्ज्वल श्वेत नीर जाते ।
जयति यमुना - मिलित ललित गंगे
सदा दास 'हरिचन्द' जन पक्षपाते ॥२०॥

सारंग

प्यारे को कोमल तन परसि आवत आज
याही तें बयार अंग सीतल करत है ।
सनित सुगंध मंद मंद आइ मेरे ढिग
प्रेम सों हुलसि सखी अंकम भरत है ।
हिय की खिलत कली मदन जगत अली
पिय के मिलन को चित चाव वितरत है ।
'हरीचंद' चलि कुंज जहाँ करैं भौंर गुंज
प्यारो सेज साजि मेरे ध्यान कों धरत है॥२१॥

श्याम अभिराम रति-काम-मोहन सदा
वाम श्री राधिका संग लीने ।
कुंज सुख-पुंज नित गुंजरत भौंर जहाँ
गुंज-वन-दाम गल माहिं दीने ।
कोटि घन विज्जु ससि सूरमनि नील अरु
हीर छवि जुगल प्रिय निरखि छीने ।
करत दिन केलि भुज मेलि कुच ठेलि
लखि दास 'हरिचन्द' जयजयति कीने ॥२२॥

आजु मुख चूमत पिय को प्यारी ।
भरि गाढ़े भुज दृढ़ करि अँग अँग उमगि उमगि सुकुमारी ॥

लहि इकंत ग्रानहु तें भियतम करत मनोरथ भारी ।
उर अभिलाख लाख करि करि कै पुजवत साध महा री ॥
मानत धन धन भाग आपुने देत प्रान-धन वारी ।
'हरीचन्द' लूटत सुख-सपति श्री वृषभानु-दुलारी ॥२३॥

घन गरजत बरसत लखि दोऊ औरहु लपटि लपटि रहे सोय ।
स्यामा-स्याम इकंत कुंज में अरु तीसरो निकट नहिं कोय ॥
दामिनि दमकत ज्यों ज्यों त्यों त्यों गाढ़ी भरन भुजा की होय ।
'हरीचन्द' बरसत घन उत इत रस बरसत पिय-प्यारी दोय ॥२४॥

धन दिन धन मम भाग कुंज धन दोऊ जहाँ पधारे ।
राखौंगी विनती करि दोउन कों आजु प्रिया पिय प्यारे ॥
नैन पाँवरे बिछाइ करौंगी आँचर-बिजन बयारे ।
'हरीचन्द' वारौंगी सर्बस गाऊँगी गुन-गान भारे ॥२५॥

आज धन भाग हमारे यह घरी धन
मेरे घर आए गिरिराज-धरन ।
नाचौं गाओंगी करौंगी बधाई वारि
डारौंगी तन-मन-धन-प्रान-अभरन ॥
राखौंगी कंठ लाइ जान न देहौं फेर
करि विनती बहु गहि कै चरन ।
'हरीचंद' वल्लभ-बल पीओंगी
अधर-रस, छाँड़ौंगी अब न सरन ॥२६॥

मंगल महा जुगल रस-केलि ।
जिन रन करि जग सकल अमंगल पायन दीने पेलि ॥
सुख-समूह आनन्द अखंडित भरि भरि धर्यौ सकेलि ।
'हरीचंद' जन रीझि भिजायो रस-समुद्र उर झेलि ॥२७॥

नाथ मैं केहि विधि जिय समझाऊँ।
बातन सों यह मानत नाहीं कैसे कहौ मनाऊँ॥
जदपि याहि विश्वास परम दृढ़ वेद-पुरानहु साखी।
कछु अनुभवहू होत कहत है जद्यपि सोइ बहु भाखी॥
तऊ कोटि ससि कोटि मदन सम तुव मुख बिनु दृग देखें।
धीरज होत न याहि तनिकहू समाधान केहि लेखें॥
निस-दिन परम अमृत-सम लीला जेहि मानै अरु गावै।
तेहि बिनु अपुने चख सों देखें किमि यह धीरज पावै॥
दरसन करै रहै लीला मैं जिय भरि आनँद लूटै।
तृप्त होहिं तब मन इंद्रिय को अनुभव भुस लै कूटै॥
संपति सपने की न काम की मृग-तृष्णा नहिं नीकी।
'हरीचंद' बिनु सुधा जिआवै कैसे छछिया फीकी॥२८॥

आजु दोउ बैठे हैं जल-भौन।
हौज किनारे भरे मौज सों प्यारी राधा-रौन॥
सावन-भादों छुटत फुहारे नीरहि नीर दिखाई।
भींज रहे दोउ तहँ रस-भींजे सखि लखि लेत बलाई॥
बूँद बदन पर सोभा पावत कमल ओस लपटाने।
बिथुरे बारन मैं मनु मोती पोहे अति सरसाने॥
झीने बसन स्याम अँग झलकत सोभा नहिं कहि जाई।
मनहुँ नीलमनि सीसे-संपुट धर्‍यो अतिहि छवि छाई॥
धार फुहार सीस पर लैहों लखि कै दृग सुख पावै।
मनु अभिषेक करत सब सुर मिलि छवि सों परम सुहावै॥
कै जमुना बहु रूप धारि कै जुगल मिलन हित आई।
कै चपला घन देखि और घन मिलि बरसा बरसाई॥

लोचन ही लखिए सो सोभा कहे कह्यौ नहिं आवै ।
'हरीचंद' बिनु वल्लभ-पद-बल और लखन को पावै ॥२९॥

मन मेरो कहुँ न लहत विश्राम ।
तृष्णातुर धावत इत तें उत पावत कहुँ नहि ठाम ॥
कबहुँक मोह-फाँस मैं बाँध्यौ धन-कुटुम्ब-मुख जोहै ।
तिनहूँ सो जब लहत अनादर तब व्याकुल ह्वै मोहै ॥
कबहूँ काहू नारि-प्रेम-बस ताहि को सरबस मानै ।
ताहू सों प्रति-प्रेम मिलन बिनु अकुलि और उर आनै ॥
देवी-देव तन्त्र-मन्त्रन मे कबहुँ रहत अरुझाई ।
तिनहूँ सो जब काज सरत नहिं तबहि रहत अकुलाई ॥
कबहुँ जगत के रसिक भगत सज्जन लखि तिन सों बोलै ।
कालो हृदय देखि तिनहूँ को उचटत भटकत डोलै ॥
जिन कहँ मित्र सुहृद करि मानत राखत जिनकी आसा ।
तेऊ मुख भंजत तब छोड़त सबही सो विस्वासा ॥
कबहुँ ब्रह्म बनि रहत आपुही जामैं दुख नहिं व्यापै ।
माया प्रबल तहाँ अभिमानहि नासि जगत मत थापै ॥
सोचत कबहुँ निकसि बन जानो पै जब आपु बिलोकै ।
तृष्णा छुधा साथ तहँहूँ लखि ताहू सों चित रोकै ॥
ब्रह्मा सों बढ़ि लै पिपीलिका लौं जग जीव सु जेते ।
कोऊ देत न अचल भरोसो निज स्वारथ के तेते ॥
तृष्णा अमित सुखाए छिछले छीलर सब जग माहीं ।
'हरीचंद' बिनु कृष्ण वारि-निधि प्यास बुझत कहुँ नाहीं ॥३०॥

कवित्त

ए री प्रान-प्यारी बिन देखे मुख तेरो मेरे
जिय मैं विरह घटा घहरि घहरि उठै ।

त्यौं ही 'हरिचंद' सुधि भूलत न क्यौंहूँ तेरो
लाँवो केस रैन-दिन छहरि छहरि उठै।
गड़ि गड़ि उठत कटीले कुच-कोर तेरी
सारी सो लहरदार लहरि लहरि उठै।
सालि सालि जात आधे आधे नैन-वान तेरे
घूँघट की फहरानि फहरि फहरि उठै ॥३१॥

सवैया

हमैं नीति सों काज नहीं कछु है अपुनो धन आपु जुगाए रहो।
हमरी कुल-कानि गई तो कहा तुम आपनी को तो छिपाये रहो ॥
हमसों सव दूरि रहो 'हरिचंद' न संग मैं मोहिं लगाए रहो।
हम तो विरहा मैं सदा ही दहैं तुम आपुनो अंग वचाए रहो ॥३२॥

पद

जयति जन्हु-तनया सकल लोक की पावनी।
सकल अघ-ओघ हर-नाम उच्चार मैं
पतित-जन - उद्धरनि दुक्ख-विद्रावनी।
कलि-काल कठिन गज गर्व्व खर्व्वित-करन
सिंहिनी गिरि गुहागत नाद-श्रावनी।
शिव-जटा-जूट-जालाधिकृत-वासिनी
विधि-कमंडलु विमल रमनि मन-भावनी ॥
चित्रगुप्तादि के पत्र-गत कर्म्म विधि
उलटि निज भक्त आनंद सरसावनी।
दास 'हरिचंद' भागीरथी त्रिपथगा
जयति गंगे कृष्ण-चरन गुन-गावनी ॥३३॥

श्री गंगे पतित जानि मोहिं तारौ।
जो जस अव लौं मिल्यौ तुम्हैं नहिं सो जग में विस्तारौ ॥

जेते तारे हीन छीन तुम अब लौं पतित अपारे।
ते मेरे लेखे तृन ऐसे कहा गरीब बिचारे॥
पाप अनेक प्रकार करन की बिधि कोऊ कहँ जानै।
हौं सो बदि बदि करौं अनेकन जेहि जम-चित्रहु मानै॥
हम कहँ जो पै तारि लेहु जग-तारिनि नाम कहाई।
'हरीचंद' तौ जस जग मानै नातरु वादि बड़ाई॥३४॥

जै जै विष्णु-पदी श्री गंगे।
पतित-उधारनि सब जग-तारनि नव उज्जल अंगे॥
शिव-सिर-मालति-माल सरिस वर तरल तर तरंगे।
'हरीचन्द' जन-उधरनि देवी पाप-भोग-भंगे॥३५॥

पतित-उधारनी मैं सुनी।
इक बाजी खेलौ हमहूँ सों देखैं कैसी गुनी॥
कबहुँ न पतित मिले जग गाढ़े ताही सों गायो मुनी।
'हरीचंद' को जौ तुम तारौ तौ तारिनि सुर-धुनी॥३६॥

गंगा तुमरी साँच बड़ाई।
एक सगर-सुत-हित जग आई तार्यो नर-समुदाई॥
इक चातक निज तृषा बुझावन जाचत घन अकुलाई।
सो सरवर नद नदी बारिनिधि पूरत सब भर लाई॥
नाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई।
'हरीचंद' याही तें तो सिव राखी सीस चढ़ाई॥३७॥

आजु हरि-चंदन हरि-तन सोहै।
तरु तमाल पै साँझ-धूप सम देखत विह मन मोहै॥
ता मैं फूल-सिंगार सुहायो बरनि सकै सो को है।
'हरीचंद' बड़-भाग राधिका अनुदिन पिय-मुख जोहै॥३८॥

आजु जल विहरत पीतम-प्यारी।
गल भुज दिये करिनि-गज से दोउ अवगाहत सुभ वारी॥
सखी खरीं चहुँ ओर चारु सब लै ग्रीपम उपचारी।
चन्दन सोंधो फूल-माल बहु झीने बसन सँवारी॥
कोउ गावत कोउ तार बजावत कोउ करत मनुहारी।
कोउ कर सों जल-जंत्र चलावत 'हरीचंद' बलिहारी॥३९॥

मिटत न हौस हाय या मन की।
होत एक तें लाख लाख नित तृष्णा बुझत न तन की॥
दैव-कृपा सों जौ तमो-गुनी वृत्ति दूर ह्वै जाई।
तौ रजोगुनी इच्छा बाढ़त लाखन जिय में आई॥
ताहू के मिटे सतोगुन संचय अपुनो लोभ न छोड़ै।
जस कीरति चिर नाम मान पै चंचल चित कहँ मोड़ै॥
भए विरागिहु भक्त सिद्ध कहवावन की रुचि बाढ़ै।
रचि रचि छन्द नाम करिबे को इच्छा तब जिय काढ़ै॥
तासौं याहि जीतिबो दुरघट जानि जतन यह लीजै।
'हरीचंद' घनस्याम-मिलन की हौस करोरन कीजै॥४०॥

वे दिन सपन रहे कै साँचे।
जे हरि सँग विहरत याही ब्रज बीति गए रँग-राचे॥
कहाँ गईं वह सरद रैन सब जिन मैं हरि-सँग नाचे।
कहँ वह बोलन-हँसन-मिलन-सुख मिले जौन बिनु जाँचे॥
हाय दई कैसी कीनी दुख सहत करेजे काँचे।
'हरीचंद' हरि-बिनु सूनो ब्रज लखनहि हित हम बाँचे॥४१॥

हरि हो अब मुख वेगि दिखाओ।
सही न जात कृपानिधि माधो एहि सुनतहि उठि धाओ॥
लखि निज जन डूबत दुख-सागर क्यौं न दया उर लाओ।

आरत वचन सुनत चुप ह्वै रहे निठुर बानि बिसराओ ॥
करुनामय कृपाल केसव तुम क्यों निज प्रनहि डिगाओ ।
लखि बिलखत 'हरिचंद' दुखी जन क्यों नहिं धीर धराओ ॥४२॥

यह मन पारद हू सों चंचल ।
एक पलक में ज्ञान बिचारत दूजे में तिय-अंचल ॥
ठहरत कतहुँ न डोलत इत उत रहत सदा बौरानो ।
ज्ञान ध्यान की आन न मानत याको लंपट बानो ॥
तासों या कहँ कृष्ण-बिरह-तप जो कोउ ताप तपावै ।
'हरीचंद' सो जीति याहि हरि-भजन-रसायन पावै ॥४३॥

आजु अभिषेकत पिय कों प्यारी ।
धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे वारी ॥
कज्जल मिलित चारु मृगमद से विरह-परब लखि भारी ।
बरखत गलित कुसुम बेनी तें सोई फूल-भार डारी ॥
व्याकुल कल नहिं लहत तनिक सुख हाय मंत्र उचारी ।
'हरीचंद' लखि दुखित सखी-जन करि न सकत उपचारी ॥४४॥

जनमतहि क्यों हम नाहिं मरी ।
सखि बिधना बिध ना कछु जानत उलटी सबहि करी ॥
हरि आछत ब्रज धार चवाइन करि निन्दा निदरीं ।
तिन भय सुखहु लखन नहिं पायो हौंसहि रहत भरीं ।
अब हरि सो ब्रज छोड़ि अनत रहे बिलपत बिरह जरी ॥
यह दुख देखन ही जनमाई बारेंहि बिपत परी ।
सुख केहि कहत न जान्यौ सपनेहु दुख ही रहत दरी ।
'हरीचंद' मोहिं सिरजि बिधिहि नहिं जानौं कहा सरी ॥४५॥

मेरो हठ राखो हठीले लाल ।
तुम बिनु मान कौन मेरो रखिहै समुझहु जिय गोपाल ॥

हमकों तो तुमरो बल प्यारे तुव अभिमान दयाल।
पै तुमही ऐसी जो करिहौ कहँ जैहैं ब्रज-बाल॥
एक बेर ब्रज कों फिरि आओ लखि गौअन बेहाल।
'हरीचंद' बरु फेर जाइयो मधुपुर कृष्ण कृपाल॥४६॥

राखिए अपुनेन कों अभिमान।
तुव बल जो जग गिनत न काहू दीजै तेहि सनमान॥
तुम्हरे होय सहैं इतनो दुख यह तो अनय महान।
तुमहि कलंक हमैं लज्जा अति कहिहै कहा जहान॥
एक बेर फिरहू ब्रज आओ देहु जीव को दान।
'हरीचंद' गिरि कर-धारन की करिकै सुरति सुजान॥४७॥

ऊधो अब वे दिन नहिं ऐहैं।
जिन मैं श्याम संग निसि-बासर
छिन सम बिलसि बितैहैं॥
वह हँसि दान माँगनो उनको
अब हम लखन न पैहैं।
जमुना न्हात कदम चढ़ि छिपि अब
हरि नहिं चीर चुरैहैं॥
वह निसि सरद दिवस बरखा के
फिर बिधि नाहिं फिरैहैं।
वह रस-रास हँसन-बोलन-हित
हम छिन छिन तरसैहैं॥
वह गलबाहीं दै पिय बतियाँ
अब नहिं सरस सुनैहैं।
'हरीचंद' तरसत हम मरिहैं
तऊ न वे सुधि लैहैं॥४८॥

हरि बिनु ब्रज बसियत केहि भाएँ।
जीवत अब लौं बिनु पिय प्यारे इन अँखियन दरसाएँ॥
केहि सुख लागि जियत हम अब लौं यह नहिं परत लखाई।
बिनु ब्रजनाथ देखि ब्रज सूनो प्रान रहत किमि माई॥
वह बन-बिहरन कुंज कुंज में सपनेहू नहिं देखैं।
ऊधो जोग सुनन तुव मुख सौं प्रान रहे एहि लेखैं॥
बिनु प्रिय प्राननाथ मन-मोहन आरत-हरन कन्हाई।
'हरीचंद' निरलज जग जीवत हम भाथी की नाई॥४९॥

सवैया

देत असीस सदा चित सों यह
साहिबी रावरी रोज बनी रहै।
रूप अनूप महा धन है
'हरिचंद जू' वाको न नेकु कमी रहै।
देखहु नेकु दया उर कै
खरी द्वार अरी यह जाचक-भीर है।
दीजियै भीख उघारि कै घूँघट
प्यारी तिहारी गली को फकीर है॥५०॥

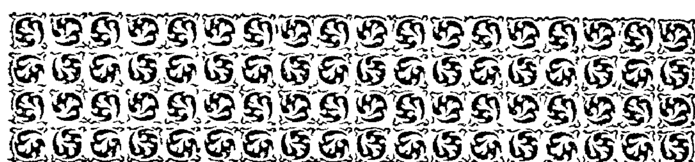
अब तौ जग मैं खुलि कै चहुँघा
पन प्रेम को पूरो पसारि चुकी।
कुल-रीति औ लोक की लाज सबै
'हरिचंद जू' नीके बिगारि चुकी।
वहि साँवरी मूरति देखत ही
अपुने सरबस्वहि हारि चुकी।
जग मैं कहू कोऊ कहौ किन हौं
तौ मुरारि पै प्रान कों वारि चुकी॥५१॥

छोटे प्रबंध-काव्य

तथा

मुक्तक कविताएँ

सं० १९१८–४१



स्वर्गवासी श्री अलवरत* वर्णन अंतर्लापिका

(सं० १९१८)

छप्पय

वस हित सानुस्वार देव-वाणी मधि का है?
अद्यहि भाषा माहिं कहा सव भाखन चाहै?
को तुव हाथौ सदा? दान तुम नितहिं करत किमि?
का तुव मीठे सुनत? कहा सोहत नागिन जिमि?
महरानी तुम कहँ का कहत? अरि-सिर पै तुम का धरत?
का जल की सोभा? कौन तुव सैन सदा निज भुज करत ॥ १ ॥

तुम स्व-नारि मैं कहा? कौन रच्छा तुव करई?
का करिकै तुव सैन सत्रु को वल परिहरई?
कैसो तुव जन हियो? ततो वाचक का भासा?
तुव अरि-सिर नित कहा? कौन जल वरसत खासा?
तुव पग संगर में का करत? कौन प्रथम पाताल कहि?
आमोदित कासों तुव वसन? का ह्वै पर दल परत महि ॥ २ ॥

---

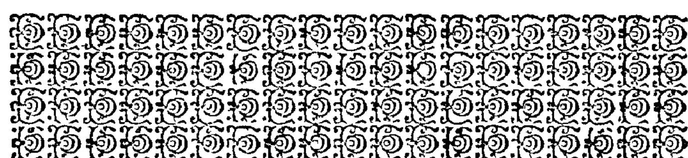
* १४ दिसंवर सन् १८६१ ई० को क्वीन विक्टोरिया के पति प्रिंस एल्वर्ट की मृत्यु हुई थी। उक्त अवसर पर यह अंतर्लापिका वनी थी। सं०

तुव धन कासों है वढ़ि ? को पुनि देश जवन को ?
कौन मुखर ? तुम करत कहा अरि देखि भवन को ?
तरु की सोभा कहा ? होत तृन से कह तुव अरि ?
पर सों कायर कहा न ? तुम किमि चलत सैन दरि ?
तोहिं वान चलावन की सदा कहा परी पर फौज लखि ?
कह वाजि उठत घन गाजि जिमि साजत तोहिं रन लखि हरखि॥३॥

कह सितार को सार ? शत्रु के किमि मन तेरे ?
काकी मार प्रहार सीस अरि हनै घनेरे ?
का तुम सैनहिं देत सदा उनतिसएँ ही दिन ?
कहा कहत स्वीकार समय कछु अवसर के छिन ?
को महरानी को पति परम सोभित स्वर्गहि ह्वै रह्यो ?
अलवरत एक छत्तीस इन प्रश्नन को उत्तर कह्यो ॥ ४ ॥

(यथा = अलं, अव, अर, अत इत्यादि क्रम से छत्तीसो प्रश्नों के उत्तर केवल 'अलवरत' इन पाँच ही अक्षर में निकलते हैं ।)





श्री राजकुमार-सुस्वागत-पत्र*

(सं० १९२६)

जाके दरन-हित सदा नैना मरत पियास।
सो मुख-चंद विलोकिहैं पूरी सब मन आस ॥ १ ॥
नैन बिछाए आपु हित आवहु या मग होय।
कमल-पाँवड़े ये किए अति कोमल पद जोय ॥ २ ॥

हे हे लेखनी, आज तुझे मानिनी बनना उचित नहीं है, क्योंकि इस भूमि के नायक ने चिर-समय पीछे अपने प्यारी की सुधि ली है।

आज तू भी आगत-पतिका बन और सोरह शृंगार करके इस पत्र रूपी रंगशाला में ऐसी मनोहर और मदमाती गति से चल कि सब देखनेवाले मोहित हो होके मतवाले से झूमने लगें और ऐसी फूलों की झड़ी लगा जिससे महाराज-कुमार के कोमल चरनों को यह पत्रिका एक फूल के पाँवड़े सी बन जाय।

आज क्या कारण है कि उपवनों में कोकिल ने धूम सी मचा रखी है और भँवरे मदमाते होकर इधर से उधर दौड़े दौड़े फिरते हैं? वृक्षों को ऐसा कौन सा सुख हुवा है कि मतवालों की भाँति

---

* ड्यूक आव एडिन्बरा के सन् १८६९ ई० में भारत-शुभागमन के अवसर पर लिखा गया था। सं०

झुक झुक के भूमि चूम रहे हैं और लता सब ऐसी क्यों प्रमुदित हैं कि कुलटा नायिका की भाँति लाज छोड़ छोड़ के अपने नायक से लिपट रही हैं और फलों ने ऐसा क्या सुख पाया है कि अपना स्थान छोड़ छोड़ के उमगे हुए पृथ्वी पर टपके पड़ते हैं और फूलों ने किस के आने का समाचार सुन लिया है कि फूले नहीं समाते हैं। मालिनें शृंगार करके किस के हेतु यह कोमल और अनेक रंग के फूलों की माला गूँथ रही हैं और यह ठंढी पौन किस के अंग को छू के आती है कि सब के मन की कली सी खिली जाती है। नदियों और सरोवरों के पानी क्यों उछल उछल के अपना आनंद प्रकाश कर रहे हैं और उनमें कँवल की कलियाँ किस की स्तुति के हेतु हाथ बाँधे खड़ी हैं। हंस और चकोर ऐसी कुलेल क्यों करते हैं और वर्षा बिना मोर क्यों नाच रहे हैं। पक्षी लोग बड़े उत्साह से किस के आने की बधाई गाते हैं और हिरन लोग अपने बड़े बड़े नेत्रों से किस के दर्शन की आशा में तृण छोड़ छोड़ के खड़े हो रहे हैं। खिड़कियों मे स्त्री लोग किस के हेतु पुतली सी एकाग्र-चित्त हो रही हैं और मंगल का सब साज किस के हेतु सजा है। सुना है कि हम लोगों के महाराज-कुमार आज इधर आनेवाले हैं, फिर क्यों न इस भारतवर्ष के उद्यान में ऐसा आनंद-सागर उमगै। भारतवर्ष के निवासी लोगों को अब इससे विशेष और कौन आनंद का दिन होगा और इससे बढ़ के अपने चित्त का उत्साह और आधीनता प्रगट करने का और कौन सा समय मिलेगा। कई सौ बरस से हम लोग चातक की भाँति आसा लगाए थे कि वह भी कोई दिन ईश्वर दिखावैगा, जिस दिन हम अपने पालनेवाले को इन नेत्रों से देखेंगे और अपना उत्साह और प्रीति प्रगट करेंगे। धन्य उस जगदीश्वर को जिसने आज हमारे मनोर्थ पूर्ण करके हम को

उस अपूर्व निधि का दर्शन कराया जिस का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ था। धन्य आज का दिन और धन्य यह घड़ी जिसमें हमारे मनोर्थ के वृक्ष में फल लगा और अपने राज-कुँवर को हम लोगों ने अपने नेत्रों से देखा। इस समै हम लोग तन मन धन जो कुछ न्योछावर करैं थोड़ा है और जो आनंद करैं सो वहुत नहीं है। ईश्वर करै जव तक फूलों में सुगंधि और चंद्रमा में प्रकाश है और पद्मिनी-नायक सूर्य्य जव तक उदयाचल पर उगता है और गंगा-जमुना जव तक अमृत धारा वहती हैं तव तक इनके रूप-वल-तेज और राज्य की वृद्धि होय, जिसमें हम लोग इनके कर-कल्प-वृक्ष की छाया में सव मनोर्थ से पूर्ण होकर सुखपूर्वक निवास करें।

कवित्त

जनम लियो है महारानी-कोख-सागर तें
जामें तौ कलंक को न लेसहू लखायो है।
सुभट समूह साथ सोहत हैं तारागन
कुमुदहि तू न हिए हरख वढ़ायो है॥
चाहि रहे चाह सों चकोर ह्वै प्रजा के पुंज
वैरी तम निकर प्रकास तें नसायो है।
आनँद असेस दीवे हेत हिंद वीच आज
कुँवर प्रतापी नख-तेज वनि आयो है॥१॥

कोकिल समान वोलि उठे हैं सुकवि सवै
कामदार भौंर से वधाई लै लै धाए हैं।
लागि उठी लाय विरहीन की सी वैरिन कों
वौरि उठे हाकिम रसाल से सुहाए हैं॥

फूलि के सफल भे मनोरथ सबन ही के
नाचि उठे मोर से प्रजा के मन भाए हैं।
साजि कै समाज महारानी के कुँवर आजु
दीबे सुख-साज रितुराज बनि आए हैं ॥२॥

दोहा

अरी आज संभ्रम कहा जात परत कछु नाहिं।
बौरे से दौरे फिरत फूले अंगन माहिं ॥३॥
धावत इत उत प्रेम सों गावत हरख बढ़ाय।
आवत राजकुमार यह कहत सुनाय सुनाय ॥४॥
करत मनोरथ की लहर सागर मन समुदाय।
राजकुँवर-मुख-चंद लखि, उमगि चल्यो अकुलाय ॥५॥

अथ षट् ऋतु रूपक

बसंत

आनँद सों बौरी प्रजा, धाये मधुप समाज।
मन-मयूर हरसित भए, राजकुँवर-रितुराज ॥६॥

ग्रीष्म

तपत तरनि तिमि तेज अति, सोखत बैरि अपार।
जीवन में जीवन करत, ग्रीषम-राजकुमार ॥७॥

वर्षा

प्रजा कृषक हरखित करत, बरसत सुख-जल-धार।
उमगावत मन नदिन कों, पावस-राजकुमार ॥८॥

शरद

फूले सब जन मन-कमल, नभ-सम निरमल देस।
विकसित जस की कैरवी, आया सरद नरेस ॥९॥

हेमंत

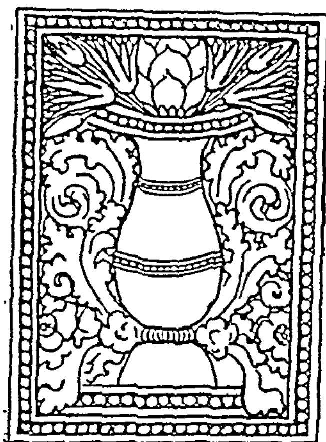
मुरझावत रिपु-वनज वन, अग्नि कँपावत गात ।
राजकुँवर हेमंत बनि, आवत आज लखात ॥१०॥

शिशिर

पीरे मुख वैरी परे, पिकन बधाई दीन ।
सीरे उर सब जन भए, सिसिर-कुमार नवीन ॥११॥

विनय

विनवत जुग प्रफुलित जलज, करि कलि कैंक समान ।
धुजा-भुजा की छाँह मैं, देहु अभय-पद दान ॥१२॥



सुमनोऽञ्जलिः *

(सं० १९२७)

PREFACE

The short stay of H. R. H. the Duke of Edinburgh at Benares prevented me from personally presenting him this 'Offering of flowers' on the occasion of his visit to this city. With the co-operation of some of my esteemed friends, I convened a meeting at my house on the 20th January and invited many respectable and learned Pundits and Gentlemen to attend it. The meeting was formally opened by me by reading the biography of the Royal Prince in Hindi, and in conclusion requesting the gentlemen present on the occasion to adopt suitable measures for the address. The Pundits of the city expressed their great satisfaction, and read individually some Shlokas (verses) in Sanskrit expressing their heart-felt joy on the advent of the Royal Prince to this

---

* इस सुमनोंजलि में सर्व श्री बापूदेव, राजाराम, बेचनराम, बस्तीराम, बालशास्त्री, गोविंद देव, शीतलप्रसाद, ताराचरण, गंगाधर शास्त्री, रमापति, नृसिंह शास्त्री, ढुंढिराज, विश्वनाथ, विनायक शास्त्री और रामकृष्ण शास्त्री आदि के संस्कृत श्लोक हैं। इनके सिवा नारायण और हनुमान कवि की हिंदी कविताएँ भी हैं। स०

city. The verses are entered systematically into this book. The meeting then broke. The gentlemen present on the occasion evinced great joy and loyalty to the Royal Prince for which this small book containing the expressions of their sincere loyalty, is most respectfully dedicated to his Gracious feet.

Benares
10th March 1870. } HARISCHANDRA.

Names of the gentle-men present on the occasion of the meeting held for presenting an address to H. R. H. the Duke of Edinburgh.

Prof. Shri Bapu Deva Shastri F. R. A. S. and Fellow Calcutta University.
Shri Raja Ram Shastri
,, Basti Ram ,,
,, Govind Deva ,,
,, Bal ,,
,, Seetal Prasad.
,, Bechan Ram.
,, Krishna Shastri.
,, Dhundhi Raj Dharmadhikari.
,, Ramapati Dube.
,, Ram Krishna Pattburdhana.
,, Shiva Ram Govind Ranade.

Shri Narayan Kavi.
,, Hanuman Kavi.
,, Hari Bajpai.
Rai Narsingh Das.
,, Jaya Krishna Das.
,, Lakshmi Chandra.
,, Murari Das.
,, Balkrishna Das.
,, Radha Krishna Das.
Babu Vishweshwar Das.
,, Madho das.
,, Madhusudan Das.
,, Gokul Chandra.
,, Shama Das.
,, Loke Nath Moitre.
Munshi Sankata Prasad.
Molvi Asharaf Ali Khan.
Babu Balgovinda.

काशी में ग्रहण के हित महाराज-कुमार के आने के हेतु

कवित्त

वाको जन्म जल याको रानी-कुल-सागर तें
वह तो कलंकी यामे छींटहु न आई है।
वह नित घटै यह बाढ़ै दिन दिन
वह बिरही-दुखद यह जग-सुखदाई है।।
जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही में
गहन के मिस यह मति उपजाई है।
देखि आजु उदित प्रकासमान भूमि चंद
नभ ससि लाजि मुख कालिमा लगाई है।।



सन् १८७१ में श्रीमान प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर कविता*

(सं० १९२८)

जय जय जगदाधार प्रभु, जग-व्यापक जगदीस।
जय जय अनतारति-हरन, जय सहस्र-पद-सीस ॥ १ ॥
करुना-वरुनालय जयति, जय जय परम कृपाल।
सुद्ध सच्चिदानन्द-घन, जय कालहु के काल ॥ २ ॥
सब समर्थ जय जयति प्रभु, पूर्ण ब्रह्म भगवान।
जयति दयामय दीन-प्रिय, क्षमा-सिन्धु जन-जान ॥ ३ ॥
हम हैं भारत की प्रजा, सब विधि हीन मलीन।
तुम सों यह विनती करत, दया करहु लखि दीन ॥ ४ ॥
हाथ जोर सिर नाइ कै, दाँत तरे तृन राखि।
परम नम्र ह्वै कहत हैं, दीन बचन अति भाखि ॥ ५ ॥
विनवत हाथ उठाय कै, दीजै श्री भगवान।
जुवराजहिं गत-रुज करौ, देहु अभय को दान ॥ ६ ॥
तिनके दुख सों सब दुखी, नर-नारिन के वृन्द।
तासों तुरतहि रोग हरि, तिन कहँ करहु अनंद ॥ ७ ॥
जिनकी माता सब प्रजा-गन की जीवन-प्रान।
तिनहिं निरोगी कीजिये, यह विनवत भगवान ॥ ८ ॥
वेग सुनैं हम कान सों, प्रिन्स भए आनन्द।
परम दीन ह्वै जोरि कर, यह विनवत हरिचन्द ॥ ९ ॥

---

* सन् १८७१ ई० के नवंबर में टाइफॉयड (विषम) ज्वर के कारण कई दिनों तक प्रिंस की अवस्था कष्टसाध्य हो गई थी। उस समय यह कविता लिखी गई थी। सं०

॥ श्री जीवन जी महाराज ॥*

(सं० १९२९)

हरि को प्यारी कौन? देह काके बल धावत?
कहा पदन में परि विशेषता बोध करावत?
कहा नवोढ़ा कहत? ठाकुरन को को स्वामी?
सुरगन को गुरु कौन? बसत केहि थल रिसि नामी?
हरि-वंशी-धुनि सुनि सकल व्रजवनिता का कहि भजैं?
वह कौन अंक जो गुननहूँ किए रूप निज नहिं तजैं॥ १॥

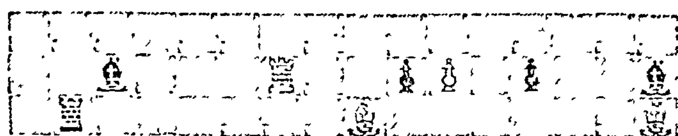
अश्व-पीठ कह धरत? कौन रवि के जिय भावत?
राजा के दरबार सभहि सुधि कौन दिखावत?
नवल नारि में कहा देखि जुव-जन मन लोभा?
को परिपूरन ब्रह्म? कहा सरवर की शोभा?
धन विद्या मानादिक सुगुन भूपित को जग-गुरु रह्यो?
इन सब प्रश्नन को एक ही उत्तर श्री जीवन कहौ॥ २॥

---

* जिन श्री जीवन जी महाराज के अशेष गुण इस पत्र में लिखे गए हैं उनके नाम की मैंने एक अन्तर्लापिका बनाई है, कृपा करके प्रकाश कीजिएगा। इस अन्तर्लापिका में १६ प्रश्न के उत्तर चार ही अक्षर से निकलते हैं।

अथ क्रम से उत्तर॥ १ श्री २ जी ३ व ४ न ५ श्री जी ६ जीव ७ वन ८ वजी ९ नव १० जीन ११ वनजी १२ नजीव १३ नव श्री १४ श्रीजीन १५ जीवन १६ श्री जीवन।

(सुधा, २ सितम्बर सन् १८७२ ई०)



चतुरंग*

(सं० १९२९)

वीस, तीस, चौवीस, सात, तेरह, उन्निस कहि।
चारुक, दस, पच्चीस, वयालिस, सत्तावन लहि ॥
इक्कावन, छत्तिस, इक्किस, एकतिस, सोलह, खट।
वारह, द्वै, सत्रह, सत्ताइस, तैंतिस गिन झट ॥
पचास, साठ, तैंतालिस, सैंतिस, चौवन, चौंसठ लहिय।
सैंतालिस, वासठ, छप्पन, उनतालिस, पैंतालिस कहिय ॥१॥
पैंतिस, एकतालिस, अट्ठावन, वावन को गठ।
छियालीस, एकसठ, पचपन्न, चालिस, तेइस, अठ ॥

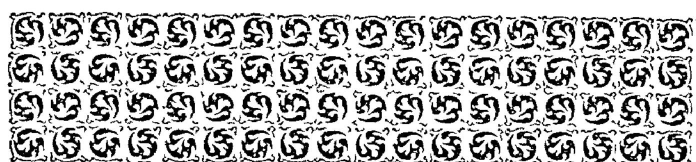
---

* कविवचन सुधा (३ अगस्त १८७२ ई०) में प्रकाशित। ऊपर लिखे हुए तीनों छप्पय वावू हरिश्चंद्र के वनाए हैं। इनको कंठ कर लेने से चतुर मनुष्य सभा में चौंसठो घर पर घोड़ा दौड़ा सकता है। सुधाकर नामक जो वनारस में समाचार पत्र किसी समय में छपता था, उसमें एक लेख इसी खेल पर लिखा है और उसमें उक्त पत्र के सम्पादक ने वड़े वाद से स्थापन किया है कि यह प्राचीन समय में हिंदुस्तान के किसी चतुर मंत्री ने वालक राजा को नीति सिखाने के हेतु वनाया था और यह वात श्री वावू राजेंद्रलाल के पुस्तक-संग्रह में संस्कृत प्राचीन ग्रंथों के नाम में "चतुरंग क्रीड़न" नाम देखने से और भी सिद्ध होती है। जो हो, और वुरे खेलों से तो यह खेल अच्छा ही है।

चौदह, उनतिस, चौवालिस, चौंतिस, उनचासो ।
उनसठ, तिरपन, तिरसठ, अड़तालीस प्रकासो ।
अड़तिस, बत्तिस, 'हरिचंद' पंद्रह, सु पाँच, बाईस लहि ।
अट्ठाइस, ग्यारह, छबिस, नव, तीन, अठारह, एक कहि ।।२।।

चतुर जनन को खेल चारु चतुरंग नाम को ।
तामें चपल तुरंग चलत द्वय अर्द्ध धाम को ।।
जिमि कोउ विज्ञ सवार बाजि चढ़ि व्यूह माँह धँसि ।
फेरै तेहि सब ठौर कठिन यद्यपि चाबुक कसि ।।
तिमि चौंसठहू घर मैं फिरै बाजि अंक सब ये कहहु ।
'हरिचंद' रसिक जन जानि एहि नित चित परमानंद लहहु ।।३।।





देवी छद्म-लीला*

(सं० १९३०)

श्रीराधा अति सोचत मन में ।
कौन भाँति पाऊँ नँद-नंदन पिया अकेले वृंदावन में ।।
वे बहु-नायक रस के लोभी उनको चित्त अनेक तियन में ।
घेरे रहति सौति निसि बासर छोड़त नाहिं एकहू छन में ।।
हमरे तो इक मोहन प्यारे बसे नैन में तन में मन में ।
'हरीचंद' तिन बिन क्यों जीवैं दिन बीतत याही सोचन मैं ।।१।।

तब ललिता इक बुद्धि उपाई ।
सुन री सखी बात इक सोची सो मैं तुम सों कहत सुनाई ।।
हम सब बनत ग्वाल अरु पंडित देवी आपु बनहु सुखदाई ।
तिन सों जाय कहत हम अद्भुत वृंदावन देवी प्रगटाई ।।
अति परतच्छ कला है वाकी ताकों देखन चलहु कन्हाई ।
'हरीचंद' यह छल करिकै हम लावत तिनकों तुरत लिवाई ।। २ ।।

यहै बात राधा मन भाई ।
आपु बनी वृंदावन-देवी सखियन कों तहँ दियो पठाई ।।

---

* बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सन् १८७३ ई० में प्रकाशित ।

बैठी आसन करि मंदिर मैं सखियन की द्वै भुजा बनाई।
बेनु शृंग पुनि लकुट कमल लै चार भुजा तहँ प्रगट दिखाई॥
माथे क्रीट मोर-पखवा को सारी लाल लसी सुखदाई।
रतनन के आभरन बने तन जिनपैं दृष्टि नाहिं ठहराई॥
मौन साधि दोउ नैनन थिर करि मूरति बनी महा छवि छाई॥
'हरीचंद' देविन की देवी आज परम परमा प्रगटाई॥ ३॥

तब सखियन निज भेस बनायो।
कोउ बनि ग्वाल बनी कोउ पंडा पुरुषन ही को रूप सुहायो॥
वृंदाबन में सब मिलि पहुँचीं जहँ मन-मोहन धेनु चरावत।
तिन सों जाइ कहन यों लागीं सुनहु लाल इक बात सुनावत॥
अचरज एक बड़ो भयो बन में वट तर इक देवी प्रगटानी।
अति परतच्छ कला है वाकी महिमा कहू न जात बखानी॥
इक आवत इक जात नगर तें भीर भई लाखन की भारी।
जो जोइ माँगत सो सोइ पावत साँच कहत करि सपथ तिहारी॥
तुम त्रिभुवन के नाथ कहावत तासों ताहि बिलोकहु जाई।
'हरीचंद' सुनि अति अचरज सों तुरत चले उठि त्रिभुवन-राई॥ ४॥

मन-मोहन पूजन-साज लिये दरसन कों देवी के आए।
तहाँ भीड़ देखि नर-नारिन की मन में अति ही बिस्मै छाए॥
इक आवत हैं इक जात चले इक पूजत माला-फूल लिए।
इक अस्तुति दोउ कर जोरि करैं इक मुख सों जै-जैकार किए॥
तिन मोहन सों यह बात कही तुमहूँ पूजा को साज करौ।
मुँह-माँगो फल बरदान मिलै जो तनिकहु उर में ध्यान धरौ॥
सुनिकै मनमोहन देवी के तब पूजन को सब साज कियो।
'हरिचंद' सुअवसर देखि तहाँ बरदान भक्ति को माँग लियो॥ ५॥

न्यौते काहू गाँव जात ही जसुमति हू निकसी तहँ आई।
भीड़ देखि पूछत सखियन सों यहाँ जुटीं क्यौं लोग-लुगाई॥
काहू कह्यौ अजू या वट सों देवी एक नई प्रगटाई।
ताकी जात करन सब आवैं नर-नारी इत हरख बढ़ाई॥
सुनि अति अचरज सों जसुदा तब देवी के दरसन को धाई।
'हरीचंद' मालिन सों लै कै फूल बतासा पूजत जाई॥ ६॥

हरिहु मातु ढिग आइ गए।
कहत सुनत चरचा देवी की सब मिलि भीतर भवन भए॥
दरसन करि देवी को पूज्यौ सब मिलि जै-जैकार दए।
'हरीचंद' जसुदा माता तब अस्तुति ठानो भगति लए॥ ७॥

चिरजीओ मेरो कुँवर कन्हैया।
इन नैनन हौं नित नित देखों राम कृष्ण दोउ भैया॥
अटल सोहाग लहो राधा मेरी दुलहिन ललित ललैया।
'हरीचंद' देवी सों माँगत आँचर छोरि जसोदा मैया॥ ८॥

जब राधा को नाम लियो।
तब मूरत कछु मन मुसुकानी पै कछु भेद न प्रगट कियो॥
पूजा को परसाद सखिन तब जसुदा मोहन दुहुँन दियो।
'हरीचंद' घर गई जसोदा कहि जुग-जुग मेरो लाल जियो॥ ९॥

मोहन जिय सँदेह यह आयो।
जब राधा को नाम लियो तब बाम्हन को गन क्यौं मुसकायो॥
मूरतिहू कछु जिय मुसकानी या मैं है कछु भेद सही।
प्यारी-स्वेद-सुगंधहु या परसादी माला बीच लही॥
पूछि न सकत सँकोचन सब सों अति आतुर चित लाल भए।
'हरीचंद' बृजचंद साँवरे मन में महा सँदेह लए॥१०॥

तब मोहन यह बुद्धि निकासी ।
जौ यह राधा तौ नहिं छिपिहै अंत प्रीति ह्वैहै परकासी ॥
यह जिय सोचि हाथ बीरा लै देवी के अधरान लगायो ।
नख सों अधर छुयो ताही छिन देवी तन पुलकित ह्वै आयो ॥
सखियन कह्यौ छुओ मत देविहि पहिने वसनन तुम सुखदाई ।
'हरीचंद' हँसि मौन भए तब कह्यौ भेद की गति मैं पाई ॥११॥

हाथ जोरि हरि अस्तुति ठानी ।
जय जय देवी बृंदावन की जै जै गोपिन की सुखदानी ॥
तुम तो देवी अहौ बोलती आजु मौन गति नई लखानी ।
जो अपराध भयो कछु हमसों तो ताको छमिए महरानी ॥
रूप-उपासी बिना मोल को दास हमैं लीजै जिय जानी ।
'हरीचंद' अब मान न करिये यह बिनती लीजै मन मानी ॥१२॥

हे देवी अब बहुत भई ।
यह बरदान दीजिए हमको कछु मत कीजै आजु नई ॥
अब कबहूँ अपराध न करिहौं तुव चरनन की सपथ करौं ।
छमा करौ हौं सरन तिहारी त्राहि त्राहि यह दीन खरौ ॥
सह्यौ न जात बिरह यह कहिकै नैनन में हरि नीर भरे ।
'हरीचंद' बेबस ह्वै कै श्री राधा जू के चरन परे ॥१३॥

देखि चरन पैं पीतम प्यारो ।
छुटि गयो मान कपट कछु जिय मैं रह्यौ छद्म को नाहिं सँभारो ॥
धाइ उठाइ लियो भुज भरिकै नैनन नीर भर्यो नहिं टारो ।
तन कंपत गद्‌गद सुर बानी कह्यौ न कछु जो कहन बिचारो ॥
रहे लपटाइ गाढ़ भुज भरिकै छूटत नहिं तिय हिए पियारो ।
'हरीचंद' यह सोभा लखि कै अपनो तन-मन सहजहि वारो ॥१४॥

पूछत लाल बोलि किन प्यारी ।
क्यौं इतनो पाखंड बनायो ठग्यौ बड़ो ठगिया बनवारी ॥
प्यारी कह्यौ तुम्हारेहि कारन प्यारे श्रम यह कीन्हो भारी ।
तुम बहु-नायक मिलत कहूँ नहिं ताही सों यह बुद्धि निकारी ॥
प्रेम भरे दोउ मिलत परस्पर मुख चूमत हैं अलकन टारी ।
'हरीचंद' दोउ प्रीति-बिबस लखि आपुन-पौ कीनौ बलिहारी ॥१५॥

सखियनहू निज बेस उतार्‌यौ ।
धाई सबै चारहू दिसि सों कहत बधाई तन मन वार्‌यौ ॥
कोउ लाई सज्जा कोउ बीरी कोउन चँवर मोरछल ढार्‌यौ ।
कोउन गाँठि जोरि कै दोउ कों एक पास लैके बैठार्‌यौ ॥
दूलह बन्यौ पियारो राधा दुलहिन कों सिंगार सँवार्‌यौ ।
'हरीचंद' मिलि केलि बधाई गावत अति जिय आनँद धार्‌यौ ॥१६॥

चिरजीओ यह अविचल जोरी ।
सदा राज राजौ बृंदावन नँद-नंदन बृपभानु-किशोरी ॥
देत असीस सबै ब्रज-जुवती करत निछावरि मनि-गन छोरी ।
आरति बारत धीर न धारत रहत रूप लखि कै तृन तोरी ॥
कुंज-महल पधराइ लाल कों हटीं सबै ब्रज-बासिनि गोरी ।
मिलि बिलसत दोऊ अति सुख सों 'हरीचंद' छवि भाखै को री ॥१७॥

यह रस ब्रज मैं रहौ सदाई ।
जो रस आजु रह्यौ कुंजन मैं छदम-केलि-सुख पाई ॥
नित नित गाओ री सब सखियाँ मोहन-केलि-बधाई ।
'हरीचंद' निज बानी पावन करन सुजस यह गाई ॥१८॥



प्रातःस्मरण मंगल-पाठ*

(सं० १९३०)

मंगल राधा - कृष्ण - नाम - गुन-रूप सुहावन ।
मंगल जुगल-विहार रसिक-मन-मोद-बढ़ावन ॥
मंगल गल भुज डारि बदन सों बदन मिलावनि ।
मंगल चुंबन लेनि बिहँसि हँसि कंठ लगावनि ॥
आलिंगन परिरंभन मिलनि मंगल कोक-कलानि कढ़ि ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी जुगल-केलि रसरेलि बढ़ि ॥१॥

मंगल प्रातहि उठ कछुक आलस रस पागे ।
सिथिल बसन अरु केस नैन घूमत निसि जागे ॥
भुज तोरनि जमुहानि लपटि कै अलस मिटावनि ।
भूखन बसन सँवारि परसपर नैन मिलावनि ॥
कछु हँसनि सीकरनि लाज सों मुरि मुरि अँग पर गिरि परनि ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी प्रात उठनि पग धरि धरनि ॥२॥

मंगल सखी - समाज जानि आगे उठि धाई ।
जल-झारी पिकदान बस्त्र दरपन लै आई ॥

---

* हरिप्रकाश यंत्रालय, नैपाली खपरा, काशी की प्रकाशित प्रति पत्राकार है, पर इसमें समय नहीं दिया है ।

करि मुजरा बलिहार भई लखि नैन सिराई।
प्रगट सुरत के चिन्ह देखि कछु हँसी-हँसाई।
मुख धोइ पाग कसि आरसी देखत अलक सँवारहीं।
'हरिचंद' भोग मगल धर्‍यौ आरोगत मन वारहीं ॥ ३ ॥

मंगल भेरि मृदंग पनव दुंदुभि सहनाई।
चंग सुचंग उपंग झाँझ झालरी सुहाई ॥
गोमुख आनक ढोल नफीरो मिलि कै साजै।
मंगलमयी मुरलिका विच विच अजुगुत वाजै ॥
जै करति हाथ जोरे सवै मुरछल विंजन ढारहीं।
'हरिचंद' महा मंगलमयी मंगल-आरति वारहीं ॥ ४ ॥

मंगल जुगल नहाइ विविध सिंगार वनावत।
मंगल आरसि देखि फूल-माला पहिरावत ॥
मंगल गोपी गोपी-वल्लभ भोग लगावत।
मंगल ग्वालिन आइ दूध मथि धैया प्यावत ॥
मंगल भोजन वहु विधि करत उठि वीरी मुख मैं धरत।
मंगल उगार 'हरिचंद' लै राज-भोग आरति करत ॥ ५ ॥

मंगल वन के फल अनेक भीलिनि लै आई।
मंगल जुगल समेत फूल-माला पहिराई ॥
मंगल संध्या भोग अरपि आरति मिलि करहीं।
मंगलमय सिंगार वहुरि निसि हलको धरहीं ॥
मंगल व्यारू पै पान करि वीरी खात जँभात हैं।
'हरिचंद' सैन आरति करत सखि सब निरखि सिहात हैं ॥६॥

मंगल वृंदा-विपिन कुंज मंगलमय सोहै।
मंगल गिरि गिरिराज वृक्ष मंगल मन मोहै ॥

मंगल वन सब ओर झरत झरना सब मंगल ।
मंगल पच्छी बोल सुमंगल फूल पत्र फल ।।
मंगल अलि-कुल गावत फिरत मंगल केकी नाचहीं ।।
'हरिचंद' महामंगल सदा नित वृंदावन माँचहीं ।। ७ ।।

मंगल जमुना-नीर कमल मंगलमय फूले ।
मंगल सुंदर घाट बँधे भँवरे जहँ भूले ।।
मंगलमय नँद-गाँव महावन मंगल भारी ।
मंगल गोकुल सबै ओर उपवन सुखकारी ।।
मंगल बरसानो नित नवल मंगल रावलि सोहई ।
'हरिचंद' कुंड तीरथ सबै मंगलमय मन मोहई ।। ८ ।।

मंगल श्री नँदराय सुमंगल जसुदा माता ।
मंगल रोहिनि मंगलमय बलदाऊ भ्राता ।।
मंगल श्री वृषभानु सुमंगल कीरति रानी ।
मंगल गोपी ग्वाल गऊ हरि को सुखदानी ।।
मंगल दधि दूध अनेक विधि मंगल हरि-गुन गावहीं ।
'हरिचंद' लकुट अरु मुकुट धरि मंगल बेनु बजावहीं ।। ९ ।।

मंगल वल्लभ नाम जगत उधर्‌यो जेहि गाए ।
विष्णु स्वामि-पथ परम महा मंगल दरसाए ।।
मंगल विट्ठलनाथ प्रेम-पथ प्रगटि दिखायो ।
मंगल कृष्ण-वियोग-दुःख-अनुभव प्रगटायो ।।
मंगल दैवी जन दुखी लखि दान चलायो नाम को ।
'हरिचंद' महामंगल भयो दुख मेट्यौ सब जाम को ।।१०।।

मंगल गोपीनाथ रूप पुरुषोत्तम धारी ।
श्री गिरिधर गोविंद राय भक्तन-दुखहारी ।।

बालकृष्ण श्री गोकुलेस रघुनाथ सुहाए ।
श्री जदुपति घनस्याम सात वपु प्रगट दिखाए ॥
मंगलमय वल्लभ वंस वर अटल प्रेम-मारग रह्यौ ।
'हरिचंद' महा मंगलमयी वेद-सार जिन मथि कह्यौ ॥११॥

मंगलमय वल्लभी लोग भय-सोग मिटाए ।
मंगल-माला कंठ तिलक अरु छाप लगाए ॥
मंगलमय सतसंग कीरतन कथा सुहानी ।
मंगल तिनकी मिलनि कहनि बोलनि सुखदानी ॥
मंगल अनुराग सुनयन जल हँसनि नचनि गावनि रमनि ।
'हरिचंद' जगत सिर पाँव धरि मंगल लीला मैं गमनि ॥१२॥

मंगल गीता और भागवत सों मथि काढ़ी ।
मंगल-मूरति जुगल-चरित विरुदावलि बाढ़ी ॥
द्वादस द्वादस अर्ध पदी जो प्रातहि गावै ।
मंगल बाढ़ै सदा असंगल निकट न आवै ॥
मंगल चंद्रावलिनाथ की केलि-कथा मंगल-मई ।
मंगल बानी 'हरिचंद' की सबही को मंगल भई ॥१३॥

सुमिरौं वल्लभ रूप महा मंगल फल पावन ।
गौर शुभ्र वपु प्रगट श्याम लोचन मन-भावन ॥
दृग बिसाल आजानु-बाहु पदमासन सोहै ।
गल तुलसी की माल देखि सबको मन मोहै ॥
सिर तिलक बाहु पर छाप वर केस बँध्यौ सिर राजई ।
त्रय ताप जनन को दूर सों देखत ही दुरि भाजई ॥१४॥

जुगल-केलि-रस-मत्त हँसत लखि ज्ञान खलन कहँ ।
दैविन पैं अति करुन रौद्र मायावादिन पहँ ॥

वादिन पैं उत्साह भयद असुरन कहँ पग पग।
दीन जीव पैं घृणित अचंभित देखि विमुख जग॥
अति शांत भक्तवत्सल परम सख्य विबुध-जन सों करत।
जग-हास्य सिखावत मुख मधुर आनँदमय रस वपु धरत॥१५॥

हृदय आरसी माँहि जुगल परतच्छ लखावत।
जग-उधार में रसिक माल कर सोभा पावत॥
चरन-कमल-तल सकल विमल तीरथ दरसावत।
मुख सों श्री भागवत गूढ़ आसय नित गावत॥
घेरे चहुँ दिसि सब संतजन जे हरि-रस भींजे रहत।
कर ज्ञान-मुद्रिका धारि कै तिनसों कृष्ण-कथा कहत॥१६॥

कबहुँ अचल ह्वै रहत मौन कछु मुख नहिं भाखत।
कबहुँ वाद झर लाइ खंडि माया-मत नाखत॥
जुगल-केलि करि याद हँसत कबहूँ गुन गावत।
कंपादिक परतच्छ सँचारी भाव जनावत॥
तन रोम-पाँति उचटित सदा गद्गद हरि-गुन मुख कहत।
लखि दीन-दसा जग जीय की उमगि निरंतर दृग बहत॥१७॥

तीरथ पावन करन कबहुँ भुव पावन डोलत।
श्री भागवत-सुधा-समुद्र मथि कबहूँ बोलत॥
ग्रंथ रचत एकाग्र चित्त करि बाँचि सुनावत।
कबहुँ बैठि एकांत बिरह अनुभव प्रगटावत॥
सेवा करि पीतम की कबौं सिरमत विधि सेवन प्रगट।
कबहूँ सिच्छव जन आपुने विविध बाक्य-रचना उचट॥१८॥

मोर कुटी महँ बैठि खिलावत कबहुँ लाल कहँ।
खेलत धरि द्वैरूप बाल-तन बनि मोहन तहँ॥

हरे कुंज घन छए वितानन तनी लता सब।
झुके मोर चहुँ ओर सुनन कों तहँ किंकिनि-रव ।।
तिन मध्य खिलौना कर लिए चुचकारत बालकन जब।
किलकाइ चलहिं आनंद भरि निरखत नैन सिरात तब ।।१९।।

वन उपवन एकांत कुंज प्रति तरु तरु के तर।
तीर तीर प्रति कूल कूल कुंडन पैं सर सर ।।
गुफा दरी गिरि घाट सिखर गौवन की गोहर।
गोकुल व्रज के गाँव गाँव व्रज-बासिन घर घर ।।
हरि जहँ जहँ जो लीला करी तहँ तहँ सोइ अनुभव करत।
व्रज-बासिन गौवन व्रज-पसुन संग ताहि विधि अनुसरत ।।२०।।

सेवा मैं हरि सों कबहूँ रस भरि बतरावत।
कबहुँ सुतन सों हरि-सेवा की रीति बतावत ।।
ब्रह्मवाद कों कबहुँ बहुत विधि थापन करहीं।
लोक सिखावन हेतु कबहुँ संध्या अनुसरहीं ।।
विश्राम करत कबहूँ जबै अमित होइ तब भक्त-जन।
गुन गावत चरन पलोटहीं करहिं कोउ मुरछल बिजन ।।२१।।

राख्यौ श्रुति की मेड़ शास्त्र करि सत्य दिखायो।
द्विज-कुल धन धन कियो भूमि को मान बढ़ायो ।।
दैवी-जन अवलंब दियो पंडित परितोषे।
वैष्णव-मारग उदय कियो विरही-जन पोषे ।।
व्रज-भूमि लता तरु गिरि नदी पसु पंछी सों नेह करि।
व्रज-बासी जन अरु गउन सों प्रेम निवाह्यौ रूप धरि ।।२२।।

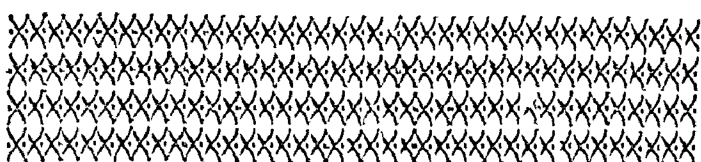
केसादिक सों वाम श्याम दक्षिन छवि पावत।
शिव विराग सों प्रगट देवरिषि से गुन गावत ।।

ग्रंथ-रचन सों व्यास मुक्त सुक रूप प्रकासत।
वैष्णव-पथ प्रगटाइ विष्णु स्वामी प्रभु भासत॥
मुख शास्त्र कहन विरहागि कों प्रगटावन सों अगिनि सम।
मनु सकल तत्व पिंडी धर्‌यौ सोभित श्री वल्लभ परम॥२३॥

मनहुँ वेदगन तत्व काढ़ि यह रूप बनायो।
श्री भागवत-सुधा-समुद्र मथि कै प्रगटायो॥
पिंडभूत वैराग रूप निज प्रगट दिखावत।
ज्ञान मनहुँ घन होइ सिमिटि कै सोभा पावत॥
यह मनहुँ प्रेम की पूतरी इक-रस साँचे मे ढरी।
प्रेमीजन- नयनन सुख महा प्रगटावत निज वपु धरी॥२४॥

तिलँग वंस द्विजराज उदित पावन वसुधा-तल।
भारद्वाज सुगोत्र यजुर शाखा तैतिरि वर॥
यज्ञनरायन-कुलमनि लक्ष्मन भट्ट-तनूभव।
इल्लमगारु-गर्भरत्न सम श्री लक्ष्मी धव॥
श्री गोपिनाथ-विट्ठल-पिता भाष्यादिक बहु ग्रंथ कर।
श्री विष्णुस्वामि-पथ-उद्धरन जै जै वल्लभ रूप वर॥२५॥

इमि श्री वल्लभ रूप प्रात जो सुमिरन करई।
लहै प्रेम-रस-दान जुगल पद मैं अनुसरई॥
द्वादस द्वादस अर्थ-पदी प्रातहि उठि गावै।
द्विविध कामना छाँड़ि केलि-रस को फल पावै॥
यह प्राननाथ को प्रथम ही सुमिरन सब मंगल-मई।
बानी पुनीत 'हरिचंद' की प्रेमिन को मंगल भई॥२६॥



दैन्य-प्रलाप*

(सं० १९३०)

जग में काको कीजै तोस ।
जासों तनकहु विरति कीजिए सोई धारत रोस ॥
इंद्रिय सब अपुनी दिसि खींचत चाहि चाहि निज भोग ।
मन अलभ्य वस्तुनहू भोगत मानत तनिक न सोग ॥
कहति प्रतिष्ठा हमहिं बढ़ाओ चहति कामना काम ।
ईर्षा कहति तुमहिं इक जीअहु करि औरन बे-काम ॥
जागत सपन काय वाचा सों मन सों भोगत धाय ।
घिसि गईं इन्द्री प्रान सिथिल भे तौहू नाहिं अघाय ॥
जौन मिलत कै तन बल नहिं तौ दूरहिं सों ललचाय ।
जिमि सतृष्ण ह्वै लखत मिठाइन स्वान लार टपकाय ॥
सब सों थकि कै करत स्वर्ग के अमृतादिक मैं चाह ।
धिक धिक धिक 'हरिचंद' सतत धिक यह जग काम अथाह ॥ १ ॥

पूरबी

तन-पौरुष सब थाका मन नहिं थाका हो माधो ।
केस पके तन पक्यौ रोग सों मनुआँ तबहु न पाका ॥

---

* भक्तिसूत्र वैजयंती के अंत में यह कविता दी गई थी, जो सं० १९३० में प्रकाशित हुई थी ।

अर्जुन-भीम-सरिस चाहत यह करन विषय-रन साका ।
बीती रैन तऊ मतवारा घोर नींद में छाका ॥
हारि गयो पै झूठहि गाड़े अबहूँ विजय-पताका ।
'हरीचंद' तुम बिनु को रोकै ऐसे ठग को नाका ॥ २ ॥

नर-तन सब औगुन की खान ।
सहज कुटिल-गति जीवहु तामैं यामैं श्रुति परमान ॥
स्वारथ-पन आग्रह मलीनता लोभ काम अरु क्रोध ।
कामादिक सब नित्य धरम हैं तन मन के निरबोध ॥
तापैं सहधरमिन सों पूर्यौ भो संसार सहाय ।
अन्ध आसरे चल्यौ अन्ध के कहो कहा लौं जाय ॥
करि करुना करुनानिधि केसव जो पै पकरौ हाथ ।
तौ सब विधि 'हरिचंद' बचै न-तु डूबत होइ अनाथ ॥ ३ ॥

नर-तन कहो सुद्धता कैसी ।
कितनहु धोओ पोंछौ बाहर भीतर सब छिन पैसी ॥
कारन जाको मूल रही मल ही में लिपटि अलैसी ।
ताको जल सों सुद्ध करत तिनकी ऐसी की तैसी ॥
दैहिक करमन सों न बनै कछु ता गनि सहज मलै सी ।
'हरीचंद' हरि-नाम-भजन बिनु सब बैसी की बैसी ॥ ४ ॥

बिरद सब कहाँ भुलाए नाथ ।
पावन पतित दीन-जन रच्छन जो गाईं श्रुति गाथ ॥
जानहु सब कुछ अंतरजामी धाइ गहौ अब हाथ ।
'हरीचंद' मेटहु निज जन की विधिहु लिखी जो माथ ॥ ५ ॥

तुमसों कहा छिपी करुनानिधि जानहु सब अंतर-गति ।
सहज मलिन या देह जीव की सहजहि नीच-गामिनी जो मति॥

तन मन सपनहुँ सो लोभी की दीन विपत - गन में रति ।
निरलज जितने होत पराजित तितनो ही लपटति अति ॥
तापैं जौ तुमहूँ बिसराओ तजि निज सहज बिरद-तति ।
तो 'हरिचंद' बचै किमि बोलहु अहो दीन-जन की पति ॥

देखहु निज करनी की ओर ।
लखहु न करनी जीवन की कछु एहो नंदकिसोर ॥
अपनाए की लाज करहु प्रभु लखहु न जन के दोस ।
निज बाने को बिरद निबाहो तजहु हीन पर रोस ॥
दीनानाथ दयाल जगतपति पतित - उधारन नाथ ।
सब बिधि हीन अधम 'हरिचंदहि' देहु आपुनो हाथ ॥ ७ ॥

करहु उन बातन की प्रभु याद ।
जो अरजुन सों भारत-रन में कही थापि मरजाद ॥
कैसहु होय दुराचारी पै सेवै मोहिं अनन्य ।
ताही कहँ तुम साधु गुनहु या जग मैं सोई धन्य ॥
सीघ्र धरम मति शांति पाइहैं जो राखत मम आस ।
अरजुन मम परतिज्ञा जानहु नहिं मम भक्त-बिनास ॥
छाँड़ि धरम सब लोक बेद के मम सरनहिं इक आउ ।
सब पापन सों तोहिं छुड़ैहौं कछु न सोच जिय लाउ ॥
कही बिभीषन सरन समय मैं सोऊ सुमिरहु गाथ ।
लछिमन हनूमान आदिक सब थाके साखी नाथ ॥
हम तुमरे हैं कहै एकहू बार सरन जो आइ ।
ताहि जगत सों अभय करत हम सबहि भाँति अपनाइ ॥
यहू कह्यौ मम जनहिं बासना उपजै और न हीय ।
जिमि कूटे चुरए धानन मैं उपजै नाहीं बीय ॥

यह कह्यौ तुम मो कहँ प्यारे निह-किंचन अरु दीन ।
यह कह्यौ तुम हमहि जीव के प्रेरक अंतर-लीन ॥
कहँ लौं कहौं सुनौ इतनी अब सत्यसंध महराज ।
'हरीचंद' की बार भुलाई क्यौं वे बातैं आज ॥ ८ ॥

तिनकों रोग सोग नहिं व्यापै जे हरि-चरन उपासी ।
सपनहु मलिन न होइ सदा जे कलप-तरोवर-बासी ॥
हरि के प्रबल प्रताप सामुहें जगत दीनता नासी ।
'हरीचंद' निरभय बिहरहिं नित कृष्ण-दास अरु दासी ॥९॥



उरहना*

(सं० १९३०)

प्राननाथ तुम विनु को और मान राखै ।
जिअ सों वा मुख सों को प्यारी कहि भाखै ॥
प्रति छन को नयो नयो अनुभव करवावै ।
कौन जो खिझाइ कै रोवाइ कै हँसावै ॥
संशय सागर महान डूवत लखि धाई ।
कौन जो अवलंब देहि तुम विनु व्रजराई ॥
सुत पितु भव मोह कौन मेटै चित लेई ।
मूरख कहवाइ जगत पंडित-गति देई ॥
लोक वेद झगरन के जाल मैं वँधायो ।
कौने तुम विनु करि निज अनुभव सुरझायो ॥
भव अथाह वहे जात लखि कै चित माहीं ।
कौने करि मेंड़ धरीं निज विसाल वाहीं ॥
झूठे जग कहत मरयो चित सँदेह आयो ।
'हरीचंद' कौन प्रगटि साँचो कहवायो ॥ १ ॥

अघी को पीठ ही चहिए ।
पाप वसत तुव पीठ माँहिं यह वेदनहू कहिए ॥

---

* हरिश्चंद्र मेगजीन के १५ अक्तू० सन् १८७३ ई० के अंक में छपा था। इसके दो तीन पद राग-संग्रह तथा प्रेम-प्रलाप में भी संगृहीत हो गए हैं।

बुद्ध होय निन्द्यो वेदहि तब सों मुख नहिं लहिए ।
'हरीचंद' पिय मुख न दिखाओ रूठे ही रहिए ॥ २ ॥

अहो मोहिं मोहन बहुत खिलायो ।
अब लौं हाय कियो नाहीं बध बातन ही बिलमायो ॥
जानि परी अपराध हमारो तोहिं सुमिरत ह्वै आयो ।
ताही सों रूठि रूठि कै अब लौं प्रान न पीय नसायो ॥
हमहूँ जानत मो अघ आगे लघु सम सब दुख आयो ।
'हरीचंद' पै बिरह तुम्हारो जात न तनिक सहायो ॥ ३ ॥

अहो हरि निरदय चरित तुम्हारे ।
तनिक न द्रवत हृदय कुलिसोपम लखि निज भक्त दुखारे ॥
दयानिधान कृपानिधि करुना-सागर दीन पियारे ।
यह सब नाम झूठही बेदन बकि बकि वृथा पुकारे ॥
गोपीनाथ कहाइ न लाजत निरलज खरे सुधारे ।
'हरीचंद' तुम्हरे कहवायें मरियत लाजन मारे ॥ ४ ॥

सुनो हम चाकर दीनानाथ के ।
कृपा-निधान भक्त-वत्सल के पोषित पालित हाथ के ॥
पिया न पूछत तऊ सुहागिनि बनि सेंदुर दै माथ के ।
दीन दया लखि हँसौ न कोऊ सुनौ सबै रे साथ के ॥
या घर के सेवक ऐसे ही जीवत स्वासा भाथ के ।
'हरीचंद' निरलज ह्वै गावत निरलज हरि-गुन-गाथ के ॥५॥

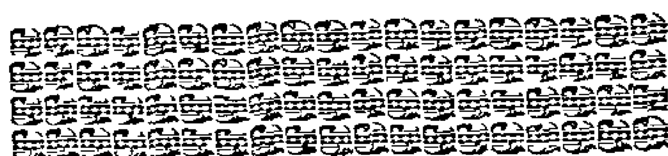
साहब रावरे ये आवैं ।
जिन्हें देखि जग के करुना सों नैनन नीर बहावैं ॥
कोऊ हँसैं बिपति पै कोऊ दसा बिलोकि लजावैं ।
कोऊ घृणा करैं कोउ मूरख कहि कै हाथ बतावैं ॥

देखि लेहु इक बार इनहिं तुम नैना निरखि सिरावैं।
'हरीचंद' आखिर तो तुमरे कोऊ भाँति कहावैं ॥६॥

वीरता याही में अटकी।
हम अवलन पैं जोर दिखावत यहै बानि टटकी ॥
याही हित नित कसे रहत कटि कसनि पीत पटुकी।
'हरीचंद' बलिहार सूरता पिय नागर-नट की ॥७॥

लाल क्यौं चतुर सुजान कहावत।
करि अनीति निरलज से डोलत क्यौं नहिं वदन छिपावत ॥
चतुराई सब धूर मिलाई तौहू गरब चढ़ावत।
'हरीचंद' अवलन को बधि कै कैसे अकरि दिखावत ॥८॥

बेनी हमरे बाँट परी।
धन धन भाग लाइहैं नैनन रहिहैं हृदय धरी ॥
लखि मुख चूमि अधर भुज दै भुज करौ सबै मिलि राज।
हमरे तौ बेनी को दरसन सिद्ध करै सब काज ॥
क्यौं कविगन नागिनि की उपमा मेरी प्यारिहिं देत।
हमकों तो इक यहै जिआवत राखत हम सों हेत ॥
क्यौं नहिं सुख मानैं थोड़े ही जो विधि विरच्यौ भाग।
राज देखि दूजेन को क्यौं हम करैं अकारथ लाग ॥
बेनी हमरी हमरो जीवन बेनी ही के हाथ।
जब तुम मुख फेरत तब बेनी रहत हमारे साथ ॥
भलहिं रूप-सागर तुम्हरो सो खारो मेरे जान।
'हरीचंद' मोहिं कल्प-तरोवर कामद बेनी-न्हान ॥९॥



तन्मय-लीला*

(सं० १९३०)

राधे-स्याम-प्रेम-रस भीनी ।
नहिं मानत कछु गुरुजन को भय लोक-लाज तजि दीनी ॥
मगन रहत हरि-रूप-ध्यान मे जुल-पथ की गति लीनी ।
'हरीचंद' बढ़ि प्रेम मराहत तन को सुधि नहिं कीनी ॥१॥

राधे भई आपु घनस्याम ।
आपुन को गोविंद कहत है छाँड़ि राधिका नाम ॥
वैसेइ झुकि झुकि कै कुंजन मैं कबहुँक बेनु बजावै ।
कबहुँ आपनो नाम लेइ कै राधा राधा गावै ॥
कबहुँ मौन गहि रहत ध्यान करि मूँदि रहत दोउ नैन ।
'हरीचंद' मोहन बिनु ब्याकुल नेकु नहीं चित चैन ॥२॥

प्यारी अपुनो ध्यान बिसारौ ।
श्रीराधे श्रीराधे कहि कै कुंजन जाइ पुकारौ ॥
कबहुँ कहत बृषभानु-नंदिनी मान न इतनो कीजै ।
प्रान-पियारी मरत आपुके कह्यो मानि मेरो लीजै ॥

---

* हरिश्चंद्र मैगज़ीन की जनवरी सन् १८७४ ई० की संख्या में प्रकाशित ।

कबहुँ कहत हे सुबल सिदामा तोक कृष्ण मिलि आवो ।
पनघट चलि रोको ब्रजनारिन दधि को दान चुकावो ।।
कबहुँ कहत मेरो सुरँग खिलौना राधे लियो चुराई ।
कबहुँ कहत मैया यह तोकों छोटी दुलहिन भाई ।।
कबहुँ कहत हम सात दिवस गोवरधन कर पैं धार्‌यौ ।
अघ बक धेनुक सकट पूतना इनको हमहिं सँहार्‌यौ ।।
कबहुँ कहत प्यारी जमुना-तट कुंजन करौ बिहार ।
'हरीचंद' भइ स्याम-रूप सो तन की दसा बिसार ।।३।।

सखी सब राधा के गृह आई ।
प्रेम-मगन तिन ताकहँ देखी जातें अति पछिताई ।।
दोऊ नैन मूँदि कै बैठी नेकहु नाहिंन बोलै ।
राधे राधे कहि कै हारी तबहुँ न घूँघट खोलै ।।
बीजन करि बहु भाँति जगायो लै लै वाकौ नाम ।
सुनत नहीं बानी कछु इनकी उर बैठे घन-स्याम ।।
जब गोपाल को नाम लियो तब बोलि उठी अकुलाई ।
'हरीचंद' सखियन आगे लखि कछुक गई सकुचाई ।।४।।

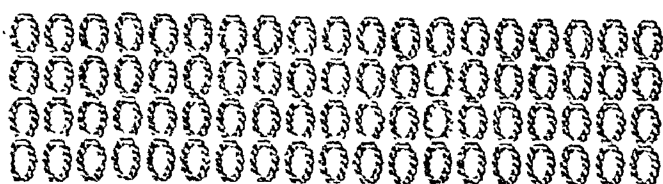
सखिन सों पूछत कित है प्यारी ।
ललिता तू मोहिं आनि मिलावै हौं तेरो बलिहारी ।।
दैहौं अपुनो पीत पिछौरा बंसी रतन-जराई ।
'हरीचंद' इमि कहत राधिका ध्यान माँह फिर आई ।।५।।

दसा लखि चकित भईं ब्रज-नारी ।
राधे को कह भयो सखी री अपनो दसा बिसारी ।।
राधा नाम लिये नहिं बोलत कृष्ण नाम तें बोलै ।
वैसे ही सब भाव जतावति हँसि हँसि घूँघट खोलै ।।

धन धन प्रेम धन्य श्रीराधा धन श्री नंद-कुमार।
'हरीचद' हरि के मिलिबे को करौ कछू उपचार ॥६॥

तहाँ तब आइ गए घन-स्याम।
मोर-मुकुट कटि पीत पिछौरी गरे गुंज की दाम ॥
दसा देखि प्यारी राधा की अति आनँद जिय मान्यो।
सखियनहूँ सो प्रेम अवस्था को सब हाल बखान्यो ॥
प्रेम-मगन बोले नँद-नंदन सुनि प्यारे मैं आई।
जौ तुम राधा नाम टेरिकै बेनु बजाइ बोलाई ॥
सुनतहि नैन खोलिकै देख्यो स्याम मनोहर ठाढ़े।
कछुक प्रेम कछु सकुच मानिकै प्रेम-वारि दृग बाढ़े ॥
दौरि कंठ मोहन लपटाई बहुत बड़ाई कीनी।
कर्यो बोध प्यारी राधा को हृदय लाइ पुनि लीनी ॥
कर सों कर दै चले कुंज दोउ सखियन अति सुख पायो।
रसना करत पवित्र आपुनो 'हरीचंद' जस गायो ॥७॥





दान-लीला

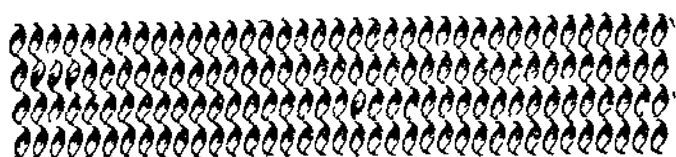
(सं० १९३०)

पिअ प्यारे चतुर सुजान मोहन जान दे ।
प्रेमिन के जीवन-प्रान मोहन जान दे ॥
प्यारे गिरिधरिआँ एकांत मैं राखी हैं सब घेर ।
ऐसी तुम्हैं न चाहिए हो छाँड़ौ होत अबेर ॥
कैसे छाँड़ैं ग्वालिनी हो लागत मेरो दान ।
ताहि दिये बिन जाति हौ तुम नागरि चतुर सुजान ॥
जो चाहौ सो लाडिले हँसि हँसि गो-रस लेहु ।
सखन संग भोजन करौ औ मोहिं जान तुम देहु ॥
थोरे ही निपटी भले दै गो-रस को दान ।
परम चतुर तुम नागरी लियो हम कों मूरख जान ॥
तुमकों मूरख को कहै हो यह का कहत मुरारि ।
सकल गुनन की खान हो कहा जानै ग्वारि गँवारि ॥
जदपि सकल गुन-खानि हैं हो नागर नाम कहात ।
पै तुम भौंह-मरोर सों मेरे भूलि सकल गुन जात ॥
तुम तो कछु भूलै नहीं हो स्वारथ ही के मीत ।
भूलीं सब ब्रज-गोपिका करिकै तुमसों प्रेम-प्रतीत ॥
क्यौं भूलीं सब गोपिका हो करिकै हमसों प्रीति ।

यह हमको समुझाइये क्यों भाखत उलटी रीति ॥
हम उलटी नहि भाखहीं हो समुझौ तुम चित चाह ।
हम दीनन के प्रेम को हो कहा तुम्हैं परवाह ॥
ऐसी बात न बोलिए झूठेहिं दोस लगाय ।
बँधे तुम्हारे प्रेम मे हम सो कैसे छुटि जाय ॥
प्रेम बँधे जौ लाडिले हो तौ यह कैसो हेत ।
हम व्याकुल तुम बिन रहैं नहिं भूलेहु सुधि लेत ॥
गुरु-जन की नित त्रास सों हम मिलत तुमहिं नहिं धाइ ।
जिय सों बिलग न मानियो हम मधुकर तुव बन-राइ ॥
जा दिन बंसी बजाइकै हो लीनी हमैं बुलाय ।
ता दिन गुरुजन-प्रीति हो कित दीनी सबै बहाय ॥
तुम प्रीति आछी लगै हो प्रगट भए रस जाय ।
जामैं या ब्रज को कोऊ नहिं देइ कलंक लगाय ॥
प्रगट भई तिहुँ लोक मैं हो गोपी-मोहन-प्रीति ।
सब जग मैं कुलटा भई तापै तुमको नाहिं प्रतीति ॥
गुरु-जन घर मैं खीझहीं हो देत अनेकन गारि ।
बाहर के देखत कहैं यह चली कलंकिन नारि ॥
करन देहु जग को हँसी हो चुप ह्वैहैं थकि जाइ ।
तिन सों सब जग छाँड़ि कै हो मिलैं निसान बजाइ ॥
प्यारे तुमरे ही लिए सब जग को ब्यवहार ।
तुम बिरुद्ध सब छाँड़िए हो मात पिता परिवार ॥
पै कठिनाई है यहै अरु होत यहै जिय साल ।
तुम तो कछु मानौ नहीं मेरे बे-परवाही लाल ॥
सब सो तो पहिले करो हो हँसि हँसि कै तुम चाह ।
पै लालन सीखे नहीं तुम प्रेमी प्रेम-निबाह ॥
तुम्हैं कहा कोउ की परी भलेइ देइ कोउ प्रान ।

तापैं उलटो आइकै हो माँगत हम सों दान ॥
लोक-लाज कुल धर्महू तन मन धन बुधि प्रान ।
सब तो तुम कौं दे चुकीं अब माँगत काको दान ॥
बहुत भई पिय लाडिले अब क्यौंहू सहि नहिं जाय ।
जानि दासिका आपुनी गहि लीजै भुजा बढ़ाय ॥
परम दीनता सों भरे सुनि प्यारी के बैन ।
पुलकित अँग गद्गद भयो हो उमगि चले दोउ नैन ॥
धाइ चूमि मुख भुजन सों भरि लीनी कंठ लगाय ।
'हरीचंद' पावन भयो यह अनुपम लीला गाय ॥





रानी छद्म-लीला *

(सं० १९३१)

नौमि राधिका-पद जुगल तिन पद को बल पाइ ।
उलटि छदम-लीला कहत 'हरीचंद' कछु गाइ ॥
करे कान्ह जिमि छदम सुहाए ।
श्री प्यारी के मन अति भाए ॥
तिमि प्यारीहू जीअ बिचार्‌यौ ।
पियहि ठगौ यह चित निरधार्‌यौ ॥

निरधारि जिय करि छदम-लीला सखिन कों आज्ञा दई ।
बनि कछुक ठगिए आजु लालहि रीति यह कीजे नई ॥
नव भेस रानी को मनोहर सबन सँग मिलि कीजिए ।
अति चतुर मोहन तिनहुँ को चलि आजु धोखा दीजिए ॥

यह जिय सोच बिचारि कै गई एक बन माँहि ।
वृंदा को आज्ञा दई सजौ नवै चित चाहि ॥

वृन्दा तब तहँ आज्ञा पाई ।
सब सामग्री सजी सुहाई ॥
नव चंदन के महल बनाए ।
राज-साज तहँ सजे सुहाए ॥

---

* हरिश्चन्द्र मैगजीन (१५ फरवरी सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित ।

सजि राज के सब साज बिच मैं सुभग सिंहासन धर्यो।
धरि क्रीट बैठी मध्य राधा भेस रानी को कर्यौ ॥
बहु छड़ी मुरछल चँवर सूरजमुखी पंखा छत्र लै।
भई सखी ठाढ़ी अदब सों चहुँ ओर सब मिलि नजर दै ॥

परवानो जारी कियो बन-देविन के नाम।
अबहिं पकरि कै बिन सखन हाजिर लाओ श्याम ॥

सुनि चहुँ दिसि सखियाँ धाईं।
मिलि वृन्दावन मैं आईं ॥
तहँ सखन संग हरि जाईं।
रहे आपु चरावत गाईं ॥

जहँ आप चारत गाय हे तहँ सखि सबै मिलि कै गईं।
करि साम दाम सुदंड भेदहि बात यह बरनी नईं ॥
जदु-बंश की रानी नई इक कुमुद-बन मे है रही।
जागीर मैं तिन कंस नृप सों कुमुद बन की महि लही ॥

तिन हम को आज्ञा दई करि कै टेढ़ो डीठ।
कौन श्याम ऊधम करै मेरे बन में ढीठ ॥

बिन मेरो हुकुम बतायो।
उन क्यों बन गाय चरायो ॥
फल-फूल विपिन के जेते।
उन तोरि लिए क्यों तेते ॥

उन तोरि बन के फूल फल सब घास गउवन को दई।
तेहि पकरि हाजिर करौ यह हम सबन को आज्ञा भई ॥

यह सुनि हुकुम दिन सखा गन चलि तहाँ उत्तर कीजिए।
जो हुकुम रानी देहिं ताकों अदब सों सुनि लीजिए॥

सुनि आज्ञा जिय संक धरि कछु तौ भय हिय लीन।
कछु रानी को नाम सुनि लालचहू मन कीन॥

तब संग सखिन के आए।
मुजरा करि नाम सुनाए॥
पग परि बोलीं सब आली।
यह हाजिर है बन-माली॥

भयो हाजिर द्वार पै करि कृपा मुजरा लीजिए।
जो हुकुम याके होइ लायक महारानी कीजिए॥
लखि भूमि में तन प्रान-प्रिय को कछु दया जिय मैं लई।
कछु जानि आयो नारि के ढिग कोप निज मन में मई॥

उत मोहन श्री राधिका सी रानी को देखि।
कछु जिय मैं संकित भए भौंह तनेनी देखि॥

तब बोले मोहन प्यारे।
कहिए केहि हेत हँकारे॥
हम तो कछु दोप न कीनो।
तो क्यों मोहिं दूपन दीनो॥

क्यों दियो दूपन मोहिं सुनि कै राधिका बोलत भई।
कछु क्रोध मैं निज छद्म को नहिं ध्यान करि जिय में लई॥
जो झूठ बोलै नितहिं तासों और अपराधी नहीं।
तेहि दंड देनो उचित राजहिं नीति यह जग की कही॥

सुनि रूखे तिय के वचन भरे श्याम जुग नैन ।
हाथ जोड़ि गद्‌गद गिरा बोले मोहन बैन ॥

हम झूठ कही कब बानी ।
मोहिं कहि दीजै महरानी ॥
सुनि वचन राधिका बोली ।
जिय गाँठि आपनी खोली ॥

जिय गाँठि आपनी खोलि राधा बात प्रीतम सों कही ।
तुम कहत हम श्री राधिका तजि और तिय देखैं नहीं ॥
तो आजु सुनि क्यों नाम रानी को यहाँ आए कहौ ।
हौ परम कपटी श्याम तुम अब दरस नहिं मेरो लहौ ॥

यह कहि कै मुख फेरि कै राधा रही रिसाय ।
तब व्याकुल ह्वै धाइ पिय परे तिया के पाय ॥

भरि नैन अरज यह कीनी ।
कर जोरि विनय-विधि लीनी ॥
नित को अपराधी बारी ।
तजि चरन जाय कित प्यारी ॥

कित जाहिं तजि कै चरन यह दृग वारि भरि मोहन कह्यौ ।
सुनि दीन बोलन प्रान-पति की धीर नहिं कोउ को रह्यौ ॥
हँसि मिली प्यारी मान तजि निज रूप लै सँग श्याम के ।
मिलि करी क्रीड़ा विविध विधि नव कुंज सुख रस-धाम के ॥

एहि विधि पीतम सों मिली नव बन छद्म बनाइ ।
'हरीचंद' पावन भयो यह रस-लीला गाइ ॥

संस्कृत लावनी*

(सं० १९३१)

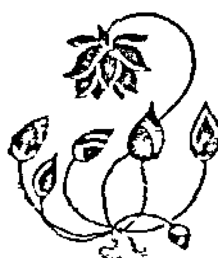
कुंजं कुंजं सखि सत्वरं।
चल चल दयितः प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं॥
सर्वा अपि संगता।
नो दृष्ट्वा त्वां तासु प्रियसखिहरिणाऽहं प्रेषिता॥
मानं त्यज वल्लभे।
नास्ति श्री हरिसदृशो दयितो वच्मि इदं ते शुभे॥
गतिर्भिन्ना।
परिधेहि निचोलं लघु।
जायते विलम्बो बहु।
सुंदरि त्वरां त्वं कुरु॥
श्री हरि मानसे शृणु।
चल चल शीघ्रं नोचेत्सर्वं निष्यन्तिहि सुन्दरं।
अन्यद्वन मन्दिरं चल चल दयितः॥
शृणु वेणुनादमागतं।
त्वदर्थमेव श्रीहरिरेष समानयत्स्त्रीशतं॥
त्वय्येव हरि मद्रतं।
तवैतार्थमिह प्रमदागतकं प्रियेण विनियोजितं॥

---

* हरिश्चंद्र मैगज़ीन में प्रकाशित।

शृण्वन्त्यमृतां संरुतं ।
आकरायन्ति सर्वे समाप्यहरिणीमधुरं मतं ॥
विभिन्न गतिः ।
दिशति ते प्रियतमसंदेशं ॥
गृहीत्वा मदनः पिकवेशं ।
जनयति मनसि स्वावेशं ॥
समुत्साहयतेरतिलेशं ।
न कुरु विलम्बं क्षणमपि मत्वा दुर्लभमौल्याकारं ॥
शृणु वचनं मे हितभरं ।
चल चल दयितः ॥ २ ॥
सूर्य्योप्यस्तंगतः ।
गोपिगोपयितुमभिसरणं तव अंधकारइहततः ॥
दृश्यते पश्यनोमुखं ।
कस्यापिहि जीवस्य प्रणयिन्यभिसरणैतत्सुखं ॥
व्रज व्रजेन्द्र कुलनन्दनं ।
करोतियत्स्मृतिरपि सखि सकलव्याधेः सुनिकन्दनं ॥
गतिः ॥
चन्द्रमुखि चन्द्रंरवे समुदितं ॥
करैस्त्वामालम्बितुमुद्यतं ।
आलि अवलोक्य ताराचृतं ॥
भाति विष्टयं चन्द्रिकायुतं ।
चकोरायितश्चन्द्रस्त्यत्स्वा स्थलमपि रत्नाकरं ॥
मुखं ते द्रष्टुं सखिसुन्दरं ।
चल चल० ॥ ३ ॥
परित्यज चंचलमंजीरं ।
अवगुण्ठ्य चन्द्राननमिह सखि धेहि नील चीरं ॥

रमय रसिकेश्वरमाभीरं ।
युवतीशतसंग्रामसुरतरतमचलमेकवीरं ॥
भयं त्यज हृदि धारय धीरं ।
शोभयस्वमुखकान्तिविराजितरवितनया तीरं ॥
गतिः ॥
मुञ्चमानं मानय वचनं ॥
विलम्बं मा कुरु कुरु गमनं ।
प्रियांके प्रिये रचय शयनं ॥
सुतनुतनु सुखमयमालिंजनं ।
दासौ दामोदर हरिचन्द्रौ प्रार्थयतस्तेवरं ॥
वरय राधे त्वं राधावरं ।
चल चल दयित. प्रतीक्षते त्वां तनोति बहु आदरं ॥ ४ ॥



वसंत होली*

(सं० १९३१)

जोर भयो तन काम को आयो प्रगट वसंत ॥
बाढ़्यो तन मैं अति विरह भो सब सुख को अंत ॥ १ ॥
चैन मिटायो नारि को मैन सैन निज साज ।
याद परी सुख दैन की रैन कठिन भई आज ॥ २ ॥
परम सुहावन से भए सबै विरिछ बन बाग ।
तृविध पवन लहरत चलत दहकावत उर आग ॥ ३ ॥
कोइल अरु पपिहा गगन रटि रटि खायो प्रान ।
सोवन निसि नहिं देत हैं तलपत होत विहान ॥ ४ ॥
है न सरन तृभुवन कहूँ कहु विरहिन कित जाय ।
साथी दुख को जगत मैं कोऊ नाहिं लखाय ॥ ५ ॥
रहे पथिक तुम कित विलम बेग आइ सुख देहु ।
हम तुम विनु व्याकुल भई धाइ भुजन भरि लेहु ॥ ६ ॥
मारत मैन मरोरि कै दाहत हैं रितुराज ।
रहि न सकत तुम विन मिलौ कित गहरत विन काज ॥ ७ ॥

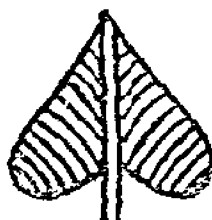
---

* इसके सामने एक स्लिप पर छपा है—

पहिलो बरन न बांचियो यह विनवत कर जोर ।
जो पढ़िकै मानौ बुरो तौ न दोस कछु मोर ॥

हरिश्चंद्र-मैगजीन में प्रकाशित ।

गमन कियो मोहिं छोड़ि कै प्रान-पियारे हाय।
दरकत छतिया नाह बिन कीजै कौन उपाय ॥ ८ ॥
हा पिय प्यारे प्रानपति प्राननाथ पिय हाय।
मूरति मोहन मैन के दूर बसे कित जाय ॥ ९ ॥
रहत सदा रोवत परी फिर फिर लेत उसास।
खरी जरी बिनु नाथ के मरी दरस के प्यास ॥१०॥
चूमि चूमि धीरज धरत तुव भूषन अरु चित्र।
तिनही को गर लाइकै सोइ रहत निज मित्र ॥११॥
यार तुम्हारे बिनु कुसुम भए विष-बुझे बान।
चौदिसि टेसू फूलि कै दाहत हैं मम प्रान ॥१२॥
परी सेज सफरी सरिस करवट लै पछतात।
टप टप टपकत नैन जल मुरि मुरि पछरा खात ॥१३॥
निसि कारी साँपिन भई डसत उलटि फिरि जात।
पटकि पटकि पाटी करन रोइ रोइ अकुलात ॥१४॥
टरै न छाती सों दुसह दुख नहिं आयो कंत।
गमन कियो केहि देस कों बीती हाय बसंत ॥१५॥
वारों तन मन आपुनो दुहुँ कर लेहुँ बलाय।
रति-रंजन 'हरिचंद' पिय जो मोहिं देहु मिलाय ॥१६॥



स्फुट समस्या*

(सं० १९३१)

हित दीन सों जे करैं धन्य तेई यह बात हिए मैं विचारिये जू।
सुनिए न कहो कछु औरन की अपनी विरुदालि सम्हारिये जू॥
'हरिचंद' जू आपकी होय चुकी एहिकों जिय मैं निरधारिये जू।
हम दीन औ हीन जो हैं तो कहा अपुनी दिसि आपु निहारिये जू॥१॥

विधि मैं विधि सों जब व्याह रच्यो नव कुंजन मंगल चाँवर भे।
वृषभानु - किसोरी भई दुलही दिन दूलह सुंदर साँवर भे॥
'हरिचंद' महान अनंद बढ़्यौ दोउ मोद भरे जब भाँवर भे।
तिनसों जग मैं कछु नाहि बनी जो न ऐसी बनी पै निछावर भे॥२॥

आँचर खोले लट छिटकाए तन की सुधि नहिं ल्यावति हौ।
धूर-धूसरित अंग संक कछु गुरु-जन की नहिं पावति हौ॥
'हरीचंद' इत सों उत व्याकुल कबहुँ हँसत कहुँ गावति हौ।
कहा भयो है पागल सो क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥३॥

पहिले तो बिन ही समझे तुम नाहक रोस बढ़ावति हौ।
फिर अपनी करनी पैं आपुहि रोइ-रोइ बिलखावति हौ॥
मान समय 'हरिचंद' झिझकि पिय अब काहें पछतावति हौ।
तब तो मुख उनसों फेस्यो अब कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥४॥

बार बार क्यों जानि-बूझि तुम याही गलियन आवति हौ।
रोकि रोकि मग भई बावरी इतसों उत क्यों धावति हौ॥

---

* हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ मई सन् १८७४ ई०, में प्रकाशित।

त्यों 'हरिचंद' भली रुजगारिन नाहक नक्र गिरावति हौ।
दही दही सब करौ अरे क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ॥५॥

कुंज-भवन नहिं गह्वर बन यह हाँ क्यौं सेज सजावति हौ।
मोहन देखि जानि आए क्यौं आदर कों उठि धावति हौ॥
देखि तमालन दौरि दौरि क्यौं अपने कंठ लगावति हौ।
पात खरक मुनि कै प्यारी क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥६॥

जो तुम जोगिन बनि पी के हित अंग भभूत रमावनि हौ।
सेली डारि गले नैनन मे छकि कै रंग जमावति हौ॥
त्यौं 'हरिचंद' जोगिया लैके काँधे बीन बजावति हौ॥
तो फिर अलख अलख बोलौ क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥७॥

तो को भेस छाँड़ि कै जो तुम मोहन बनिकै आवति हौ।
मोर मुकुट सिर पीत पिछौरी तैसोइ भाव दिखावति हौ॥
तौ 'हरिचंद' कसर इतनी क्यों बंसी और बजावति हौ।
राधे राधे रट लाओ क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥८॥

मूद चढ़ीं ब्रज चार चवाइन इनपैं क्यौं हँसवावति हौ।
धीर धरौ चलि गई प्रेम क्यौं अपुनो प्रगट लखावति हौ॥
'हरीचंद' या बड़े गोप के बंसहिं क्यौं लजवावति हौ।
सखिन सामुने व्याकुल ह्वै क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥९॥

कौन कहत हरि नाहिं कुंज में सूनो झूठ बतावति हौ।
कौन गयो मधुबन यह हरि कों नाहक दोस लगावति हौ॥
बनि 'हरिचंद' बियोगिनि भी सब बादहिं बिरह बढ़ावति हो।
जित देखो तित प्राननाथ क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥१०॥

श्री बन नित्य बिहार थली इत जोगिन बनि क्यौं आवति हौ।
बिना बान ही प्रेम आपुनो माला फेरि दिखावति हौ॥

नाम लेइ 'हरिचंद' निठुर को नाहक प्रीति लजावति हौ।
राधे राधे कहौ सबै क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ॥११॥

पिय के कुंज नाहिं कोउ दूजी काहें रोस वढ़ावति हौ।
विना वात निरदोसी पिय पैं भौंहैं खींचि चढ़ावति हौ।
कहा दिखैहो का तुम चोरी पकरी जो ऐंड़ावति हौ॥
अपुनो ही प्रतिविम्ब देखि क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥१२॥

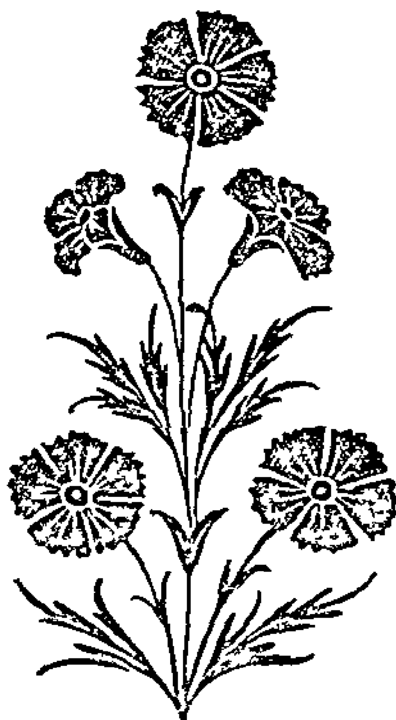
होइ स्वामिनी दूतीपन कों कैसे चित्त चलावति हौ।
हाथ न ऐहै ताहि गहत क्यौं घर के द्वार मुँदावति हौ॥
प्रेम-पगी 'हरिचंद' वादहीं रचि रचि सेज विछावति हौ।
अपनो ही प्रतिविम्ब देखि क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥१३॥

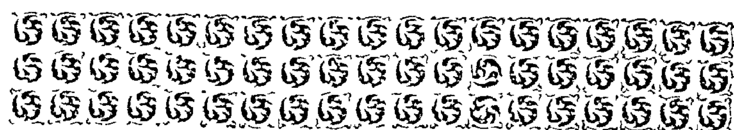
चूरी खनकनि मैं वंसी को नाहक धोखा लावति हौ।
विना वात इन मोरन पै जिय मुकुट-संक उपजावति हौ॥
जाहु जाहु 'हरिचंद' वृथा क्यौं जल मैं आगि लगावति हौ।
सुनिहैं लोग सबै घर के क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ॥१४॥

विना वात ही अटा चढ़ी क्यौं आँचर खोले धावति हौ।
सेज साजि अनुराग उमगि क्यौं रचि रचि माल वनावति हौ॥
पावस रितु नहिं जानति हौ 'हरिचंद' वृथा भ्रम पावति हौ।
पिया नहीं ये घन उनये क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ॥१५॥

कवहूँ नारी कवहुँ पुरुप के अजगुत भाव दिखावति हौ।
कवहुँ लाज करि वदन ढकत हौ कवहूँ वेनु वजावति हौ॥
भई एक सों द्वै सजनी 'हरिचंदहि' अलख लखावति हौ।
राधे राधे कवौं कवौं तुम कान्हे कान्ह गोहरावति हौ ॥१६॥

श्याम सलोनी मूरति अँग अँग अद्भुत छवि उपजावति हौ।
नारी होय अनारी सी क्यौं बरसाने में आवति हौ॥
जानि गई 'हरिचंद' सबै अब तब क्यौं बात छिपावति हौ।
राधे राधे कहो अहो क्यौं कान्ह कान्ह गोहरावति हौ॥१७॥





मुँह-दिखावनी*

(सं० १९३१)

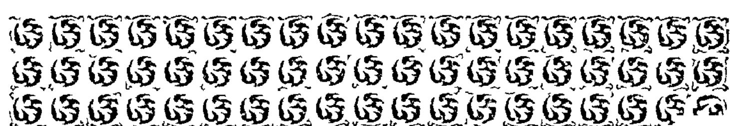
राजकुमार श्री ड्यूक आफ एडिम्बरा की नववधू की।

आजु अतिहि आनँद भयो बाढ़्यो परम उछाह।
राज-दुलारी सों सुनत राजकुँवर को ब्याह ॥१॥
बसे राज-घर सुख भयो मिटे सकल दुख-दुंद।
मेरी बहू सुलच्छिनी प्रजन दियो आनंद ॥२॥
द्वार बँधाई तोरनै मनिगन मुकता-माल।
धाई धाई फिरत हैं कहत बधाई बाल ॥३॥
विद्या लक्ष्मी भूमि अरु तुव प्यारी तरवारि।
राज-कुँवर ये सौत लखि मोहीं हारि निहारि ॥४॥
"देह दुलहिया के बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोवन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौतैं-बदन अतिहि मलिन दुति होति" ॥५॥
माँगी मुख-दिखरावनो दुलहिन करि अनुराग।
सास सदन मन ललनहूँ सौतिन दियो सुहाग ॥६॥
महरानी विक्टोरिया! धन धन तुमरो भाग।
लख्यौ बधू मुख-चंद तुम पूख्यौ भाग सुहाग ॥७॥

---

* सन् १८७४ ई० में क्वीन विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक ऑव एडिम्बरा का विवाह रूस को राजकुमारी ग्रैंड डचेज़ मेरी के साथ हुआ था, जिसके उपलक्ष में यह मुँह-दिखावनी लिखी गई थी। यह १५ फरवरी सन् १८७४ ई० की हरिश्चंद्र मैगजीन में प्रकाशित हुई थी। (सं०)

रूस रूस सब के हिये भय अति ही हो जौन ।
बधू ! तुम्हारे ब्याह सों उड़्यौ फूस सो तौन ॥८॥
धन यह संवत मास पख धन तिथि धन यह बार ।
धन्य घरी छन लगन जेहिं ब्याहे राजकुमार ॥९॥
आए मिलि सब प्रजा-गन नजर देन तुव धाम ।
ठाढ़े सनमुख देखिए नवत जुहारत नाम ॥१०॥
कोउ मनि मानिक मुकुत कोउ कोऊ गल को हार ।
कनक रौप्य महि फूल फल लै लै करत जुहार ॥११॥
तब हम भारत की प्रजा मिलिकै सहित उछाह ।
लाए "आशा" दासिका लीजै एहि नर-नाह ॥१२॥
सेवा में एहि राखियो नवल बधू के नाथ ।
यह भाग निज मानिकै छनक न तजिहै साथ ॥१३॥
रूस मिले सों रेल के आगम-गमन-प्रचार ।
धन जन बल व्यवहारने छोड़ो यह सुकुमार ॥१४॥
तासों तुम्हरे कर-कमल सौंपत एहि नर-नाह ।
जब लौं जीवै कीजियो तब लौ कुँवर ! निबाह ॥१५॥
यह पाली सब प्रजन अति करि बहु लाह उमाह ।
अति सुकुमारी लाड़िली सौंपत तोहिं नर-नाह ॥१६॥
यह बाहर कहुँ नहिं भई सही न गरमी सीत ।
आदर दै कै राखियो करियो निन चित प्रीत ॥१७॥
जौ यासों जियनहि रमै या कछु जिय अकुलाय ।
सौति बधू वा एहि लखै तौ हम कहत उपाय ॥१८॥
जब हम सब मिलि एक-मत है तोहि करहिं प्रनाम ।
फेरि दीजियो तब हमैं दै कछु और इनाम ॥१९॥
जब लौं धरनी सेस-सिर जब लौं सूरज-चंद ।
तब लौं जननी-सह जियो राजकुँवर सानंद ॥२०॥



उर्दू का स्यापा*

(सं० १९३१)

अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गजट और बनारस अखबार के देखने से ज्ञात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई और परम अहिंसानिष्ट होकर भी राजा शिवप्रसाद ने यह हिंसा की—हाय हाय ! बड़ा अंधेर हुआ मानो बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गई। यद्यपि हम देखते हैं कि अभी साढ़े तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी उर्दू पागुर करती जीती है, पर हमको उर्दू अखबारों की बात का पूरा विश्वास है। हमारी तो वही कहावत है—"एक मियाँ साहेब परदेस में सरिश्तेदारी पर नौकर थे। कुछ दिन पीछे घर का एक नौकर आया और कहा कि मियाँ साहब, आपकी जोरू राँड़ हो गई। मियाँ साहब ने सुनते ही सिर पीटा, रोए गाए, बिछौने से अलग बैठे, सोग माना, लोग भी मातम-पुरसी को आए। उनमें उनके चार पाँच मित्रों ने पूछा कि मियाँ साहब आप बुद्धिमान होके ऐसी बात मुँह से निकालते हैं, भला आपके जीते आपकी जोरू कैसे राँड़ होगी? मियाँ साहब ने उत्तर दिया—"भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है, मैं भी समझता हूँ कि मेरे जीते मेरी जोरू कैसे राँड होगी। पर नौकर पुराना है, झूठ कभी न बोलेगा।" जो हो "बहर हाल हमें उर्दू का गम वाजिब है" तो हम भी यह स्यापे का प्रकर्ण यहाँ सुनाते हैं।

---

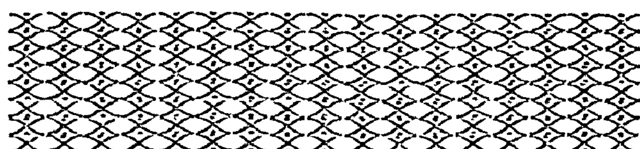
* हरिश्चंद्र चंद्रिका जून सन् १८७४ ई० में प्रकाशित। सं०

हमारे पाठक लोगों को रुलाई न आवे तो हँसने की भी उन्हें सौगन्द है, क्योंकि हाँसा-तमासा नहीं बीबी उर्दू तीन दिन की पट्ठी अभी जवान कट्ठी मरी हैं।

अरबी, फारसी, पशतो, पंजाबी इत्यादि कई भाषा
खड़ी होकर पीटती है

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय॥
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय॥
वल्ला बिल्ला हाय हाय। रोयें पीटैं हाय हाय॥
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचैं हाय हाय॥
डाढ़ी नोचैं हाय हाय। दुनिया उलटी हाय हाय॥
रोजी बिलटी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय॥
किसने मारी हाय हाय। खबर-नवीसी हाय हाय॥
दाँता-पीसी हाय हाय। एडिटर-पोशी हाय हाय॥
बात-फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय॥
चरब-ज़ुबानी हाय हाय। शोख-बयानी हाय हाय॥
फिर नहिं आनी हाय हाय॥





प्रबोधिनी*

(सं० १९३१)

जागो मंगल-रूप सकल ब्रज - जन-रखवारे।
जागो नन्दानन्द-करन जसुदा के बारे॥
जागो बलदेवानुज रोहिनि मात - दुलारे।
जागो श्री राधा जू के प्रानन तें प्यारे॥
जागो कीरति-लोचन-सुखद भानु - मान-बर्द्धित-करन।
जागो गोपी-गो-गोप-प्रिय भक्त-सुखद असरन-सरन॥ १॥

होन चहत अब प्रात चक्रवाकिनि सुख पायो।
उड़े बिहग तजि बास चिरैयन रोर मचायो॥
नव मुकुलित उत्पल पराग लै सीत सुहायो।
मंथर गति अति पावन करत पंडुर बन धायो॥
कलिका उपवन बिकसन लगीं भँवर चले संचार करि।
पूरव पच्छिम दोउ दिसि अरुन तरुन अरुन कृत तेज धरि॥२॥

दीप-जोति भइ मंद पहरुगन लगे जँभावन।
भई सँजोगिन दुखी कुमुद मुद मुँदे सुहावन॥

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० १ सं० ११ (अगस्त सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित। सं०

कुम्हिलाने कच-कुसुम बियोगिनि लगि सचुपावन।
भई मरगजी सेज लगे सब भैरव गावन ॥
तन अभरन-गन सीरे भए काजर दृग विकसित सजत ।
अधरन रस लाली साथ मुख पान स्वाद तजनो चहत ॥ ३ ॥

मथत दही ब्रज-नारि दुहत गौअन ब्रज-बासी ।
उठि उठि कै निज काज चलत सब घोष-निवासी ॥
द्विज-गन लावत ध्यान करत सन्ध्यादि उपासी ।
वनत नारि खंडिता क्रोध पिय पेखि प्रकासी ॥
गौ-रम्भन-धुनि सुनि बच्छगन आकुल माता ढिग चलत।
पशु-वृंद सबै वन को गवन करन चले सब उच्छलत ॥ ४ ॥

नारद तुंबरु पट बिभास ललितादि अलापत ।
चारहु मुख सों वेद पढ़त बिधि तुव जस थापत ॥
इन्द्रादिक सुर नमत जुहारत थर थर काँपत ।
व्यासादिक रिषि हाथ जोरि तुव अस्तुति जापत ॥
जय बिजय गरुड़ कपि आदि गन खरे खरे मुजरा करत ।
शिव डमरू लै गुन गाइ तुव प्रेम-मगन आनँद भरत ॥ ५ ॥

दुर्गादिक सब खरीं कोर नैनन की जोहत ।
गंगादिक आचँवन हेत घट लाई सोहत ॥
तीरथ सब तुव चरन परस-हित ठाढ़े मोहत ।
तुलसी लीने कुसुम अनेकन माला पोहत ॥
ससि सूर पवन धन इंदिरा निज निज सेवा में लगत ।
ऋतु काल यथा उपचार में खरे भरे भय सगबगत ॥ ६ ॥

बंदीजन सब द्वार खरे मधुरे गुन गावत ।
चंग मृदंग सितार बीन मिलि मंद बजावत ॥

द्विज-गन पैं नँदराय अनेक असीस पढ़ावत।
निज निज सेवा मैं सब सेवक उठि उठि धावत॥
पिकदान वस्त्र दरपन चँवर जल-झारी उबटन मलय।
सोंधो सुगंध तंबोल लै खरे दास - दासी-निचय॥ ७॥

मथे सद्य नवनीत लिये रोटी घृत-चोरी।
तनिक सलोनो साक दूध की भरी कटोरी॥
खरीं जसोदा मात जात बलि बलि तृन तोरी।
तुव मुख निरखन-हेत ललक उर किये करोरी॥
रोहिनि आदिक सब पास ही खरीं बिलोकत बदन तुव।
उठि मंगलमय दरसाय मुख मंगलमय सब करहु भुव॥ ८॥

करत काज नहिं नंद बिना तुव मुख अवरेखे।
दाऊ बन नहिं जात बदन सुंदर बिनु देखे॥
ग्वालिन दधि नहिं बेंचि सकत लालन बिनु पेखे।
गोप न चारत गाय लखे बिनु सुंदर भेखे॥
भइ भीर द्वार भारी खरे सब मुख निरखन आस करि।
बलिहार जागिए देर भइ बन गो-चारन चेत धरि॥ ९॥

करत रोर तम-चोर भोर चकवाक बिगोए।
आलस तजि कै उठौ सुरत सुख-सिंधु भिगोए॥
दरसन हित सब अली खरीं आरती सँजोए।
जुगल जागिए बेर भई पिय प्यारी सोए॥
मुख-चंद हमैं दरसाइ कै हरौ बिरह को दुख बिकट।
बलिहार उठो दोऊ अबै बीती निसि दिन भो प्रगट॥१०॥

ललिता लीने बीन मधुर सुर सों कछु गावत।
बैठि बिसाखा कोमल करन मृदंग बजावत।

चित्रा रचि रचि बहु कुसुमन की माल बनावत ॥
श्यामा भामा अभरन सारी पाग सजावत ॥
पिकदान चंद्रभागा लिए चम्पक-लतिका जल गहत ।
दरपन लै कर में इंद्रलेखा बलि बलि जागौ कहत ॥११॥

कबरी सबरी गूँथि फेर सों माँग भराओ ।
कसिकै रस सों पाग पेंच सिरपेंच बँधाओ ॥
अंजन मुख सों सीस महावर-बिंदु छुड़ाओ ।
जुग कपोल सों पीक पोंछि कै छाप मिटाओ ॥
उर हार चीन्ह परि पीठ पर कंकन उपट्यो देत छबि ।
जागौ दुराउ केहि बाल अब जामे कछु बरनैं न कवि ॥१२॥

आलस पूरे नैन अरुन अब हमहिं दिखावहु ।
सुरत याद दै प्रिया-दृगन भरि लाज लजावहु ॥
चुटकी दै बलिहार बोलि कछु अलस जँभावहु ।
केलि-कहानी बिबिध भाखि कछु हँसहु-हँसावहु ॥
भरि प्रेम परस्पर तन चितै आलस मेटहु लागि हिय ।
अँगरानि मुरनि लपटानि लखि सखिगन सबै सिराहिं जिय॥१३॥

जागौ जागौ नाथ कौन तिय-रति रस भोए ।
सिगरी निसि कहुँ जागि इतै आवत ही सोए ॥
क्यौं न सामुहें नैन करत क्यों लाज समोए ।
आधे आधे बैन कहत रस-रंग भिगोए ॥
बलिहार और के भाग मुख हमैं प्रात दरसन मिलन ।
वाहू पै सोवत लाल बलि जागौ कंज चहत खिलन ॥१४॥

जुगल कपोलन पीक छाप अति सोभा पावत ।
खंडित अधरन पै अंजन जावक सरसावत ॥

सिर नूपुर घुँघरू अंक छवि दुगुन बढ़ावत।
अंग अंग प्रति अभरन-गन चिन्हित दरसावत ॥
कंकन पायल सों पीठ खचि गाल तरौनन सों चुभित।
कंचुकी छाप सह माल बहु बिनु गुन कोमल हिय खुभित ॥१५॥

रहे नील पट ओढ़ि चूरिकन जहँ लपटाए।
सेंदुर बिंदुली पीक चित्र तहँ बिबिध बनाए ॥
बिथुरो अलकन मैं बेसर क्यौं सरस फँसाए।
खसित पाग मैं गलित कुसुम मिलि पेंच बँधाए ॥
बलिहार आरसी जल लिए दासी बिनय-बचन कहत।
जागो पीतम अब निसि बिगत गर लागो मनमथ दहत ॥१६॥

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।
आलस-दव एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो ॥
महा मूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
कृपा-दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो ॥
अपुनो अपुनायो जानिकै करहु कृपा गिरिवर-धरन।
जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन ॥१७॥

प्रथम मान धन बुधि कोशल बल देइ बढ़ायो।
क्रम सों विषय-विदूषित जन करि तिनहिं घटायो ॥
आलस मैं पुनि फाँसि परसपर बैर चढ़ायो।
ताही के मिस जवन काल सम को पग आयो ॥
तिनके कर की करवाल बल बाल वृद्ध सब नासि कै।
अब सोवहु होय अचेत तुम दीनन के गल फाँसि कै ॥१८॥

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर ॥

कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गए किते गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर॥
कहँ दुर्ग-सैन-धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग।
अब तौ खल-बल-दलन रक्षहु अपुनो आर्य-मग॥१९॥

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर।
तहँ महजिद बनि गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे वर।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर॥
जहँ धन-विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही बिधि बे-बसी अब तौ जागौ चक्रधर॥२०॥

गयो राज धन तेज रोप बल ज्ञान नसाई।
बुद्धि वीरता श्री उछाह सूरता बिलाई॥
आलस कायरपनो निरुद्यमता अब छाई।
रही मूढ़ता बैर परस्पर कलह लराई॥
सब बिधि नासी भारत-प्रजा कहुँ न रह्यौ अवलंब अब।
जागो जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब॥२१॥

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवत केवल।
पसु समान सब अन्न खात पीअत गंगा-जल॥
धन बिदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।
जड़ समान ह्वै रहत अकिल हत रचि न सकत कल॥
जीवत बिदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत॥२२॥

पृथीराज जयचंद कलह करि जवन बुलायो।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो॥

अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय-वासना दुसह मुहम्मदसह फैलायो॥
तब लौं सोए बहु नाथ तुम जागे नहिं कोऊ जतन।
अब तौ जागौ बलि बेर भइ हे मेरे भारत-रतन॥२३॥

जागो हौं बलि गई बिलंब न तनिक लगावहु।
चक्र सुदरसन हाथ धारि रिपु मारि गिरावहु॥
थापहु थिर करि राज छत्र सिर अटल फिरावहु।
मूरखता दीनता कृपा करि वेग नसावहु॥
गुन विद्या धन बल मान बहु सबै प्रजा मिलि कै लहैं।
जय राज राज महराज की आनँद सो सब ही कहैं॥२४॥

सब देसन की कला सिमिटि कै इतही आवै।
कर राजा नहिं लेइ प्रजन पैं हेत बढ़ावै॥
गाय दूध बहु देहिं तिनहिं कोऊ न नसावै।
द्विज-गन आस्तिक होइँ मेघ सुभ जल बरसावै॥
तजि छुद्र वासना नर सबै निज उछाह उन्नति करहिं।
कहि कृष्ण राधिका-नाथ जय हमहूँ जिय आनँद भरहिं॥२५॥



प्रात-समीरन*

(सं० १९३१)

मन्द मन्द आवै देखो प्रात समीरन
करत सुगन्ध चारो ओर विकीरन।
गात सिहरात तन लगत सीतल
रैन निद्रालस जन-सुखद चंचल॥
नेत्र सीस सीरे होत सुख पावै गात
आवत सुगन्ध लिए पवन प्रभात।
वियोगिनी-विदारन मन्द मन्द गौन
वन-गुहा वास करै सिंह प्रात-पौन॥
नाचत आवत पात पात हिहिनात
तुरग चलत चाल पवन प्रभात।
आवै गुंजरत रस फूलन को लेत
प्रात को पवन भौंर सोभा अति देत।
सौरभ सुमद धारा ऊँचो किए मस्त
गज सो आवत चल्यौ पवन प्रसस्त॥
पुलकावत हिय-कंज जीवन सुखद
सज्जन सो प्रात पौन सोहै बिना मद।

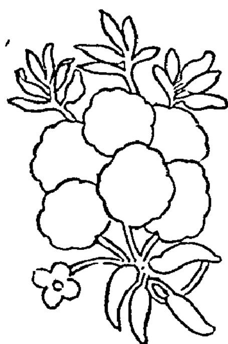
---

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० २ सं० १ (अक्टूबर सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित। इसका छंद बँगला का पयार है।

दिसा प्राची लाल करै कुमुदी लजाय
होरी को खिलार सो पवन सुख पाय ॥
भौंर-शिष्य मन्त्र पढ़ैं धर्म्म-कर्म्म-वन्त
प्रात को समीर आवे साधु को महन्त ।
सौरभ को दान देत मुदित करत
दाता वन्यो प्रात-पौन देखो री चलत ॥
पातन कँपावै लेत पराग खिराज
आवत गुमान भर्यौ समीरन-राज ।
गावैं भौंर गूँजि पात खरक मृदंग
गुनी को अखारो लिए प्रात-पौन संग ॥
काम में चैतन्य करै देत है जगाय
मित्र उपदेस वन्यो भोर पौन आय ।
पराग को मौर दिए पच्छी बोल बाज
व्याहन आवत प्रात-पौन चल्यौ आज ॥
आप देत थपकी गुलाब चुटकार
बालक खिलावै देखो प्रात की बयार ।
जगावत जीव जग करत चैतन्य
प्रान-तत्व सम प्रात आवे धन्य धन्य ॥
गुटकत पच्छी धुनि उड़े सुख होत
प्रात-पौन आवै वन्यो सुन्दर कपोत ।
नव-मुकुलित पद्म-पराग के बोझ
भारवाही पौन चलि सकत न सोझ ॥
छुअत सीतल सबै होत गात आत
स्नेही के परस सम पवन प्रभात ।
लिए जात्री फूल-गन्ध चलै तेज धाय
रेल रेल आवै लखि रेल प्रात-वाय ॥

विविध उपमा छुनि सौरभ को भौन
उड़त अकास कवि-मन किधौं पौन।
अंग सिहरात छूए उड़त अंचल
कामिनी को पति प्रात-पवन चंचल॥
प्रात समीरन सोभा कही नहिं जाय
जगत उद्योगी करै आलस नसाय।
जागै नारी नर लगैं निज निज काम
पंछी चहचह बोलैं ललित ललाम॥
कोई भजै राम राम कोई गंगा न्हाय
कोई सजि वस्त्र अंग काज हेत जाय।
चटकैं गुलाब फूल कमल खिलत
कोई मुख चन्द करैं परन हिलत॥
गावत प्रभाती बाजै मन्द मन्द ढोल
कहूँ करैं द्विजगन जय जय बोल।
बजै सहनाई कहूँ दूर सों सुनाय
भैरवी की तान लेत चित्त कों चुराय॥
कपोत कहूँ काग करै रोर
चुहू चुहू चिरैयन कीनो अति सोर।
बोलैं तम-चोर कहूँ ऊँचो करि माथ
अल्ला अकबर करैं मुल्ला साथ साथ॥
बुझी लालटेन लिए झुकि रहे माथ
पहरू लटकि रहे लम्बो किए हाथ।
स्वान सोये जहाँ तहाँ छिपि रहे चोर
गऊ पास बच्छन अहार देत छोर॥
दही फल फूल लिए ऊँचे बोलैं बोल
आवत ग्रामीन-जन चले टोल टोल।

सड़क सफाई होत करि छिड़काव
बग्गी बैठि हवा खाते आवैं उमराव ॥
काज व्यग्र लोग धाए कन्धन हिलाय
कसे कटि चुस्त बने पगड़ी सजाय ।
सोई वृत्ति जागीं सब नरन के चित्त
बुरी-भली सबै करैं लीक जौन नित्त ॥
चले मनसूबा लोक थोकन के जौन
मार-पीट दान-धर्म्म काम-काज भौन ।
व्यास बैठे घाट घाट खोलि के पुरान
ब्राह्मन पुकारै लगे हाय हाय दान ॥
अरुन किरिन छाई दिसा भई लाल
घाट नीर चमकन लागे तौन काल ।
दीप-जोति उडुगन सह मन्द मन्द
मिलत चकई चका करत अनन्द ॥
प्रलय पीछे सृष्टि सम जगत लखाय
मानो मोह बीत्यौ भयो ज्ञानोदय आय ।
प्रात-पौन लागे जाग्यौ कवि 'हरीचंद'
ताकी स्तुति करि कहौ यह बंग छंद ॥



बकरी-विलाप*

(सं० १९३१)

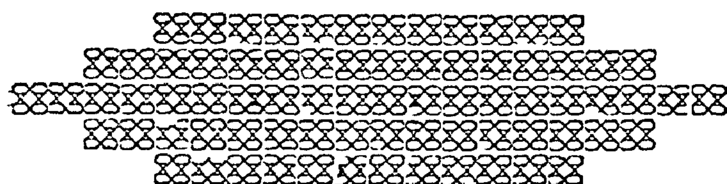
सरद निसा निरमल दिसा गरद रहित नभ स्वच्छ।
सब के मन आनँद बढ़्यौ लखि आगम दिन अच्छ ॥ १ ॥
पितृ पक्ष को जानि कै ब्राह्मन-मन सानंद।
निरखहिं आश्विन मास सब ज्यों चकोर-गन चंद ॥ २ ॥
लखि आगम नवरात को सब को मन हुलसात।
लखन राम-लीला ललित सजि सजि सबही जात ॥ ३ ॥
छुट्टी भई अदालतन आफिस सब भए बंद।
फिरे पथिक सब भवन निज धरि धरि हिए अनंद ॥ ४ ॥
बंगालिन के हूँ भयो घर घर महा उछाह।
देवी-पूजा की बढ़ी चित्त चौगुनी चाह ॥ ५ ॥
नाच लखन मद-पान को मिल्यो आइ सुभ जोग।
दुरगा के परसाद सों मिलिहैं सब ही भोग ॥ ६ ॥
कोउ गावत कोऊ हँसत मंगल करन विचारि।
आगतपतिका बनि रहीं परदेसिन की नारि ॥ ७ ॥

---

* कवि-वचन-सुधा खं० ६ सं० २ (आश्विन कृ० ११ सं० १९३१) में प्रकाशित।

ऐसे आनँद के समय बकरी अति अकुलाय ।
निज सिसु-गन लै गोद में करत दीन धनि हाय ॥ ८ ॥
घोर सरद साँपिनि समै मोसों दुखिया कौन ।
जाके सुत सब नासिहैं बलिदायक अघ-भौन ॥ ९ ॥
माता को सुत सो नहीं प्यारो जग में कोय ।
ताकैं परम वियोग में क्यों न मरैं हम रोय ॥१०॥
जिनके सिसु है कै मरें ते जानहिं यह पीर ।
बाँझ गरभ की वेदना जानै कहा सरीर ॥११॥
अपने बचन देखि कै हरो हमारो सोग ।
मेरो दुख अनुभव करौ तुमहु कुटुम्बी लोग ॥१२॥
दूध देत नित तृन चरत करत न कछू बिगार ।
ताहू पैं मम यह दसा रे निर्दय करतार ॥१३॥
पुत्र - सोगिनी ही रह्यौ जो पै करनो मोहिं ।
तौ रे विधि मम रचन सों कहा सिरान्यौ तोहिं ॥१४॥
रे रे विधि सब विधि अविधि आजु अविधि तैं कीन ।
बधि बधि कै मेरे सुअन महा सोक मोहिं दीन ॥१५॥
सुरति करत जिय अति जरत मरत रोय करि हाय ।
बलि यह बलिजा नाम सौ हीयो उलटत जाय ॥१६॥
मुख गद्गद तन स्वेद-कन कंठहु रूँध्यो जात ।
उलट्यौ परत करेजवा जिय अतिही अकुलात ॥१७॥
कहाँ जायँ कासों कहैं कोउ न सुनिवे जोग ।
खाँव खाँव करि धाय सब हमहिं लगावत भोग ॥१८॥
जदपि नारि दुख जानहीं मेरो सहित विवेक ।
पै ते पति-मति मैं रँगीं बरजहिं तिन्हैं न नेक ॥१९॥
मानुप-जन सों कठिन कोउ जन्तु नाहिं जग बीच ।
विकल छोड़ि मोहिं पुत्र लै हनत हाय सब नीच ॥२०॥

वृथा जवन को दूसहीं करि वैदिक अभिमान ।
जो हत्यारो सोइ जवन मेरे एक समान ॥२१॥
धिक् धिक् ऐसो धरम जो हिंसा करत विधान ।
धिक् धिक् ऐसो स्वर्ग जौ वध करि मिलत महान ॥२२॥
शास्त्रन को सिद्धांत यह पुण्य सु पर-उपकार ।
पर-पीड़न सों पाप कछु बढ़ि के नहिं संसार ॥२३॥
वेदन में जप-जज्ञ बढ़ि अरु सुभ सात्विक धर्म ।
सब धर्मन सों श्रेष्ठ है परम अहिंसा धर्म ॥२४॥
पूजा लै कहँ तुष्ट नहिं धूप दीप फल अन्न ।
जौ देवी बकरा बधे केवल होत प्रसन्न ॥२५॥
हे विस्वंभर ! जगत-पति जग-स्वामी जगदीस ।
हम जग के बाहर कहा जो काटत मम सीस ॥२६॥
जगन्मात ! जगदम्बिके ! जगत-जननि जग-रानि ।
तुव सन्मुख तुव सुतन को सिर काटत क्यौं जानि ॥२७॥
क्यौं न खींचि के खड्ग तुम सिंहासन तें धाइ ।
सिर काटत सुत बधिक को क्रोधित बलि ढिग आइ ॥२८॥
त्राहि त्राहि तुमरी सरन मैं दुखिनी अति अम्ब ।
अब लम्बोदर-जननि बिनु मोकों नहिं अवलम्ब ॥२९॥
निर-अपराध गरीब हम सब बिधि बिना सहाय ।
हे षटमुख-गजमुख-जननि तुम समझौ मम हाय ॥३०॥
पुत्रवती बिनु जानई को सुत-बिछुरन-पीर ।
यासों मोहिं अब दै अभय जननि धरावहु धीर ॥३१॥
एहि बिधि बहु बिलपत परी बकरी अति आधीन ।
हे करुना-बरुनायतन द्रवहु वाहि लखि दीन ॥३२॥



स्वरूप-चिन्तन *

(सं० १९३१)

जय जय गिरवर-धरन जयति श्री नवनीत-प्रिय ।
जयति द्वारिकाधीश जयति मथुरेश माल हिय ॥
जय जय गोकुलनाथ मदनमोहन पिय प्यारे ।
जय गोकुल-चंद्रमा सु विट्ठलनाथ दुलारे ॥
श्री बालकृष्ण नटवर नवल श्री मुकुन्द दुख-द्वंद-हर ।
स्वामिनि सह ललित तृभंग गोपाललाल जय जयतिवर ॥१॥

जय जय श्री गिरिराज-धरन श्रीनाथ जयति जय ।
देव-दमन जय नाग-दमन जय शमन भक्त-भय ॥
जय श्री राधा-प्राणनाथ श्री वल्लभ प्यारे ।
श्री विट्ठल के जीव जयति जसुदा के बारे ॥
श्रीवल्लभ कुल के परम निधि भक्तन के बहु दुख-दरन ।
नित नव निकुंज लीला-करन जय जय श्रीगिरिवरधरन ॥२॥

जय जय श्री नवनीत-प्रिय जय जसुदानन्दन ।
जय नंदांगन रिंगन कर जुवती-मन-फन्दन ॥

---

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० २ सं० ३ (दिसंबर सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित । सं०

जय कृत मृगमद-तिलक भाल जय मुक्त माल गल ।
मुख मंडित दधि-लेप घुटुरुवन चलत चपल चल ॥
जय बाल ब्रह्म गोपाल जन-पालक केहरि करज हिय ।
जदुनाथ नाथ गोकुल-बसन जै जै श्री नवनीत-प्रिय ॥३॥

जय जय मथुरानाथ जयति जय भव-भय-भंजन ।
जय प्रनतारति-हरन जयति जय जन-मन-रंजन ॥
भुज बिसाल सुभ चार भक्त-जन के रखवारे ।
संख चक्र असि गदा पद्म आयुध कर धारे ॥
श्री गिरिधर-प्रिय आनंदनिधि जयति चतुर्विध जूथपति ।
गावत श्रुति गुन-गन-गाथ जय मथुरानाथ अनाथ-गति ॥४॥

जय श्री विट्ठलनाथ साथ स्वामिनि मुठि सोहत ।
कटि धारे दोउ हाथ रास-श्रम भरि मन मोहत ॥
नृत्य भाव करि बिबिध जयति जुवती-मन-फंदन ।
जसुदा-लालित जयति नंद-नंदन आनंदन ॥
श्री गोविंद प्रभु-पालन प्रनत दीन-हीन-जन-उद्धरन ।
जय असुर-दरन भक्तन-भरन श्री बिट्ठल असरन-सरन ॥५॥

जयति द्वारिकाधीस-सीस मनि-मुकुट बिराजत ।
जयति चार कर चक्रादिक आयुध छबि छाजत ॥
निय-दृग द्वै कर मूँदि जुगल कर बेनु बजायो ।
कंठ चरन उपमान कंबु अंबुज मन-भायो ॥
जय प्रिया कंकनाकार कर चक्र गदा बंसी अभय ।
जय बालकृष्ण प्रिय प्रान श्री द्वारिकेस महराज जय ॥६॥

जय श्री गोकुलनाथ जयति गिरिराज-उधारन ।
निधि कर बंम प्रसंम कंबु गिरि बिबि कर धारन ॥

रास-रसिक नटराज रसिक-मंडल मनि-मंडन ।
हरन इंद्र-मद-मान भक्त भव-भय-भर-खंडन ॥
श्री राधापति चंद्रावली-रमन शमन गजपति गमन ।
श्री वल्लभ प्रिय रसमय जयति गोकुलेस मनमथ-दमन ॥७॥

जय गोकुल-चंद्रमा परम कोमल अँग सोहन ।
रास जूथपति वेनु-वाद-रत तिय-मन-मोहन ॥
मधि नायक वृन्दावनेस राका ससि पूरन ।
नटवर नर्त्तक करन मत्त मनमथ-मद-चूरन ॥
श्रीरघुपति पति अति ललित गति कति जुवती मति जति हरन ।
रतिरंजन नति प्रिय जयति श्री गोकुल-ससि साँवर वरन ॥८॥

जय जय मोहन मदन मदन-मद-कदन ताप-हर ।
सब सुख-सोभा-सदन रदन-छवि कुंद-निंद-कर ॥
मरजादा उल्लंघि पुष्टि-पथ थापन चाहत ।
होइ त्रिभंगी प्रिया वदन मधु रस अवगाहत ॥
वर वंसी कर स्वामिनि सहित करन प्रेम-रँग भक्ति-लय ।
श्री घनश्याम आनँद भरन जय श्री मोहन मदन जय ॥९॥

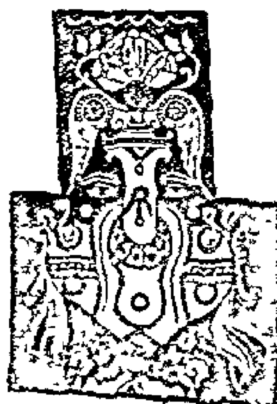
जय श्री नटवर लाल ललित नटवर वपु राजत ।
निरतत तजि मरजाद देखि रति-पति जिय लाजत ॥
परम रसिक रस रास रास-मंडल की सोभा ।
पग कर सिर की हिलनि देखि व्रज-तिय मन लोभा ॥
श्री वृंदावन-नभ-चंद्रमा जन-चकोर आनंद-कर ।
नित प्रेम-सुधा-बरखन-करन जय नटवर त्रय ताप-हर ॥१०॥

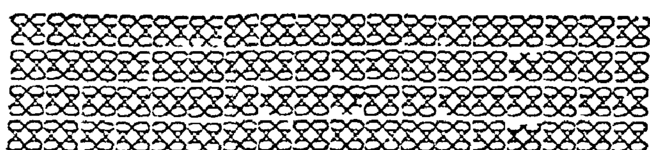
जय जय जय श्री बालकृष्ण जसुदा के बारे ।
बलदेवानुज नंदराय के प्रान पियारे ॥

नन्दालय कृत जानु पानि रिंगन बाला-कृत ।
कर मोदक मन-मोद-करन व्रत जुवती-जन-हित ॥
जदुपति प्यारे आनंदनिधि सब गोकुल के प्रान-प्रद ।
झँगुली टोपी मसिबिंदु सिर बालकृष्ण जय जन-सुखद ॥११॥

श्री मुकुंद भव-दुंद-हरन जय कुंद गौर छवि ।
श्याम मिलित मधि जुगल भाव सो किमि बरनै कवि ॥
बाल भाव परतच्छ तरुन अतर छवि छाजै ।
कर मोदक मिस प्रिया अधर मधु स्वाद बिराजै ॥
जदुनाथ मनोरथ-पूर्ण-कर श्रीवल्लभ चिकुरस्थ वर ।
श्री गिरिधर लालित ललित जय श्रीमुकुंद दुख-दुंद-हर ॥१२॥

जय जय श्री गोपाल लाल श्री राधानायक ।
कोटि काम-मद-मथन-भक्तजन सदा सहायक ॥
प्रिया प्रनय भट गौर बदन सुंदर छवि छाजत ।
प्यारी रिझवन हेत मुरलि कर लिये बजावत ॥
दरसन दै मन करसन करत ब्रज-जुवतीजन-मन-हरन ।
कासी में बृंदाबन-करन जय गोपाल असरन-सरन ॥१३॥





श्री राजकुमार-शुभागमन-वर्णन *

(सं० १९३२)

स्वागत स्वागत धन्य तुम भावी राजधिराज ।
भई सनाथा भूमि यह परसि चरन तुव आज ॥१॥
"राजकुँअर आओ इतै दरसाओ मुख चंद ।
बरसाओ हम पर सुधा बाढ़्यौ परम अनंद ॥२॥
नैन बिछाए आपु हित आवहु या मग होय ।
कमल पाँवड़े ये किए अति कोमल पग जोय" ॥३॥
साँचहु भारत में बढ़्यौ अचरज सहित अनंद ।
निरखत पच्छिम सों उदित आज अपूरब चंद ॥४॥
दुष्ट नृपति बल दल दली दीना भारत भूमि ।
लहिहै आजु अनंद अति तुव पद-पंकज चूमि ॥५॥
बिकसित कीरति-कैरवी रिपु बिरही अति छीन ।
उडुगन-सम नृप और सब लखियत तेज-बिहीन ॥६॥
स्रवत सुधा-सम बचन-मधु पोखत औषधिराज ।
त्रासत चोर कुमित्र खल नंदत प्रजा-समाज ॥७॥

---

* सन् १८७५ ई० में युवराज प्रिंस आव वेल्स (सम्राट् एडवर्ड सप्तम) भारत आए थे, जिनके शुभागमन पर यह कविता लिखी गई थी। यह कविता बालाबोधिनी खं० २ सं० ६ (आषाढ़ सं० १९३२) में छपी थी, जिसमें नं० १९ के बाद के ६ दोहे हरिश्चन्द्र-कला खं० से और भी सम्मिलित कर दिए गए हैं। सं०

चित-चकोर हरखित भए सेवक-कुमुद अनंद ।
मिट्यौ दीनता-तम सबै लखि भूपति मुख-चंद* ॥८॥
मन-मयूर हरखित भए गए दुरित दव दूरि ।
राजकुँअर नव घन सरस भारत-जीवन-मूरि ॥९॥
हृदय-कमल प्रफुलित भए दुरे दुसह खल-चोर ।
पमर्‍यौ तेज जहान रवि भूपति-आगम भोर ॥१०॥
नदन-पति-प्यारी सची दंड वज्र गज जान ।
मंत्रीवर सुर-सह लसत नृप-सुत इंद्र-समान ॥११॥
भये लहलहे नर सबै उलस्यो प्रजा-समाज ।
वंदी-पिक गावत सुजस राजकुँअर रितुराज ॥१२॥
विदलित रिपु-गज-सीस नित नख-बल बुद्धि-प्रभाव ।
जन वन पथि सम अति प्रबल हरि भावी नर-राव ॥१३॥
मेलाहू सों बढ़ि सबै सज्यौ नगर को साज ।
बुढ़वामंगल तुच्छ कह लखि नव मंगल आज ॥१४॥
ललित अकासी धुज सजे परकासी आनंद ।
राका सी कासीपुरी लखि भूपति मुखचंद ॥१५॥
नौबत-धुनि-मंजीर सजि अंचल-धुज फहराय ।
कासी तुमहिं मिनार-मिस टेरति हाथ उठाय ॥१६॥
मरवट सथिये बसन धुज मौरी तोरन लाय ।
दुलही सी कासीपुरी उलही नव वर पाय ॥१७॥
जिमि रघुबर आए अवध जिमि रजनी लहि चंद ।
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यो अनंद ॥१८॥
मधुबन तजि फिर आइ हरि ब्रज निवसे मनु आज ।
ऐसो अनुपम सुख लह्यो तुम कहँ निरखि समाज ॥१९॥

* भिन्न० कुम्हकम् ।

[षड्भिः कुलकम्]

जदपि न भोज न व्यास नहिं वालमीकि नहिं राम।
शाक्यसिंह 'हरिचंद' वलि करन जुधिष्ठिर श्याम ॥२०॥
जदपि न विक्रम अकबरहु कालिदासहू नाहिं।
जदपि न सो विद्यादि गुन भारतवासी माहिं ॥२१॥
प्रतिष्ठान साकेत पुनि दिल्ली मगध कनौज।
जदपि अबै उजरी परीं नगर सबै बिनु मौज ॥२२॥
जदपि खँडहर सी भरी भारत भुव अति दीन।
खोइ रत्न संतान सब कृस तन दीन मलीन ॥२३॥
तदपि तुमहिं लखि कै तुरत आनंदित सब गात।
प्रान लहे तन सी अहो भारत भूमि दिखात ॥२४॥
दाव जरे कहँ वारि जिमि विरही कहँ जिमि मीत।
रोगिहि अमृत-पान जिमि तिमि एहि तोहि लहि प्रीत ॥२५॥
घर घर में मनु सुत भयो घर घर मैं मनु व्याह।
घर घर बाढ़ी संपदा तुव आगम नर-नाह ॥२६॥
जैसे आतप तपित कों छाया सुखद गुनात।
जवन-राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात ॥२७॥
मसजिद लखि विसुनाथ ढिग परे हिए जो घाव।
ता कहँ मरहम सरिस यह तुव दरसन नर-राव ॥२८॥
कुँअर कहाँ हम लेहिं तोहिं ठौर न कहूँ लखाय।
दृग-मग ह्वै हमरे हिए बैठहु प्रिय तुम आय ॥२९॥
कुँअर कहा आदर करैं देहिं कहा उपहार।
तुव मुख-ससि आगे लसत तृन-सम सब संसार ॥३०॥
पै केवल अति सुद्ध जिय कहि यह देहिं असीस।
सानुज-माता-सहित तुम जीओ कोटि बरीस ॥३१॥

जब लौं बानी वेद की जब लौं जग को जाल।
जब लौं नभ ससि-सूर अरु तारागन की माल ॥३२॥
जब लौं गंगा-जमुन-जल जब लौं भयौ नदीस।
जब लौं कवि कविता सुथित जब लौं भुव अहि-सीस॥३३॥
जब लौं सुमन सुवास पर मत्त भँवर संचार।
जब लौं कामिनि-नयन पर होहिं रसिक बलिहार॥३४॥
जब लौं तत्व सबै मिले गठे सबै परमानु।
जब लौं ईश्वर अस्तिता तब लौं तुम नर-भानु ॥३५॥
जिओ अचल लहि राज-सुख नीरुज बिना विवाद।
उदय अस्त लौं मेदिनी पालहु लहि सुख स्वाद ॥३६॥
पहरू कोउ न लखि परै होय अदालत बंद।
ऐसो निरुपद्रव करौ राज-कुँअर सुख-कंद ॥३७॥
लोहा गृह के काम मैं कलह दंपती माहिं।
बाद बुधनहीं मैं सदा तुव राजत रहि जाहिं ॥३८॥
जाति एक सब नरन की जदपि विविध ब्यौहार।
तुमरे राजत लखि परै नेही सब संसार ॥३९॥
रसना इक आसा अमित कहँ लौं देहिं असीस।
रहौ सदा तुम छत्र ते होइ हमारे सीस ॥४०॥
भ्रात मात सह सुतन जुत प्रिया सहित जुवराज।
जिओ जिओ जुग जुग जिओ भोगौ सब सुख-साज ॥४१॥





भारत-भिक्षा*

(सं० १९३२)

अहो आज का सुनि परत भारत भूमि मँझार।
चहूँ ओर आनंद-धुनि कहा होत बहु वार ॥ १ ॥
वृटिश सुशासित भूमि मैं आनँद उमगे जात।
सवै कहत जय आज क्यों यह नहिं जान्यो जात ॥ २ ॥
वृटिश-राज-चिन्हन सजी नगरन - अटा अटारि।
धुजा-पताका फरहरहिं सहसन आज सँवारि ॥ ३ ॥
गंग - जमुन - गोदावरी - पथ ह्वै ह्वै बहु जान।
क्यौं सव आवत हैं सजे देव-विमान-समान ॥ ४ ॥
घर वाहर इत उत सवै सजे वसन मनि साज।
चातक और चकोर से खरे अरे क्यौं आज ॥ ५ ॥

---

* यह श्रीयुत वा० हेमचंद्र वनर्जी की कविता की छाया लेकर कवि की इच्छानुसार लिखी गई है। (चंद्रिका संपादक)

(यह कविता हरिश्चंद्र चंद्रिका खंड २ सं० ८–१२ सन् १८७५ ई० के मई-सितम्बर की सम्मिलित संख्या में प्रकाशित हुई थी। यह वारह पृष्ठों में छपी है, जिनमें से प्रत्येक में २४ पंक्तियाँ हैं। विजयिनी-विजय-वैजयंती, भारत-वीरत्व और इसके वहुत से पद एक दूसरे में सम्मिलित कर लिये गए थे। पर सभी को पूरा देने में कई पृष्ठ पदों की पुनरावृत्ति मात्र होती, इसलिए वैसा नहीं किया गया। सं०)

शारदा

आवत भारत आज कुँअर बूदनहि सुखदानी।
सुनहु न गगनहि भेदि होत जै जै धुनि-बानी ॥ ६ ॥
जै जै जै विजयिनी जयति भारत - महरानी।
जै राजागन-मुकुट-मनी धन - बल - गुन - खानी ॥ ७ ॥
जाकी कृपा-कटाक्ष चहत सिगरे राजा-गन।
जा पद भारत-भुवन लुठत ह्वै बस कंपित मन ॥ ८ ॥
आवत सोई बूदन कुँअर जल-पथ सुनि एहि छन।
ठाढ़ो भारत मग मैं निरखत प्रेम पुलक तन ॥ ९ ॥

पूर्ण कोरस

मृदंगादि बाजे बजाओ बजाओ।
सितारादि यंत्रै सुनाओ सुनाओ ॥
अरे ताल दै लै बढ़ाओ बढ़ाओ।
बधाई सबै धाइ गाओ सुनाओ ॥
कहाँ हैं रबानी मृदंगी सितारी।
कहाँ हैं गवैये कहाँ नृत्यकारी।
कहाँ आज मौलाबकस बाजपेई।
कहाँ आज हैं छैमोहन गुसाईं ॥
कहाँ भाट नाटकपती स्वाँगधारी।
कहाँ नट गुनी चट करैं सब तयारी।
कहो रागिनो आज भारी जमावैं।
मिलै एक लै मैं सुनावैं बजावैं ॥
कहाँ भाँड़ कत्थक छिपे हैं बुलाओ।
मुबारक कहाओ बधाई गवाओ ॥
कहाँ हैं सबै सुंदरी बार-नारी।
कहो पेशवाजैं सजैं आज भारी।

लगै दून में आज आवाज प्यारी ।
सरंगी बजै राग रंगी सँवारी ॥
छिड़ै भैरवी सारँगौ सिंध काफी ।
जमै जोगिया पूरिया औ धनाश्री ।
रहै कान्हरा देस सोरठ बिहागा ।
कलिंगा किदारा परज आदि रागा ॥
मिले तान लै राग-रंगै जमाओ ।
मिले मान संगीत भावै दिखाओ ।
रहै लाग-डाँटौ उरप-तिर्प संगा ।
रहै तत्थेई तत्थेई नृत्य - रंगा ॥
दिखाओ कुमारै कला आज धाए ।
बड़े भाग सों पाहुने गेह आए ॥१०॥

आरम्भ

कहाँ सबै राजा कुँवर और अमीर नवाब ।
आज राज-दरबार में हाजिर होहु सिताब ॥११॥
सिरन झुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि ।
जटितहु जूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि ॥१२॥
जातु सुपानि नवाइ कै पद पैं धरि उसनीस ।
चूमि चूमि वर अभय-प्रद कर जुग नावहु सीस ॥१३॥
परम मोक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माहिं ।
बृटन-देवता राज-सुत-पद परसहु चित चाहि ॥१४॥
कित हुलकर कित सेन्धिया कित बेगम भूपाल ।
कित काशीपति कित रहे सिक्ख-राज पटियाल ॥१५॥
कित लायल ईजानगर मानी नृप मेवार ।
कितै जोधपुर जैपुरी त्रावंकोर कछार ॥१६॥

जाट भरतपुर धौलपुर राना कित तुम जाम।
कित मुहम्मदिन के पती दक्षिन-राज निजाम ॥१७॥
धाओ धाओ वेग सब पहिरि पहिरि पौसाक।
पगरी मोती-माल गल साजि साजि इक ताक ॥१८॥
गले बाँधि इस्टार सब जटित हीर मनि कोर।
धावहु धावहु दौरि कै कलकत्ता की ओर ॥१९॥
चढ़ि तुरंत बग्गीन पर धावहु पाछे लागि।
उडुपति सँग उडुगन-सरिस नृप सुख सोभा पागि ॥२०॥
राज-भेंट सबही करौ अहो अमीर नवाब।
हाजिर ह्वै झुकि झुकि करौ सबै सलाम अदाब ॥२१॥

शाखा

राजसिंह छूटे सबै करि निज देस उजार।
सेवत हित नृप वर कुँअर धाये बाँधि कतार ॥२२॥
तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान।
हिमगिरि को दै पीठ किय कश्मीरेस पयान ॥२३॥
नाभा पटियाला अमृत-सर जम्बू अस्थान।
कच्छ सिंधु गुजरात मेवाड़रु राजपुतान ॥२४॥
कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इन्दौर।
धाए नृप इक साथ सब करि सूनो निज ठौर ॥२५॥
लखि कुल-दीपक राज-सुत धाए भूप-पतंग।
रुके न गिरिवर नगर नद समुद जमुन जल गंग ॥२६॥
कहाँ पांडु जिन हस्तिनापुर मधि कीनौ जाग।
राजसूय साँचो लखैं वृटन-रचित वल आग ॥२७॥

फूलनं कोरस

अति सुन्दर मोहनी सजायो।
आज लगत कलकत्ता सुहायो॥

द्वार द्वार पर वन्दन-माला ।
रँग रँग वसन फूल-दल-जाला ॥२८॥
कदली खम्भ पात थरहरहीं ।
पद भय हिलि हिलि मनु मन हरहीं ॥
फर फर फहरत धुजा पताका ।
चम चम चमकत कलस वलाका ॥२९॥
अटा अटारी वाहर मोखन ।
छज्जै छातन गोख झरोखन ॥
दीपहि दीपक परत लखाई ।
मनु नभ तें तारावलि आई ॥३०॥
दिन को रवि अकास लखि लज्जित ।
मनहुँ हीर गिरि खंडव सज्जित ॥
छुटत अतसवाजी रँग-रंगी ।
गगन प्रकट मनु अनल फिरंगी ॥३१॥
नव तारे प्रगटहिं नसि जाहीं ।
उड़त वान इमि गगन लखाहीं ॥
गंज सितारनि की छवि भारी ।
नभ मनु तेजोमय फुलवारी ॥३२॥
धन कलकत्ता कलि-रजधानी ।
जेहि लखि कै सुरपुरी लजानी ॥
चलत कुँअर चढ़ि चपल तुरंगनि ।
सँग सोभित दल वल चतुरंगनि ॥३३॥
नृप-गन धावत पाछे पाछे ।
अश्व चढ़े मनि काछे आछे ॥
ताजन पर कलँगी थरहरई ।
नृपगन दल दल सोभा करई ॥३४॥

चलहिं नगर-दरसन हित धाई।
झमक झमक बाजने बजाई॥
बजत बृटिस भेरी घहराई।
कादर मन सुनि-सुनि थहराई॥३५॥
रूल बृटानिय रूल दि वेवस।
ताल तरङ्ग बजत अति रन रस॥

आरम्भ

उठहु उठहु भारत-जननि लेहु कुँअर भरि गोद।
आज जगे तुव भाग फिर मानहुँ मन अति मोद॥३६॥
करि आदर मृदु बैन कहि बहु बिधि देहु असीस।
चिर दिन लौं सिसु-मुख लख्यौ नहिं तुम सोइ अवनीस॥३७॥
सेज छाँड़ि माता उठहु उदित अरुन तुव देस।
मिटे अमंगल तिमिर सब राजकुमार-प्रवेस॥३८॥
मति रोओ रोओ न तुम जननी व्याकुल होय।
उठहु उठहु धीरज धरहु लेहु कुँअर मुख जोय॥३९॥
तुम दुखिया बहु दिनन की सदा अन्य आधीन।
सदा और के आसरे रहो दीन मन खीन॥४०॥
तुम अबला हत-भागिनी सदा सनाथ दयाल।
जोग भजन भूली रहत सूधे जिय की चाल॥४१॥
सो दुख तुमरो देखि महरानी करुना धारि।
निज प्रानोपम पुत्र तुव ढिग पठयो मनुहारि॥४२॥
रिपु-पद के बहु चिन्ह सब कुँअरहिं देहु गिनाय।
काढ़ि करेजो आपनो देहु न सुतहि दिखाय॥४३॥
सदा अनादर जो सह्यो सह्यो कठिन रिपु-लात।
सो छत देहु दिखाय अब करहु कुँअर सों बात॥४४॥

उठहु फेर भारत जननि है प्रसन्न इक वार।
लेहु गोद करि नृप कुँवर भयो प्रात उँजियार ॥४५॥

शाखा

सुनत सेज तजि भारत माई।
उठी तुरंतहि जिय अकुलाई ॥
निविड़ केस दोउ कर निरुआरी।
पीत वदन की क्रान्ति पसारी ॥४६॥
भरे नेत्र अँसुअन जल-धारा।
लै उसास यह वचन उचारा ॥
क्यों आवत इत नृपति-कुमारा।
भारत में छायो अँधियारा ॥४७॥
कहा यहाँ अव लखिवे जोगू।
अव नाहिंन इत वे सव लोगू ॥
जिन के भय कंपत संसारा।
सव जग जिन को तेज पसारा ॥४८॥
रहे शास्त्र के जव आलोचन।
रहे सवै जव इत पट-दरसन ॥
भारत विधि विद्या वहु जोगू।
नहिं अव इत केवल है सोगू ॥४९॥
सो अमूल्य अव लोग इतै नहिं।
कहा कुँअर लखिहै भारत महिं ॥
रहै जवै मनि क्रीट सकुंडल।
रह्यो दंड जव प्रवल अखंडल ॥५०॥
रह्यो रुधिर जव आरज-सीसा।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ॥

साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
जबै रह्यौ महि-मंडल माहीं ॥५१॥
जब मोहिं ये कहि जननि पुकारैं।
दसहू दिसि धुनि गरज न पारैं॥

तब मैं रही जगत की माता।
अब मेरी जग में कह बाता ॥५२॥
लरिहैं का कुमार अब धाई।
गोद बैठि हँसिहैं इत आई॥
जब पुकारिहैं कहि मोहिं माता।
आनँद सों भरिहौं सब गाता ॥५३॥
युरप अमरिका इहिहि सिहाहीं।
भारत-भाग-सरिस कोउ नाहीं॥

पूर्व सखी मम रोम पिआरी।
मरिकै बाँचि उठी फिरि बारी ॥५४॥
ग्रीसहु पुनि निज आनन पायो।
हाय अकेली हमहिं बनायो॥
मम दंड कंपित कर-धारी।
कब लौं ठाढ़ी रहौं दुखारी ॥५५॥
मम सकल भूषन तन साजी।
दास-जननि कहवैहौं लाजी॥
मेरे भागन जो तन हारे।
थाप्यो पद मम सीस उघारे ॥५६॥

आरम्भ

सुनि बोली भारत-जननि आये कहा कुमार।
आये किन आओ निकट पुत्र जननि-अँकवार ॥५७॥

रहत निरंतर अंतरहि कठिन पराजय-पीर।
आवो सुत मम हृदय लगि सीतल करहु सरीर ॥५८॥
लेहु माय कहि मोहिं पुकारी।
सोइ भावन जिमि निज महतारी ॥
सत संवत लौं रह्यौं अधूरी।
करौ न आज भाव सोइ पूरी ॥५९॥
अतिहि अकिंचन भारत-वासा।
अतिहि छीन हिन्दुन की आसा ॥
भूलि वृटिश वल धारि सनेहू।
भारत - सुतन गोद करि लेहू ॥६०॥
कहि कृष्ण इन्हें मति तुच्छ करौ।
नहिं कीटहु तुच्छ विचार धरौ ॥
इनहूँ कहँ जीवन देह दया।
इनहूँ कहँ ज्ञान सनेह मया ॥६१॥
इनहूँ कहँ लाज तृपा ममता।
इनहूँ कहँ क्रोध क्षुधा समता ॥
इनुहूँ तन सोनित हाड़ तुचा।
इनहूँ कहँ आखिर ईस रचा ॥६२॥
कबहुँ कबहुँ अबहूँ सोई उदय होत चित आस।
इनसों करहु न कुँअर तुम कबहूँ जीय उदास ॥६३॥
सोई परम पवित्र भुव आये अहो कुमार।
ताहि न समझहु तुच्छ तुम सो संबंध विचार ॥६४॥
पालत पच्छिहु जो कुँअर करि पिंजरन महँ बंद।
ताहू कहँ सुख देत नर जामें रहै अनन्द ॥६५॥
सोई सुख लहि घरहु में गावत विविध विहंग।
जतनहिं सों वस होत हैं वन के मत्त मतंग ॥६६॥

कोकिल-स्वर सब जग सुखी वायस-शब्द उदास।
यह जग कों कह देत है वह कह लेत निकास ॥६७॥
केवल यह भाखै मधुर वह कठोर रव नित्त।
तासों जग चाहै सबै मधुर सरल बस चित्त ॥६८॥
हम तुव जननी की निज दासी।
दासी-सुत मम भूमि-निवासी॥
तिनको सब दुख कुँअर छुड़ावो।
दासी की सब आस पुरावो ॥६९॥
मेटहु भय कर अभय दिखाई।
हरहु बिपति बच मधुर सुनाई॥
बृटिश-सिंह के बदन कराला।
लखि न सकत भयभीत भुआला ॥७०॥
फाटत हिय जिय थर थर कंपत।
तेज देखिकै दृग जुग झंपत॥
कहि न सकत मन को दुख भारी।
भरत नैन जुग अबिरल बारी ॥७१॥
सौदागर मेलुआ जहाजी।
गोरा धरमपती जग काजी॥
सबहिं राज सम पूजन करहीं।
सबको मुख देखत ही डरहीं ॥७२॥
तेज चंद सो हरहु कुमारा।
पोंछहु मम दुख को जल-धारा॥
लै भारत-बासी मम सुत ढिग।
बैठहु छिनक लखहु छबि भरि दृग ॥७३॥
लखहु लखहु सुत आनँद भारी।
कैसो छायो भुवन मँझारी॥

तुमहिं देखि सब पुलकित गाता ।
गद्‌गद्‌ गल कहि सकहि न वाता ॥७४॥
कहहि धन्य यह रैन धन्य दिन ।
धन धन घरी आज धन पल छिन ॥
प्रेम - अश्रु - जल बहहि नैन तें ।
जिअहु कुँअर सब कहहिं वैन तें ॥७५॥
फिरहु कुँअर जब जननी पासा ।
कहियो पूरहिं मम मन - आसा ॥
मिथ्या नहिं कछु याके माहीं ।
राजभक्त भारत - सम नाहीं ॥७६॥
लेहिं प्रात उठिकै तुव नामा ।
करहिं चित्र तव देखि प्रनामा ॥
तुमरे सुख सों सब सुख पावैं ।
छल तजि सदा तुवहि गुन गावैं ॥७७॥
यह कहि भारत नैन भरि आँचर वदन छिपाय ।
दै असीस जिय सों नृपहि भई अदृश्य सुहाय ॥७८॥
बजे बृटिश डंका सघन गहगह शब्द अपार ।
जय रानी विक्टोरिय जै जुवराज-कुमार ॥७९॥

पूर्ण कोरस

उदयो भानु है आज या देस माहीं ।
रह्यो दुःख को लेसहू सेस नाहीं ॥
महाराज अलवर्त्त या भूमि आये ।
अरे लोग धावो बजावो बधाये ॥८०॥
छुटीं तोप फहरीं धुजा गरजे गहकि निसान ।
भुव-मंडल खलभल भयो राजकुमार-प्रयान ॥८१॥



श्री पंचमी*

(सं० १९३२)

श्री पंचमी प्रथम विहार-दिन मदन महोत्सव भारी।
भरन चलीं सब मिलि पीतम कों घर घर तें ब्रज-नारी ॥
नव-सत साज-सिंगार सजे कंचुकि सुदृढ़ सँवारी।
लहकति तन-दुति नवजोबन तें ता पै तनसुख सारी ॥
गावत गीत उमगि ऊँचे सुर मनहुँ मदन-मतवारी।
गलिन गलिन प्रति पायल झमकति दमकति तन दुति-न्यारी॥
मदन दुहाई फेरति डोलैं बिरद बसंत पुकारी।
सजे सैन सी उमड़ी आवहिं जीतन कों गिरधारी ॥
ललिता, चंद्रभगा, चंद्रावलि, ससिरेखा सुकुमारी।
स्यामा, भामा, बाम, बिसाखा, चम्पक-लतिका प्यारी ॥
सब मधि राधा सुछबि अगाधा श्रीवृषभानु-दुलारी।
कर मैं लै चम्पक तबला सी सोहत प्रान-पियारी ॥
अंबर उमड़त अबिर अरगजा चलत रंग पिचकारी।
डफ बाजत गाजत मनु भेरी जीति जगत-गति सारी ॥
पहुँचीं नंद-भवन सब मिलि कै नव नव जोबनवारी।
निरख्यौ मुख ससि प्रान-पिया को दीनो तन-मन वारी ॥

---

* कविवचन-सुधा खं० ७ सं० २६ (फाल्गुन शुक्ल ११ सं० १९३२) में प्रकाशित।

किये खेल आरम्भ प्रथमहीं पिय सों भानु-कुमारी।
केसर छिरकि चंद मुख माड़्यौ आम-मौर सिर धारी॥
तिय के भरत खेल माच्यौ मधि नर-नारिन के भारी।
उड़्यौ रंग केसर चहुँ दिसि तें भइ अबीर अँधियारी॥
निलज भरत अंकम आपुस मैं देत उचारी गारी।
हो हो करि धावत गावत मिलि देत परसपर तारी॥
जसुमति फगुआ देत सबनि कों भूषन बसन सँवारी।
सो सुख सोभा निरखि होत तहँ 'हरीचंद' बलिहारी॥





अथ श्री सर्वोत्तम-स्तोत्र (भाषा)*

(सं० १९३३)

जयति आनंद रूप परमानंद कृष्णमुख
कृपानिधि दैवि उद्धारकारी ।
स्मृति मात्र सकल आरतिहरन गूढ़
गुन भागवत अर्थ लीनो विचारी ॥१॥
एक साकार परब्रह्म स्थापन-करन
चारहू वेद के पारगामी ।
हरन मायावाद बहुवाद नास करि
भक्ति-पथ-कमल को दिवस स्वामी ॥२॥
शूद्र ललना लोक उद्धरन सामर्थ
गोपिकाधीश कृत अंगिकारी ।
वल्लभी कुल मनुज अंगिकृत जनन
पै धरन मर्य्याद बहु करुनधारी ॥३॥
जगत-व्यापक दान करत सब वस्तु को
चरित जाके सकल अति उदारा ।

---

* इसका एक संस्करण लीथो में पत्राकार छपा है, पर उसमें समय नहीं दिया है। इसके छपने की सूचना कविवचन-सुधा (वैशाख शु० ११ सं० १९१९) में निकली थी।

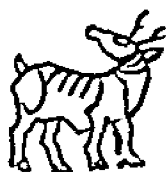
आसुरी जनन मोहन करन हेत यह
व्याज सों प्रकृति इव रूप धारा ।।४।।
अगिनि अवतार वल्लभ नाम शुभ रूप
सदा सज्जनन-हित करत जानी।
लोक-शिक्षा-करन कृष्ण की भक्ति करि
निखिल जग इष्ट के आपु दानी ।।५।।
सर्व लक्षननि-सम्पन्न श्रीकृष्ण को
ज्ञान प्रभु देत गुरु रूप धारी।
सदा सानंद तुंदिल पद्मदल-सरिस
नयन जुग जगत संतापहारी ।।६।।
कृपा करि दृष्टि की वृष्टि वर्धित किए
दासिका दास पति परम प्यारे।
रोप दृग करन सुरछित भक्ति द्वेपिगन
भक्तजन चरन सेवित दुलारे ।।७।।
भक्तजन सुख-सेव्य अति दुराराध्य
दुरलभ कुंज पद उग्र तेजधारी।
वाक्य रस-करन पूरन सकल जनन
मन भागवत-पय-सिंधु-मथनकारी ।।८।।
सार ताको जानि रास वनितान के
भाव सों सकल पूरित सुभेसा।
होत सनमुख देत प्रेम श्रीकृष्ण को
अविमुक्ति देत लखि वहत देसा ।।९।।
रास लीलैक तात्पर्य्य-मय रूप मुनि
देत करि कृपा वहु कथा ताकी।
त्यागि सब एक अनुभव करहु विरह को
यहै उपदेस वानी सु जाकी ।।१०।।

भक्ति आचार उपदेस नित करत पुनि
कर्म मारग प्रवर्त्तन सु कीनो।
सदा यागादि में भक्ति मारग एक
करहु साधनहि उपदेस दीनो ॥११॥
पूर्ण आनंद-मय सदा पूरन काम
वाक्य-पति निखिल जग विबुध भूपा।
कृष्ण के सहस शुभ नाम निज मुख कहे
भक्ति पर एक जाको सरूपा ॥१२॥
भक्ति आचार उपदेस हित शास्त्र के
वाक्य नाना निरूपन सु कीने।
भक्त-जन सदा घेरे रहत जिनन निज
प्रेम-हित प्रान-प्रन त्यागि दीने ॥१३॥
निज दास अर्थ-साधन अनेकन किए
जदपि प्रभु आप सब शक्तिकारी।
एक भुव लोक प्रचलित करन
भक्तिपथ कियो निज वंश पितु रूपधारी ॥१४॥
निज विमल वंस में परम माहात्म्य प्रभु
धर्‍यो सब जगत संदेहहारी।
पतिव्रता पति पारलौकिकैहिक दान
करत अधिकार जन को विचारी ॥१५॥
गूढ़ मति हृदय निज अन्य अनभक्त कों
सकल आशय आपु कहत प्यारे।
जग उपासन आदि मारगादीन में
मुग्ध जन-मोह के हरनवारे ॥१६॥
सकल मारगन सों भक्ति मारग बीच
अति विलक्षण सु अनुभवहि मानै।

पृथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
कृष्ण के हृदय की वात जानै ॥१७॥
प्रति क्षण गुप्त लीला नव निकुंज की
भरि रही चित्त में सदा जाके।
सोइ कथा स्मरण करि चित्त आक्षिप्त वत
भूलि गइ सकल सुधि आयें ताके ॥१८॥
व्रज प्रिय व्रजवास अतिहि प्रिय पुष्टि
लीला-करन सदा एकांत-चारी।
भक्तजन सकल इच्छा सुपूरन-करन
अतिहि अज्ञात लीला विहारी ॥१९॥
अतिहि मोहन निरासक्त जग भक्त
मात्रासक्त पतित पावन कहाई।
जस-गान करत जे भक्त तिनके
हृदय कमल मैं वास जाको सदाई ॥२०॥
स्वच्छ पीयूष लहरी सहस निज जसनि
तुच्छ करि अन्य रस दिये वहाई।
पर रूप कृष्ण-लीला अमृत रस
अखिल जन सींचि प्रेम मैं दिए भिजाई॥२१॥
सदा उत्साह गिरिराज के वास में
सोई लीला प्रेम-पूर गाता।
यज्ञ हवि हरत पुनि यज्ञ आपुहि करत
अति विसद चारहू फल के दाता ॥२२॥
शुभ प्रतिज्ञा सत्य जगत उद्धार की
प्रकृति सों दूर वहु नीति-ज्ञाता।
कीर्ति वर्द्धन करी सूत्र को भाष्य करि
कृष्ण इक तत्व के ज्ञान-दाता ॥२३॥

तूल मायावाद दहन-हित अग्नि वपु
ब्रह्म को वाद जग प्रगट कीनो।
निखिल प्राकृत रहित गुनन भूषित सदा
मंद मुसुकानि मन चोरि लीनो ॥२४॥
तीनहूँ लोक भूषन भूमि भाग्य वर
सहज सुंदर रूप वेद - सारं।
सदा सब भक्त प्रार्थित चरन कमल
रज घन रूप नौमि लक्ष्मण-कुमारं ॥२५॥
एक सत आठ ए नाम अभिराम नित
प्रेम सों जे जगत माँहि गावैं।
परम दुरलभ कृष्ण-अधर-अमृत-पान
स्वाद करि सुलभ ते सदा पावैं ॥२६॥
नाम आनंदनिधि वल्लभाधीश को
विट्ठलेश्वर प्रकट करि दिखायो।
छोड़ि साधन सकल एक यह गाइकै
परम संतोष 'हरिचंद' पायो ॥२७॥

इति श्री मद्विट्ठलनाथ-चरण-पंकज-पराग-लेपनापसारितनिखिल-
कल्मष हरिश्चन्द्रकृत भाषान्तरित कीर्तनस्वरूप
श्री सर्वोत्तम स्तोत्रं समाप्तिमगमत् ॥





निवेदन-पंचक*

(सं० १९३३)

श्याम घन अब तौ जीवन देहु ।
दुसह दुखद दावानल ग्रीषम सों बचाइ जग लेहु ॥
तृनावर्त नित धूर उड़ावत बरसौ कह ना मेहु ।
'हरीचंद' जिय तपन मिटाओ निज जन पैं करि नेहु ॥ १ ॥

श्याम घन निज छवि देहु दिखाय ।
नवल सरस तन साँवल चपल पीताम्बर चमकाय ॥
मुक्तमाल बगजाल मनोहर दृगन देहु दरसाय ।
श्रवन सुखद गरजनि बंसी-धुनि अब तौ देहु सुनाय ॥
ताप पाप सब जग को नासौ नेह-मेह बरसाय ।
'हरीचंद' पिय द्रवहु दया करि करुनानिधि व्रजराय ॥ २ ॥

श्याम घन अब तौ बरसहु पानी ।
दुखित सबै नर नारी खग मृग कहत दीन सम बानी ॥

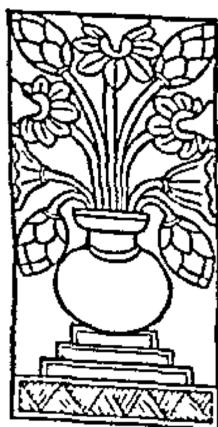
---

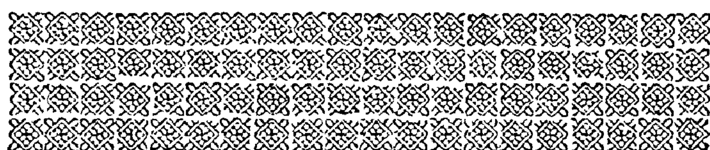
* यह पंचक कविवचन-सुधा (चंद्रवार, असाढ़ शुक्ल १२ संवत् १९३२) में प्रकाशित हुआ था । उस वर्ष वर्षा की कमी थी और इसी लिए यह लिखा गया था । इस संख्या के बाद की संख्या में समाचार है कि जिस दिन यह प्रकाशित हुआ था, उसी दिन सायंकाल को वर्षा हुई थी । (सं०)

तपत प्रचण्ड सूर निरदय ह्वै दूवहु हाय मुरानी।
'हरीचंद' जग दुखित देखि कै द्रवहु आपुनो जानी ॥ ३ ॥

कितै बरसाने-वारी राधा।
हरहु न जल बरसाइ जगत की पाप-ताप-मय बाधा ॥
कठिन निदाघ लता बीरुध तृन पसु पंछी तन दाधा।
चातक से सब नभ दिसि हेरत जीवन बरसन साधा ॥
तुम करुनानिधि जन-हितकारिनि-दया-समुद्र अगाधा।
'हरीचंद' याही तें सब तजि तुव पद-पदुम अराधा ॥ ४ ॥

जगत की करनी पै मति जैये।
करिकै दया दयानिधि माधो अब तौ जल बरसैये ॥
देखि दुखी जग-जीव श्याम घन करि करुना अब ऐये।
'हरीचंद' निज बिरद याद करि सब को जीव बचैये ॥५॥





मानसोपायन

अग्रजोपम स्नेह-पूजास्पद प्रिय कुमार,

जब आपसे कुछ भी कहने की इच्छा करते हैं तो चित्त में कैसे विविध भाव उत्पन्न होते हैं। कभी भारतवर्ष के पुरावृत्त के प्रारंभ काल से आज तक जो बड़े बड़े दृश्य यहाँ बीते हैं और जो महायुद्ध, महा शोभा और महा दुर्दशा भारतवर्ष की हुई है, उनके चित्र नेत्र के सामने लिख जाते हैं। कभी हिंदुओं की दशा पर करुणा उत्पन्न होती है, कभी स्नेह कहता है कि हाँ यही अवसर है खूब जी खोल कर जो कुछ हृदय में बहुत काल से भाव और उद्गार संचित हैं, उनको प्रकाश करो। पर साथ ही राजभक्ति और आपका प्रताप कहता है कि खबरदार हद से आगे न बढ़ना, जो कुछ विनती करना बड़ी नम्रता और प्रमाण के साथ। इधर नई रोशनी के शिक्षित युवक कहते हैं—'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा'। सुनते सुनते जी थक गया, कोई मस्तिष्क की बात कहो। उधर प्राचीन लोग कहते हैं हमारे यहाँ तो 'सर्व्वदेवमयो नृपः' लिखा ही है जितना बन सकै इनका आदर करो। कितने यहाँ के निवासी ऐसे मूढ़ हैं कि इन बातों को अब तक जानते ही नहीं। जानें कहाँ से, हजारों बरस से राज-सुख से वंचित हैं। आज तक ऐसा शुभ संयोग आया ही न था कि आप सा सुखद स्वामी इनके नेत्र-गोचर हो। इसी से तो आपके आगमन से हम लोगों को क्या आनंद हुवा है, वह कौन जान सकता है। प्रिय! हम सब स्वभावसिद्ध राजभक्त हैं। बिचारे छोटे पद के अंगरेजों को हमारे

चित्त की क्या खबर है, ये अपनी ही तीन छटाँक पकाने जानते हैं। अतएव दोनों प्रजा एक-रस नहीं हो जाती; आप दूर बसे, हमारा जी कोई देखनेवाला नहीं, बस छुट्टी हुई। आपके आगमन के केवल स्मरण से हृदय गद्गद् और नेत्र अश्रुपूर्ण हमीं लोगों के हो जाते हैं और सहज में आप पर प्राण न्योछावर करनेवाले हमीं लोग हैं, क्योंकि राजभक्ति भरतखंड की मिट्टी का सहज गुण और कर्तव्य धर्म्म है, पर कोई कलेजा खोल कर देखनेवाला नहीं। जाने दो इन पचड़ों से क्या काम। जब आपका आगमन सुना तभी से आपके यश-रूपी कीर्त्तिस्तंभ को आपके शुभागमन के स्मरणार्थ स्थापन करने की इच्छा थी, पर आधि-व्याधि से वह सुयोग तब न बना। यद्यपि कविता-कलाप तो उसी समय समाचार पत्रों में सूचना देकर एकत्र किया था, परंतु उनका प्रकाश न भया था सो अब जब कि हम दोनों की अवलंब अंब श्रीमती महारानी ने भारत-राजराजेश्वरी का पद ग्रहण किया और इस महत् मान से भारतवर्ष को अपनी अपार कृपा से सहज कृतकृत्य किया तो इसी शुभ मंगल अवसर पर यह पुस्तक प्रकाश करके हम भी आपके कोमल चरणों मे समर्पित करते हैं, कृपा-पूर्वक स्वीकार कीजिये और इसको कविता नहीं वरञ्च अपनी प्रजा के चित्त के पूर्ण उद्गार और समुच्छ्वास समझिए। जिस तरह आप और अनेक कौतुक देखते हैं, कृपापूर्वक इस प्रजा के चित्तरूपी आतशी शीशे से (क्योंकि वह आपके वियोग और अपनी दुर्दशा से संतप्त हो रहा है) बनी हुई सैरबीन की भी सैर कीजिए और उस परिश्रम को क्षमा कीजिए जो इसके पढ़ने में हो, क्योंकि हमने तो चाहा कि थोड़ा ही लिखें और यह बहुत थोड़ा ही है, पर आपको श्रम देने को बहुत है।

१ जनवरी १८७७ ई० }

हरिश्चंद्र

आओ आओ हे जुवराज ।
धन-धन भाग हमारे जागे पूरे सब मन-काज ।।
कहँ हम कहँ तुम कहँ यह धन दिन कहँ यह सुभ संयोग ।
कहँ हतभाग भूमि भारत की कहँ तुम-से नृप लोग ।।
बहुत दिनन की सूखी, डाढ़ी, दीना भारत भूमि ।
लहिहै अमृत-वृष्टि सो आनँद तुव पद-पंकज चूमि ।।
जेहि दलमल्यौ प्रबल दल लैकै बहु विधि जवन-नरेस ।
नास्यौ धरम करम सबहिन के मारि उजास्यौ देस ।।
पृथीराज के मरें लख्यौ नहिं सो सुख कबहूँ नैन ।
तरसत प्रजा सुनन को नित हीं निज स्वामी के बैन ।।
जदपि जवनगन राज कियो इतही बसिकै सह साज ।
पै तिनको निज करि नहिं जान्यौ कबहूँ हिंदु समाज ।।
अकबर करिकै बुद्धिमता कछु सो मेट्यौ संदेह ।
सोउ दारा सिकोह लौं निवही औरंग डारी खेह ।।
औरहु औरंगजेब दियो दुख सब विधि धरम नसाय ।
निज कुल की मरजाद-मान-बल-बुधिहू साथ घटाय ।।
ता दिन सों दुरलभ राजा-सुख इनहिं इकंत निवास ।
राजभक्ति उत्साहादिक को इन कहँ नहिं अभ्यास ।।
जदपि राज तुव कुल को इत बहु दिन सों बरसत छेम ।
तदपि राज-दरसन बिनु नहिं नृप प्रजा माहिं कछु प्रेम ।।
सो अभाव सब तुव आवन सों मिट्यौ आज महराज ।
पूस्यौ प्रेम देस-देसन में प्रमुदित प्रजा-समाज ।।
आवहु प्रिय नैनन मग बैठो हिय मैं लेहुँ छिपाय ।
जाहु न फिरि तजि भारत को तुम हम सों नेह लगाय ।।

गुजराती भाषा

आवो आवो भारत राज भारत जोवाने ।
दई दरसन दुख एनूं जनम जनमनो खोवाने ॥
ज्यम चन्द्रोदय जोई चकोर जिय राचे रे ।
ज्यम नव घन आतां लखी मोर वन नाचे रे ॥
तेहूँ भारतवासी जनो तवागम चाहे जी ।
लखि सुख ससि राजकुमार मुदित मन माहे जी ॥
आवो आवो प्यारा राजकुमार नई दऊँ जावाने ।
वाला भारत मां सुख वसो सनेह वधावाने ॥
नई भियूं प्रानप्रिय आजे अरज करूँ बोलीने ।
देऊँ आज लखाड़ी तमने हिरदो खोलीने ॥
म्हारा भारतवासी अनाथ नाथ वने नाथे जी ।
तेथी कोंवर बिराजो अइज अम्हारे साथे जी ॥
ज्यारे जवन-जलधि जले प्रथीराज-रवि नास्यौ रे ।
आजे त्यार थकी नहीं भारत तेज प्रकास्यौ रे ॥
ते तुव पद-नख-ससि किरिणे धाणो वापो जी ।
फरी फरथा भाग्य भारत नां आनंद छायो जी ॥
वाला दीठ्यौ नव मुखचन्द कामणगारा नैणावे ।
वारी श्रवण पड्या श्रवणे तव अमृत वैणावे ॥
आजे उमग्यौ आनँद रस मुख चारे पासे छायो छे ।
तेथी तव जस परम पवित्र कविये गायो छे ॥

[सूचना—मानसोपायन संग्रह है। इसमें निम्नलिखित सज्जनों की कविता प्रकाशित हुई थी—

१. श्रीबद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन	हिंदी	२ सवैया	२४ दोहे-सोरठे
२. श्रीरामराज	"		१९ " "
३. श्रीकल्लू जी	"		३ "
४. श्रीलालबिहारी शुक्ल	"	२ कवित्त	
५. श्रीनारायण कवि	"	१ कुंडलिया	७ दो० सो०
६. श्रीलोकनाथ शर्मा	"		१० "
७. श्रीकमलाप्रसाद मुं०	"	१ दो० ७ कवित्त, छप्पय, सवैया	
८. श्रीसंतलाल	"	९ छप्पय	
९. श्रीव्रजचंद्र	"	१० दोहे।	
१०. श्रीसंतोषसिंह शर्मा	पंजाबी	२४ दोहे, ५ कवित्त	
११. श्रीदामोदर शास्त्री	महाराष्ट्री	७ पद	

पं० बापूदेव शास्त्री, पं० सखाराम भट्ट, पं० वेंकटेश शास्त्री, पं० विष्णुदत्त पं० राजाराम गोरे, पं० कैलाशचंद्र शिरोमणि, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० गदाधर शर्मा मालवीय, पं० आबा शास्त्री हलदीकर, पं० बिहारी शर्मा चतुर्वेदी, पं० गोपाल शर्मा, पं० लक्ष्मीनाथ द्रविड़, पं० रामचंद्र शास्त्री, पं० रामशरण त्रिपाठी, पं० रामचंद्र, पं० अनंतराम भट्ट, पं० चित्रधर मैथिल, पं० गोविंद शर्मा, पं० माधव राम, पं० भवानीप्रसाद, पं० रामप्रसाद मिश्र, पं० रामगोविंद मिश्र, पं० श्रीधर मैथिल, पं० शालिग्राम, पं० हरिनाथ द्विवेदी, गोस्वामी रामगोपाल शर्मा, पं० ईश्वरदत्त, पं० दामोदर शास्त्री, पं० रामकृष्ण पटवर्धन, पं० कान्तानाथ भट्ट, पं० शिवनारायण शर्मा ओझा, पं० विश्वनाथ शर्मा, पं० गोविंद भरद्वाज़, पं० राम ब्रह्म शास्त्री, पं० विश्वनाथ शास्त्री, पं० परमेश्वर मैथिल, नारायण पं०, पं० विजयनाथ, पं० नंदकुमार शर्मा, पं० सोहन शर्मा,

पं० भट्टू शास्त्री अष्टपुत्र, पं० विश्वेश्वरनाथ, पं० उदयानंद शर्मा, पं० राजेश्वर द्रविड़, पं० केशव शास्त्री पर्वतीय, पं० काशीनाथ भट्ट, पं० बापू शर्मा, पं० शीतलाप्रसाद, पं० गणेशदत्त, पं० बस्ती राम द्विवेदी, पं० दामोदर भरद्वाज, पं० शिवकुमार मिश्र, पं० गंगाधर शास्त्री तैलंग, पं० रामकृष्ण पटवर्धन, पं० राजाराम, पं० राम मिश्र, पं० सरयूप्रसाद, पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी, श्री मकरध्वज सिंह, पं० कन्हैयालाल पांडेय, पं० बेचनराम त्रिपाठी, पं० राधाकृष्ण, पं० कालीप्रसाद शिरोमणि, पं० लक्ष्मीनाथ कवि, पं० माधोदास और पं० राधाकृष्ण ने संस्कृत मे श्लोक लिखे थे, जो इकतीस पृष्ठों मे छपे थे।

इसके अनंतर सोलह पृष्ठों मे तालिब, अहकर, संतलाल, हसन, नज्म, अमीर और जिया की उर्दू, ५२ पृष्ठो मे बँगला, ४ पृष्ठों में अंग्रेजी और ८ पृष्ठों मे तैलगू आदि भाषाओं की कविताएँ उक्त अवसर के लिये लिखी हुई संगृहीत हैं। सन् १८७६ ई० मे प्रिंस ऑव वेल्स ने काशी में अस्पताल की नींव डाली थी। उस पर तीन तारीखें भी उर्दू मे हैं और अमीर ने बा० हरिश्चंद्र की प्रशंसा भी मुसद्दस के अंत मे की है। सं०]





प्रातःस्मरण स्तोत्र*

(सं० १९३४)

सुमिरौं राधाकृष्ण सकल मंगल-मय सुन्दर।
सुमिरौं रोहिनि-नन्दन रेवतिपति कर हलधर॥
जसुदा, कीरति, भानु, नन्द, गोपी-समुदाई।
वृन्दावन गोकुल गिरिवर ब्रज-भूमि सुहाई॥
कालिन्दी कलि के कलुष सब हारिनि सुमिरौं प्रेम-बल।
ब्रज गाय वच्छ तृन तरु लता पसु पंछी सुमिरौं सकल॥ १॥

श्री गोपीजन-स्मरण

सुमिरौं श्री चंद्रावली मोहन-प्रान पियारी।
श्री ललिता रस-सलिता परम जुगल हितकारी॥
रस-शाखा हरिप्रिया विशाखा पूरन-कामा।
परम सभागा चन्द्रभगा, रस-धामा भामा॥
श्री चंपकलतिका, इंदुलेखा राधा-सहचरि सहित।
श्री स्वामिनि की आठौ सखी नित सुमिरौं करि प्रेम हित॥ २॥

---

* हरिप्रकाश यंत्रालय में पाठ के लिए पत्राकार छपा था, पर उसमें समय नहीं दिया है। कवि-वचन सुधा (९-४-१८७७ ई०) में छपने की सूचना निकली थी।

अष्ट सखा—छप्पय

श्रीदामा सुखधाम कृष्ण को परम प्रान-प्रिय।
वसुदामा शुभ नाम दाम मनिमय जाके हिय॥
सुबल प्रबल परिहास-रसिक मंगल मधु मंगल।
लोक-सुखद ब्रज-लोक कृष्ण अनुरूप कृष्ण-फल॥
अरजुन-पालक गोवत्स बहु ऋषभ वृषभ जूथाधिपति।
हरिजू के आठ सखा सदा सुमिरत मंगल होत अति॥ ३॥

द्वारिका की लीला स्मरण

धाम द्वारिका कनक-भवन जादव नर-नारी।
उद्धव, सात्यकि, नारद, गरुड़ सुदर्शनचारी॥
रुक्मिनि, सत्या, भद्रा,शैब्या, नाग्नजिती पुनि।
जाम्बवती, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, रोहिणि गुनि॥
इन आदि नारि सोलह सहस इनके सुत परिवार सह।
प्रद्युम्न पार्थ अनिरुद्ध जुत सुमिरौं दुख-नासन दुसह॥ ४॥

अथ लीला स्मरण

देवकि के घर जनमि नन्द घर में चलि आए।
बको तृनावृत अघ बक बछ वृष केसि नसाए॥
बाल-रूप कालीमर्दन सुरपति मद-भञ्जन।
गोचारक रस रास-रमन गोपी-मन-रञ्जन॥
कंसादि नास-कर सकल भुव-भार-उतारन रूप धरि।
सुमिरौं लीलामय नन्द-सुत अटल नित्य ब्रज-वास करि॥ ५॥

अथ अवतार स्मरण

मत्स कच्छ वाराह प्रगट नरहरि वपु वामन।
परशुराम श्री राम लक्ष्मण भरत शत्रुहन॥

पुनि बलराम सुबुद्ध कल्कि हरि दस वपु धारी ।
चौबिस रूप अनेक कोटि लीला विस्तारी ॥
अवतारी हरि श्रीकृष्ण वपु शुद्ध सच्चिदानन्दघन ।
नित सुमिरत मंगल होत अति सुख पावत सब भक्त-जन ॥ ६ ॥

अथ समुदाय स्मरण

गंगा गीता शङ्ख चक्र कौमोदकि पद्मा ।
नंदक सारँग बान पास पद्मा-मुख सद्मा ॥
बंशी माला श्रृंग वेत्र पीताम्बरादि कल ।
पुण्यधाम हरि वासर वैष्णव धर्म्म विगत मल ॥
हरि-प्रेम दास्य विश्वास दृढ़ तिलक छाप माला सुमिरि ।
तुलसी हरि-प्रिय-समुदाय भजि नित सुमिरौं उठि प्रात हरि ॥ ७ ॥

अथ श्री भागवत स्मरण

निखिल निगम को सार दिव्य बहु गुण-गण-भूपित ।
आदि अनादि पुरान सरस सब भाँति अदूपित ॥
शुक मुख भाखित मुक्त कथा परमारथ सोधक ।
ब्रह्म-ज्ञानमय सत्यवती-नन्दन मन-बोधक ॥
दस लक्षन लक्षित पाप-हर द्वादस शाखा सहित वर ।
सुमिरौं अष्टादस सहस श्री ग्रंथ भागवत मोह-हर ॥ ८ ॥

अथ प्राचीन भक्त स्मरण

सुमिरौं शुक नारद शिव अज नर व्यास परासर ।
बालमीक पृथु अम्बरीप प्रहलाद पुन्य-कर ॥
पुण्डरीक भीष्मक शौनक पाण्डव गङ्गा-सुत ।
हनूमान सुग्रीव विभीपन अङ्गद कपि जुत ॥
शांडिल्य गर्ग मैत्रेय जय विजय कुमुद कुमुदाक्ष भजि ।
हरि-भक्त सुमिरि मन प्रात उठि नित प्रथमहि गृह-काज तजि ॥ ९ ॥

अथ गुरु-परम्परा स्मरण

सुमिरौं श्री गोपीपति पद-पङ्कज अरुनारे।
श्री शिव नारद व्यास बहुरि शुकदेव पियारे॥
विष्णु स्वामि पुनि गुरु-अवली सत सप्त सुमिरि मन।
बिल्वमँगल पुनि सुमिरौं थापन निज मत धरि तन॥
श्री वल्लभ विट्ठल भय-हरन पुष्टि-प्रकाशक जग विमल।
सुमिरौं नित प्रेम-परम्परा गुरुजन की निज भक्ति-बल॥१०॥

अथ गुरु स्मरण

श्री वल्लभ सुमिरौं अरु श्री गोपीनाथ पियारे।
श्री विट्ठल पुरुषोत्तम जग-हित नर-वपु धारे॥
श्री गिरिधर गोविन्द राय पुनि बालकृष्ण कहु।
गोकुलपति रघुपति जदुपति घनश्याम-भक्ति लहु॥
लक्ष्मी-रुक्मिणि-पद्मावती-पद-रज नित सिर धारिए।
श्री वल्लभ कुल को ध्यान मन कबहूँ नाहिं बिसारिए॥११॥

६ अथ वैष्णव-स्मरण

श्री निम्बारक रामानुज पुनि मध्व जय ध्वज।
नित्यानंद अद्वैत कृष्ण चैतन्य व्यास भज॥
हित हरिवंश गदाधर श्री हरिदास मनोहर।
सूरदास परमानंद कुंभन कृष्णदास वर॥
गोविन्द चतुर्भुजदास पुनि नन्ददास अरु छीत कल।
नित सुमिरि भाव भन उठत ही हरि-भक्तन के पद-कमल॥१२॥

दोहा

द्वादस द्वादस अर्द्ध पद प्रात पढ़ै जो कोय।
हरि-पद-बल 'हरिचन्द' नित मंगल ताको होय॥१३॥



हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान*

(सं० १९३४)

अहो अहो मम प्रान प्रिय आर्य भ्रातृ-गन आज ।
धन्य दिवस जो यह जुड़ो हिंदी हेत समाज ॥१॥
तामें आदर अति दिये मोहिं तुम निज जन जान ।
जो बुलवायो मोहिं इत दर्शन हित सन्मान ॥२॥
जदपि न मैं जानत कछू सब विधि सों अति दीन ।
तदपि भ्रात निज जानिकै सबन कृपा अति कीन ॥३॥
भारत में यह देस धनि जहाँ मिलत सब भ्रात ।
निज भापा हित कटि कसे हम कहँ आज लखात ॥४॥
निज भापा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भापा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥५॥
पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात ।
पै निज भापा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात ॥६॥
पढ़े फ़ारसी बहुत विध तौहू भये खराब ।
पानी खटिया तर रहो पूत मरे बकि आब ॥७॥

---

* हिंदी भापा के परमाचार्य श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र का लेकचर, जिसे बाबू साहब ने जून मास (ज्येष्ठ सं० १९३४) की हिंदीवर्द्धिनी सभा में पढ़ा था। (हिंदी प्रदीप खं० १ सं० १–२. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "हिंदी भापा" नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित।)

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन ॥८॥
यह सब भाषा काम की जब लौं बाहर बास।
घर भीतर नहिं कर सकत इन सों बुद्धि प्रकास ॥९॥
नारि पुत्र नहिं समझहीं कछु इन भाषन माहिं।
तासों इन भाषान सों काम चलत कछु नाहिं ॥१०॥
उन्नति पूरी है तबहिं जब घर उन्नति होय।
निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ़ सब लोय ॥११॥
पिता विविध भाषा पढ़ें पुत्र न जानत एक।
तासों दोउन मध्य में रहत प्रेम अविवेक ॥१२॥
अँग्रेजी निज नारि को कोउ न सकत पढ़ाइ।
नारि पढ़े बिन एक हू काज न चलत लखाइ ॥१३॥
गुरु सिखवत बहु भाँति लौं जदपि बालकन ज्ञान।
पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान ॥१४॥
जब अति कोमल जिय रहत तब बालक तुतरात।
भूलत नहिं सो बात जो तबै सिखाई जात ॥१५॥
भूलि जात बहु बात जो जोबन सीखत लोय।
पै भूलत नहिं बालकन सीख्यो सुनो जो होय ॥१६॥
जिमि लै काँची मृत्तिका सब कछु सकत बनाय।
पै न पकाए पर चलत तामें कछू उपाय ॥१७॥
काँचे पर ता मों बनत जो कछु सो रह जात।
चिन्ह सदा तिमि बाल सिसु शिक्षा नाहिं भुलात ॥१८॥
सो सिसु-शिक्षा मातु-बस जो करि पुत्रहिं प्यार।
खान-पान खेलन समय सकत सिखाय विचार ॥१९॥
लाल पुत्र करि चूमि मुख विविध प्रकार खेलाइ।
माता सब कछु पुत्र को सहजहिं सकत सिखाइ ॥२०॥

सो माता हिंदी विना कछु नहिं जानत और।
तासों निज भाषा अहै, सबही की सिरमौर ॥२१॥
पढ़ो लिखो कोउ लाख विध भाषा बहुत प्रकार।
पै जबही कछु सोचिहो निज भाषा अनुसार ॥२२॥
सुत सों तिय सों मीत सों भृत्यन सों दिन रात।
जो भाषा मधि कीजिये निज मन की बहु बात ॥२३॥
ता की उन्नति के किये सब विधि मिटत कलेस।
जामें सहजहि देसको इन सब को उपदेश ॥२४॥
जद्यपि बाहर के जनन गुन सों देत रिझाय।
पै निज घर के लोग कहँ सकत नाहिं समझाय ॥२५॥
बाहर तो अति चतुर बनि कीनो जगत प्रबंध।
पै घर को व्यवहार सब रहत अंध को अंध ॥२६॥
कै पहिने पतलून कै भये मौलवी खास।
पै तिय सके रिझाय नहिं जो गृहस्थ सुख बास ॥२७॥
इनकी सो अति चतुरता तिनको नाहिं सुहात।
ताही सों प्राचीन कवि कही भली यह बात ॥२८॥
खसम जो पूजै देहरा भूत-पूजनी जोय।
एकै घर में दो मता कुसल कहाँ से होय ॥२९॥
तासों जब सब होहिं घर विद्या-बुद्धि-निधान।
होइ सकत उन्नति तबै और उपाय न आन ॥३०॥
निज भाषा उन्नति बिना कबहुँ न ह्वैहै सोय।
लाख अनेक उपाय यों भले करो किन कोय ॥३१॥
इक भाषा, इक जीव इक मति सब घर के लोग।
तबै बनत है सबन सों मिटत मूढ़ता सोग ॥३२॥
और एक अति लाभ यह यामें प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिये जो विद्या की बात ॥३३॥

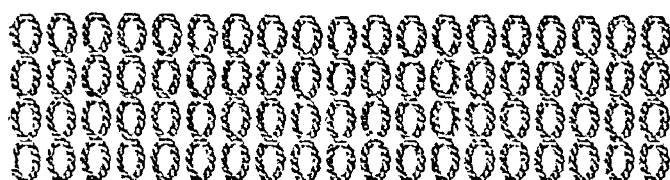
तेहि सुनि पावैं लाभ सब बात सुनैं जो कोय।
यह गुन भाषा और महँ कबहूँ नाहीं होय ॥३४॥
लखहु न अँगरेजन करी उन्नति भाषा माँहि।
सब विद्या के ग्रंथ अंगरेजिन माँह लखाहिं ॥३५॥
सब्द बहुत परदेस के उच्चारनहु न ठीक।
लिखत कछू पढ़ि जात कछु सब विधि परम अलीक ॥३६॥
पै निज भाषा जानि तेहि तजत नहीं अंग्रेज।
दिन दिन याही को करत उन्नति पै अति तेज ॥३७॥
विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु भाषा माँहि प्रचार ॥३८॥
जहाँ जौन जो गुन लह्यो लियो जहाँ सो तौन।
ताही सों अंगरेज अब सब विद्या के भौन ॥३९॥
पढ़ि विदेस भाषा लहत सकल बुद्धि को स्वाद।
पै कृतकृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद ॥४०॥
तुलसी कृत रामायनहु पढ़त जबै चित लाय।
तब ताको आसय लिखत भाषा माँहिं बनाय ॥४१॥
तासों सबहीं भाँति है इनकी उन्नति आज।
एकहि भाषा मँह अहै जिनको सकल समाज ॥४२॥
धर्म जुद्ध विद्या कला गीत काव्य अरु ज्ञान।
सबके समझन जोग है भाषा माँहि समान ॥४३॥
भारत मे सब भिन्न अति ताही सों उत्पात।
विविध देस मतहू विविध भाषा विविध लखात ॥४४॥
सौंप्यौ ब्राह्मन को धरम तेई जानत बेद।
तासों निज मत को लह्यो कोऊ कबहुँ न भेद ॥४५॥
तिन जो भाख्यो सोइ कियो अनुचित जदपि लखात।
सपनहुँ नहिं जानी कछू अपने मत की बात ॥४६॥

पढ़े संस्कृत बहुत विध अंग्रेजी हू आप।
भाषा चतुर नहीं भये हिय को मिट्यो न ताप ॥४७॥
तिमि जग शिष्टाचार सब मौलवियन आधीन।
तिन सों सीखे बिनु रहत भये दीन के दीन ॥४८॥
बैठनि बोलनि उठनि पुनि हँसनि मिलनि बतरान।
बिन पारसी न आवही यह जिय निश्चय जान ॥४९॥
तिमि जग की विद्या सकल अंगरेजी आधीन।
सबै जानि ताके बिना रहै दीन के दीन ॥५०॥
करत बहुत बिधि चतुरई तऊ न कछू लखात।
नहिं कछु जानत तार में खबर कौन बिधि जात ॥५१॥
रेल चलत केहि भाँति सों कल है काको नाँव।
तोप चलावत किमि सबै जारि सकत जो गाँव ॥५२॥
वस्त्र बनत केहि भाँति सों कागज केहि विधि होत।
काहि कवाइद कहत हैं बाँधत किमि जल-सोत ॥५३॥
उतरत फोटोग्राफ किमि छिन मँह छाया रूप।
होय मनुष्यहि क्यों भये हम गुलाम ये भूप ॥५४॥
यह सब अंगरेजी पढ़े बिनु नहिं जान्यो जात।
तासों याको भेद नहिं साधारनहि लखात ॥५५॥
बिना पढ़े अब या समै चलै न कोउ विधि काज।
दिन दिन छीजत जात है या सों आर्य्य समाज ॥५६॥
कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग।
नित नित धन सों घटत हैं बाढ़त है दुख सोग ॥५७॥
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम।
परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम ॥५८॥
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि।
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि ॥५९॥

इत की रुई सींग अरु चरमहि तित लै जाय।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत इतहि बनाय ॥६०॥
तिनही को हम पाइकै साजत निज आमोद।
तिन बिन छिन तृन सकल सुख, स्वाद विनोद प्रमोद ॥६१॥
कछु तो वेतन में गयो कछुक राज-कर माँहि।
बाकी सब व्यौहार मे गयो रह्यौ कछु नाहिं ॥६२॥
निरधन दिन दिन होत है भारत भुव सब भाँति।
ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि-बल कांति ॥६३॥
यह सब कला अधीन है तामे इतै न ग्रन्थ।
तासों सूझत नाहिं कछु द्रव्य बचाअन पन्थ ॥६४॥
अंगरेजी पहिले पढ़ै पुनि बिलायतहि जाय।
या विद्या को भेद सब तो कछु ताहि लखाय ॥६५॥
सो तो केवल पढ़न में गई जवानी बीति।
सब आगे का करि सकत होइ बिरध गहि नीति ॥६६॥
तैसहि भोगत दण्ड बहु बिनु जाने कानून।
महत पुलिस की ताड़ना देत एक करि दून ॥६७॥
पै सब विद्या की कहूँ होइ जु पै अनुवाद।
निज भाषा महँ तो सबै याको लहैं सवाद ॥६८॥
जानि सकैं सब कछु सबहि विविध कला के भेद।
बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद ॥६९॥
राजनीति समझैं सकल पावहिं तत्व विचार।
पहिचानैं निज धरम को जानैं शिष्टाचार ॥७०॥
दूजे के नहिं बस रहैं सीखैं विविध विवेक।
होइ मुक्त दोउ जगत के भोगैं भोग अनेक ॥७१॥
तासों सब मिलि छाँड़ि कै दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु अहो भ्रात गन आय ॥७२॥

धर्‍यौ तनिकहू समय नहिं तासों करहु न देर।
औसर चूके व्यर्थ की सोच करहुगे फेर ॥७३॥
प्रचलित करहु जहान में निज भाषा करि जत्न।
राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न ॥७४॥
भाषा सोधहु आपनी होइ सबै एकत्र।
पढ़हु पढ़ावहु लिखहु मिलि छपवावहु कछु पत्र ॥७५॥
बैर विरोधहिं छोड़ि कै एक जीव सब होय।
करहु जतन उद्धार को मिलि भाई सब कोय ॥७६॥
आल्हा बिरहहु को भयो अंगरेजी अनुवाद।
यह लखि लाज न आवई तुमहिं न होत विखाद ॥७७॥
अंगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर ॥७८॥
सबको सार निकाल कै पुस्तक रचहु बनाइ।
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाइ ॥७९॥
मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय।
बाल.वृद्ध नर नारि सब विद्या संजुत होय ॥८०॥
फूट बैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत।
भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत ॥८१॥
देव पितर सबही दुखी कष्टित भारत माय।
दीन-दसा निज सुतन की तिनसों लखी न जाय ॥८२॥
कब लौं दुख सहिहौ सबै रहिहौ बने गुलाम।
पाइ मूढ़ कालो अरध-सिक्षित काफिर नाम ॥८३॥
बिना एक जिय के भये चलिहै अब नहिं काम।
तासों कोरो ज्ञान तजि उठहु छोड़ि बिसराम ॥८४॥
लखहु काल का जग करत सोवहु अब तुम नाहिं।
अब कैसो आयो समय होत कहा जग माहिं ॥८५॥

बढ़त चहत आगे सबै जग की जेती जाति।
बल बुधि धन विज्ञान में तुम कहँ अबहूँ राति ॥८६॥
लखहु एक कैसे सबै मुसलमान क्रिस्तान।
हाय फूट इक हमहि में कारन परत न जान ॥८७॥
बैर फूट ही सो भयो सब भारत को नास।
तबहु न छाँड़त याहि सब बँधे मोह के फाँस ॥८८॥
छोड़हु स्वारथ बात सब उठहु एक चित होय।
मिलहु कमर कसि भ्रातगन पावहु सुख दुख खोय ॥८९॥
बीती अब दुख की निसा देखहु भयो प्रभात।
उठहु हाथ मुँह धोइ कै बाँधहु परिकर भ्रात ॥९०॥
या दुख सो मरनो भलो, धिग जीवन बिन मान।
तासों सब मिलि अब करहु बेगहि ज्ञान विधान ॥९१॥
कोरी बातन काम कछु चलिहै नाहिन मीत।
तासों उठि मिलि कै करहु बेग परस्पर प्रीत ॥९२॥
परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस।
परबस ह्वै कब लौं कहौ रहिहौ तुम ह्वै दास ॥९३॥
काम खिताब किताब सों अब नहिं सरिहै मीत।
तासों उठहु सिताब अब छाँड़ि सकल भय भीत ॥९४॥
निज भाषा, निज धरम, निज मान करम ब्यौहार।
सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार पुकार ॥९५॥
लखहु उदित पूरब भयो भारत-भानु प्रकास।
उठहु खिलावहु हिय-कमल करहु तिमिर दुख नास ॥९६॥
करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सब को मूल ॥९७॥
लहहु आर्य्य भ्राता सबै विद्या बल बुधि ज्ञान।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि होहु सबै गुन-खान ॥९८॥



अपवर्गदाष्टक*

(सं० १९३४)

परब्रह्म परमेश्वर परमातमा परात्पर ।
परम पुरुप पदपूज्य पतित-पावन पद्मावर ॥
परमानन्द प्रसन्नवदन प्रभु पद्म-विलोचन ।
पद्मनाभ पुण्डरीकाक्ष प्रनतारति-मोचन ॥
पुरुपोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गीगति देत किमि ॥ १ ॥

फनपति फनप्रति फूँकि बाँसुरी नृत्य प्रकासन ।
फनिपति-नाथ फनीश-शयन फनि वैरि कृतासन ॥
फैली फिरि फिरि चन्द्रफेन सी वदन-कांतिवर ।
फलस्वरूप फबि रही फूल-माला गल सुंदर ॥
पुरुपोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ॥ २ ॥

ब्रजपति बृन्दावन-विहार-रत विरह-नसावन ।
विष्णु ब्रह्म वरदेश वरहवर सीस सुहावन ॥

---

* कवि-वचन-सुधा (शनिवार अ० ज्येष्ठ कृष्ण ६ संवत् १९३४) में प्रकाशित ।

वनमाली बलरामानुज विधु विधि-वंदित वर।
विबुधाराधित विधुमुख बुधनत विदित वेनुधर॥
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि॥ ३॥'

भवकर भवहर भवप्रिय भद्राग्रज भद्रावर।
भक्तिवश्य भगवान भक्तवत्सल भुव-भरहर॥
भव्य भावनागम्य भामिनीभाव विभावित।
भाव गताभृतचन्द्र भागवतभय-विद्रावित॥
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देव किमि॥ ४॥'

माधव मनमथमनमथ मधुर मुकुन्द मनोहर।
मधुसूदन मुरमथन मानिनी-मान-मंदकर॥
मरकतमनि-तन मोहन मंजुल नर मुरलीकर।
माथे मत्त मयूर मुकुट मालती-माल गर॥
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि॥ ५॥'

वृंदा वृंदायनी विदित वृखभानु-दुलारी।
परा परेशा प्रिया पूजिता भव-भयहारी॥
व्रजाधीश्वरी भामा मोहन-प्रानपियारी।
व्रजविहारिनी फलदायिनि बरसाने-वारी॥
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि॥ ६॥.

विष्णुस्वामि पथ प्रथित विल्वमंगल मतमण्डन।
मिथ्यावाद-विनासकरन मायामत - खण्डन॥

भारद्वाज सुगोत्र विप्रवर वेद वादव्रत ।
भक्तपूज्य भुवि भक्ति-प्रचारक भाष्यरचन-रत ॥
पुरुषोत्तम प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ॥ ७ ॥

व्रजवल्लभ वल्लभ वल्लभ वल्लभ-वल्लभवर ।
पद्मावतिपति बालकृष्ण पितु भुविस्ववंसधर ॥
मथन भागवत समुद्र भामिनी भाव विभावित ।
प्रगट पुष्टिपथकरन प्रथित पतितादिक पावित ॥
विट्ठल प्रभु प्यारे भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ प्रिय अपवर्गी गति देत किमि ॥ ८ ॥





मनोमुकुल माला

अर्थात्

राजराजेश्वरी आर्य्येश्वरी भारताधीश्वरी श्री १०८ विजयिनी देवी के चरण-तामरस मे हरिश्चंद्र द्वारा समर्पित वाक्य-पुष्पोहार।

(सं० १९३४)

अथ इंगलैंडी-पारसीक-वर्ण-चित्रिता

राजराजेश्वरी आशीः।

Gवहु Eस अCस बल हरहु प्रजन की Pर।
सरU जमुना गंग में जब लौं थिर जग नीर॥ १॥
J Kबल तुव दास हैं नासहु तिनकी R।
बढै सY तेज नित Tको अचल लिलार॥ २॥
भारत के Aकत्र सब Vर सदा बल Pन।
Bसहु विस्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन॥ ३॥
جر ث جر सबै بر बिना कل।
गलै ہ नहिं सत्रु को तुव सनमुख गुन-धाम॥ ४॥
अرई कीरति छ्ई रहै अر हराज।
ٮر بر बरनत सबै ی कबि यातें आज॥ ५॥
थाي थिर करि राज - गन अपनै अपने ठौर।
तासों तुम ںहि भई महरानी जग और॥ ६॥*

---

*जीवहु ईस असीस बल हरहु प्रजन की पीर।

अथ अङ्कमयी

राजराजेश्वरी-स्तुति

करि वि ४ देख्यौ वहुत जग विनु रस न१ ।
तुम विनु हे विक्टोरिये नित ९०० पथ टेक ॥१॥
ह ३ तुम पर सैन लै ८० कहत करि १०० ह ।
पै विन७ प्रताप-वल सत्रु मरोरे भौंह ॥२।
सो १३ ते लोग सव विल१७ त सचैन ।
अ ११ ती जागती पै सव ६ न दिन-रैन ॥३।
लखि तुव मुख २६ सि सवै कै १६ त अनंद ।
निहचै २७ की तुम मैं परम असंद ॥४।
जिमि ५२ के पद तरें १४ लोक लखात ।
तिमि भुव तुव अधिकार मोहिं विस्त्रे २० जनात ॥५॥
६१ खल नहिं राज मैं २५ वन की वाय ।
तासों गायो सुजस तुव कवि ६ पद हरखाय ॥६॥

सरयू जमुना गंग मैं जव लौं थिर जग नीर ॥
जे केवल तुव दास हैं नासहु तिनकी आर ।
वढ़ै सवाई तेज नित टीको अचल लिलार ॥
भारत के एकत्र सव वीर सदा वल-पीन ।
वीसहु विस्वा ते रहैं तुमरे नितहि अधीन ॥
चेरे से हेरे सवै तेरे विना कलाम ।
गलै दाल नहिं सत्रु की तुव सनमुख गुनधाम ॥
अमीमई कीरति छई रहै अजी महराज ।
वेर वेर वरनत सवै ये कवि यातें आज ॥
थापे थिर करि राज-गन अपने अपने ठौर ।
तासों तुम सी नहिं भई महरानी जग और ॥

किये १०००००००००००० कल १०००००००००
के तनिकहिं भौंह मरोर।
४० की नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ॥७॥
तुव पद १०००००००००००००००० प्रताप को
करत सुकवि पि १०००००००।
करत १००००००० बहु १००००० करि
होत तऊ अति थोर ॥८॥
तुम ३१ च मैं चड़ी तातें बिरच्यौ छन्द।
तुव जस परिमल ॥। लहि अंक-चित्र हरिचंद ॥९॥❀

❀ करि बिचार देख्यौ बहुत जग बिनु दोस न एक।
तुम बिन हे विक्टोरिये नित नव सौ पथ टेक ॥
हती न तुम पर सैन लै असी कहत करि सौंह।
पै बिनसात प्रताप बल सत्रु मरोरैं भौंह ॥
सोते रहते लोग सब बिलसत रहत सचैन।
अग्या रहती जागती पै सब छन दिन रैन ॥
लखि तुव मुख छबि ससि सबै कैसो रहत अनंद।
निहचै सत्ता हंस की तुम मैं परम अमंद ॥
जिमि बावन के पद तरें चौदह लोक लखात।
तिमि भुव तुव अधिकार मोहि बिस्वे बीस जनात ॥
इक सठ खल नहिं राज में बची सबन की घाय।
तासों गायो सुजस तुव कवि पद पद हरखाय ॥
किये खरब बल अरब के तनिकहिं भौंह मरोर।
चालि सकी नहिं अरिन की सैन सैन लखि तोर ॥
तुव पद पद्म प्रताप को करत सुकवि पिक रोर।
करत कोटि बहु लच्छ करि होत तऊ अति थोर ॥
तुम इक सौ सब मैं चड़ी तातें बिरच्यौ छंद।
तुव जस परिमल पौन लहि अंक-चित्र हरिचंद ॥

भाषा सहज

कविता

धन्य धन्य दिन आजु को धन धन भारत-भाग।
अतिहि बढ़ायो सहज निज दोऊ दिसि अनुराग ॥ १ ॥
आजु मान अति ही लह्यो आरज भारत देस।
भारत की राजेस्वरी भए अनंद विसेस ॥ २ ॥
प्रथम शमीरामा* भई दूजी भई न और।
सो पूजी तुम विजयिनी महरानी वनि ठौर ॥ ३ ॥
विजय मित्र जय विजयपति अजय कृष्ण भगवान।
करहिं विजयिनी विजय नित दिन दिन सह कल्यान ॥ ४ ॥
नारी दुर्गा रूप सब † राजा कृष्ण समान ‡।
शक्ति शक्तिमत तुम दोऊ यासों अतिहि प्रधान ॥ ५ ॥
और देश के नृप सबै कहवावत महराज।
सो मेटी जिय सत्य तुम ह्वै कै राजधिराज ॥ ६ ॥
होइ भारताधीस्वरी आरज-स्वामिन आज।
तुम द्वै + आरज जाति कहँ मिलयो धन यह राज ॥ ७ ॥

रंग-चित्र

——दुति करि वैरि झट ——मुख मसि लाय।
——पीरजन ——लित ——हि इत पठवाय ॥ १ ॥ ×

---

* पद्म पुराण में भारत को जीतनेवाली शमीरामा नामक देवी का विजयदशमी के दिन शमी वृक्ष में पूजन का विधान है, जिसको इतिहास में Queen Semiremis कहते हैं।

† स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु—दुर्गा पाठ।

‡ नराणां च नराधिपः—श्री गीता।

\+ हिंदू और अंगरेज।

× (पीरे) दुति करि वैरि झट (कारे) मुख मसि लाय।
(हरे) पीर जन (नील) लित (लाल) हि इत पठवाय ॥

श्री राज-राजेश्वरी-स्तुति

संस्कृत छंद में

श्रीमत्सर्वगुणाम्बुधेर्जनमनो वाणी विदूरीकृते-
र्नित्यानंदघनस्य पूर्ण करुणाऽऽसारैर्जनान् सिंचतः ।
शक्तिः श्रीपरमेश्वरस्य जनताभाग्यैरवाप्तोदया-
साम्राज्यैकनिकेतनं विजयिनी देवी वरी वृध्यते ॥ १ ॥

नानाद्वीप - निवासिनो नृपतय. स्वैरुत्तमाङ्गैर्नतै-
रादेशाक्षरमालिकां यदुदितां मालामिवाबिभ्रति ।
यत्कीर्तिः शरदिंदुसुन्दररुचिर्व्याप्नोति कृत्स्नां मही ।
सेयं सर्व जनातिगस्वविभवा कासां गिरां गोचरां ॥ २ ॥

एषा यद्यपि सार्वभौमपदवीं प्राप्ता प्रतापैर्निजै-
र्वैरिव्रातमहीधराशनिसमैर्भूपालनैकव्रते. ।
आर्यावर्त जमर्त्य भाग्य निवहैर्भूयोऽधुनोदित्वरै.
स्वीकृत्या जनयन्मुदं मनसिन. साऽऽर्येश्वरीति प्रथाम् ॥ ३ ॥

कर्णाकर्णिकया गते श्रुतिपथं वार्ताऽमृतेऽस्मिन्वयं
विन्दामो यमभन्दमात्तपुलका आनंदथुं संततम् ।
अप्राप्यातितनौ तनावव्रसरं तेनैव संचोदिताः
श्रीमत्याः परमेश्वरार्चिरतरं संप्रार्थयाम. शिवम् ॥ ४ ॥

दीनानाथ जनावनोद्यतमना मानादिनानाविध-
श्रीमत्सर्वगुणावनिर्नयधना संमोदयित्री बुधान् ।
जीयादुज्ज्वल कीर्तिरार्तिशमिनी मूर्तिः परस्ये शितुः
पुत्रैरात्मसमैः समं विजयिनी देवी सहस्रं समाः ॥ ५ ॥

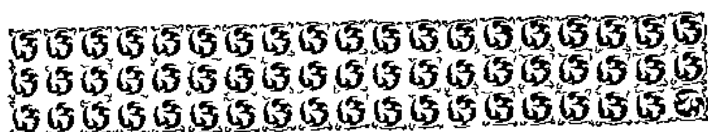
गजल

(सन् १८७६)

माद्ये तारीख़

[विक्टोरिया शाहेशाहान हिन्दोस्तान]

उसको शाहनशही हर बार मुबारक होवे।
क़ैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे॥
बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन या रब।
तख़्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे॥
बाग़वाँ फूलों से आबाद रहे सहने चमन।
बुलबुलो गुलशने बे-ख़ार मुबारक होवे॥
एक इस्तूद में हैं शेख़ो बिरहमन दोनों।
सिजदः इनको उन्हें जुन्नार मुबारक होवे॥
मुज़दए दिल कि फिर आई है गुलिस्ताँ में बहार।
मैकशो ख़ानये ख़ुम्मार मुबारक होवे॥
दोस्तों के लिए शादी हो अदू को ग़म हो।
ख़ार उनको इन्हें गुलज़ार मुबारक होवे॥
जमजमों ने तेरे बस कर दिए लब बंद 'रसा'।
यह मुबारक तेरी गुफ़्तार मुबारक होवे॥



वेणु-गीति

(सं० १९३४)

(श्री चंद्रावली मुख चकोरी विजयते)

दोहा

जै जै श्री घनश्याम वपु जै श्री राधा वाम ।
जै जै सब ब्रज-सुंदरी जै वृंदावन धाम ॥१॥
मायावाद-मतंग-मद हरत गरजि हरि नाम ।
जयति कोऊ सो केसरी, वृंदावन वन धाम ॥२॥
गोपीनाथ अनाथ-गति जग-गुरु विट्ठलनाथ ।
जयति जुगल वल्लभ-तनुज गावत श्रुति गुनगाथ ॥३॥
श्री वृंदावन नित्य हरि गोचारन जब जाहिं ।
विरह-बेलि तबही बढ़े गोपी-जन उर माहिं ॥४॥
तब हरि-चरित अनेक विधि गावहिं तनमय होइ ।
करहिं भाव उर के प्रगट जे राखे बहु गोइ ॥५॥
जो गावहिं ब्रज भक्त सब मधुरे सुर सुभ छंद ।
रसना पावन करन को गावत सोइ 'हरिचंद' ॥६॥

राग सोरठ तिताला

सखी फल नैन धरे को एह ।
लखिबो श्री ब्रजराज-कुँवर को गौर साँवरी देह ॥
सखन संग बन तें बनि आवत करत वेनु को नाद ।
धन्य सोई या रस को जानै पान कियो है स्वाद ॥

वह चितवनि अनुराग भरी सी फेरनि चारहुँ ओर ।
'हरीचंद' सुमिरत ही ताके बाढ़त मैन-मरोर ॥ १ ॥

सखी लखि दोउ भाइन को रूप ।
गोप-सखा-मंडल-मधि राजत मनु द्वै नट के भूप ॥
नवदल मोरपच्छ कमलन की माल बनी अभिराम ।
ता पै सोहत सुरँग उपरना वेष विचित्र ललाम ॥
नटवर रंगभूमि में सोभित कबहुँ उठत हैं गाय ।
'हरीचंद' ऐसी छबि लखि कै बार बार बलि जाय ॥ २ ॥

राग देस होरी का ताल

बंसी कौन सुकृत कियौ ।
गोपिकन को भाग याने आपुही लै पियौ ॥
करत अमृत-पान आपुन औरहू को देत ।
बचत रस सो पिवत ह्रिदिनी वृक्ष लता समेत ॥
प्रगट ह्रिदिनी तटनि तृन पुन श्रवत मधु तरु-डार ।
होत याहि रोमांच वा को बहत आँसू-धार ॥
वेन-पुत्र सुपुत्र लखिकै करत दोउ आनंद ।
आपु हरी न होत अचरज यह बड़ो 'हरिचंद' ॥ ३ ॥

राग मलार आड़ा चौताला

बढ़ी जग कीरति वृंदावन की ।
श्री जसुदानंदन की जापैं छाप भई चरनन की ।
वेनु-धुनि सुनि जहाँ नाचत मत्त होइ मयूर ।
सिखर पै गिरिराज के सब संग कों करि दूर ॥
सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन ।
ता समै यह मोर नाचत सुनत बंसी - तान ॥

पच्छ यातें धरत सिर पैं श्याम नटवर-राज ।
कहत इमि 'हरिचंद' गोपी बैठि अपुन समाज ।। ४ ।।

बिहाग तिताला

धन्य ये मूढ़ हरिन की नार ।
पाइ बिचित्र बेष नँदनंदन नीके लेहिं निहारि ।।
मोहित होइ सुनहिं बंसी-धुनि श्याम हरिन लै संग ।
प्रनय समेत करहिं अवलोकन बाढ़त अंग अनंग ।।
जानि देवता बन को मानहुँ पूजहिं आदर देहिं ।
'हरीचंद' धनि धनि ये हरिनी जन्म सुफल करि लेहिं ।। ५ ।।

राग सोरठ तिताला

बिमानन देव-बधू रहीं भूलि ।
बनिताजन मन नैन महोत्सव कृष्ण-रूप लखि फूलि ।।
सुनिकै अति बिचित्र गीतन कों बंसी की धुनि घोर ।
थकित होत सब अंग अंग मैं बाढ़त मैन मरोर ।।
खुलि खुलि परत फूल की कबरी नीबी की सुधि नाहिं ।
'हरीचंद' कोउ चलन न पावत या नभ-पथ के माहिं ।। ६ ।।

देस तिताला

लखो सखि इन गौवन को हाल ।
ऐसी दसा पसुन की है जहँ हम तो हैं ब्रज-बाल ।
कृष्णचंद्र के मुख सों निकसै जो बंसी की तान ।
तो अमृत कों पान करहिं ये ऊँचे करि करि कान ।।
बछरा थन मुख लाइ रहे नहिं पीवत नहिं तृन खात ।
थन तें पय की धार बहत है नैनन तें जल जात ।।
इक टक लखत गोविंदचंद कों पलक परत नहिं नैन ।
'हरीचंद' जहाँ पसु की यह गति अबलन कों कित चैन ।। ७ ।।

सोरठ मल्लार तिताला

धन्य ये मुनि वृंदावन-वासी ।
दरसन हेतु विहंगम ह्वै रहे मूरति मधुर उपासी ॥
नव कोमल दल पल्लव द्रुम पै मिलि बैठत हैं आई ।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल सुनहिं वेनु-धुनि माई ॥
प्राननाथ के मुख की बानी करहिं अमृत-रस-पान ।
'हरीचंद' हम कों सोउ दुर्लभ यह विधि की गति आन ॥८॥

सोरठ तिताला

अहो सखि जमुना की गति ऐसी ।
सुनत मुकुंद-गीत मधु श्रवनन विह्वल ह्वै गई कैसी ॥
भँवर पड़त सोइ काम-बेग-सों थकित होत गति भूली ।
तटनि घास अंकुरित देखियत सोइ रोमावलि फूली ॥
चुंबन हित धावत लहरन सों कर लै कमल अनेक ।
मानहुँ पूजन-हेत चरन कों यह इक कियो विवेक ॥
चरन-कमल के सदस जानि तेहि निसि-दिन उर पैं राखै ।
'हरीचंद' जहँ जल की यह गति अबलन की कहा भाखै ॥९॥

बिहाग आड़ा चौताला

जहँ जहँ राम-कृष्ण चलि जाहीं ।
तहँ तहँ आतप जानि देव सब दौरि करहिं तन छाँहीं ॥
खेलहिं संग गोप के बालक चरहिं गऊ सुख पाई ।
तिन के मध्य बने दोउ राजत मुरली मधुर बजाई ॥
प्रेम मगन ह्वै सुरँग फूल सब गगन आइ बरसावैं ।
कठिन भूमि कोमल पद लखि कै मनु पाँवड़े बिछावैं ॥
दूर देस सों आइ देवता रूप-सुधा नित पीयैं ।
'हरीचंद' बसि एक गाँव बिनु दरसन कैसे जीयैं ॥१०॥

कान्हरा आड़ा चौताला

अहो सखी धनि भीलन की नारि ।
हरि-पद-पंकज को श्री कुंकुम लेहि कुचन पै धारि ॥
तन-सिंगार जो ब्रज-जुवतिन को प्रान-पिया पद लायौ ।
सो बन-गवन समै ब्रज तृन के पातन मैं लपटायौ ॥
हरि-पद-तल की आभा सों सो अरुन है रह्यौ सोहै ।
भक्तन को अनुराग मनहुँ यह चरनन लाग्यौ सोहै ॥
ताहि देखि भई बिकल काम-बस कर सों लेहि उठाई ।
निज मुख मैं दोउ कुच मैं लावहिं मनसिज-ताप नसाई ॥
जगबंदन नँदनंदन के पग-चंदन भीलिन पावैं ।
'हरीचंद' हम को सोउ दुर्लभ एकहि जात कहावैं ॥११॥

राग सारंग वा बिहाग ताल चर्चरी

हरि-दास-वर्य्य गिरिराज धन धन्य
सखि राम घनश्याम करैं केलि जापैं ।
चरन के स्पर्श सों पुलकि रोमांच भयौ
सोई सब वृक्ष अरु लता तापैं ॥
झरत झरना सोई प्रेम-अँसुवा बहत
नवन तरु-डार मनुहार करहीं ।
परम कोमल भयो है यंगवीन (?) सम
जानि जापैं कृष्ण-चरन धरहीं ॥
करत आदर सहित सबन की पहुनई
संग के गोप गो-बृन्द लेहीं ।
पत्र फल मधुर मधु स्वच्छ जल तृन छाँह
आदि सब वस्तु गिरिराज देहीं ॥

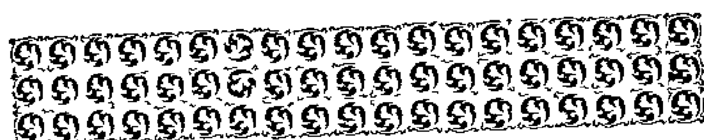
करहिं वहु केलि हरि खेल खेलहिं संग
ग्वालगन परम आनंद पावैं ।
देखि 'हरीचंद' छवि मुदित चिथकित चकित
प्रेम भरि कृष्ण के गुनहिं गावैं ॥१२॥

सोरठ तिताला

सखी यह अति अचरज की वात ।
गोप सखा अरु गोधन लै जव राम कृष्ण वन जात ॥
वेनु वजावत मधुरे सुर सों सुनि कै ता धुनि कान ।
भूलि जात जग मैं सव की गति सुनत अपूरव तान ॥
वृक्षन कौं रोमाच होत है यह अचरज अति जान ।
थावर होइ जात हैं जंगम जंगम थावर मान ॥
गोवंधन कंधन पै धारे फेंटा झुकि रह्यो माथ ।
मत्त भृंग-जुत है वन-माला फूल-छरी पुनि हाथ ॥
वेनु वजावत गीतन गावत आवत वालक संग ।
'हरीचंद' ऐसो छवि निरखत वाढ़त अंग अनंग ॥१३॥

दोहा

कृष्णचंद्र के विरह मैं वैठि सवै व्रज-वाल ।
एहि विधि वहु वातैं करत तन सुधि विगत विहाल ॥ १ ॥
जव लौं प्यारे पीय को दरस होत नहिं नैन ।
इक छन सौ जुग लौं कटत परत नहीं जिय चैन ॥ २ ॥
साँझ समै हरि आइ कै पुरवत सव की आस ।
गावत तिनको विमल जस 'हरीचंद' हरि-दास ॥ ३ ॥



श्री नाथ-स्तुति

(सं० १९३४)

छप्पै

जय जय नंदानंद-करन वृषभानु - मान्यतर ।
जयति यशोदा-सुअन कीर्त्तिदा कीर्त्तिदानकर ॥
जय श्री राधा-प्राण-नाथ प्रणतारति-भंजन ।
जय वृंदावन-चन्द्र चन्द्रवदनी—मनरंजन ॥
जय गोपति गोपति गोपपति गोपीपति गोकुल-शरण ।
जय कष्ट-हरण करुनाभरण जय श्री गोवर्द्धन-धरण ॥ १ ॥

जय जय वकी-विनाशन अघ-बक-वदन—विदारण ।
जय वृंदावन-सोम व्योम-तमतोम—निवारण ॥
जयति भक्त-अवलम्ब प्रलम्ब प्रलम्ब-विनासन ।
जय कालिय-फन प्रति अति द्रुत गति नृत्य प्रकाशन ॥
श्रीदाम-सखा घनश्याम-वपु वाम-काम-पूरन-करण ।
जय ब्रह्मधाम अभिराम रामानुज श्रीगिरिवर-धरण ॥ २ ॥

जयति वल्लभी-वल्लभ वल्लभ वल्लभ-वल्लभ ।
जय पल्लवद्युति अधर भल्ल वरजित कटाक्ष प्रभ ॥
उर-कृत मल्ली माल जयति व्रज पल्ली - भूपन ।
व्रजतरु-वल्ली-कुंज-रचित हल्लीश मुदित मन ॥
जय दुष्ट-काल वनमाल गर भक्तपाल गजचाल-चय ।
कृत ताल नृत्य उत्ताल गति गोप-पाल नँदलाल जय ॥ ३ ॥

जय धृतवरहापीड़ कुवलयापीड़ पीड़कर।
चूर करन चानूर मुष्टिवल मुष्टि-दर्पदर॥
जयति कंस विध्वंस-करन विधु-वंस-अंसधर।
परम हंस प्रिय अति प्रशंस अवतंस लसित वर॥
जय अनिर्वाच्य निर्वाणप्रद नित अर्वाच्यहु प्राच्यतर।
दुर्वारार्बुदकर्बुरदलन श्रुति-निर्वादित ब्रह्म-वर॥ ४॥

जयति पार्वती-पूज्यपूज्य पतिपर्व दत्त सुख।
पांडवगुर्वोत्रातोर्वीपति सर्वरीश मुख॥
हृतसुपर्व्व वृषपर्वादिकवर्वरदर्वी हुत।
जय अथर्वनुत गान्धर्वीयुत गन्धर्व-स्तुत॥
दुर्वासाभाषित सर्वपति अर्व खर्व जन-उद्धरण।
जय शक्रगर्वकृत खर्व पर्वत पूजित पर्वतधरण॥ ५॥

जय नर्तनप्रिय जय आनर्त्त-नृपति-तनया-पति।
तृनावर्त्तहर कृपावर्त्त जय जयति आर्तगति॥
कार्तस्वर-भूषण-भूषित जय धार्तराष्ट्र-दर।
स्मार्तवृन्द-पूजित जय कार्त्तिक पूज्य पूज्य-तर॥
जय बर्हविराजित सीसवर गर्हदीनजन-उद्धरण।
जय अर्ह अहर्निशिदुखदरण जय श्रीगोवर्द्धनधरण॥ ६॥

दोहा

यह खट सुंदर खटपदी सुमिरि पिया नँदनन्द।
हरिपद-पंकज-खटपदी विरची श्री 'हरिचंद'॥

मूक प्रश्न

(सं० १९३४)

छप्पय

जीव एक, द्वै मृतक, वनस्पति तीजो जानो।
धातु चतुर्थी, शून्य पाँच, जल छठयों मानो॥
रस सातों, आठवों पारथिव, नवों वसन कहि।
दस मुद्रा, मणि ग्यारह, बारहमो मिश्रित लहि॥
औषध तेरह, कृत्रिम चतुरदस, पन्द्रह लेखन सकल।
'हरिचंद' जोड़ि दोहान को कहहु प्रश्न-फल अति विमल॥*

---

* इस छप्पय में पन्द्रह वस्तु हैं, यथा—जीव, मृतक, वनस्पति, धातु, शून्य, जल, रस, पार्थिव, वस्त्र, द्रव्य, मणि, मिश्रित, औषध, कृत्रिम और लेख। इन्हीं पन्द्रहों मे सारे संसार की वस्तु आ गई। जीव में जीते हुए प्राणी मात्र, मृतक में चमड़ा, मांस, लोम, केश, पंख, मल, माला, इत्यादि जो कुछ जीव से अलग वस्तु हो। वनस्पति मे पत्ता, छाल, लकड़ी, फल, फूल, गोंद, अन्न इत्यादि। धातु में बनाई हुई धातु की चीजें और बिना बनी धातु। शून्य कुछ नहीं। जल में पानी से लेकर द्रव्य पदार्थ मात्र। रस में घी, गुड़, नमक और भोज्य वस्तु मात्र, पार्थिव में पत्थर, खाक, कंकड़, चूना इत्यादि। वस्त्र में डोरा, रुई, रेशम, इत्यादि।

दोहा

जीव, वनस्पति, शून्य, रस, वस्त्रौषधि, मनि लेख।
एक कृष्ण को ध्यान धरि, प्रश्न चित्त सों देख॥
मृतक, वनस्पति, लेख, जल, कृत्रिम, रस, मनि, द्रव्य।
जुगल चरन सिर नाइ कै, भापु प्रश्न फल भव्य॥
धातु, शून्य, जल, लेख, रस, कृत्रिम, औषध, मिस्र।
चतुर्व्यूह माधो सुमिरि, कह फल स्वच्छ अमिस्र॥
मिस्रौषध, कृत्रिम, वसन, द्रव्य, लेख, मनि भूमि।
अष्ट सखी सह श्याम सजि, कहु फल गुरु-पद चूमि॥

द्रव्य में रुपया, पैसा, हुंडी, लोट, गहना इत्यादि। मिश्रित जिसमें एक से विशेष वस्तु मिली हैं। औषध से दवा, सूखी गोली और मद्य इत्यादि। कृत्रिम मनुष्य की बनाई वस्तु। लेख में काग़ज, पुस्तक, कलम इत्यादि। इन वस्तुओं को ध्यान में चढ़ा लेना और छप्पय याद कर लेनी। किसी से कहा कि कोई चीज़ हाथ में वा जी में ले और फिर उसके सामने क्रम से दोहे पढ़ो।

पूछो किस किस दोहे में वह वस्तु है जो तुमने ली है। जिन दोहों में बतावे उन दोहों के दूसरे तुक की गिनती के संकेतों को जोड़ डालो जो फल हो वह छप्पय के उसी अंक में देखो। जैसा किसी ने रस लिया है तो पहिला दूसरा और तीसरा दोहा बतावेगा उसके अंक एक जुगल चतुर अर्थात् एक दो और चार गिन के सात हुए तो छप्पय में सातवीं वस्तु रस है देख लो और गणित विद्या के प्रभाव से सच्चा और सिद्ध मूक प्रश्न बतला दो।

[यह मूक प्रश्न सुधा, ३० अप्रैल सन् १८७७ ई० में प्रकाशित हुआ था।]

अपवर्ग-पंचक

(सं० १९३४)

परम पुरुष परमेश्वर पद्मापति परमाधर।
पुरुषोत्तम प्रभु प्रनतपाल प्रिय पूज्य परात्पर॥
पद्म नयन अरु पद्मनाथ पालक पांडव-पति।
पूर्ण पूतना-घातक प्रेमी प्रेम प्रीति गति॥
प्यारे यह मुख सों भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि॥ १॥

फलस्वरूप फनपति-फनप्रतिनिर्त्तन फलदाई।
बासुदेव बिभु विष्णु विश्व ब्रजपति बल-भाई॥
भरताग्रज भुवभार-हरण भवप्रिय भव-भय-हर।
मनमोहन मुरमधुसूदन माधव मुरलीधर॥
माधव मुकुन्द सोई भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि॥ २॥

प्रिया परा परमानंदा पुरुषोत्तम-प्यारी।
फलदायिनि ब्रजसुखकारिनि वृषभानु-दुलारी॥
बरसानेवारी वृन्दा वृन्दावन-स्वामिनि।
भक्त-जननि भयहरनि मनहरनि भोरी भामिनि॥

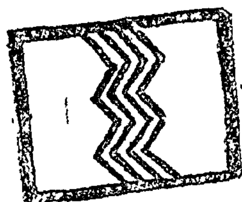
माधव-सुखदाइनि भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ॥ ३ ॥

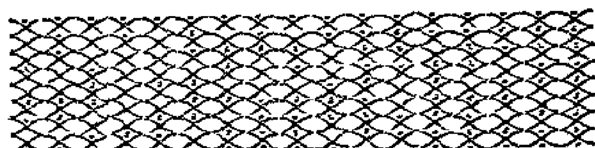
वल्लभ वल्लभ वल्लभ पण्डित मंगल मण्डन ।
ब्रह्मवाद-कर भाष्यकार माया-मत-खण्डन ॥
भारद्वाज सुगोत्र भट्टकुल-मनि वेदोद्धर ।
मिथ्या मत-तमतोम-दिवाकर पुष्टि-प्रगट-कर ॥
वल्लभ वल्लभ सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै अपवर्गी गति देत किमि ॥ ४ ॥

वल्लभनंदन भक्ति-मार्ग-प्रगटन बुध-बोधक ।
भावाश्रयरसपुष्ट विष्णु-स्वामी पथ-शोधक ॥
वैष्णवजन मन-हरन भक्तकुल-कमल-प्रकासक ।
विद्वन् मंडन-करन वितण्डावाद-विनासक ॥
विट्ठल विट्ठल सोइ भाखिए संक तजै 'हरिचंद' जिमि ।
तुम नाम पवर्गी पाइ कै प्रभु अपवर्गी गति देत किमि ॥ ५ ॥

दोहा

यह पवर्ग हरि नाम-जुत पंचक वर अपवर्ग ।
पढ़त सुनत 'हरिचंद' जो लहत तौन सुख स्वर्ग ॥





पुरुषोत्तम-पंचक

(सं० १९३४)

सखी पुरुषोत्तम मेरे प्यारे।
प्राननाथ मेरे मन धन जीवन जसुदानंद-दुलारे॥
जानत प्रीति-रीति सब भाँतिन नेह निबाहन-हारे।
'हरीचंद' इनके पद-नख पैं जगत-जाल सब वारे॥१॥

सखी पुरुषोत्तम मेरे नाथ।
मोर मुकुट सिर कटि पीतांबर सुंदर मुरली हाथ॥
गल बनमाल गोप गोपीगन गऊ बच्छ लिये साथ।
'हरीचंद' पिय करुना-सागर निज-जन-करन सनाथ॥२॥

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे स्वामी।
पतित-उधारन करुना-कारन तारन खग-पति-गामी॥
पंकज-लोचन भव-दुख-मोचन जन-रोचन अभिरामी।
'हरीचंद' संतन के सरबस बखसहु चरन-गुलामी॥३॥

पुरुषोत्तम प्रभु मेरे सरबस।
सब गुन-निधि करुना-वरुनालय जानत सकल प्रेम-रस॥
प्रीति-रीति पहिचानत मानत यातें रहत भगत-बस।
'हरीचंद' मेरे प्रान-जीवन-धन मोह्यौ मनहिं तनिक हँस॥४॥

पुरुषोत्तम बिन मोहिं नहिं कोई।
मात-पिता-परिवार-बंधु-धन मम हरि-राधा दोई॥
इन बिनु जगत और जो कीनो आयुस नाहक खोई।
'हरीचंद' इन चरन सरन रहु मन बिनु साधन होई॥५॥

भारत-वीरत्व*

(सं० १९३५)

अहो आज का धुनि परत भारत भूमि मँझार ।
चहूँ ओर तें घोर धुनि कहा होत बहु बार ॥१॥
वृटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात ।
सबै कहत जय आज क्यों यह नहिं जान्यो जात ॥२॥

---

* यह हरिश्चंद्र चंद्रिका के सन् १८७८ ई० के अक्तूबर के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसमें पृष्ठ दस और पंक्तियाँ २५ हैं। इसमें विजयिनी-विजय-वैजयंती और भारत शिक्षा आदि के पद भी सम्मिलित हैं, जो व्यर्थ पुनरावृत्ति के भय से नहीं दिए गए हैं।

यह कविता अफ़ग़ान युद्ध छिड़ने पर लिखी गई थी। प्रथम अफ़ग़ान युद्ध में दोस्त मुहम्मद काबुल का अमीर हुआ था, जिसका पुत्र शेर अली उसकी मृत्यु पर अमीर हुआ। इसके दो भाई थे—अज़ीम और अफ़ज़ल जिन्होंने कुछ उपद्रव किया था, पर शांत हो गए। सन् १८७८ ई० में शेर अली ने रूस के राजदूत का स्वागत किया, पर अंग्रेज़ी एलची को काबुल तक पहुँचने की आज्ञा नहीं दी, जिससे द्वितीय युद्ध आरंभ हुआ। उसी समय यह भारत-वीरत्व लिखकर देशीय वीरों को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए उत्साह दिलाया गया था। विजय होने पर गंदमक की संधि मई सन् १८७९ई० में हुई, पर इसके चार महीने बाद ही अफगानों ने अँगरेज एलची सर केवगनारी को मार डाला, जिस पर फिर युद्ध हुआ और शेर अली तथा उसके दोनों पुत्र याकूब और अयूब पूर्णतया परास्त हुए। अफ़ज़ल का पुत्र अबुर्रहमान अमीर हुआ और तब शांति स्थापित हुई। देशीय सेना का एक ब्रिगेड सेनापति मैकूफरसन के अधीन था। सं०

गाना

जितन हेतु अफगान चढ़त भारत महरानी।
सुनहु न गगनहिं भेदि होत जै जै धुनि-बानी ॥३॥
जै जै जै बिजयिनी जयति भारत-सुखदानी।
जै राजागन-मुकुटमनी धन-बल-गुन-खानी ॥४॥
सोई बृटिश अधीश चढ़त अफगान-जुद्ध-हित।
देखहु उमड्यौ सैन-समुद उमड्यौ सब जित तित॥५॥

पूर्ण कोरस

अरे ताल दै लै बढ़ाओ बढ़ाओ।
सबै धाइ कै राग मारू सुगाओ ॥६॥

आरंभ

'कहाँ सबै राजा कुँअर और अमीर नवाब।
कहौ आज मिलि सैन में हाजिर होहु सिताब ॥७॥
धाओ धाओ बेग सब पकरि पकरि तरवार।
लरन हेत निज सत्रु सों चलहु सिंधु के पार ॥८॥
चढ़ि तुरंग नव चलहु सब निज पति पाछे लागि।
"उडुपति सँग उडुगन सरिस नृप सुख सोभा पागि" ॥९॥
याद करहु निज वीरता सुमिरहु कुल-मरजाद।
रन-कंकन कर बाँधि कै लरहु सुभट रन-स्वाद ॥१०॥
बज्यौ बृटिश डंका अबै गहगह गरजि निसान।
कंपे थरथर भूमि गिरि नदी नगर असमान ॥११॥

गाना

राज-सिंह छूटे सबै करि निज देश उजार।
लरन हेत अफगान सों धाए बाँधि कतार ॥१२॥

पूर्ण कोरस

सुन्दर सैना सिविर सजायो ।
मनहु वीर रस सदन सुहायो ॥
छुटत तोप चहुँ दिसि अति जंगी ।
रूप धरे मनु अनल फिरंगी ॥१३॥
हा हा कोई ऐसो इतै ना दिखावै ।
अबै भूमि के जो कलंकै मिटावै ॥
चलै संग मैं युद्ध को स्वाद चाखै ।
अबै देस की लाज को जाइ राखै ॥१४॥
कहाँ हाय ते वीर भारी नसाए ।
कितै दर्प तें हाय मेरे विलाए ॥
रहे वीर जे सूरता पूर भारे ।
भए हाय तेई अबै कूर कारे ॥१५॥
तव इन ही की जगत बड़ाई ।
रही सबै जग कीरति छाई ।
तित ही अब ऐसो कोउ नाहीं ।
लरै छिनहुँ जो संगत माहीं ॥१६॥
प्रगट वीरता देहि दिखाई ।
छन महँ कावुल लेइ छुड़ाई ।
रूस - हृदय - पत्री पर वरवस ।
लिखै-लोह लेखनि भारत-जस ॥१७॥

आरम्भ

परिकर कटि कसि उठौ धनुप पै धरि सर साधौ ।
केसरिया वाना सजि कर रन-कंकन बाँधौ ॥१८॥
जासु राज सुख वस्यौ सदा भारत भय त्यागी ।
जासु बुद्धि नित प्रजा-पुंज-रंजन महँ पागी ॥१९॥

जो न प्रजा-तिय दिसि सपनेहूँ चित्त चलावैं ।
जो न प्रजा के धर्म्महि हठ करि कबहुँ नसावैं ॥२०॥
बाँधि सेतु जिन सुगम किए दुस्तर नद नारे ।
रची सड़क बेधड़क पथिक हित सुख बिस्तारे ॥२१॥
ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पाहरू दिए बिठाई ।
जिन के भय सों चोर बृन्द सब रहे दुराई ॥२२॥
नृप-कुल दत्तक-प्रथा कृपा करि निज थिर राखी ।
भूमि कोप को लोभ तज्यौ जिन जग करि साखी ॥२३॥
करि वारड-कानून अनेकन कुलहि बचायो ।
विद्या-दान महान नगर प्रति नगर चलायो ॥२४॥
सब ही विधि हित कियो त्रिविध बिधि नीति सिखाई ।
अभय बाँह की छाँह सबहि सुख दियो सोआई ॥२५॥
जिनके राज अनेक भाँति सुख किए सदाहीं ।
समरभूमि तिन सों छिपनो कछु उत्तम नाहीं ॥२६॥
जिन जवनन तुम धरम नारि धन तीनहुँ लीनो ।
तिनहूँ के हित आरजगन निज असु तजि दीनो ॥२७॥
मानसिंह बङ्गाल लरे परतापसिंह सँग ।
रामसिंह आसाम विजय किए जिय उछाह रँग ॥२८॥
छत्रसाल हाड़ा जूझ्यौ दारा हितकारी ।
नृप भगवान सुदास करी सैना रखवारी ॥२९॥
सो इनके हित क्यौं न उठहिं सब बीर बहादुर ।
पकरि पकरि तरवार लरहिं बनि युद्ध चक्कधुर ॥३०॥

दोहा

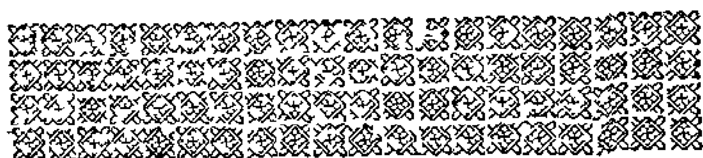
सुनत उठे सब बीरवर कर महँ धारि कृपान ।
सजि सजि सहित उमङ्ग किय पेशावरहि पयान ॥३१॥

चली सैन भूपाल की बेगम - प्रेषित धाइ ।
अलवर सों बहु ऊँट चढ़ि चले वीर चित चाइ ।।३२।।
सैन सस्त्र धन कोप सब अर्पन कियो निजाम ।
दियो बहावलपूर-पति सैन-सहित निज धाम ।।३३।।
बीस सहस्त्र सिपाह दिय जम्बूपति सह चाह ।
सैन सहित रन-हित चढ़्यौ आपुहि नाभा-नाह ।।३४।।
मण्डी जींद सुकेत पटिआला चम्बाधीस ।
टोंक सेन्धिया बहुरि करपूरथला-अवनीस ।।३५।।
जोधपुराधिप अनुज पुनि टोंक चचा सह साज ।
नाहन मालर-कोटला फरिदकोट के राज ।।३६।।
साजि साजि निज सैन सब जिय मैं भरे उछाह ।
उठि कै रन-हित चलत भे भारत के नर-नाह ।।३७।।
'डिसलायल' हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग ।
दृग भर निरखहिं आज ते राजभक्ति-संजोग ।।३८।।
निरभय पग आगेहिं परत मुख तें भाखत मार ।
चले वीर सब लरन हित पच्छिम दिसि इक बार ।।३९।।

पूर्ण कोरस

छुटी तोप फहरी धुजा गरजे गहकि निसान ।
भुव-मण्डल खलभल भयो भारत सैन पयान ।।४०।।





श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र

(सं० १९३६)

तद्वन्दे कनकप्रभं किमपि जानकीधाम ।
मत्प्रसादतस्सार्थतामेति 'राम इति नाम ॥
यो धारित शिरसि शारदनारदाद्यै ।
यश्चैक एव भवरोगकृते निदानम् ॥
यो वै रघूत्तमवशीकरसिद्धचूर्णम् ।
तं जानकीचरणरेणुमहं स्मरामि ॥ १ ॥

या ब्रह्मेशै. पूजिता ब्रह्मरूपा
प्रेमानन्दा प्रेमभावैकगम्या ।
रामस्यास्ते याऽपरा गौरमूर्तिः
सा श्रीसीता स्वामिनी मेऽस्तु नित्यम् ॥ २ ॥

नमोस्तु सीतापदपल्लवाभ्याम्
ब्रह्मेशमुख्यैरतिसेविताभ्याम् ।
भक्तेष्ट दाभ्याम्भवभंजनाभ्याम्
रामप्रियाभ्याम्ममजीवनाभ्याम् ॥ ३ ॥

रामप्रिये राममनोऽभिरामे
रामात्मिके पूरितरामकामे ।

---

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं ६ सं० १२ (जूलाई सन् १८७९ ई०) में प्रकाशित ।

रामप्रदे रामजनाभिवन्द्ये
रामे रमे त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

कण्ठे पंकजमालिका भगवतो यष्टिः करे कांचनी
गेहे चित्रपटी कुलेऽमृतमयी क्षेमंकरी देवता ।
शय्यायां मणिदीपिका रतिकलाखेलाविधौ पुत्रिका
देहे प्राणसमास्ति या रघुपतेस्तां जानकीमाश्रये ॥ ५ ॥

श्री मद्राममनः कुरंगदमने या हेमदामात्मिका
मंजूपाऽसुमणे रघूत्तममणेश्चेतोऽलिनः पद्मिनी ।
या रामाक्षिचकोरपोपणकरी चान्द्रीकला निर्मला
सा श्रीरामवशीकरी जनकजा सीताऽस्तु मे स्वामिनी ॥६

प्रायेण सन्ति वहवः प्रभवः पृथिव्याम्
ये दण्डनिग्रहकरा निजसेवकानाम् ।
किंचापराधशतकोटिसहाजनानाम्
एकात्वमेव हि यतोऽसि धरासुपुत्री ॥ ७ ॥

स्वस्वास्सपत्न्यास्सुरनाथ सूनो रक्षः पतेस्त्यागकृतश्च भर्तुः ।
त्वयाऽपराधा क्षमिता अनेके क्षमासुते क्षाम्यममापि चागः ॥८॥

यन्मातास्ति वसुन्धरा भगवती साक्षात् विदेहः पिता
स्वस्रूः कोशलराज जास्व सुरकश्चार्य्यो दशस्यन्दनः ।
दासो वायुसुतो सुतौ कुशलवौ रामानुजा देवराः-
यस्या ब्रह्मपति स्तयातिदयया किं किं न सम्भाव्यते ॥९॥

नातः परं किमपि किंचिदपीह मातः
वाच्यं ममास्ति भवती पदकंजमूले ।
एतावदेव विनिवेद्य सुखं शयेऽहम्
यन्मूढधीः शिशुरहं जननी त्वमेव ॥१०॥

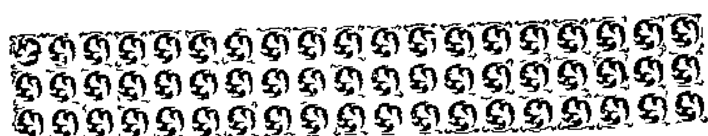
वन्दे भरतपत्नीं श्री माण्डवीं रतिरूपिणीम् ।
तारुण्यरससम्पूर्णां कारुण्यरसपूरिताम् ॥११॥

लक्ष्मणप्रेयसीं श्रीमच्छीरध्वजतनूद्भवाम् ।
वन्देहमूर्म्मिलां देवीं पतिप्रेमरसोर्म्मिलाम् ॥१२॥
नृपतिकुशध्वजकन्या धन्या नान्या ममास्ति यल्लोके ।
सा श्रुतिविश्रुतकीर्त्ति श्रुतिकीर्तिर्मेऽस्तु सुप्रीता ॥१३॥
यस्या पतिर्निमिकुलाभरण विदेहो
जामातर. श्रुतिशिर' प्रतिपाद्य रूपाः ।
भाग्यस्य या करपदादिविशिष्टमूर्त्ति
तां श्री जगज्जनिजनि प्रणमेसुनेत्राम् ॥१४॥
जामातृत्वे गतं यस्य साक्षाद्ब्रह्म परात्परम् ।
तं वंदे ज्ञाननिलयं विदेहं जनकं परम् ॥१५॥
विश्वामित्रं शतानन्दं मैथिलं च कुशध्वजम् ।
भौमं लक्ष्मीनिधिं चापि वंदे प्रीत्या पुनः पुनः ॥१६॥
विदेहस्थान् नरांश्चापि बालान् नारी. गुणोज्वला. ।
वंदे सर्व्वान् पशूञ्जीवान् भूमिं च तृणावीरुधः ॥१७॥
सर्व्वे ददन्तां कृपया मह्यं श्रीजानकीपदम् ।
भक्तिदानमकुर्वन्तु यतस्ते स्वामिनीप्रिया. ॥१८॥
आह्लादिनीं चारुशीलामतिशीलां सुशीलकाम् ।
हेमां वन्दे सदा भक्त्या सखी. सेवाविधौ हरेः ॥१९॥
शांता सुभद्रा संतोषा शोभना शुभदा · धरा ।
चार्वंगी लोचना क्षेमा सुधात्री चापि सुस्मिता ॥२०॥
क्षेमदात्री सत्यवती धीरा हेमांगिनी तथा ।
वन्दे एता अपि श्रीमज्जानक्याः प्रियकारिणी. ॥२१॥
वयस्यां माधवीं, विद्यां वागीशां च हरिप्रियां ।
मनोजवां सुविद्यां च नित्यां नित्यं नमाम्यहम् ॥२२॥
कमला विमलाद्याश्च नद्यस्तस्यात्मिकास्तु याः ।
नमोनम. सदा ताभ्यः सर्व्वास्ताः कृपयान्तु माम् ॥२३॥

परीता स्वगुणैरेवमधीतावेदवादिभिः ।
कान्त्यास्फीता गुणातीता पीतांशुकविलासिनी ॥२४॥
श्रुतिगीतादिभिर्गीता शीतांशुकिरणोज्ज्वला ।
नित्यमस्तु मनोनीता सीता प्रीता ममोपरि ॥२५॥
आशाक्रीता वशं नीता मायया दुःखदायया ।
भवभीता वयं सीतापदपल्लवमाश्रिताः ॥२६॥
खादन् पिवन् स्वापन् गच्छन् श्वसनस्तिष्टन् यदा तदा ।
यत्र तत्र सुखे दुःखे सीतैव स्मरणेऽस्तु मे ॥२७॥
रात्रौ सीता दिवा सीता सीता सीता गृहे वने ।
पृष्टेऽग्रे पार्श्वयोः सीता सीतैवास्तु गतिर्मम ॥२८॥
इदं सीता-प्रियं स्तोत्रं श्रीरामस्यातिवल्लभम् ।
श्री हरिश्चंद्रजिह्वाग्रे स्थित्वा वाण्या विनिर्मिताम् ॥२९॥
यः पठेन् प्रातरुत्थाय सायं वा सुसमाहितः ।
भक्तियुक्तो भावपूर्णः स सीतावल्लभो भवेत् ॥३०॥

इति





श्री राम-लीला

(सं० १९३६)

पद

हरि-लीला सब बिधि सुखदाई ।
कहत सुनत देखत जिय आनत देति भगति अधिकाई ॥
प्रेम बढ़त अघ नसत पुन्य-रति जिय मैं उपजत आई ।
याही सों हरिचंद करत मुनि नित हरि-चरित बड़ाई ॥१॥

गद्य

आहा ! भगवान् की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमलग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो दो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रँग ही देती है । विशेष कर के धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान् महाराज काशिराज भक्त-शिरोमणि की कृपा से सब लीला विधि-पूर्वक देखने में आती है । पहले मङ्गलाचरण होकर रावण का जन्म होता है फिर देवगण की स्तुति और वैकुंठ और क्षीरसागर की झाँकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं । फिर तो आनन्द का समुद्र श्री राम-जन्म का महोत्सव है जो देखने ही से सम्बन्ध रखता है, कहने की बात नहीं है ।

कवित्त

राम के जनम माँहिं आनँद उछाह जौन
सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है ।

तैसे हो भवन दसरथ राज रानी आदि
तैसो ही अनन्द भयो दुख-निसि नासी है ।।
सोहिलो वधाई द्विज दान गान वाजे वजैं
ंग फूल-वृष्टि चाल तैसी ही निकासी है ।
कलिजुग त्रेता कियो नर सव देव कीन्हें
आजु कासीराज जू अजुध्या कीनो कासी है ।।२।।

फिर श्री रामचन्द्र की वाल-लीला, मुण्डन, कर्णवेध, जनेऊ, शिकार खेलना आदि ज्यों का त्यों होता है देखने से मनुष्य भव-दुख मूल से खोता है । फिर विश्वामित्र आते हैं संग में श्रीराम जी को सानुज ले जाते हैं । मार्ग में ताड़िका सुवाहु का वध और फिर चरण-रेणु से अहिल्या का तारना । अहा ! धन्य प्रभु के पद-पद्म जिनके स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है देवता वनता है कहीं पत्थर तरता है । इस प्रभु की दीन दयाल पर श्री मन्महाराज की उक्ति ।

दोहा

हम जानो तुम देर जौ लावत तारन माँहिं ।
पाहनहू तें कठिन गुनि मो हिय आवत नाहिं ।।३।।
तारन मैं मो दीन के लावत प्रभु कित वार ।
कुलिस रेख तुव चरनहू जो मम पाप पहार ।।४।।

कवि की उक्ति

मो ऐसे को तारिवो सहज न दीन-दयाल ।
आहन पाहन वज्रहू सों हम कठिन कृपाल ।।५।।
परम मुक्तिहू सों फलद तुअ पद-पदुम मुरारि ।
यहै जतावन हेत तुम तारी गौतम-नारि ।।६।।
एहो दीनदयाल यह अति अचरज की वात ।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहनहू तरि जात ।।७।।

कहा पखानहुँ तें कठिन मो हियरो रघुबीर।
जो मम तारन में परीं प्रभु पर इतनी भीर ॥८॥
प्रभु उदार पद परसि जड़ पाइनहूँ तरि जाय।
हम चैतन्य कहाइ क्यों तरत न परत लखाय ॥९॥
अति कठोर निज हिय कियो पाहन सों हम हाल।
जामें कबहूँ मम सिरहु पद-रज देहि दयाल ॥१०॥
हमहूँ कछु लघु सिल न जो सहजहि दीनो तार।
लगिहै इत कछु बार प्रभु हम तौ पाप-पहार ॥११॥

फिर श्री रामचन्द्र जी सानुज जनक-नगर देखने जाते हैं पर नारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं।

कवित्त

कोऊ कहै यहै रघुराज के कुँवर दोऊ
कोऊ ठाढ़ी एक टक देखै रूप घर में।
कोऊ खिरकीन कोऊ हाट बाट धाईं फिरैं
बावरी है पूछै गए कौन सी डगर में॥
'हरीचंद' झूमै मतवारी हग मारी कोऊ
जकी थकी सी कोऊ खरी एकै थर में।
लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ी सी भई
अहर परी है आजु जनक सहर में॥१२॥

फिर श्रीराम जी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं। उस समय फुलवारी की रचना, कुञ्जों की बनावट, कल के मोरों का नाचना और चिड़ियों का चहकना यह सब देखने ही के योग्य है।

इतने में एक सखी जो कुञ्जों में गई तो वहाँ राम रूप देख कर बावली हो गई। जब वहाँ से लौट कर आई तो और सखियाँ पूछने लगीं।

कवित्त

कहा भयो कैसी है बतावै किन देह दसा
छनहीं में काहे बुधि सबही नसानी सी ।
अबहीं तो हँसति हँसति गई कुञ्जन मैं
कहा तित देख्यौ जासों है रही हिरानी सी ॥
'हरीचंद' काहू कछु पढ़ि कियो टोना लागी
ऊपरी बलाय कै रही है बिख सानी सी ।
आनँद समानी सी जगत सों भुलानी सी
लुभानी सी दिवानी सी सकानी सी बिकानी सी ॥१३॥

यह सुनकर वह सखी उत्तर देती है ।

सवैया

जाहु न जाहु न कुञ्जन मैं उत
नाँहि तौ नाहक लाजहिं खोलिहौ ।
देखि जौ लैहो कुमारन कों
अबही झट लोक की लोकहि छोलिहौ ॥
भूलिहै देह-दसा सगरी
'हरिचंद' कछू को कछू मुख बोलिहौ ।
लागिहैं लोग तमासे हहा
बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलिहौ ॥१४॥

कवित्त

जाहु न सयानी उत बिरछन माहिं कोऊ
कहा जानै कहा दोय झलक असन्द है ।
देखत ही मोहिं मन जात नसै सुधि बुधि
रोम रोम छकै ऐसो रूप सुख-कन्द है ॥
'हरीचन्द' देवता है सिद्ध है छलावा है
सहावा है कि रत्न है कि कीनी दृष्टि-बन्द है ।

जादू है कि जन्त्र है कि मन्त्र है कि तंत्र है कि
तेज है कि तारा है कि रवि है कि चन्द है ॥१५॥

वहाँ से दूसरे दिन श्रीरामचन्द्र धनुष-यज्ञ मे आते हैं और इनका सुन्दर रूप देखकर नर-नारी सब यही मनाते है।

कवित्त

आए हैं सबन मन-भाए रघुराज दोऊ
जिन्हें देखि धीर नाहिं हिअ माँहि धरि जाय।
जनक-दुलारी जोग दूलह सही है एई
ईस करै राउ आज प्रनहिं बिसरि जाय॥
'हरीचंद' चाहै जौन होइ एई सोअ वरैं
जो जो होइ बाधक बिधाता करै मरि जाय।
चाटि जाहिं घुन याहि अबहीं निगोरो
बटपारो दईमारो धनुआगि लगै जरि जाय॥१६॥

जब धनुष के पास श्री रामजी जाते हैं तब जानकी जी अपने चित्त में कहती हैं।

सवैया

मो मन मैं निहचै सजनी यह तातहु तें प्रन मेरो महा है।
सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि मो हिअ मैं रमि राम रहा है॥
रीत पतिव्रत राखि चुकी मुख भाखि चुकी अपुनो दुलहा है।
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु चढ़ौ तो कहा न चढ़ौ तो कहा है॥१७॥

लोगों को चिन्तित देख श्री रामचन्द्र जी धनुष के पास जाते हैं और उठा कर दो टुकड़े कर के पृथ्वी पर डाल देते हैं। बाजे और गीत के साथ जय जय की धुन अकास तक छा जाती है।

कवित्त

जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के।
वीरन के गरब गरूर भरपूर सब
भ्रम मद आदि मुनि कौसिक के तनु के॥
'हरीचंद' भय देव मन के पुहुमि भार
विकल विचार सबै पुर-नारी जनु के।
सङ्का मिथिलेस की सिया के उर सूल सबै
तोरि डारे रामचन्द्र साथै हर-धनु के॥१८॥

धनुष टूटते ही जगत्-जननी श्री जानकी जी जयमाल लेकर भगवान को पहिनाने चलीं, उसकी शोभा कैसे कही जाय।

कवित्त

चन्दन की डारन मैं कुसुमित लता कैधौं
पोखराज माखन मैं नव-रत्न जाल है।
चन्द्र की मरीचिन मैं इन्द्र-धनु सोहै कै
कनक जुग कामी मधि रसन रसाल है॥
'हरीचंद' जुगुल मृनाल मैं कुमुद वेलि
मूँगा की छरी मैं हार गूथ्यौ हरि लाल है।
कैधौं जुग हंस एकै मुक्त-माल लीने कै
सिया जू करन माँह चारु जयमाल है॥१९॥

सवैया

टूटत ही धनु के मिलि मङ्गल
गाइ उठीं सगरी पुर-बाला।
लै चलीं सीतहि राम के पास
सबै मिलि मन्द मराल की चाला॥

देखत ही पिय को 'हरिचंद'
महा मुद पूरित गात रसाला।
प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी
प्यारे के कण्ठ दई जयमाला ॥२०॥

बस चारो ओर आनन्द ही आनन्द हो गया।

फिर अयोध्या से बरात आई। यहाँ जनकपुर मे सब व्याह की तयारी हुई। वैसी ही मण्डप की रचना वैसा ही सब सामान।

श्री रामचन्द्र दूलह बन कर चारो भाई बड़ी शोभा से व्याहने चले। मार्ग में पुर-वनिता उनको देख कर आपुस मे कहने लगीं।

कवित्त

एई अहैं दसरथ-नन्द सुखकन्द तारी
गौतम की नारी इनहीं मारि राक्षसनि।
कौसला के प्यारे अति सुन्दर दुलारे सिया
रूप रिझवारे प्रेमी जनक प्रान धनि॥
सुन्दर सरूप नैन बाँके मद छाके 'हरीचंद'
धुँघुराली लटैं लटकैं अहो सी बनि।
कहा सबै उझकि बिलोकौ बार बार देखो
नजरि न लागै नैन भरि कै निहारो जनि॥२१॥

सवैया

एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिक के मख के रखवारे।
कौसलानन्दन नैन-अनन्दन एई हैं प्रान जुड़ावन-हारे॥
प्रेमिन के सुखदैन महा 'हरिचंद' के प्रानहुँ तें अति प्यारे।
राज-दुलारी सिया जू के दूलह एई हैं राघव राजदुलारे॥२२॥

मण्डप में पहुँच कर सब लोग यथास्थान बैठे। महाराज

जनक ने यथाविधि कन्यादान दिया। जैजै की धुनि से पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया।

सवैया

वेदन की विधि सों मिथिलेस करी सब ब्याह की रीति सुहाई।
मन्त्र पढ़ैं 'हरिचंद' सबै द्विज गावत मङ्गल देव मनाई॥
हाथ मैं हाथ के मेलत ही सब बोलि उठे मिलि लोग लुगाई।
जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई बधाई॥२३॥
मौर लसै उत मौरी इतै उपमा इकहू नहिं जातु लही है।
केसरी बागो बनो दोउ के इत चन्द्रिका चारु उतै कुलही है॥
मेंहदी पान महावर सों 'हरिचंद' महा सुखमा उलही है।
लेहु सबै दृग को फल देखहु दूलह राम सिया दुलही है॥२४॥
विधि सों जब ब्याह भयो दोउ को मनि मण्डप मङ्गल चाँवर भे।
मिथिलेस कुमारी भई दुलही नव दूलह सुन्दर साँवर भे।
'हरिचंद' महान अनन्द बढ़्यौ दोउ मोद भरे जब भाँवर भे।
तिनसों जग मैं कछु नाहिं बनी जे न ऐसी बनी पैं निछावर भे॥२५॥

फिर जेवनार हुई। सब लोग भोजन को बैठे स्त्रियाँ ढोल मँजीरा लेकर गाली गाने लगीं।

सुन्दर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू।
अगुन सगुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू॥
मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट श्रुति चारी।
जो पति पितु सिसु दोउ मैं व्यापत ताहि लगै का गारी॥
मात पिता को होत न निरनय जात न जानो जाई।
जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई॥
अज के दसरथ सुने रहे किमि दसरथ के अज जाये।
भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोऊ आप सोहाये॥
धन्य धन्य कौशिल्या रानी जिन तुम सों सुत जायो।

मात पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहायो ॥
कैकै की जो सुता कैकई ताको सुकृत अपारा।
भरतहि पर अति ही रुचि जाकी को कहि पावै पारा ॥
नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी।
अतिहि बिचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी ॥
अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ साँवर कोउ गोरे।
परी छाँह कै औरहि कारन जिय नहि आवत मोरे ॥
कौसलेस मिथिलेस दुहुन में कहौ जनक को प्यारे।
कौसल्या सुत कौसलपति सुत दुहूँ एक को न्यारे ॥
चरु सों प्रगटे कै राजा सों यह मोहि देहु बताई।
हम जानी नृप वृद्ध जानि कछु द्विज गन करी सहाई ॥
तुमरे कुल को चाल अलौकिक बरनि कछू नहि जाई।
भागीरथी धाइ सागर सों मिली अनन्द बढ़ाई ॥
सूर बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाहीं।
असमंजस को बंस तुम्हारो राघव संसय नाहीं ॥
कहँ लौं कहौं कहत नहि आवै तुमरे गुन-गन भारी।
चिरजीओ दुलहा अरु दुलहिन 'हरीचंद' बलिहारी ॥२६॥

फिर आनन्द मे बारात बिदा होकर घर आई। रानियों ने दुलहा दुलहिन को परछन कर के उतारा। महाराज दशरथ ने सब का यथायोग्य आदर-सत्कार किया। अब हम लोग भी श्री जनक लली नव दुलहो की आरती करके बालकाण्ड की लीला पूर्ण करते हैं।

आरति कीजे जनक लली की। राम मधुप मन कमल कली की ॥
रामचन्द्र मुख चन्द चकोरी। अन्तर साँवर बाहर गोरी।
सकल सुमङ्गल सुफल फली की ॥

पिय दृग मृग जुग बन्धन डोरी। पीय प्रेम-रस-रासि किसोरी।
पिय मन गति विश्राम थली की॥
रूप-रासि गुननिधि जग स्वामिनि। प्रेम प्रवीन राम अभिरामिनि।
सरवस धन 'हरिचंद' अली की॥२७॥

अब अयोध्या काण्ड की लीला प्रारम्भ हुई। करुणा रस का समुद्र उमड़ चला। श्री रामचन्द्र जी के वनवास का कैकेई ने वर माँगा, भगवान वन सिधारे, राजा दशरथ ने प्राण त्यागा।

दोहा

बिनु प्रीतम तृन सम तज्यौ तन राखी निज टेक।
हारे अरु सब प्रेम-पथ जीते दसरथ एक॥२८॥

नगर में चारो ओर श्रीराम जी का विरह छा गया जहाँ सुनिए लोग यही कहते थे।

राम बिनु पुर बसिए केहि हेत।
धिक निकेत करुणा-निकेत बिनु का सुख इत बसि लेत॥
देत साथ किन चलि हरि को उत जियत बादि बनि प्रेत।
'हरीचंद' उठि चलु अबहूँ वन रे अचेत चित चेत॥२९॥

रामचन्द्र बिनु अवध अँधेरो।
कछु न सुहात सिया-बर बिनु मोहिं राज-पाट घर-घेरो।
अति दुख होत राजमन्दिर लखि सूनो साँझ सवेरो।
डूबत अवध बिरह सागर मैं को आवै बनि बेरो॥
पसु पंछी हरि बिनु उदास सब मनु दुख कियो बसेरो।
'हरीचंद' करुनानिधि केसव दै दरसन दिन फेरो॥३०॥

राम बिनु बादहि बीतत सासैं।
धिक सुत पितु परिवार राम बिनु जे हरि-पद-रति नासैं॥
धिक अब पुर बसिबो गर डारें झूठ मोह की फासैं।
'हरीचंद' तित चलु जित हरि-मुख-चन्द्र-मरीचि प्रकासैं॥३१॥

राम बिनु अवध जाइ का करिए।
रघुबर बिनु जीवन सों तौ यह भल जौ पहिलेहि मरिए॥
क्यों उत नाहक जाइ दुसह बिरहानल मैं नित जरिए।
'हरीचंद' बन बसि नित हरि मुख देखत जगहि बिसरिए॥३२॥

राम बिन सब जग लागत सूनो।
देखत कनक-भवन बिनु सिय-पिय होत दुसह दुख दूनो।
लागत घोर मसानहुँ सों बढ़ि रघुपुर राम बिहूनो।
कहि 'हरिचंद' जनम जीवन सब धिक धिक सिय-बर ऊनो॥३३॥

जीवन जो रामहि सँग बीतै।
बिनु हरि-पद-रति और बादि सब जनम गँवावत रीतै॥
नगर नारि धन धाम काम सब धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै।
'हरीचंद' चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक चीतै॥३४॥

फिर भरत जी अयोध्या आए और श्री रामचन्द्र जी को फेर लाने को बन गए। वहाँ उनका मिलन रहन बोलन सब मानों प्रेम की खराद थी। वास्तव में जो भरत जी ने किया सो करना बहुत कठिन है। जब श्री रामचन्द्र जी न फिरे तब पाँवरी लेकर भरत जी अयोध्या लौट आए। पादुका को राज पर बैठा कर आप नन्दिग्राम मे बनचर्य्या से रहने लगे। यहाँ भरत जी की आरती करके अयोध्या कांड की लीला पूर्ण हुई।

आरति आरति-हरन भरत की। सीय राम पद पङ्कज रत की।
धर्म्म धुरन्धर धीर बीर बर। राम सीय जस सौरभ मधुकर।
सील सनेह निबाह निरत की॥
परम प्रीति पथ प्रगट लखावन। निज गुन गन जस अघ बिद्रावन।
परछत पीय प्रेम मूरत की।
बुद्धि बिबेक ज्ञान गुन इक रस। रामानुज सन्तन के सरबस।
'हरीचंद' प्रभु बिषय बिरत की॥३५॥

भीष्मस्तवराज*

(सं० १९३६)

मेरी मति कृष्ण-चरन मैं होय ।
जग के तृष्णा-जाल छाँड़ि कै सोक-मोह-भ्रम खोय ॥
जादवपति भगवान लेत जो विहरन हित अवतार ।
परमानंद रूप मायामय पावत कोउ न पार ॥
यह जग होत जासु इच्छा तें जो यहि देत विवेक ।
तिनही श्री हरिचरन-कमल तें मम चित टरै न नेक ॥१॥

मो मन हरि सरूप मैं रहै ।
विजय-सखा-पद-कमल छोड़ि मति छनहुँ न इत उत वहै ॥
तृभुवन-मोहन सुंदर स्याम तमाल सरस तन सोहै ।
कुटिल अलक-अलि मुख-सरोज पर निरखत ही मन मोहै ॥
अरुन किरिन सम सुंदर पीत वसन जुग तन पर धारे ।
एकहु छिन इन नैनन तें मम कबहूँ होहु न न्यारे ॥२॥

वसै जिय कृष्ण-रूप में मेरो ।
भारत-जुद्ध-समय जो सुंदर अरजुन रथ पर हेरो ॥
सुंदर अलकावलि मैं रन की धूरि रही लपटाई ।
सोहत सीकर-बिंदु वदन पर सो छवि लगति सुहाई ॥

---

* हरिश्चंद्रचंद्रिका खं० ६ सं० १५ (सेप्टेंबर सन् १८७९ ई०) में प्रकाशित ।

मम चोखे बानन सों कहुँ कहुँ खंडित कवचहि धारे।
अनुदिन बसो नयन जुग मेरे श्री बसुदेव-दुलारे ॥३॥

जिय तें सो छबि बिसरत नाहीं।
लखी जौन भारत अरंभ मैं अरजुन के रथ माहीं ॥
सखा-बचन सुनि दोउ दल के मधि रथ लै ठाढ़ो कीनो।
पर-जोधन की आयु-तेज-बल देखत जिन हरि लीनो ॥४॥

तिनकी चरन भक्ति मोहि होई।
जिन अरजुनहिं मोह मैं लखि कै तासु अविद्या खोई ॥
सब बेदन को सार ग्यानमय जिन हरि गीता गाई।
निज जन-बध-संकाहि मोह मति पारथ की बिसराई ॥५॥

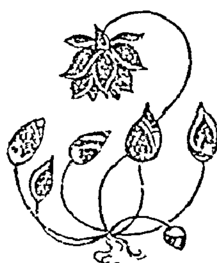
मेरी गति होउ सोइ बनवारी।
जिन मेरी परतिज्ञा राखत निज परतिज्ञा टारी ॥
अरजुन कहँ लखि बिकल बान सों कूदि सुरथ सों धावत।
कोप भरे मेरी दिसि आवत कर तें चक्र फिरावत ॥
जद्यपि पग गहि बहु भाँतिन सों पारथ रोक्यौ चाहै।
पै न रुकत जिमि महामत्त गज लखि मृगराज उछाहै ॥
गिनत न मम सर-बरसनि कों कछु बध हित धावत आवैं।
टूटि रह्यौ तन कवच मनोहर सोभा अधिक बढ़ावैं ॥
पीतांबर फहरात बात-बस सो छबि लागत प्यारी।
वहै रूप तें सदा बसौ मन मेरे श्री गिरधारी ॥६॥

मेरे जिय पारथ-सारथि बसिए।
इक कर मैं लगाम दूजे मैं चाबुक लीने लसिए ॥
जासु रूप लखि मरे बीर जे तिनहूँ हरि-पद पायो।
मरन-समय मम जिय मैं निबसौ सोई रूप सुहायो ॥७॥

हरि मम आँखिन आगे डोलौ ।
छिनहूँ हिय तें टरहु न माधव सदा श्रवन ढिग बोलौ ।।
जो सरूप लखि कै ब्रज-बनिता देह गई सब त्यागी ।
होइ बिलग हरि-रूप-उपासी हरि-पद मैं अनुरागी ।।
रास बिलास हास रस बिहरत प्रेम-मगन मन फूलीं ।
तन्मय भईं तनिक सुधि नाहीं देह दसा सब भूलीं ।।
भाव-बिवस भगवान भक्त-प्रिय सबही बिधि सुखदाई ।
सोई बसो सदा इन नैनन सुंदर कुँअर कन्हाई ।।८।।

अहो मम भाग्य कह्यौ नहिं जाई ।
जो देखत त्रिभुवनपति माधव नैनन तें ब्रजराई ।।
धरम-सभा महँ जेहि लखि रिषि-मुनि अपनों भाग सराहैं ।
सब सों पूजित चरन-कमल जो तासु चरन हम चाहैं ।।९।।

तिन हरि मो कहँ अब अपनायो ।
निज नख-चंद्र-प्रकास मोह-तम मेरो सबहि नसायो ।।
सबके हिय मैं अंतर-जामी ह्वै जो ईस समायो ।
सोई अब मम उर अंतर मैं निज प्रकास प्रगटायो ।।
हर्‌यौ मोह-तम अभय दान दै निज सरूप दरसायो ।
कहि 'हरिचंद' भीष्म हरि-पद-बल परम अमृत-फल पायो ।।१०।।



मान लीला फूल-बुझौअल

(सं० १९३६)

अमल कमल-कर-पद-बदन जमल कमल से नैन।
क्यों न करत कमला बिमल कमल-नाभ-सँग सैन ॥१॥
निसि बीती मनवत सखी तू न नेक मुसकात।
चटकत कली गुलाब की होन चहत परभात ॥२॥
वह अलबेला कुंज में पर्यौ अकेला हाय।
उठि चलि वहु बेला गई करु दृग-मेला धाय ॥३॥
अरी माधवी-कुंज में माधव अति बेहाल।
मधु रितु माधव मास मैं तो बिनु ब्याकुल लाल ॥४॥
पहिरि नवल चंपाकली चंपकली से गात।
रस-लोभी अनुपम भँवर हरि-ढिग क्यौं नहिं जात ॥५॥
रूप रंग ऐसो मिल्यौ तापैं ऐसी मान।
बिनु सुगंध के फूल तू भई कनैर समान ॥६॥
तुव कुच परसन लालसा गेंदा लै कर स्याम।
खरे उछारत कुंज में क्यों न चलत तू बाम ॥७॥
कह पायन मिंहदी लगी जासों चल्यौ न जाय।
धाय कुंज में पियहि क्यौं लेत न कंठ लगाय ॥८॥
दाऊ दीठि बचाय हरि गए कुंज के भौन।
बजवत दाऊदी उतै क्यौं न करत तू गौन ॥९॥

वृथा वकुल-पन कर रही उत व्याकुल अति लाल।
चलि न मौलि वारन गुथे मौलिसिरी की माल ॥१०॥
खवर न तोहि सँकेत की कही केतकी वार।
चलि पथ कुंज निकेत की कित की ठानत आर ॥११॥
छिरकि केवरा सों पथहि पलन पाँवरे डारि।
कब्र सों मोहन वैठि कै मारग रहे निहारि ॥१२॥
करत न हरगिस लाड़िले वा विन सेज न सैन।
नरगिस से कव के खुले तुअ मग जोहत नैन ॥१३॥
विमल चाँदनी भुव विछी नभ चाँदनी प्रकास।
तऊ अँधेरो तुव विना पिय अति रहत उदास ॥१४॥
वैठि रही क्यौं कुंद ह्वै चलु मुकुंद के पास।
कुंद-दमन दरसाइ क्यौं करत मंद नहिं हास ॥१५॥
अरी माधुरी कुंज मैं वचन माधुरी भाखि।
मधुर पिया के मान कों क्यौं न लेत तू राखि ॥१६॥
कह्यौ न मानत मो तिया पहिरि मोतिया-हार।
लाउ गरे मोहन पिया सुंदर नंद-कुमार ॥१७॥
सारी तन सजि वैजनी पग पैजनी उतारि।
मिलु न वैजनी-माल सों सजनी रजनी चारि ॥१८॥
मदन-वान पिय उर हनत तो विनु अति अकुलात।
तू निरमोहिन इत परी झूठे हीं अनखात ॥१९॥
मानिनि वारी वेगि चलि प्यारी मान निवारि।
सहि न सकत अव वेदना तो विनु मदन मुरारि ॥२०॥
रमन रेवती के अनुज तो विनु अति अकुलात।
पिय-पद क्यौं नहिं सेवती करत मान विनु वात ॥२१॥
जदपि सवै सामाँ जुही कल न लहत तउ लाल।
सोनजुही सौं भावती चलि उठि याही काल ॥२२॥

अति अनारि हठ नहिं करिय सीख सखी की मानि।
पिय सों रोस न कीजिये यामैं कोउ दिन हानि ॥२३॥
गुल्लाला फूले लखौ आयो वर रितु-राज।
कहो भला ऐसी समै कहा मान सों काज ॥२४॥
तुव हित कब के चक्रधर ठाढ़े पकरि कपाट।
दै निसु दरमन लाड़िली जोहत हरि तुव वाट ॥२५॥
हरि सिंगार सब छाँड़ि कै तुव बिनु होय मलीन।
परे भूमि पै देखु किन विरह-विथा तन छीन ॥२६॥
फूली बन नव मालती माल तीय गर डारि।
अब उठि चलु न बिलम्ब करु लै उर लाइ मुरारि ॥२७॥
करन-फूल दोउ करन सजि हरन सकल उर-सूल।
चलु न चरन-आभरन तजि भरन मदन सुखमूल ॥२८॥
रायबेलि महकति सखी अति सुगंध रस झेलि।
क्यों न रमत तू स्याम सों कंठ भुजा दोउ मेलि ॥२९॥
ठाढ़े पीअ कदंब तर तजिकै जुवति-कदम्ब।
चलु बिलंब तजि राधिके दै निज भुज अवलंब ॥३०॥
पहिरि मल्लिका-माल उर प्रेम-बल्लिका चाउ।
लपटी कृष्ण-तमाल सों लखि 'हरिचंद' निहाल ॥३१॥

१

मल्लिका (चमेली)	कमल	रायबेलि	मालती
सुदरसन	अनार	सेवती	मदन बान
मोतिया	कुंद	नरगिस	केतकी
गुलदाऊदी	गेंदा	चंपा	बेला

चन्द्र

२

मल्लिका (चमेली)	गुलाब	कदंब	मालती
हरसिंगार	अनार	जुही	मदनवान
वैजनी	कुन्द	चाँदनी	केतकी
मौलसिरी	गेंदा	कनैर	वेला

नेत्र

४

मल्लिका (चमेली)	कदम	रायवेलि	करनफूल
अनार	माधवी	जूही	सेवती
निवारी	कुंद	चाँदनी	नरगिस
केवड़ा	गेंदा	कनैर	चंपा

वेद

८

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायवेलि	करनफूल
मिंहदी	मालती	हरिसिंगार	सुदरसन
गुल्लाला	कुंद	चाँदनी	नरगिस
केवड़ा	केतकी	मौलसिरी	गुलदाउदी

वसु

१६

मल्लिका (चमेली)	कदम्ब	रायबेलि	करनफूल
मालती	हरिसिंगार	सुदरसन	गुल्लाला
अनार	जूही	सेवती	निवारी
मदनबान	बैजनी	मोतिया	माधुरी

शृंगार

प्रश्न करने की बिधि

यह एक बड़ा आश्चर्य प्रश्न का खेल है। पहले मान लीला के जिन दोहों मे जिस फूल का नाम निकलता हो उसको समझ लो और उन दोहो के अंक भी याद कर रक्खो। प्रश्न करने-वाले से कहो कि इन्हीं ३१ फूलों मे एक फूल का नाम अपने जी में लो फिर इन पांचों भागों में से एक एक ताश उसके सामने रख-कर पूछो इसमे यह फूल है, जिसमें वह बतावै उन ताशों को अलग करके उनके ऊपर लिखी गिनती जोड़ लो कि कितने अंक आते हैं। मान लीला के उसी अंक के दोहे मे जिस फूल का नाम हो वही उसने जी में लिया है। जैसा चंपा अगर किसी ने लिया है तो वह ४ और १ एक अंक वाला ताश बतावैगा तो उसके जोड़ने से ५ अंक हुए तो मान लीला में पाँचवें दोहे मे चंपा का वर्णन है इससे चंपा उसने लिया है समझो और जिसमें सबके समझ में न आवै इसके वास्ते स्पष्ट अंक के बदले छिपे अंक रक्खे हैं यथा चन्द्र १ नेत्र २ वेद ४ वसु ८ शृंगार १६ ॥



बन्दर सभा*

(सं० १९३६)

(इन्दर सभा उरदू में एक प्रकार का नाटक है वा नाटकाभास है और यह बन्दर सभा उसका भी आभास है)

[आना राजा बन्दर का बीच सभा के]

सभा में दोस्तो बन्दर की आमद आमद है।
गधे औ फूलों के अफसर की आमद आमद है ॥
मरे जो घोड़े तो गदहा य बादशाह बना।
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है।
व मोटा तन व थुँदला थुँदला मू व कुची आँख
व मोटे ओंठ मुछन्दर की आमद आमद है ॥
है खर्च खर्च तो आमद नहीं खर-मुहरे की
उसी बिचारे नए खर की आमद आमद है ॥१॥

[चौबोले जबानी राजा बन्दर के बीच अहवाल अपने के]

पाजी हूँ मैं कौम का बन्दर मेरा नाम।
बिन फ़ुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम ॥

---

* हरिश्चंद्र चंद्रिका खं० ६ सं० १२ (जुलाई सन् १८७९ ई०) में छपा है। इसके सिवा और भी छपा होगा (पर प्राप्त नहीं है); क्योंकि मधु मुकुल में छपे तीन पदों में से दो पद इसमें नहीं हैं। (सं०)

सुनो रे मेरे देव रे दिल को नहीं करार।
जल्दी मेरे वास्ते सभा करो तैयार॥
लाओ जन्नाँ को मेरे जल्दी जाकर ह्याँ।
सिर मूड़ें गारत करें मुजरा करें यहाँ॥१॥

[आना शुतुरमुर्ग परी का बीच सभा के]

आज महफिल में शुतुरमुर्ग परी आती है।
गोया महमिल से व लैली उतरी आती है॥
तेल औ पानी से पट्टी है सँवारी सिर पर।
मुँह पै माँझा दिये जल्लादो जरी आती है॥
झूठे पट्टे की है मूवाफ पड़ी चोटी मे।
देखते ही जिसे आँखों में तरी आती है॥
पान भी खाया है मिस्सी भी जमाई हेगी।
हाथ में पायँचा लेकर निखरी आती है॥
मार सकते हैं परिन्दे भी नहीं पर जिस तक।
चिड़िया-वाले के यहाँ अब व परी आती है॥
जाते ही लूट लूँ क्या चीज खसोटूँ क्या शै।
बस इसी फिक्र में वह सोच भरी आती है॥२॥

(गजल जबानी शुतुरमुर्ग परी हसब हाल अपने के)

गाती हूँ मैं औ नाच सदा काम है मेरा।
ए लोगो शुतुरमुर्ग परी नाम है मेरा॥
फन्दे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता।
इस गुलशने आलम मे बिछा दाम है मेरा॥
दो चार टके ही पै कभी रात गँवा दूँ।
कारूँ का खजाना कभी इनआम है मेरा॥

पहले जो मिले कोई तो जी उसका लुभाना।
बस कार यही तो सहरो शाम है मेरा॥
शुरफा व रुज़ला एक हैं दरबार में मेरे।
कुछ खास नहीं फ़ैज तो इक आम है मेरा॥
बन जाएँ चुगत् तब तो उन्हें मूड़ ही लेना।
खाली हों तो कर देना धता काम है मेरा॥
ज़र मज़हबो मिल्लत मेरा बन्दी हूँ मैं ज़र की।
ज़र ही मेरा अल्लाह है ज़र राम है मेरा॥४॥

(छन्द जबानी शुतुरमुर्ग़ परी)

राजा बन्दर देस में रहें इलाही शाद।
जो मुझ सी नाचीज़ को किया सभा में याद॥
किया सभा में याद मुझे राजा ने आज।
दौलत माल खजाने की मैं हूँ मुहताज॥
रुपया मिलना चाहिये तख्त न मुझको ताज।
जग में बात उस्ताद की बनी रहे महराज॥ ५॥

[ठुमरी ज़बानी शुतुरमुर्ग़ परी के]—

आई हूँ मैं सभा में छोड़ के घर।
लेना है मुझे इनआम में ज़र॥
दुनिया में है जो कुछ सब ज़र है।
बिन ज़र के आदमी बन्दर है॥
बन्दर ज़र हो तो इन्दर है।
ज़र ही के लिये कसबो हुनर है॥ ६॥

[ग़ज़ल शुतुरमुर्ग़ परी की बहार के मौसिम में]

आमद से बसन्तों के है गुलजार बसंती।
है फर्श बसंती दरो-दीवार बसंती॥

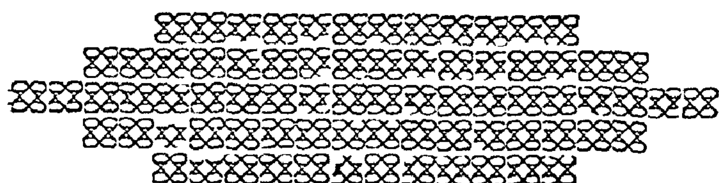
आँखों में हिमाकत का कँवल जब से खिला है।
आते हैं नजर कूचओ बाजार बसन्ती ॥
अफयूँ मदक चरस के व चण्डू के बदौलत।
यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसन्ती ॥
दे जाम मये गुल के मये जाफरान के।
दो चार गुलाबी हों तो दो चार बसंती ॥
तहबील जो खाली हो तो कुछ कर्ज मँगा लो।
जोड़ा हो परी जान का तय्यार बसंती ॥ ७ ॥

[होली जबानी शुतुरमुर्ग परी के]

पा लागों कर जोरी भली कीनी तुम होरी।
फाग खेलि बहु रंग उड़ायो और धूर भरि झोरी ॥
धूँधर करौ भली हिलि मिलि कै अन्धाधुन्ध मचोरी।
न सूझत कछु चहुँ ओरी ॥
बने दीवारी के बबुआ घर लाइ भली विधि होरी।
लगी सलोनो हाथ चरहु अन्न दसमी चैन करो री ॥
सबै तेहवार भयो री ॥ ८ ॥

(फिर कभी)





विजय-वल्लरी*

(सं० १९३८)

अहो आज आनंद का भारत भूमि मँझार।
सबकै हिय अति हर्ष क्यौं बाढ़्यो परम अपार॥ १॥
आर्य्य गनन कों का मिल्यौ जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यौं यह नहिं जान्यौ जात॥ २॥
सबके मन संतोष अति सबके मन आनन्द।
सबही प्रमुदित देखियत ज्यों चकोर लहि चंद॥ ३॥
कहा भूमि-कर उठि गयौ कै टिक्कस भो माफ़।
जनसाधारन कों भयो किधौं सिविल पथ साफ॥ ४॥
नाटक अरु उपदेश पुनि समाचार के पत्र।
कारामुक्त भए कहा जो अनन्द अति अत्र॥ ५॥
कै प्रतच्छ गो-बधन की जवनन छाँड़ी बानि।
जो सब आर्य्य प्रसन्न अति मन महँ मंगल मानि॥ ६॥
कहा तुम्हैं नहिं खबर खबर जय की इत आई।
जीति देस गन्धार सत्रु सब दिये भगाई॥ ७॥
सब औगुन की खानि अयूब भज्यौ असु लैकै।
प्रविसी सैना नगर माहिं जय डंका दैकै॥ ८॥

---

* अफ़ग़ान युद्ध के समाप्त होने पर यह कविता लिखी गई थी।

मेरठ कारागार बस्यौ याकूब अभागो ।
और सबै बर्बर-दल इत उत बल-हत भागो ॥ ९ ॥
गो-भक्षक रक्षक बनि अँगरेजन फल पायो ।
तासों करि अति क्रोध सत्रुगन मारि भगायो ॥१०॥
पंचम पांडव जिमि सकुनी गन्धार पछार्यो ।
बृटिश रिषभ तिमि खरज काबुली मध्यम मार्यौ ॥११॥
रूम रूस उर सूल दियो ईरान दबायो ।
बृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो ॥१२॥
प्रथम जबै काबुलपति कछु अभिमान जनायो ।
तबै बृटिश हरि गरजि कोपि बाँपै चढ़ि धायो ॥१३॥
शेर अली भजि मौंद समाधि प्रवेस कियो तब ।
ठहरि सकत कहुँ अली रंग-नायक उमड़ै जब ॥१४॥
रूस हूँस दै घूस प्रथम तेहि आस बढ़ाई ।
धोखा दैकै अन्त घूस बनि पोंछ दबाई ॥१५॥
खैबर दर अरगला कठिन गिरि सरित करारे ।
शत्रु हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिजु कीन्हें सारे ॥१६॥
काबुल का बल करै बृटिश हरि गरजि चढ़ै जब ।
बन गरजे केहरी भजहिं झट खर खच्चर सब ॥१७॥
नीति विरुद्ध सदैव दूत बध के अघ साने ।
रूस कुमति फँसि हूस आप मों आप नसाने ॥१८॥
सिंह-चिन्ह को धुजा चढ़ी बाला-हिसार पर ।
जय देवी बिजयिनी सोर भो काबुल घर घर ॥१९॥
पुनि परतिज्ञा चेति सत्य सो बदन न मोड़यो ।
खल-दल-बल दलमलि तृन-सम अफगानहिं छोड़यो॥२०॥
नृप अबदुल रहमान कियो आदेश सुनाई ।
सुद्ध, सत्य अरु दान-वीरता तृतिय दिखाई ॥२१॥

तजि कुदेस निज सैन सहित सब सेनापतिगन।
भारत में फिर आय बसे जय कहत मुदित मन ॥२२॥
ताही को उत्साह बढ़यौ यह चहुँ दिसि भारी।
जय जय बोलत मुदित फिरत इत उत नर नारी ॥२३॥
नहिं नहिं यह कारन नहीं अहै और ही बात।
जो भारतवासी सबै प्रमुदित अतिहिं लखात ॥२४॥
काबुल सों इनको कहा हिये हरख की आस।
ये तो निज धन-नास सों रन सों और उदास ॥२५॥
ये तो समुझत व्यर्थ सब यह रोटी उतपात।
भारत कोप बिनास कों हिय अति ही अकुलात ॥२६॥
ईति भीति दुष्काल सों पीड़ित कर को सोग।
ताहू पै धन-नास को यह बिनु काज कुयोग ॥२७॥
स्ट्रेची डिजरैली लिटन चितय नीति के जाल।
फँसि भारत जरजर भयो काबुल-युद्ध अकाल ॥२८॥
सबहिं भाँति नृप-भक्त जे भारतवासी-लोक।
शस्त्र और मुद्रण बिषय करी तिनहुँ को रोक ॥२९॥
सुजस मिलै अङ्गरेज कों होय रूस की रोक।
बढ़ै बृटिश वाणिज्य पै हम कों केवल सोक ॥३०॥
भारत राज मँझार जौ कहुँ काबुल मिलि जाइ।
जज कलक्टर होइहैं हिन्दू नहिं तित धाइ ॥३१॥
ये तो केवल मरन हित द्रव्य देन हित हीन।
तासों काबुल-युद्ध सों ये जिय सदा मलीन ॥३२॥
इनके जिय के हरख को औरहि कारन कोय।
जो ये सब दुख भूलि कै रहे अनन्दित होय ॥३३॥
अब जानी हम बात जौन अति आनँदकारी।
जासों प्रमुदित भये सबै भारत नर-नारी ॥३४॥

नृप रहमान अयूब दोऊ मिलि कलह मचाई ।
अन्त प्रबल ह्वै लियं अयूब गन्धार छुड़ाई ॥३५॥
आदि वंस नव वंस दोऊ काबुल अधिकारी ।
जाहि जातिगन चहैं करैं निज नृप बलधारी ॥३६॥
याभे हमरो कहा कउन उन सों मम नाता ।
भार पड़ैं मिलि लड़ैं भिड़ैं झगड़ैं सब भ्राता ॥३७॥
दृढ़ करि भारत-सीम बसैं अँगरेज सुखारे ।
भारत असु बसु हरित करहिं मब आर्य्य दुखारे ॥३८॥
सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमासा ।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आसा ॥३९॥
लिबरल दल बुधि भौन शान्तिप्रिय अति उदार चित ।
पिछली चूक सुधारि अबै करिहै भारत-हित ॥४०॥
खुलिहै "लोन"न युद्ध बिना लगिहै नहिं टिक्कस ।
रहिहै प्रजा अनन्द सहित बढ़िहै मंत्री-जस ॥४१॥
यहै सोचि आनन्द भरे भारतवासी जन ।
प्रमुदित इत उत फिरहिं आज रच्छित लखि निज धन॥४२॥





विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती*

(सं० १९३९)

PREFATORY NOTE.

A special meeting of the Benares Institute was held on the 22nd September 1882 at 6 P. M. in the Town Hall to express our joy at the recent success of the Indian army in Egypt. Almost all the raises, Civil, Revenue and Judicial officers, Pandits, Professors, Members of Municipal and District Committees and Scholars were present. The Hall was full and many were obliged to hear the recital from the verandah. The Honorable Raja Siva Prasad C. S. I. was unanimously voted to the chair.

Babu Harischandra read an excellent poem in Hindi on the subject. The opening stanzas of the poem explain the cause of India's unusual cheerfulness. It is the signal success of the Indian army in Egypt.

---

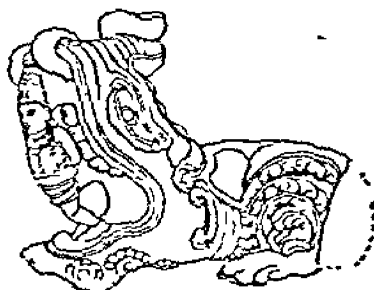
* आश्विन कृ० ६ सं० १९३९ की कवि-वचन-सुधा खंड १४ सं० ९ में विजयिनी-विजय-पताका छपी थी। अंग्रेजी की यह रिपोर्ट हिंदी में अनूदित होकर वहाँ छपी है। सं०

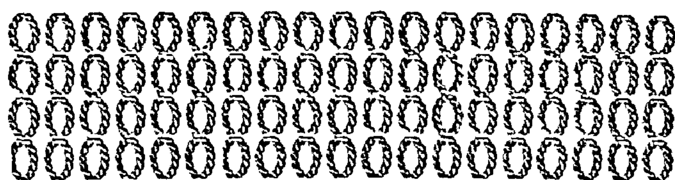
A vivid contrast is drawn between the past and present conditions of India and the victory of the British nation in Egypt is described.

The gentlemen present expressed their unqualified applause at the recital and the hall resounded with cheers. The Honorable Raja Siva Prasad C. S. I. then described the importance of Egypt as a highway to India and said that the British conquest has been extremely rapid. He thanked Babu Harischandra for his excellent poem.

Mr. Bullock, the Collector warmly thanked Raja Siva Prasad and Babu Harischandra for sentiments of loyalty to the British Government, expressed by the people of Benares.

H. H. the Maharaja of Benares was unavoidably detained at Ram Nagar on account of some religious ceremony but he has expressed his full sympathy with the object of the meeting.





विजयिनी-विजय-पताका या वैजयंती*

कहो कहा यह सुनि परयौ जाको सवहिं उछाह।
हरखित आरज मात्र भे जिय वढ़ाइ अति चाह ॥ १ ॥

---

* मिस्र देश अफ्रीका महाद्वीप में है। यह तुर्की सुलतानों के अधीन था, पर सन् १७९८ ई० में नेपोलियन बोनापार्ट ने इसपर अधिकार कर लिया। सन् १८०१ ई० में बृटेन ने इस पर अधिकार कर लिया और मुहम्मद अली सन् १८०५ ई० में मिस्र का खदीव (राजा, स्वामी) बनाया गया। सन् १८४९ ई० में इसका पौत्र अब्बास प्रथम और सन् १८५४ में मुहम्मद अली का तृतीय पुत्र सईद खदीव हुआ। इसी के समय स्वेज़ नहर बनाना निश्चित हुआ। सन् १८६३ ई० में इस्माइल खदीव हुआ और अपव्यय तथा ऋण से इसने सन् १८७५ ई० में मिस्र का दिवाला निकाल दिया। यह सन् १८७९ ई० में गद्दी से उतारा गया और इसका पुत्र गद्दी पर बैठाया गया। राज-कोष के निरीक्षण के लिए एक यूरोपियन कमीशन नियत हुआ। मिस्री लोग इससे क्रुद्ध थे और उनका यही क्रोध बाद में अरबी पाशा के विद्रोह के रूप में परिणत हो गया। अंग्रेजों ने इसकंद्रिया और सईद बंदर पर अधिकार कर लिया और तेलेल-कबीर युद्ध में विद्रोहियों को परास्त कर कैरो ले लिया। इसी युद्ध में भारतीय सेना भी योग देने को भेजी गई थी और उसने युद्ध में अपनी क्षमता अच्छी तरह दिखलाई थी। सन् १८८२ ई० में अंग्रेजों का मिस्र पर प्रभुत्व स्थापित हो गया। (सं०)

फरकि उठीं सब की भुजा खरकि उठीं तलवार।
क्यों आपुहि ऊँचे भए आर्य मोछ के बार॥ २॥
जे आरजगन आजु लौं रहे नवाए माथ।
तेहू सिर ऊँचो किए क्यों दिखात इक साथ॥ ३॥
क्यों पताक लहरन लगीं फहरन लगे निसान।
क्यों बाजन बजिबे लगे घहरि घहरि इक तान॥ ४॥
क्यों दुंदुभि हुंकार सों छायो पूरि अकास।
क्यों कंपित करि पवन-गति छुई नफीरी-आस॥ ५॥
बृटिश सुशासित भूमि मैं रन-रस उमगे गात।
सबै कहत जय आजु क्यों यह नहिं जानौ जात॥ ६॥
छुटत तोप गंभीर रव वज्रनाद सम जोर।
गिरि कंपत थर थर खरे सुनि धर धर धर सोर॥ ७॥
विंध्य हिमालय नील गिरि सिखरन चढ़े निसान।
फहरत "रूल ब्रिटानिया" कहि कहि मेघ समान॥ ८॥
अटक कटक लौं आजु क्यों सगरो आरज देस।
अति आनँद मैं भरि रह्यौ मनु दुख को नहिं लेस॥ ९॥
क्यों अ-जीव भारत भयो आजु सजीव उताल।
क्यौं मसान भुव आजु बनि रंगभूमि सरसात॥१०॥
सहसन बरसन सों सुन्यौ जो सपनेहु नहिं कान।
सो जय भारत शब्द क्यों पूर्यो आजु जहान॥११॥

शाखा

कहा तुम्हैं नहिं खबर खबर जय की इत आई।
जीति मिसर मैं शत्रु-सैन सब दई भगाई॥१२॥
तड़ित तार के द्वार मिल्यौ सुभ समाचार यह।
भारत-सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह॥१३॥

जेनरल मकफरसन आदिक जे सेनापति-गन।
तिन लै भारत सैन कियो भारी अति ही रन ॥१४॥
बोलि भारती-सैन दयौ आयसु उठि धाओ।
अभिमानी अरबी बेगहि बेगहि गहि लाओ ॥१५॥
सुनि कै सबही परम बीरता आजु दिखाई।
शत्रु-गनन सों सनमुख भारी करी लराई ॥१६॥
छिन मैं शत्रु भगाइ गह्यौ अरबी पासा कहँ।
तीन सहस रन-बीर करे बँधुआ संगर महँ ॥१७॥
आरजगन को नाम आजु सब ही रखि लीनो।
पुनि भारत को सीस जगत महँ उन्नत कीनो ॥१८॥

आरंभ

कित अरजुन, कित भीम कित करन नकुल सहदेव।
कित विराट, अभिमन्यु कित द्रुपद सल्य-नरदेव ॥१९॥
कित पुरु, रघु, अज, यदु कितै परशुराम अभिराम।
कित रावन, सुग्रीव कित हनूमान गुनधाम ॥२०॥
कित भीषम, कित द्रोन कित सात्यकि अति रनधीर।
कित पोरस, कित चन्द्र, कित पृथ्वीराज, हम्मीर ॥२१॥
कित सकारि विक्रम, कितै समरसिंह नरपाल।
कित अंतिम नर-बीर रन-जीतसिंह भूपाल ॥२२॥
कहहु लखहिं सब आइ निज संतति को उत्साह।
सजे साज रन को खरे मरन-हेत करि चाह ॥२३॥
स्वामिभक्तिकिरतज्ञता दरसावन-हित आज।
छाँड़ि प्रान देखहिं खरो आरज बंस समाज ॥२४॥
तुमरी कीरति कुल-कथा साँची करबे हेतु।
लखहु लखहु नृप-गन सबै फहरावत जय-केतु ॥२५॥

मेटहु जिय के सल्य सब सफल करहु निज नैन।
लरहु न अरबी सों लरन ठाढ़ी आरज-सैन ॥२६॥

शाखा

सुनत बीर इक वृद्ध नरन के सन्मुख आयो।
श्वेत सिंह जिमि गुहा छाँड़ि बाहर दरसायो ॥२७॥
सुभ्र मोछ फहरात सुजस की मनहुँ पताका।
सेत केस सिर लसत मनहुँ थिर भई बलाका ॥२८॥
अरुन बदन ढिग सेत केस सुंदर दरसायो।
बीर रसहिं मनु घेरि रह्यौ रस सांत सुहायो ॥२९॥
रवि-ससि मिलि इक ठौर उदित सी कांति पसारे।
पीन हृदय आजानु-बाहु स्वेताम्बर धारे ॥३०॥
कटि पैं भाथा कंध धनुष कर मैं करवाला।
परी पीठ पैं ढाल गुलाबी नैन बिसाला ॥३१॥
सिंह ध्वनि निरभय चितवनि चितवत समुहाई।
तन द्युति फैली छूटि परत धरनी पर आई ॥३२॥
नभ मधि ठाढ़े होइ कही यह घन सम बानी।
अति गँभीर कछु करुना कछुक बीर-रस-सानी ॥३३॥

कोरस

क्यों बहरावत झूठ मोहिं और बढ़ावत सोग।
अब भारत मैं नाहिं वे रहे बीर जे लोग ॥३४॥
जो भारत जग मैं रह्यौ सब सों उत्तम देस।
ताही भारत मैं रह्यौ अब नहिं सुख को लेस ॥३५॥
याही भुव मैं होत हैं हीरक, आम, कपास।
इतहीं हिमगिरि, गंग-जल, काव्य-गीत-परकास ॥३६॥
याही भारत देस मैं रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत-गान सों भारत-बदन प्रकास ॥३७॥

जासु काव्य सों जगत-मधि ऊँचो भारत-सीस ।
जासु राज-बल-धर्म की तृपा करहिं अवनीस ॥३८॥
सोई व्यास अरु राम के वंस सबै संतान ।
अब लौं ये भारत भरे नहिं गुन-रूप-समान ॥३९॥
कोटि कोटि ऋपि पुन्य-तन, कोटि कोटि नृप सूर ।
कोटि कोटि वुध, मधुर, कवि मिले यहाँ की धूर ॥४०॥

आरंभ

हाय वहै भारत भुव भारी ।
सब ही विधि तें भई दुखारी ॥
रोम, ग्रीस पुनि निज वल पायो ।
सब विधि भारत दुखित बनायो ॥४१॥
अति निरबली स्याम जापाना ।
हाय न भारत तिनहुँ समाना ॥
हाय रोम तू अति बड़-भागी ।
वरवर तोहिं नास्यो जय लागी ॥४२॥
तोड़े कीरति-खंभ अनेकन ।
ढाहे गढ़ वहु करि जय-टेकन ।
सबै चिन्ह तुव धूर मिलाए ।
मंदिर महलनि तोरि गिराए ॥४३॥
कछु न बची तुव भूमि निसानी ।
सो वरु मेरे मन अति मानी ।
पै भारत-भुव-जीतन-हारे ।
थाप्यौ पद या सीस उघारे ॥४४॥
तोस्यो दुर्गन, महल ढहायो ।
तिनही मैं निज गेह बनायो ॥

ते कलंक सब भारत केरे।
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे ॥४५॥
हाय पंचनद, हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी ॥४६॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
ताही दिन किन धरनि समायो ॥
रह्यो कलंक न भारत-नामा।
क्यों रे तू बाराणसि धामा ॥४७॥
इनके भय कंपत संसारा।
सब जग इनको तेज पसारा।
इनके तनिकहि भौंह हिलाए।
थर थर कंपत नृप भय पाए ॥४८॥
इनके जय की उज्जल गाथा।
गावत सब जग के रुचि साथा।
भारत-किरिन जगत उँजियारा।
भारत जीव जियत संसारा ॥४९॥
भारत-भुज-बल लहि जग रच्छित।
भारत-विद्या सों जग सिच्छित।
रहे जबै मनि कीट सुकुंडल।
रह्यौ दंड जय प्रबल अखण्डल ॥५०॥
रह्यौ रुधिर जब आरज सीसा।
ज्वलित अनल-समान अवनीसा।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
जबै रह्यौ महि मंडल माहीं ॥५१॥

तब इनहीं की जगत बड़ाई।
रही सबै जग कीरति छाई।
तितही अब ऐसो कोउ नाहीं।
लरै छिनहुँ जो संगर माहीं ॥५२॥
प्रगट वीरता देइ दिखाई।
छन महँ मिसरहिं लेइ छुड़ाई।
निज भुज-बल विक्रम जग माड़ै।
भारत-जस-धुज अविचल गाड़ै ॥५३॥
यवन-हृदय-पत्री पर बरबस।
लिखै लोह-लेखनि भारत-जस।
पुनि भारत-जस करि विस्तारा।
मम मुख फेर करै उँजियारा ॥५४॥

शाखा

हाय !

सोई भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी।
रह्यौ न एकहु वीर सहस्रन कोस मँझारी ॥५५॥
होत सिंह को नाद जौन भारत-बन माहीं।
तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं ॥५६॥
जहँ झूसी उज्जैन अवध कन्नौज रहे वर।
तहँ अब रोअत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर ॥५७॥
धन विद्या बल मान वीरता कीरति छाई।
रही जहाँ तित केवल अब दीनता लखाई ॥५८॥

कोरस

अरे वीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।
लेहु करन करवाल काढ़ि रन-रंग समोए ॥५९॥

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन-रंग जमाओ ॥६०॥

परिकर कटि कसि उठौ बँदूकन भरि भरि साधौ ।
सजौ जुद्ध-बानो सब ही रन-कंकन बाँधो ॥६१॥

का अरबी को बेग कहा वाको बल भारी ।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ॥६२॥

पद-तल इन कहँ दलहु कीट-तृन-सरिस नीच-चय ।
तनिकहु संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय ॥६३॥

जिन बिनहीं अपराध अनेकन कुल संहारे ।
दूत पादरी बनिक आदि बिन दोसहि मारे ॥६४॥

प्रथम जुद्ध परिहार कियो विश्वास दिवाई ।
पुनि धोखा दै एकाएकी करी लराई ॥६५॥

इनको तुरतहि हतौ मिलैं रन कै घर माहीं ।
इन छलियन सों पाप किएहू पुन्य सदाहीं ॥६६॥

उठहु वीर तरवार खींचि माड़हु घन संगर ।
लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवन-हृदय पर ॥६७॥

मारू बाजे बजैं कहो धौंसा घहराहीं ।
उड़हि पताका सत्रु-हृदय लखि लखि थहराहीं ॥६८॥

चारन बोलहिं विजय-सुजस बन्दी गुन गावैं ।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ॥६९॥

चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
हींसहिं हय झनकहिं रथ अज चिक्करहिं समर थर ॥७०॥

नासहु अरबी शत्रु-गनन कहँ करि छन महँ छय ।
कहहु सबहि विजयिनी-राज महँ भारत की जय ॥७१॥

आरंभ

सुनत उठे सब वीर-वर कर महँ धारि कृपान।
कियो सबन मिलि जुद्ध-हित धारि उमंग पयान ॥७२॥
पहिनि जिरह कटि कसि सबै तौलत चले कृपान।
लै बँदूक साधत चले लच्छ वीर बलवान ॥७३॥
निरभय पग आगहिं परत मुख तें भाखत मार।
चले वीर सब लरन हित मिसरिन सों इकबार ॥७४॥
चंद्र-सूर्य-बंसी जिते प्रमर, अनल, चौहान।
घोड़न चढ़ि आए सबै छत्री वीर सुजान ॥७५॥
सुमिरि सुमिरि छत्री सबै निज पुरुपन की बात।
धाए ऐंठत मोछ निज उमगि वीर रस गात ॥७६॥
उमगी भारत-सैन जब समुद-सरिस घनघोर।
तब मिसरी चीनी कहा का सैंधव को जोर ॥७७॥
बजी बृटिश रन-दुंदुभी गरजे गहकि निसान।
कंपे थर थर भूमि गिरि नदी नगर असमान ॥७८॥

शाखा

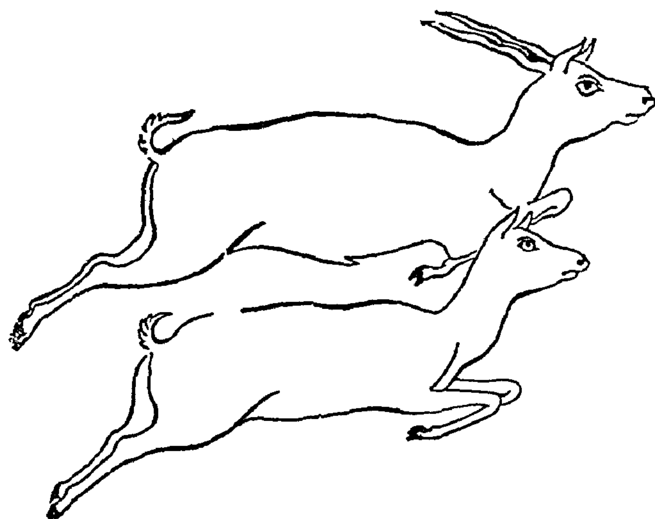
दमामा सनाई बजाओ बजाओ।
अरे राग मारू सुनाओ सुनाओ।
सबै फौज आगे बढ़ाओ बढ़ाओ।
अरे जै-पताका उड़ाओ उड़ाओ ॥
कहाँ वीर हौ बेग धाओ सु-धाओ।
अरे वीरता को दिखाओ दिखाओ।
अरे म्यान सों शस्त्र खोलो सु-खोलो।
अरे मार मारौ धरौ मार बोलो ॥
अरे शत्रु को सीस काटो सु-काटो।
अरे कायरै दौरि डाँटो सु-डाँटो ॥

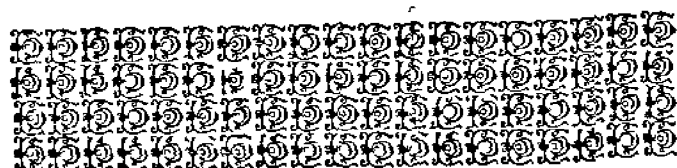
निसाना सबै लै लगाओ लगाओ।
अरे लै बँदूकैं चलाओ चलाओ॥
सबै युद्ध भारी मचाओ मचाओ।
अरे शत्रु-सेनै भगाओ भगाओ॥७९॥

कोरस

भगी शत्रु की सैन रह्यौ कहुँ नाहिं ठिकाना।
कै जमपुर कै गिरि बन कवुरन कियो पयाना॥८०॥
सुख सों बस्यौ खदीव प्रजागन अति सुख पायो।
त्रिटिश क्रोध को फल सब कहँ परतच्छ लखायो॥८१॥
मथ्यौ समुद्रहि जिन ब्रिटानिया निज कटाक्ष-बल।
जग महँ जिनको निरभय विचरत कठिन प्रबल दल॥८२॥
जिन भारत महँ आइ तोप-बल दह्यौ वज्र कहँ।
अग्नि-बान जय-पत्र लिख्यौ जिन भारत-अँग महँ॥८३॥
कठिन छत्रियन जीति लए जिन बहु गढ़ सहजहि।
सिक्खन दीनी हार लियो मुलतान तनिक चहि॥८४॥
तर्जनि अग्र हिलाइ लखनऊ छिन महँ लीनो।
तनिक दृष्टि की कोर सकल राजन बस कीनो॥८५॥
कठिन सिपाही-द्रोह-अनल जा जल-बल नासी।
जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहुँ भारतवासी॥८६॥
जासु सैन-बल देखि रूस सहजहि जिय हार्‌यौ।
बरलिन संधिहि मानि कोऊ विधि समयहि टार्‌यौ॥८७॥
सहजहि निज बस कीनी जिन सिप्रस को टापू।
छाइ दियो सब नृपनन पै निज प्रबल प्रतापू॥८८॥
काबुल अरु कंधार कठिन महँ हलचल पार्‌यौ।
शेरअली-याकूब-अयूबहि सहज उखार्‌यौ॥८९॥

खैबर दर अरगला कठिन गिरि-सरित करारे।
सत्रु-हृदय सह तोड़ि तोड़ि रिजु कीन्हे सारे ॥९०॥
रूम-रूस-उर सूल दियो ईरान दबायो।
ब्रृटिश सिंह को अटल तेज करि प्रगट दिखायो ॥९१॥
सिंह चिन्ह की धुजा चढ़ी वाला हिसार पर।
जय देवी विजयिनी सोर भो कावुल घर घर ॥९२॥
ताके आगे कहा मिसिर का अरबौ को वल।
इन सों सपनहु वैर किए पावे परतछ फल ॥९३॥
वज्यौ ब्रृटिश डंका गहकि धुनि छाई चहुँ ओर।
जयति राजराजेश्वरी कियो सबनि मिलि सोर ॥९४॥





नए जमाने की मुकरी*

(सं० १९४१)

जब सभाविलास संगृहीत हुई थी, तब वैसा ही काल था कि (क्यों सखि सज्जन ना सखि पंखा) इस चाल की मुकरी लोग पढ़ते पढ़ाते थे किन्तु अब काल बदल गया तो उसके साथ मुकरियाँ भी बदल गईं। बानगी दस पाँच देखिये—

सब गुरुजन को बुरो बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै॥
भीतर तत्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेजी॥ १॥

तीन बुलाए तेरह आवैं।
निज निज बिपता रोइ सुनावैं॥
आँखौ फूटे भरा न पेट।
क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रैजुएट॥ २॥

सुंदर बानी कहि समुझावै।
बिधवागन सों नेह बढ़ावै॥
दयानिधान परम गुन-आगर।
सखि सज्जन नहिं विद्यासागर॥ ३॥

---

* नवोदिता हरिश्चंद्र चंद्रिका सं० ११ सं० १ में प्रकाशित।

सीटी देकर पास बुलावै।
रुपया ले तो निकट विठावै॥
ले भागै मोहिं खेलहि खेल।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि रेल॥ ४॥

धन लेकर कछु काम न आवै।
ऊँची नीची राह दिखावै॥
समय पड़े पर साधै गुंगी।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि चुंगी॥ ५॥

मतलब ही की बोलै बात।
राखै सदा काम की घात॥
डोलै पहिने सुंदर समला।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि अमला॥ ६॥

रूप दिखावत सरवस लूटै।
फंदे में जो पड़ै न छूटै॥
कपट कटारी जिय मैं हूलिस।
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पूलिस॥ ७॥

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज॥ ८॥

सतएँ अठएँ मों घर आवै।
तरह तरह की बात सुनावै॥
घर बैठा ही जोड़ै तार।
क्यों सखि सज्जन नहिं अखबार॥ ९॥

एक गरभ मैं सौ सौ पूत।
जनमावै ऐसा मजबूत॥

करै खटाखट काम सयाना।
सखि सज्जन नहिं छापाखाना ॥१०॥
नई नई नित तान सुनावै।
अपने जाल में जगत फँसावै॥
नित नित हमैं करै बल-सून।
क्यों सखि सज्जन नहिं कानून ॥११॥
इनकी उनकी खिदमत करो।
रुपया देते देते मरो॥
तब आवै मोहिं करन खराब।
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब ॥१२॥
लंगर छोड़ि खड़ा हो झूमै।
उलटी गति प्रतिकूलहि चूमै॥
देस देस डोलै सजि साज।
क्यों सखि सज्जन नहीं जहाज ॥१३॥
मुँह जब लागै तब नहिं छूटै।
जाति मान धन सब कुछ लूटै॥
पागल करि मोहिं करै खराब।
क्यों सखि सज्जन नहीं सराब ॥१४॥



जातीय संगीत

(सं० १९४१)

प्रभु रच्छहु दयाल महरानी।
बहु दिन जिए प्रजा-सुखदानी॥
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी।
सब दिसि में तिनकी जय होई।
रहै प्रसन्न सकल भय खोई।
राज करै बहु दिन लौं सोई।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी॥१॥

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुवन राई।
तिनके अरिन देहु अकुलाई।
रन महँ तिनहिं गिरावहु मारी।
सब दुख दारिद दूर बहाओ।
विद्या और कला फैलाओ।
हमरे घर महँ शांति बसाओ।
देहु असीस हमैं सुखकारी॥२॥

प्रभु निज अनगन सुभग असीसा।
बरसहु सदा विजयिनी-सीसा।
देहु निरुजता जस अधिकारा।
कृषक, राजसुत, कै अधिकारी।
करहिं राज को संभ्रम भारी।

निकट दूर के सब नर नारी।
करहिं नाम आदर विस्तारी ॥३॥

रच्छहु निज भुज तर सह साजा।
सब समर्थ राजन के राजा।
अलख राज कर सब बल-खानी।
बिनय सुनहु विनवत सब कोई।
पूरब सों पच्छिम लौं जोई।
राजभक्त-गन इक मन होई।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी ॥४॥

(युद्ध के समय योधागण के गाने को)

उठहु उठहु प्रभु त्रिभुअन-राई।
तिनके शत्रु देहु छितराई।
रन महँ तिनहिं गिरावहु मारी।
स्वामिनि स्वत्व हेतु जे बीरा।
लड़हिं हरहु तिनकी सब पीरा।
यह बिनवत हम तुव पद तीरा।
हे प्रभु जग-स्वामी सुखकारी ॥५॥

(अकाल और उपद्रव के समय गाने को)

उठहु उठहु प्रभु ! त्रिभुवन-राई।
कठिन काल में होहु सहाई।
देहु हमहिं अवलंबन भारी।
अभय हाथ मम सीस फिराओ।
मुरझी भुव पर सुख बरसाओ।
पिता बिपति सों हमहिं बचाओ।
आइ सरन तुव रहे पुकारी ॥६॥



रिपनाष्टक

(१९४१)

जय जय रिपन* उदार जयति भारत-हितकारी ।
जयति सत्य-पथ-पथिक जयति जन-शोक-विदारी ॥
जय मुद्रा-स्वाधीन-करन सालम दुख-नाशन ।
भृत्य-वृत्ति-प्रद जय पीड़ित-जन दया-प्रकाशन ॥
जय प्रजा-राज्यस्थापन-करन हरन दीन भारत-विपद ।
जय भारतवासिहि देन नव-महा-न्यायपति प्रथम पद ॥१॥

---

* जार्ज फ्रेडरिक सेमुएल रॉबिन्सन, मारकिस ऑव रिपन का जन्म सन् १८२७ ई० में लंदन में हुआ था। यह सन् १८६१ ई० से १८६५ ई० तक भारत-सचिव रहे और फिर कई पदों पर रहकर सन् १८८० ई० में भारत के बड़े लाट हुए। इनके समय में सन् १८८१ ई० में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट तोड़ दिया गया। सन् १८८१ ई० में मैसूर राज्य उसके प्राचीन राजवंश को सौंप दिया गया। इल्बर्ट बिल भी इन्हीं के समय में प्रस्तावित हुआ था। अफ़ग़ान युद्ध का अंत इन्हीं के समय में हुआ और अब्दुर्रहमान काबुल के अमीर हुए। लार्ड रिपन उन शिक्षित भारतीयों को, जो राजकर्मचारी नहीं थे, राज्य-प्रबंध के संपर्क में लाने का सदा प्रयत्न करते रहे और इन्होंने स्थानिक-स्वराज्य के लिए कई नये नियम चलाए थे। इन्हीं कारणों से यह भारत में विशेष सम्मानित हुए थे। यह सन् १८८४ ई० में विलायत लौट गए।

जय जय हिंदू-उन्नति-पथ-अवरोध-मुक्त-कर।
जय कर-बंधन-मंथर-कर जय जयति गुणाकर॥
जय जन-सिच्छन-हेत समिति-सिच्छा-संस्थापक।
जय जय सेतासेत बरन सम संमत मापक॥
जय राज्य धुरंधर धीर जय भारत-शिल्पोन्नति-करन।
जय परम प्रजावत्सल सदा सत्य-प्रिय जय श्री रिपन॥२॥

राजतंत्र के पंडित तुम जानत प्रयोग षट।
स्तंभन कीनो राज-वाक्य करि अटल नीति अट॥
जन-दुख-मारन उच्चाटन द्वैविद्ध भाव जग।
विद्वेषण स्वारथी मिलित दल मद्ध न्याय मग॥
आकर्षण मन सब जनन को निज उदार गुण प्रगट-कर।
जय मोहन मंत्र समान निज वाक्य विमोहित देशवर॥३॥

जय भारत-नव-उदित-रिपन-चंद्रमा मनोहर।
शुक्ल-कृष्ण-सम तेज तदपि जस अपजस विधि कर॥
जस-चंद्रिका विकासि प्रकास्यौ उन्नति मारग।
वाक्य अमृत बरसाइ किए आल्हादित नर जग॥
ससअंक बंगबिल सो लसत जन-मन-कुमुद प्रफुल्लतर।
सत्ताइस रैन प्रकास सम सत्ताइस शुभ कर्म कर॥४॥

जय तीरथपति रिपन प्रजा अघ-शोक-विनाशक।
गंग-जमुन-सम मिलित तदपि जान्हवि मरजादक॥
अक्षय वट सम अचल कीर्ति थापक मन पावन।
गुप्त सरस्वति प्रगट कर्मोद्यम मिस दरसावन॥
कलि-कलुष प्रजागत-भीति कों सब विधि मेटन नाम रट।
जय तारन-तरन प्रयाग-सम जस चहुँ दिसि सब पै प्रगट॥५॥

जदपि वाहु-बल क्लाइव जीत्यौ सगरो भारत।
जदपि और लाटनहू को जन नाम उचारत॥
जदपि हेसटिंग्ज़ आदि साथ धन लै गए भारी।
जदपि लिटन दरबार कियो सजि वड़ी तयारी॥
पै हम हिंदुन के हीय की भक्ति न काहू सँग गई।
सो केवल तुमरे सँग रिपन छाया सी साथिन भई॥ ६॥

शिवि दधीच हरिचंद कर्ण बलि नृपति युधिष्टिर।
जिमि हम इनके नाम प्रात उठि सुमिरत हैं चिर॥
तिमि तुमहू कहँ नितहिं सुमिरिहैं तुव गुन गाई।
यासों वढ़ि अनुराग कहो का सकत दिखाई॥
हम राजभक्ति को वीज जो अव लौं उर अंतर धर्यौ।
निज न्याय-नीर सों सींचि कै तुम वामैं अंकुर कर्यौ॥ ७॥

निज सुनाम के वरन किए तुम सकल सवहि विधि।
रिपु सव किए उदास दई हिय राजभक्ति सिधि॥
महरानी को पन राख्यौ निज नवल रीति वल।
परि मध न्याय-तुला के नप राख्यौ सम दुहुँ दल॥
सव प्रजापुंज-सिर आपकौ रिन रहिहै यह सर्व छन।
तुम नाम देव सम नित जपत रहिहैं हम हे श्री रिपन॥ ८॥



स्फुट कविताएँ

दोहे और सोरठे आदि

है इत लाल कपोल व्रत कठिन प्रेम की चाल।
मुख सो आह न भाखिहैं निज सुख करो हलाल॥ १॥
प्रेम बनिज कीन्हो हुतो नेह नफा जिय जान।
अब प्यारे जिय की परी प्रान-पुँजी मे हान॥ २॥
तेरोई दरसन चहैं निस-दिन लोभी नैन।
श्रवन सुनो चाहत सदा सुन्दर रस-मै बैन॥ ३॥
हर न मरन विधि विनय यह भूत मिलैं निज वास।
प्रिय हित बापी मुकुर मग बीजन अँगन अकास॥ ४॥
तन-तरु चढ़ि रस चूसि सब फूली-फली न रीति।
प्रिय अकास-बेली भई तुव निर्मूलक प्रीति॥ ५॥
पिय पिय रटि पियरी भई पिय री मिले न आन।
लाल मिलन की लालसा लखि तन तजत न प्रान॥ ६॥
मधुकर धुन गृह दंपती पन कोने मुकताय।
रमा बिना यक बिन कहे गुन बेगुनो सहाय॥ ७॥
चार चार पट पट दोऊ अस्टादस को सार।
एक सदा द्वै रूप धर जै जै नंदकुमार॥ ८॥

नीलम औ पुखराज दोउ जद्यपि सुख 'हरिचंद'।
पै जो पन्ना होइ तो बाढ़ै अधिक अनंद ॥ ९ ॥
नीलम नीके रंग को हौं लाई हौं बाल।
कहुँ न देय तो होयगो अति अद्भुत अहवाल ॥१०॥
जद्यपि है बहु दाम को यह हीरा री माय।
बनै तबै जब नीलमनि निकट जड़्यो यह जाय ॥११॥
नैन नवल 'हरिचंद' गुन लाल असित सित तीन।
त्रिविध सक्ति त्रैदेव के तिरबेनी के मीन ॥१२॥
कहन दीन के बैन देहु बिधाता एक बर।
नहिं लागैं ये नैन कोऊ सों जग नरन में ॥१३॥
प्रेम-प्रीति को बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुध लीजो मुरझि न जाय ॥१४॥

सवैया

अब और के प्रेम के फंद परे हमें पूछत कौन, कहाँ तू रहै।
अहै मेरेइ भाग की बात अहो तुम सों न कछू 'हरिचंद' कहै ॥
यह कौन सी रीत अहै हरिजू तेहि मारत हौ तुमको जो चहै।
वह भूलि गयो जो कही तुमने हम तेरे अहैं तू हमारी अहै ॥ १ ॥

हम चाहत हैं तुमको जिउ से तुम नेकहू नाहिंनै बोलती हौ।
यह मानहु जो 'हरिचंद' कहै केहि हेत महाबिष घोलती हौ ॥
तुम औरन सों नित चाह करौ हमसों हिअ गाँठ न खोलती हौ।
इन नैन के डोर बँधी पुतरी तुम नाचत औ जग डोलती हौ ॥ २ ॥

जा मुख देखन को नितही रुख दूतिन दासिन को अवरेख्यो।
मानी मनौती हू देवन की 'हरिचंद' अनेकन जोतिस लेख्यो ॥
सो निधि रूप अचानक ही मग में जमुना जल जात मैं देख्यो।
सोक को थोक मिट्यो सब आजु असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो ॥३॥

रैन में ज्यौंहीं लगी झपकी त्रिजटे सपने सुख कौतुक-देख्यो ।
लै कपि भालु अनेकन साथ मैं तोरि गढ़ै चहुँ ओर परेख्यो ॥
रावन मारि बुलावन मो कहँ सानुज मैं अग्रही अवरेख्यो ।
सोक नसावत आवत आजु असोक की छाँह सखी पिय पेख्यो ॥ ४ ॥

सदा चार चवाइन के डर सों नहिं नैनहु साम्हे नचायो करैं ।
निरलज्ज भई हम तो पै डरैं तुमरो न चवाव चलायो करैं ॥
'हरिचंद जू' वा बदनामिन के डर तेरी गलीन न आयो करैं ।
अपनी कुल-कानिहुँ सों बढ़ि कै तुम्हरी कुल-कानि बचायो करैं ॥ ५ ॥

तजि कै सब काम को तेरे गलीन में रोजहि रोज तो फेरो करै ।
तुव बाट बिलोकत ही 'हरिचंद' जू बैठि के साँझ सवेरो करै ॥
पै सही नहिं जात भई बहुतै सो कहाँ लौं जिय छोरो करै ।
पिय प्यारे तिहारे लिये कब लौं अब दूतिन को मुख हेरो करै ॥ ६ ॥

आइये मो घर प्रान पिया मुखचन्द दया करि कै दरसाइये ।
प्याइये पानिप रूप सुधा को बिलोकि इतै दृग प्यास बुझाइये ॥
छाइये सीतलता हरीचंद जू हा हा लगी हियरे की बुझाइये ।
लाइए मोहिं गरे हँसि कै उर ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये ॥ ७ ॥

कोऊ कलंकिनि भाखत है कहि कामिनिहू कोऊ नाम धरैगो ।
त्रासत हैं घर के सिगरे अब बाहरीहू तो चवाव करैगो ॥
दूतिन की इनकी उनकी 'हरिचंद' सबै सहते ही सरैगो ।
तेरेई हेत सुन्यो न कहा कहा औरहू का सुनिबो न परैगो ॥ ८ ॥

मन लागत जाको जबै जिहिसों करि दाया तो सोऊ निभावत है ।
यह रीति अनोखी तिहारी नई अपुनो जहाँ दूनो दुखावत है ॥
'हरिचंद जू' यानो न राखत आपुनो दासहू ह्वै दुख पावत है ।
तुम्हरे जन होइ कै भोगैं दुखै तुम्हें लाजहू हाय न आवत है ॥ ९

देखत पीठि तिहारी रहैंगे न प्रान कवौं तन बीच नवारे।
आओ गरे लपटौ मिलि लेहु पिया 'हरिचंद' जू नाथ हमारे॥
कौन कहै कहा होयगो पाछे बनै न बनै कछु मेरे सम्हारे।
जाइयो पाछे विदेस भले करि लेन दे भेंट सखीन सों प्यारे॥१०॥

पीवै सदा अधरामृत स्याम को भागन याको सुजात कहा है।
बाजै जवै वन में सजनी 'हरिचंद' तवै सुधि मूल वहाँ है॥
छूटै सवै धन-धाम अली हिय व्याकुलता सुनि होत महा है।
वेनु के वंस भई वँसुरी जो अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है॥११॥

लै वदनामी कलंकिनि होइ चवाइन को कव लौं मुख चाहिए।
सासु जेठानिन की इनकी उनकी कव लौं सहिकै जिय दाहिए॥
ताहू पै एती रुखाई पिया 'हरिचंद' की हाय न क्यौंहूँ सराहिए।
का करिए मरिए केहि भाँतिन नेह को नातो कहाँ लौं निवाहिए॥१२॥

लखिकै अपने घर को निज सेवक भी सवै हाथ सदा धरिहैं।
हल सों सव दूपन खैंचि झटै सव वैरिन मूसल सों मरिहैं॥
अनुजै प्रिय जो सो सदा उनको प्रिय कारज ताको न क्यौं सरिहै।
जिनके रछपाल गोपाल धनी तिनको वलभद्र सुखी करिहै॥१३॥

अव प्रीत करी तौ निवाह करौ अपने जन सों मुख मोरिए ना।
तुम तो सव जानत नेह मजा अव प्रीत कहूँ फिर जोरिए ना॥
'हरिचंद' कहै कर जोर यही यह आस लगी तेहि तोरिए ना।
इन नैनन माहँ वसौ नित ही तेहि आँसुन सों अव वोरिए ना॥१४॥

कवित्त

आजु वृपभानुराय पौरी होरी होय रही
दौरी किसोरी सवै जोवन चढ़ाई मैं।

खेलत गोपाल 'हरिचंद' राधिका के साथ
चुक्का एक सोहत कपोल की लुनाई में ॥
कैधौं भयो उदित मयंक नभ बीच कैधौं
हीरा जर्‌यो बीच नीलमनि की जराई में ।
कैधौं पर्‌यो कालिंदी के नीर छीर कैधौं
गरक सु-गोरी भई स्याम-सुंदराई में ॥ १ ॥

गोपिन की बात कौं बखानौं कहा नंदलाल
तेरो रूप रोम रोम जिनके समाय गो ।
बिरह-बिथा से सब ब्याकुल रहत सदा
'हरीचंद' हाल वाको कौन पै कहाय गो ॥
आँसुन को प्रलय-पयोधि बूड़ि जैहै जबै
डूबि डूबि सब ब्रह्मंडहू बिलाय गो ।
पौंड़त फिरोगे आप नीर बीच होय जब
बिरह–उसासन तैं बट जरि जाय गो ॥ २ ॥

तेरेई बिरह कान्ह रावरे कला-निधान
मार बान मारे सदा गोपिन के घट पै ।
ब्याकुल रहत ताते रैन दिन आप बिन
धूर छाय रही देखौ नागिन सी लट पै ॥
'हरीचंद' देखे बिनु आज सब ब्रज-बाल
बैठि कै बिसूरतीं कलिंदी जू के तट पै ।
होयगी प्रलय आज गोपिन के आँसुन तें
ताते ब्रज जाय बैठो झट बंसी बट पै ॥ ३ ॥

गोपिन बियोग अब सहो नहीं जात मोपै
कब लौं निठुर होय मैन-बान मारौगे ।

'हरीचंद' आप सों पुकारे कहौं वार वार
वेगही कृपाल अवै गोकुल सिधारोगे ॥
कहत निहोरि कर जोरि हम पूछैं जौन
राधा-रौन ताको कौन उत्तर विचारोगे ।
आँसुन को नीर जवै वाढ़ैगो समुद्र तवै
कच्छ रूप धारौगे कै मच्छ रूप धारौगे ॥ ४ ॥

राधा-श्याम सेवैं सदा वृंदावन वास करैं
रहैं निहचिंत पद आस गुरुवर के ।
चाहे धन धाम न अराम सो है काम
'हरिचंद जू' भरोसे रहैं नंदराय-घर के ॥
एरे नीच धनी हमें तेज तू दिखावै कहा
गज परवाही नाहिं होहिं कवौं खर के ।
होइ ले रसाल तू भलेई जग-जीव काज
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतर के ॥ ५ ॥

जदपि उँचाई धीरताई गरुआई आदि
एरे गजराज तेरी सवहि वड़ाई है ।
दान धारा दै दै सदा तोपत सबन नित
हिंसा सों विरत तऊ वल अधिकाई है ॥
तासौं 'हरिचंद' मरजाद पै रहन नीको
काक चुगलन की जासों वनि आई है ।
विरद वढ़ावें ये न दूर कर इन्हैं तेरे
कान की चपलताई भौंर दुखदाई है ॥ ६ ॥

वात गुरुजन की न आछी लरकाई लागै
भावै खेल कूद में चपलता असीम की ।

छोड़त कसालो होय जदपि नरन तऊ
बान नाहिं नीकी मद भाँग कै अफीम की ॥
अवगुन करी लड्डू पेड़ा सौं गुनद
'हरिचंद' हित होय जग औषधि हकीम की।
जौन गुनदाई सोई बात है सुहाई तासों
नीकी मधुराई हू सौं तिक्तताई नीम की ॥ ७ ॥

जोही एक बार सुनै मोहै सो जनम भरि
ऐसो ना असर देख्यो जादू के तमासा मैं।
अरिहु नवावैं सीस छोटे बड़े रीझैं सब
रहत मगन नित पूर होइ आसा मे ॥
देखी ना कबहुँ मिसरी मैं मधुहू मैं ना
रसाल, ईख, दाख मैं न तनिक बतासा मैं।
अमृत मैं पाई ना अधर मैं सुरंगना के
जेती मधुराई भूप सज्जन की भासा मैं ॥ ८ ॥

केलि-भौन बैठी प्यारी सरस सिंगार करै
सौतिन के सब अभिमानै दरत सो।
कंठ-हार चूरी कर बाजूबंद चंद आदि
पहिन्यौ अभूषन वियोगहि हरत सो ॥
पगपान चाँदी को चरन पहिरन लागी
सोभा देखि रंभा-रति गर्बहू गरत सो।
छोड़ि अभिमान दास होत काज चंद आज
नवल वधू के मानो पायन परत सो ॥ ९ ॥

वृंदावन सोभा कछु बरनि न जाय मोपैं
नीर जमुना को जहँ सोहै लहरत सो।

फूले फूल चारों ओर लपटै सुगंध तैसो
मंद गंधवाह जिय तापहि हरत सो ॥
चाँदनी मैं कमल-कली के तरें वार वार
'हरिचंद' प्रतिबिंब नीर माहिं बगरत सो ।
मान के मनाइवे को दौरि दौरि प्यारो आज
नवल वधू के मानो पायन परत सो ॥१०॥

आजु कुंज-मंदिर विराजे पिय प्यारी दोऊ
दीने गल-बाहीं बाढ़े मैन के उमाह में ।
हँसि हँसि बातें करें परम प्रमोद भरे
रीझे रूप-जाल भींजे गुनन अथाह में ॥
कान में कहन मिस बात चतुराई करि
मुख ढिग लाई प्रान प्यारे भरि चाह में ।
चूमि के कपोलन हँसावत हँसत छवि
छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ॥११॥

रंग-भौन पीतम उमंग भरि बैठ्यो आज
साजे रति-साज पूर्‌यो मदन-उमाह में ।
'हरीचंद' रीझत रिझावत हँसावत हँसत
रस बाढ़्यौ अति प्रेम के प्रवाह में ॥
बीरी देन मिस छुए आँगुरी अधर पुनि
चूमै चुपचाप ताहि पान खान चाह में ।
लाजहि छुड़ावत छकावत छकत छवि
छावत छबीलो छैल छल के उछाह में ॥१२॥

आजु लौं न आए जो तो कहा भयो प्यारे याकों
सोच चित नाहिं धारि मति सकुचाइये ।

औधि सों उदास ह्वै कै गमन तयार यह
तातें अब लाज छोड़ि कृपा करि धाइये ॥
'हरीचंद' ये तो दास आपुही के प्रान कछू
और न कियो तो अब एतो ही निभाइये ।
चाहत चलन अकुलाइकै त्रिसासी इन्हैं
आह प्रान - प्यारे जू बिदा तो करि जाइये ॥१३॥

जोग जग्य जप तप तीरथ तपस्या व्रत
ध्यान दान साधन समूह कौन काम को ।
वेद औ पुरान पढ़ि ज्ञान को निधान भयो
कूर मगरूर पाइ पंडिताई नाम को ॥
'हरीचंद' बात बिना बात को बनाइ हार्यौ
चेरो रह्यौ जाम दाम काम धन धाम को ।
जानै सब तऊ अनजानै है महान जानै
राम को न जानै ताहि जानिये हराम को ॥१४॥

साँझ समै साजे साज ग्वाल-बाल साथ लिए
मोहन मनहिं हरि आवत हरू हरू ।
सीस मोर-मुकुट लकुट कर लीने ओढ़े
पीत उपरैना जामैं टँक्यो चारु गोखरू ॥
'हरीचंद' बेनु को बजावत हैं गावत
सु आवत हैं लिए साथ साथ गाय बाछरू ।
नाचत गुवाल मध्य लाजत मनोज लखि
आवैं सखि बाजत गुपाल पाय घूँघरू ॥१५॥

दासी दरबानन की झिरकी करोर सहीं
दूतिन नचाये नचीं नौ-नौ पानि मेजे पर ।

दिवस बिताये दौरि इत उत दुरि दुरि
रोइहू सकी न खुलि हाय दुख सेजे पर ॥
'हरीचंद' प्रानन पै आय बनी सबै भाँति
अंग अंग भीनी पोर परी विष रेजे पर ।
हाय प्रान-प्यारे नेक बिछुरे तिहारे दुख
कोटिन्न अँगेजे याही कोमल करेजे पर ॥१६॥

मेष मायावाद सिंह वादी अतुल धर्म
वृख जयति गुण-रासि वल्लभ-सुअन ।
कलि कुवृश्चिक दुष्ट जीव जीवन-मूरि
करम छल मकर निज वाद धनु-सर-समन ॥
गोप-कन्या भाव प्रगटि सेवा विसद
कृष्ण राधा मिथुन भक्ति-पथ दृढ़-करन ।
हरन जन-हिय-करक मीन-धुज-भय मेटि
दास 'हरिचंद' हिय कुम्भ हरि-रस भरन ॥१७॥

कुंभ-कुच परस दृग-मीन को दरस तजि
तुच्छ सुख मिथुन को हिय विचारै ।
छल मकर छाँड़ि सब तानि वैराग-धनु
सिंह ह्वै जगत के जाल जारै ॥
कृष्ण वृखभानु-कन्या सहित भजन करि
कलि कुवृश्चिक समुझि दूर टारै ।
छाँड़ि अनआस विस्वास हिय अतुल धरि
करम की रेख पर मेख मारै ॥१८॥

फूलैंगे पलास वन आगि सी लगाइ कूर
कोकिल कुहूकि कल सबद सुनावैगो ।

त्यौंही 'हरीचंद' सबै गावैगो धमार धीर
हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो ॥
सावधान होहु रे बियोगिनी सम्हारि तन
अतन तनक ही मे तापन तें तावैगो ।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम
कहर मचावत बसंत अब आवैगो ॥१९॥

खेलौ मिलि होरी ढोरौ केसर-कमोरी फेंको
भरि भरि झोरी लाज जिअ मैं बिचारौ ना ।
डारौ सबै रंग संग चंगहू बजाओ गाओ
सबन रिझाओ सरसाओ संक धारौ ना ॥
कहत निहोरि कर जोरि 'हरिचंद' प्यारे
मेरी बिनती है एक हाहा ताहि टारौ ना ।
नैन हैं चकोर मुख-चन्द तें परैगी ओट
यातें इन आँखिन गुलाल लाल डारौ ना ॥२०॥

लोक वेद लाज करि कीजे ना रुखाई एती
द्रविये पियारे नेकु दया उपजाइ कै ।
बिरह बिपति दुख सहि नहिं जाय
कहि जाय ना कछुक रहौं मन बिलखाइ कै ॥
'हरीचंद' अब तो सहारो नहिं जाय हाय
भुजन बढ़ाय बेग मेरी ओर आइ कै ।
बिरद निभाय लीजै मरत जिवाइ लीजै
हा हा प्रान-प्यारे धाइ लीजै गर लाइ कै ॥२१॥

पद और गीत

प्रगटे द्विजकुल-सुखकर-चंद ।
भक्ति-सुधा-रस निस-दिन बरपत सब बिधि परम अमंद ॥

मायावाद परम अँधियारी दूरि कियो दुख-द्वंद ।
भक्त-हृदय-कुमुदिनि प्रफुलित भई भयो परम आनंद ॥
काशी नभ महँ किरिन प्रकाशी बुध सब नखत सुछंद ।
'हरीचंद' मन-सिंधु बढ़्यो लखि रसमय मुख सुखकंद ॥ १ ॥

हरि-सिर बाँकी बाँक विराजै ।
बाँको लाल जमुन - तट ठाढ़ो बाँकी मुरली बाजै ॥
बाँकी चपला चमकि रही नव बाँको बादल गाजै ।
'हरीचंद' राधा जू की छवि लखि रति मति गति भाजै ॥ २ ॥

सखी री ठाढ़े नन्द-किसोर ।
वृंदावन में मेहा बरसत निसि बीती भयो भोर ॥
नील वसन हरि-तन राजत हैं पीत स्वामिनी मोर ।
'हरीचंद' बलि बलि ब्रज-नारी सब ब्रजजन-मनचोर ॥ ३ ॥

हरि को धूप - दीप लै कीजै ।
षटरस बींजन विविध भाँति के निद नित भोग धरीजै ॥
दही मलाई घी अरु माखन तातो पै लै दीजै ।
'हरीचंद' राधा-माधव-छवि देखि बलैया लीजै ॥ ४ ॥

सुदामा तेरी फीकी छाक ।
मेरी छाक रोहिनी पठई मीठी और सु-पाक ॥
बलदाऊ को कोरी रोटी मोको घी की दोनी ।
सो सुनि सुबल तोक उठि बैठे मेरी बहुत सलोनी ॥
जैसी तेरी मैया मोटी तैसी मोटी रोटी ।
मेरी छाक भली रे भैया जामें रोटी छोटी ॥
बोलत राम पतौका लै लै बैठो भोजन कीजै ।
बच्यौ बचायो अपनो जूठन 'हरीचंद' को दीजै ॥ ५ ॥

भोजन कीनो भानु-कुमारी ।
ठाढ़े लिए नंद के नंदन भरि कै कंचन झारी ।
ललिता लिए सुभग बीरा कर लौंग कपूर सोपारी ।
जुग जुग राज करो या ब्रज मे 'हरीचंद' बलिहारी ॥ ६ ॥

बैठे पिय-प्यारी इक संग ।
परदा परे बनाती चहुँ दिसि बाजत ताल मृदंग ॥
धरी अँगीठी स्वच्छ धूम-बिन गावत अपने रंग ।
'हरीचंद' बलि बलि सो छबि लखि राधा लिए उछंग ॥७॥

अब तो आय परयौ चरनन में ।
जैसो हौं तैसो तुमरोई राखोइगे सरनन में ॥
गनिका गीध अभीर अजामिल खस जवनादिक तारे ।
औरहु जो पापी बहुतेरे भये पाप तें न्यारे ॥
सुत-बध हेत पूतना आई सब बिधि अघ तें पीनी ।
जो गति जननीहूँ को दुर्लभ सो गति ताको दीनी ॥
औरो पतित अनेक उधारे तिनमें मोहुँ को जान ।
तुमही एक आसरो मेरे यह निह्चै करि मान ॥
बुरो भलो तुमरोइ कहावत याकी राखौ लाज ।
'हरीचंद' ब्रजचंद पियारे मत छाँड़हु महराज ॥ ८

माई री कमल-नैन कमल-बदन बैठे हैं जमुना-तीर ।
कमल से करन कमल लिए फेरत सुंदर स्याम सरीर ॥
कमल की कंठ माल ललित ललाम धनी कमल ही को कटि चीर ।
कमल के महल कमल के खंभा भौंरन की जापै भीर ॥
सुंदर कमल फूले लहलहे सोहत ता मधि झलकत नीर ।
'हरीचंद' पद-कमल जपत नित भंजन-भव-भय-भीर ॥ ९ ॥

मंगल मंगल मंगल रूप ।
मंगल गिरि गोवर्धन धार्‌यौ मंगल गिरिधर ब्रज के भूप ।
मंगल-मय व्रखभानु-नंदिनी श्रीराधा अति रुचिर सुरूप ॥
मंगल वल्लभ-चरन-कृपा से 'हरीचंद' उबर्‌यौ भव कूप ॥१०॥

घर तें मिलि चलीं ब्रज-नारि ।
खसित कवरी नैन घूमत सजे सकल सिंगार ॥
लिए पूजन-साज कर मैं कुटिल बिथुरे बार ।
कृष्ण-गुन गावत सुविहसत 'हरीचंद' निहार ॥११॥

जल मैं न्हात हैं ब्रज-बाल ।
मास अगहन जान उत्तम मिलन को गोपाल ॥
हाथ जोरि सुकहत देविहि देउ पति नँदलाल ।
चीर लै 'हरिचंद' भागे सुभग स्याम तमाल ॥१२॥

खोजत बसन ब्रज की बाल ।
निकसि कै सब लेहु छिपि कै कह्यौ स्याम तमाल ॥
सुनत चंचल चित चहूँ दिसि चकित निरखत नारि ।
मधुर बैननि हिओ धरकत जानि कै बनवारि ॥
कदम पर तें दरस दीनो गिरिधरन घनश्याम ।
अंग अंग अनूप शोभा मथन कोटिक काम ॥
सिर मुकुट की लटक चटकत बसन सोभित पीत ।
चरन तक बनमाल सोभित मनहुँ लपटी प्रीत ॥
फैलि रहि सोभा चहूँ दिसि मन लुभावत पास ।
नैन तें 'हरिचंद' के छवि टरत नहिं इक साँस ॥१३॥

देखौ सोभित तरु पर नट-वर ।
मोर मुकुट कटि पीत पिछौरी मुरली हाथ सुघर-वर ॥

बोले हरि बाहर ह्वै आओ हे ब्रज-बाल चतुर - तर।
नाँगी होइ जमुन में पैठीं पूजहु आइ दिवाकर॥
सुनि पिअ-बचन निकसि सब आईं दीनो चीर गुंजधर।
पहिरि चीर ब्रज-नारि नवेली केलि करी कुंजन पर॥
'हरीचंद' हरि की यह लीला नहिं पावत बिधि अरु हर।
कोमल मंजु साँवरी मूरति नित्य बिराजौ हिअ पर॥१४॥

राग सारंग

श्री कृष्ण घर घर बाजत सुनिय बधाई।
श्री राधा रावल में आई॥
जय जय जय जय जय धुनि माचैं।
आनँद - मगन तहाँ सब नाचैं॥
नाचत ब्रह्मा शिव अरु शेषा।
नाचत बरुन कुबेर सुरेसा॥
नाचत नारद आदि मुनीसा।
नाचत देव कोटि तैंतीसा॥
नाचत बसु अरु मरुत गनेसा।
नाचत जम रवि ससि सुभकेसा॥
नाचत परसुराम धनु धारे।
नचत राज-ऋषि सुर-ऋषि न्यारे॥
नाचत चारन किन्नर रच्छा।
नाचत बिद्याधर अरु जच्छा॥
नाचत खग मृग अहिगन मच्छा।
नाचत गाय भैंस के बच्छा॥
नाचत सुक प्रह्लाद बिभीषन।
नचत परीक्षित बलि आनँद मन॥

नचति सरस्वति बीन बजाई।
माया नाचति अति हरषाई॥
नाचति चंपकलता बिसाखा।
चंद्रावलि ललिता रस-साखा॥
नचत श्यामदा जसुदा माई।
ब्याही काँरी सबै लुगाई॥
नाचत नंद सुनंद सुहाए।
महानंद अति आनँद छाए॥
नचत तोक बल सुख श्रीदामा।
सँग वृषभान गोप सुखधामा॥
नाचत नर-नारिन के बृन्दा।
प्रेम-मत्त नाचत 'हरिचंदा'॥१५॥

राग सारंग

ग्वाल गावैं गोपी नाचैं। प्रेम-मगन मन आनँद राचैं॥
भानु राय के राधा जाई। धाये सब सुनि लोग-लुगाई॥
माखन दधि घृत दूध लुटावैं। बार बार प्रमुदित उर लावैं॥
ताल पखावज आवज बाजै। दुंदुभि ढोल दमामा गाजै॥
कूदत ग्वाल-बाल सब सोहैं। देखि देखि सुर नर मुनि मोहैं॥
भये दूध दधि घृत के पंका। इत उत दौरत फिरत निसंका॥
देत निछावर मनिगन वारी। प्रेमानंद मगन नर-नारी॥
थकित भये सब देव बिमाना। मुदित करत 'हरिचंद' बखाना॥१६॥

सुनौ सखि बाजत है मुरली।
जाके नेकु सुनत ही हिअ में उपजत बिरह-कली॥
जड़ सम भए सकल नर-खग-मृग लागत श्रवन भली।
'हरीचंद' की मति रति गति सब धारत अधर छली॥१७॥

बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी ।
सुनत श्रवन मन थकित भयो अरु मति-गति जाति भजी ॥
सात सुरन अरु तीन ग्राम सों पिय के हाथ सजी ।
'हरीचंद' औरहु सुधि मोही जबही अधर तजी ॥१८॥

बँसुरिआ मेरे बैर परी ।
छिनहूँ रहन देत नहिं घर मे मेरी बुद्धि हरी ॥
बेनु-बंस की यह प्रभुताई बिधि-हर-सुमति छरी ।
'हरीचंद' मोहन बस कीनो बिरहिन-ताप-करी ॥१९॥

सखी हम बंसी क्यों न भए ।
अधर सुधा-रस निसु-दिनु पीवत प्रीतम-रंग रए ॥
कबहुँक कर में कबहुँक कटि में कबहूँ अधर धरे ।
सब ब्रज-जन-मन हरत रहत नित कुंजन माँझ खरे ॥
देहि विधाता यह वर माँगों कीजै ब्रज की धूर ।
'हरीचंद' नैनन में निबसै मोहन-रस भरपूर ॥२०॥

नाचत नवल गिरिधर लाल ।
सकल सुखदाता संग गोपी बाल ॥
बजत झाँझ मृदंग आवज चंग बीना ताल ।
जात बलि 'हरिचंद' छबि लखि सुभग स्याम तमाल ॥२१॥

भोजन कीजै प्रान-पियारी ।
भई बड़ी बार हिंडोले झूलत आज भयो श्रम भारी ॥
बिंजन मीठो दूध सुहातो कीजै पान दुलारी ।
जूठन माँगत द्वार खड़ो है 'हरीचंद' बलिहारी ॥२२॥

पनघट बाट घाट रोकत जसुदा जी को बारो।
साँवरे बरन स्याम स्याम ही सज्यौ
है साज इन अँखियन को तारो ॥
मुरलि बजावत गीतन गावत
करत अचगरी प्यारो।
'हरीचंद' इंडुरी जमुन मैं बहावत मन ललचावत
नैन नचावत मेरो तन परसत सुंदर नंद-दुलारो ॥२३॥

बजन लगी बंसी यार की।
धुनि सुनि ब्रज-तिय चकित होत हैं सुधि आवत दिलदार की ॥
मीठी तान लेत चित मोह्यो चितवन तीखी यार की।
'हरीचंद' नैनन में गड़ि गई छवि गुंजन के हार की ॥२४॥

बजन लगी बंसी कान्ह की।
धुनि सुनि चकित भए खग मृग सब सुधि न रही कछु प्रान की ॥
मोहे देव गंधरब रिसि मुनि भूले गति जु बिमान की।
'हरीचंद' को मन मोह्यो 'अस बिसरी सुधिहू अप्रान की' ॥२५॥

किन चौंकाए पीतम प्यारे।
किन सुख में दुख दियो जु उठि इत भोरहिं भोर पधारे ॥
मेरे जान क्रूर तमचुर यह तुम कहँ सुरत दिवाइ।
कै द्विज-गन कै चहकि चिरैयन मेरी आस पुजाइ ॥
सीरी पौन अरुन किरिनावलि भए सहाय पियारे।
धन्य भाग जो अबहूँ उठि कै आए भवन हमारे ॥
आओ चरन पलोटों प्यारे सोइ रहौ स्रम भारी।
'हरीचंद' सुनि बचन रचन तिय गर लाई बनवारी ॥२६॥

हम में कौन कसर पिय प्यारे ।
अजामेल में का अवगुन जे नहिं तन माँहि हमारे ।।
जानी और पतित के माथे सींग रही द्वै भारी ।
ता बिन हमहि देखि नहिं तारत वृन्दा-बिपिन-बिहारी ।।
जो पापहि करिबै सों जग में जीव पतित कहवावै ।
तौ हमसो बढ़ि कै कोउ नाहीं को मेरी सरि पावै ।।
कछु तौ बात होइहै जासों तारत हम कहँ नाहीं ।
नाहीं तो 'हरिचंद' पतित-पति ह्वै हम कित बचि जाहीं ।।२७।।

तरन में मोहिं लाभ कछु नाहीं ।
तुमरेई हित कहत बात यह गुनि देखहु मन माहीं ।।
तुमरेहू जिअ अब लौं बाकी यहै हौंस चलि आई ।
कै कोउ कठिन अघी पावैं तो तारि लहैं बड़िआई ।।
बहुत दिनन की तुमरी इच्छा तेहि पूरन मैं आयो ।
करहु सफल सो हम सों बढ़ि कोउ पापी नहिं जग जायो ।।
लेहु जोर अजमाइ आपुनो दया - परिच्छा लीजै ।
हे बलबीर अघी 'हरिचंदहि' हारि पीठि जिनि दीजै ।।२८।।

तुव जस हमहि बढ़ावन-हारे ।
तुव गुन दिव्य तारनादिक के कारन हमहिं पियारे ।।
छिपी दया तुव मेरेहि अघ में यह निहचै जिय जानौ ।
हम बिन तुव जग कछु न बड़ाई यह प्रतीत करि मानौ ।।
केवल त्रिभुवन-पति फलदायक न्याय करत रहि जैये ।
दया-निधान पतित-पावन प्रभु हमरे हेत कहैये ।।
हमहीं कियो कृपाल तुमहिं अघ-तारन हमहिं बनायौ ।
यह गुन मानि हीन 'हरिचंदहि' क्यौं न अबहुँ अपनायो ।।२९।।

हमरी स्वारथ ही की प्रीति ।
तुव गुनहू स्वारथ हित गावत मानहु नाथ प्रतीति ॥
बक-धरमी स्वारथ-मूलक सब प्रेम भक्ति की रीति ।
'हरीचंद' ऐसे छलियन कों सकिहौ नाथ न जीति ॥३०॥

अब हम बदि बदि कै अघ करिहैं ।
जब सब पतितन सों बढ़ि जैहैं तब ही भव-जल तरिहैं ॥
हम जानी यह बानि नाथ की पतितन ही सों प्रीति ।
सहजहि कृपा कृपिन-दिसि गामिनि यहै आपु की रीति ॥
ताही सों अघ किये अनेकन करत जात दिन-रात ।
तऊ न तरल परत नहिं जानी क्यौं अब लौं हम तात ॥
किए करत अघ फेर करैंगे जब लौं जिअ मैं जीअ ।
जा, सों दृष्टि परे तुमरी इत सुंदर साँवर पीअ ॥
दीन-बन्धु प्रनतारति-भंजन आरत - हरन मुरारि ।
दयानिधान कृपन-जन-वत्सल निज गुन नाम सम्हारि ॥
पावन परम पतित हरि हम कहँ हीन जानि उठि धाओ ।
साधन-रहित सहित अघ सत लखि 'हरिचंदहि' अपनाओ॥३१॥

देखहु मेरी नाथ ढिठाई ।
होइ महा अघ-रासि रहन हम चहत भगत कहवाई ।
कबहूँ सुधि तुमरी आवै जो छठे-छमाहें भूले ।
ताही सों मनि मानि प्रेम अति रहत संत बनि फूले ॥
एक नाम सों कोटि पाप को करन पराछित आवैं ।
निज अघ बड़वानलहि एक ही आँसू बूँद बुझावैं ॥
जो व्यापक सर्वज्ञ न्याय-रत धरम-अधीस मुरारी ।
'हरीचंद' हम छलन चहत तेहि साहस पर बलिहारी ॥३२॥

स्याम घन देखहु गौर घटा ।
भरी प्रेम-रस सुधा बरसि रही छाई छूटि छटा ॥
आपुहि बादर रूप जल भरी आपुहि बिज्जु छटा ।
यह अद्भुत लखि सिखी सखीगन नाचत बैठि अटा ॥
हिय हरखावत छवि बरखावत झुकी निकुंज तटा ।
'हरीचंद' चातक ह्वै निसि-दिन जाको नाम रटा ॥३३॥

आजु बसन्त पंचमी प्यारे आओ हम तुम खेलैं ।
चोआ चंदन छिरकि परसपर अरस परस रँग झेलैं ॥
और कहूँ जिनि जाहु पियारे हम तुम मिलि रस रेलैं ।
तुम मोहि देहु आपुनी माला हम निज तुअ उर मेलैं ॥
प्राननाथ कहँ कंठ लाइ कै आनँद-सिंधु सकेलैं ।
'हरीचंद' हिय-हौंस पुजावैं बिरहहि पायन ठेलैं ॥३४॥

आई है आजु बसंत पंचमी चलु पिय पूजन जैये ।
आम मंजरी काम चिनौती लै पिय सीस बँधैये ॥
अति अनुराग गुलाल लाइ कै नव केसर चरचैये ।
उद्दीपन सुगन्ध सोंधे मृगमद कपूर छिरकैये ॥
पुष्प-गेंदुकन परसि पिया कों तन में काम जगैये ।
संचित पंचम ऊँचे सुर सों काम-बधाई गैये ॥
आलिंगन परिरम्भन चुम्बन भाव अनेक दिखैये ।
'हरीचंद' मिलि प्रान-पिया सों सरस बसंत मनैये ॥३५॥

नव दूलह ब्रजराय-लाडिलो नव दुलहिन वृषभानु-किसोरी ।
श्री वृन्दावन नवल कुंज मे खेलत दोउ मिलि होरी ॥
नव सत साजि सिंगार अभूषन नवल नवल सँग गोरी ।
नवल सेहरो सीस बिराजत नवल बसन तन राजैं ॥

त्रिभुवन-मोहन जुगल-माधुरी कोटि मदन लखि लाजैं ।
अति कमनीय मनोहर मूरति ब्रज-जन यह रस जानैं ।।
'हरीचंद' ब्रजचन्द-राधिका तजिकै किहि उर आनैं ।।३६।।

कुंज-विहारी हरि-सँग खेलत कुंज-विहारिनि राधा ।
आनँद भरी सखी सँग लीन्हे मेटि विरह की बाधा ।।
अविर गुलाल मेलि उमगावत रसमय सिंधु अगाधा ।
घूँघर में झुकि चूमि अंक भरि मेटति सब जिय साधा ।।
कूजति कल मुरली मृदंग सँग बाजत धुम किट ताधा ।
वृन्दावन-सोभा-सुख निरखत सुरपुर लागत आधा ।।
मच्यौ खेल बढ़ि रंग परसपर इत गोपी उत काँधा ।
'हरीचंद' राधा-माधव कृत जुगल खेल अवराधा ।।३७।।

सरस साँवरे के कपोल पर बुक्का अधिक विराजै ।
मनहु जमुन-जल पुंज छीर की छींट अतिहि छवि छाजै ।।
नील कंज पै कलित ओस-कन झलकत तियनि रिझावै ।
प्रिया-दीठि कौ चिन्ह किधौं यह ब्रज-जुवती मन भावै ।।
सूछम रूप सकल ब्रज-तिय को वस्यौ कपोलनि आई ।
'हरीचंद' छवि निरखि हरपि हिय वार वार वलि जाई ।।३८।।

नव वसंत को आगम सजनी हरि को जनम सुहायो ।
गावत कोकिल कीर मोर सी जुवती बजत बधायो ।।
विविध दान लहि जाचक जन से कलित कुसुम बहु फूले ।
गुन गावत धावत बन्दीजन से भँवरे बहु भूले ।।
उड़त गुलाल अबीर रंग सो दधि-काँदो भरि लाई ।
नाचत गारी देत निलज से गावत ताल बजाई ।।
टेसू फूलन मिस वृन्दावन प्रगट्यौ जिय अनुरागै ।

केसर-सिंचित सम सरसों-वन नैन सुखद अति लागै ॥
गोप पाग पहिरे सब सोभित गेंदा तरु इक-रासी।
बौरे आम सरिस डोलत आनँद-बौरे ब्रजरासी ॥
बंस-बेलि लहरानी नँदजू की अति सुख झालरि छाई।
तरुन तमाल स्याम घन उपजे 'हरीचंद' सुखदाई ॥३९॥

पिया मन-मोहन के सँग राधा खेलत फाग।
दोउ दिसि उड़त गुलाल अरगजा दोउन उर अनुराग ॥
रँग-रेलनि भोरी झेलनि में होत दृगनि की लाग।
'हरीचंद' लषि सो सुख-सोभा अपुन सराहत भाग ॥४०॥

सोभा कैसी छाई।
कोइल कूकै भँवर गुँजारै सरस वहार
फूलि रही सरसों अँखियन लगत सुहाई, देखो ॥
बीती सिसिर वसन्तहु आई फिर गई काम-दुहाई।
बौरन आम लग्यो मन बौरो विरहिन विरह सताई, देखो ॥
जान न दैहौं तुहि ऐसी समय में लैहौं लाख बलाई।
'हरीचंद' मुख चूमि पियरवा गरवाँ रहिहौं लाई, देखो ॥४१॥

रिमझिम बरसै पनियाँ घर नहिं जनियाँ कैसे बीतै रात।
मोर मोर घनघोर करत हैं सुनि सुनि जीअ डरात ॥
सूनी सेज देखि पीतम बिनु धीरज जिय न धरात।
पिय 'हरिचंद' बसे परदेसवाँ मोर जोबनवाँ नाहक जात ॥४२॥

देखो साँवरे के सँगवाँ गोरी झूलैलीं हिंडोर।
जमुना तीर कदम की डरियाँ पहिरे चीर पटोर ॥
बिजुली चमकै पनियाँ बरसै बादर डोलै ही घनघोर।
हरि-राधा छबि देखि नयनवाँ सखी जुड़ैलैं मोर ॥४३॥

सखी कैसी छवि छाई देखो आई बरसात ।
मोहिं पिया बिना हाय न भाई बरसात ।।
घन गरजत बिरह बढ़ाई बरसात ।
हरि मिलत न भई दुखदाई बरसात ।।४४।।

मथुरा के देसवाँ से भेजलैं पियरवाँ रामा ।
हरि हरि ऊधो लाए जोगवा की पाती रे हरी ।।
सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियाँ रामा ।
हरि हरि मोहन भए कुबरी के सँघाती रे हरी ।।
छोड़ि घर-बार अब भसम रमाओ रामा ।
हरि हरि अब नहिं ऐहैं सुख की राती रे हरी ।।
अपने पियरवाँ अब भए हैं पराए रामा ।
हरि हरि सुनत जुड़ाओ सब छाती रे हरी ।।४५।।

रिमझिम बरसत मेह भींजति मैं तेरे कारन ।
खरी अकेली राह देखि रही सूनो लागत गेह ।।
आइ मिलौ गर लगौ पियारे तपत काम सों देह ।
'हरीचंद' तुम बिनु अति व्याकुल लाग्यौ कठिन सनेह ।।४६।।

मलार चौताला

(समय कुतबुद्दीन का राज)

छाई अँधियारी भारी सूझत नहिं राह कहूँ
गरजि गरजि बादर से जवन सब डरावैं ।
चपला सी हिन्दुन की बुद्धि वीरतादि भई
छिपे वीर-तारागन कहूँ न दिखावैं ।।
सुजस-चंद मंद भयो कायरता-घास बढ़ी
दरिद-नदी उमड़ि चली मूरखता पंक चहल पहल पग फँसावैं ।

'हरीचंद' नन्दनन्द गिरिवर धरो आइ फेर
हिन्दुन के नैन नीर निस दिन बरसावैं ॥४७॥

मलारी जल्द तिताला

(समय सिकंदर का पंजाब का युद्ध)

पोरस सर जल रन महँ बरसत लखि कै मोरा जियरा हरसत ।
बिजुरी सी चमकत तरवारैं, बादर सी तोपैं ललकारैं,
बीच अचल गिरिवर सो छत्री गज चढ़ि देवराज-सम सरसत ॥
झींगुर से झनकत हैं बखतर, जवन करत दादुर से टरटर
छर्रा उड़त बहुत जुगनू से एक एक कों तम सम गरसत ।
बढ़यौ बीर रस सिन्धु सुहायो, डिग्यौ न राजा सबन डिगायो,
ऐसो बीर बिलोकि सिकन्दर जाइ मिल्यौ कर सों कर परसत ॥४८॥

धनि धनि री सारिस - गमनी ।
गरि मध पसरी साम मनी सारी रेसम सनि सरिस सनी ॥
निस मनि सम निसि धरि धरि मगमधि परी परी पग मगनि गनी ।
निसरी साम साध सानी गनि 'हरीचंद' सरिगम पधनी ॥४९॥

चातक को दुख दूर कियो सुख दीनो सबै जग जीवन भारी ।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी ॥
सूखेहु रूखन कीने हरे जग पूरो महा मुद दै निज वारी ।
हे घन आसिन लौं इतनो करि रीते भएहू बड़ाई तिहारी ॥५१॥

जय वृषभानु-नंदिनी राधे मोहन-प्रान-पियारी ।
जय श्री रसिक कुँवर नँदनंदन मोहन गिरिवरधारी ॥
जय श्री कुंज-नायिका जय जय कीरति-कुल-उँजियारी ।
जय वृंदावन चारु चंद्रमा कोटि-मदन-मद-हारी ॥

जय ब्रज-तरुन-तरुनि-चूड़ामनि सखियन में सुकुमारी ।
जयति गोप-कुल-सीस-मुकुटमनि नित्यै सत्य विहारी ।।
जयति वसंत जयति वृंदावन जयति खेल सुखकारी ।
जय अद्भुत जस गावत सुक मुनि 'हरीचंद' बलिहारी ।।५२।।

प्रगटे हरिजू आनँद-करन्त । मनु आई भुव पर ऋतु वसंत ।।
सब फूले गोपी ग्वाल-बाल । मनु बौरि रहे बन में रसाल ।।
सब ग्वाल धरे केसरी पाग । मनु डारन पै गेंदा सुभाग ।।
फैली चहुँ दिसि हरदी सुरंग । सरसों के खेत फूलन के संग ।।
सब के मन में अति री हुलास । मनु फूलि रहे सुंदर पलास ।।
देखत सब देव चढ़े बिमान । मनु उड़त विविध पक्षी सुजान ।।
नट नाचत गावत करत ख्याल । मनु नाचि रहे वन में मराल ।।
गावत मागध बंदी प्रवीन । मनु बोलि रही कोकिल नवीन ।।
पहिरे नर-नारी बसन हार । मनु नये पत्र-फल फूल चार ।।
सो सुख लूटत 'हरिचंद'दास । मनु मत्त भँवर पायो सुवास ।।५३।।

महारानी तिहारो घर सुबस बसो ।
आजु सुफल ब्रजबास भयो सब घर घर अति आनन्द रसो ।।
कोउ गावत कोउ करत कोलाहल माखन को कोउ लेत गसो ।
श्री राधा के प्रकट भये ते या बरसानो सुख बरसो ।।
देत असीस सदा चिर जीवो मोहन को सँग लै बिलसो ।
'हरीचंद' आनँद अति बाढ़्यो सब जिय को दुख दरद नसो ।।५४।।

मन की कासों पीर सुनाऊँ ।
बकनो वृथा और पतिखोनो सबै चवाई गाऊँ ।।
कठिन दरद कोऊ नहिं धरिहै धरिहै उलटो नाऊँ ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रकट जनाऊँ ।।

रोम रोम प्रति नयन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान सिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ॥
मरमिन सखिन वियोग दुखित क्यों कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचंद' पिय मिलै तो पग गहि बाट रोकि समझाऊँ॥५५॥

तू केहि चितवत चकित मृगी सी।
केहि ढूँढ़त तेरो कह खोयो क्यों अकुलात लखाति ठगी सी।
तन सुधि करि उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी।
उत्तर देत न खरी जकी ज्यों मद पीये कै रैनि जगी सी॥
चौंकि चौंकि चितवति चारिहु दिसि सपने पिय देखति उमँगी सी।
भूलि बैखरी मृग सावक ज्यों निज दल तजि कहुँ दूरि भगी सी॥
करति न लाज हाट-बारन की कुल-मर्यादा जाति डगी सी।
'हरीचंद' ऐसेहि उरझी तो क्यों नहिं डोलत संग लगी सी॥५६॥

श्री गोपीजन-वल्लभ सिर पै विराजमान
अब तोहि कहा डर मूढ़ मन बावरे।
छोड़िकै कुसंग सबै आसरो अनेक अबै
छिन भर हरि-पद सीस नित नाव रे॥
कहत पुकार बार बार सुनि यह राम
क्रोध छोड़ि एक हरि गुन गाव रे।
'हरीचंद' भटकै अनेक ठौर तिन प्रति
टेक तज वल्लभ सरन अब आव रे॥५७॥

हठीले दे दे मेरी मुँदरी।
हा हा करत हौं पइआँ परत हौं गुरुजन माँझ खरी।
'हरीचंद' तुम चतुर रसीले बढ़ियाँ पकरी॥५८॥

बिनु सैयाँ मोको भावै नहिं अँगना ।
चंदा उदय जरावत हमकों बिष सो लागत कँगना ॥५९॥

पिय की मीठी मीठी बतियाँ ।
श्रवन सुहात सुधा-रस सानी कहत लाइ जब छतियाँ ॥
बोलत ही हिय खचित होत मनु मैन लिखत मन पतियाँ ।
'हरीचंद' पूरन हिय करनहिं रहत सदा बनि थतियाँ ॥६०॥

तरल तरंगिनि भव-भय-भंगिनि जय जय देवि गंगे ।
जगदघ-हारिनि करुना-कारिनि रमा-रंग-पद रंगे ॥
नवल बिमल जल हरत सकल मल पान करत सुखदाई ।
पापहि नासत पुन्य प्रकासत जलमय रूप लखाई ॥
कच्छप मीन भ्रमरमय सोभित कृपा-कमल-दल फूले ।
देववधू-कुच-कुंकुम रंजित लखि छवि सुर नर भूले ॥
शिव-सिर-बासिनि अज-कमंडलिनि पतित मंडलनि तारो ।
'हरीचंद' इक दास जानि कै करुन कटाच्छ निहारो ॥६१॥

हरिजू की आवनि मो जिय भावै ।
लटकीली रस-भरी रँगीली मेरे दृगन सुहावै ॥
निज जन दिसि निरखनि दृग भरि कै हँसनि मुरनि मन मानै ।
बेनु बजावनि कटि कसि धावनि गावनि करि रस दानै ॥
बंक बिलोचन फेरनि हेरनि सब ही चित्त चुरावै ।
'हरीचंद' भूलत नहिं कबहूँ नित सुधि अधिक दिवावै ॥६२॥

जग बौराना मेरे लेखे ।
कोई असाध कोई साधू बनि धाया करि करि भेखे ।

लड़ि लड़ि मरा बादि बादन में बिन अपने चख देखे।
धरम करम कर मोटी कीनी और करम की रेखे ॥
होय सयाना मूल गँवाया सभी व्याज के लेखे।
'हरीचंद' पागल बनि पाया पीतम प्रीति परेखे ॥६३॥

हरि जू को नेह परम फल माई।
मेरे नेम धरम जप संजम बिधि याही में आई ॥
यहै लोक परलोक चार फल यहै जगत ठकुराई।
मेरे काम धाम परमारथ स्वारथ यहै सदाई ॥
यहै बेद बिधि लाज रीति धन हमरे यहै बड़ाई।
'हरीचंद' बल्लभ की सरबस मैं जिय निधि कर पाई ॥६४॥

होरी डफ की

तेरी अँगिया में चोर बसैं गोरी।
इन चोरन मेरो सरबस लूट्यौ मन लीनो जोरा-जोरी ॥
छोड़ि देइ किन बँद चोलिया पकरैं चोर हम अपनो री।
'हरीचंद' इन दोउन मेरी नाहक कीनी चित चोरी ॥६५॥

देखो बहियाँ मुरक गई मोरी ऐसी करी बर-जोरी।
औचक आय दौरि पाछे तें लोक की लाज सब छोरी ॥
छीन झपट चटपट मोरी गागर मलि दीनी मुख रोरी ॥
नहिं मानत कछु बात हमारी कंचुकि को बँद छोरी।
एई रस सदा रसिक रहिओ 'हरीचंद' यह जोरी ॥६६॥

ग़ज़ल

फिर आई फस्ले गुल फिर ज़ख्मदह रह रह के पकते हैं।
मेरे दाग़े जिगर पर सूरते लाला लहकते हैं ॥

नसीहत है अबस नासेह क्यों नाहक है बकते हैं।
जो बहके दुख़्ते रज़ से हैं वह कब इनसे बहकते हैं? ॥
कोई जाकर कहो यह आख़िरी पैग़ाम उस बुत से।
अरे आ जा अभी दम तन में बाकी है सिसकते हैं॥
न बोसा लेने देते हैं न लगते हैं गले मेरे।
अभी कम-उम्र हैं हर बात पर मुझ से झिझकते हैं॥
व ग़ैरों को अदा से क़त्ल जब सफ़्फ़ाक करता है।
तो उसकी तेग़ को हम आह किस हैरत से तकते हैं॥
उड़ा लाये हो यह तर्ज़े सख़ुन किस से बताओ तो।
दमे तक़रीर गोया बाग़ में बुलबुल चहकते हैं॥
'रसा' की है तलाशे यार में यह दश्त-पैमाई।
कि मिस्ले शीशा मेरे पाँव के छाले झलकते हैं॥१॥

ख़याले नावके मिज़गाँ में बस हम सर पटकते हैं।
हमारे दिल में मुद्दत से ये ख़ारे ग़म खटकते हैं॥
रुखे रौशन पै उसके गेसुए शबगूँ लटकते हैं।
क़यामत है मुसाफ़िर रास्ता दिन को भटकते हैं॥
फ़ुग़ाँ करती है बुलबुल याद में गर गुल के ऐ गुलचीं।
सदा इक आह की आती है जब गुंचे चटकते हैं॥
रिहा करता नहीं सैयाद हम को मौसिमे गुल में।
क़फ़स में दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं॥
उड़ा दूँगा 'रसा' मैं धज्जियाँ दामाने सहरा की।
अबस ख़ारे बियाबाँ मेरे दामन से अटकते हैं॥२॥

ग़ज़ब है सुरमः देकर आज वह बाहर निकलते हैं।
अभी से कुछ दिले मुज़तर पर अपने तीर चलते हैं॥

ज़रा देखो तो ऐ अहले सखुन ज़ोरे सनाअत को।
नई बंदिश है मज़मूँ नूर के साँचे मे ढलते हैं॥
बुरा हो इश्क़ का यह हाल है अब तेरी फ़ुर्क़त मे।
कि चश्मे खूँ चकाँ से लख्ते दिल पैहम निकलते हैं॥
हिला देंगे अभी ऐ संगे दिल तेरे कलेजे को।
हमारी आह आतिश-बार से पत्थर पिघलते हैं॥
तेरा उभरा हुआ सीना जो हम को याद आता है।
तो ऐ रश्के परी पहरो कफ़े अफ़सोस मलते हैं॥
किसी पहलू नहीं चैन आता है उश्शाक़ को तेरे।
तड़पते हैं फ़ुग़ाँ करते हैं औ करवट बदलते हैं॥
'रसा' हाजत नहीं कुछ रौशनी की कुंजे मर्क़द में।
बजाये शमा याँ दाग़े जिगर हर वक्त जलते हैं॥३॥

अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़स्ले बहारी है।
शिताब आ साक़िया गुलरू कि तेरी यादगारी है॥
रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसिमे गुल में।
असीराने क़फ़स लो तुमसे अब रुख़सत हमारी है॥
किसी पहलू नहीं आराम आता तेरे आशिक़ को।
दिले मुज़तर तड़पता है निहायत बेक़रारी है॥
सफ़ाई देखते ही दिल फड़क जाता है बिस्मिल का।
अरे जल्लाद तेरे तेग़ की क्या आबदारी है॥
दिला अब तो फ़िराक़े यार में यह हाल है अपना।
कि सर ज़ानू पर है औ खून दह आँखों से जारी है॥
इलाही खैर कीजो कुछ अभी से दिल धड़कता है।
सुना है मंज़िले औवल की पहली रात भारी है॥
'रसा' महवे फ़साहत दोस्त क्या दुश्मन भी हैं सारे।
ज़माने में तेरे तर्ज़े सखुन की यादगारी है॥४॥

आ गई सर पर क़ज़ा लो सारा सामाँ रह गया।
ऐ फ़लक क्या क्या हमारे दिल में अरमाँ रह गया॥
बाग़बाँ है चार दिन की बाग़े आलम में बहार।
फूल सब मुरझा गये ख़ाली बियाबाँ रह गया॥
इतना एहसाँ और कर लिल्लाह ऐ दस्ते जनूँ।
बाक़ी गर्दन में फ़क़त तारे गिरेबाँ रह गया॥
याद आई जब तुम्हारे रूए रौशन की चमक।
मैं सरासर सूरते आईना हैराँ रह गया॥
ले चले दो फूल भी इस बाग़े आलम से न हम।
वक्त रेहलत हैफ़ है ख़ाली हि दामाँ रह गया॥
मर गये हम पर न आये तुम ख़बर को ऐ सनम।
हौसला सब दिल का दिल ही में मेरी जाँ रह गया॥
नातवानी ने दिखाया ज़ोर अपना ऐ 'रसा'।
सूरते नक़्शे क़दम मैं बस नुमायाँ रह गया॥ ५॥

फिर मुझे लिखना जो वस्फ़े रूए जानाँ हो गया।
वाजिब इस जा पर क़लम को सर झुकाना हो गया॥
सरकशी इतनी नहीं लाज़िम है ओ ज़ुल्फे सियाह।
बस के तारीक अपनी आँखों में ज़माना हो गया॥
ध्यान आया जिस घड़ी उसके दहाने तंग का।
हो गया दम बंद मुश्किल लब हिलाना हो गया॥
ऐ अजल जल्दी रिहाई दे न बस ताख़ीर कर।
ख़ानए तन भी मुझे अब क़ैदख़ाना हो गया॥
आज तक आईना-वश हैरान है इस फ़िक्र में।
कब यहाँ आया सिकंदर कब रवाना हो गया॥
दौलते दुनिया न काम आएगी कुछ भी बाद मर्ग।

है ज़मीं में खाक क़ारूँ का खज़ाना हो गया ॥
बात करने मे जो लब उसके हुए जेरो ज़बर ।
एक सायत में तहो बाला ज़माना हो गया ॥
देख ली रफ्तार उस गुल की चमन मे क्या सबा ।
सर्व को मुश्किल कदम आगे बढ़ाना हो गया ॥
जान दी आखिर कफ़स मे अंदलीबे ज़ार ने ।
मुज्द. है सैयाद वीरॉ आशियाना हो गया ॥
ज़िन्द. कर देता है एक दम में य ईसाए नफ़स ।
खेल उसको गोया मुरदे को जिलाना हो गया ॥
तौसने उम्रे रवॉ दम भर नहीं रुकता 'रसा' ।
हर नफ़स गोया उसे एक ताजियाना हो गया ॥ ६ ॥

दिल मेरा तीरे सितमगर का निशाना हो गया ।
आफ़ते जॉ मेरे हक़ मे दिल लगाना हो गया ॥
हो गया लागर जो इस लैली अदा के इश्क़ मे ।
मिस्ले मजनूँ हाल मेरा भी फ़िसाना हो गया ॥
खाकसारी ने दिखाया बाद मुर्दन भी उरूज ।
आसमॉ तुरबत प मेरे शामियाना हो गया ॥
ख्वाबे गफ़लत से ज़रा देखो तो कब चौंके हैं हम ।
क़ाफ़िला मुल्के अदम को जब रवाना हो गया ॥ ७ ॥

फ़सले गुल में भी रिहाई की न कुछ सूरत हुई ।
कैद में सैयाद मुझको एक ज़माना हो गया ॥
दिल जलाया सूरते परवाना जब से इश्क़ में ।
फ़र्ज़ तब से शमअ पर ऑसू बहाना हो गया ॥
आज तक ऐ दिल जवाबे खत न भेजा यार ने ।
नामाबर को भी गये कितना ज़माना हो गया ॥

पासे रुसवाई से देखो पास आ सकते नहीं।
रात आई नींद का तुमको वहाना हो गया॥
हो परेशानी सरेमू भी न ज़ुल्फ़े यार को॥
इसलिये मेरा दिले सद - चाक शाना हो गया॥
वाद मुर्दन कौन आता है खवर को ऐ 'रसा'।
खत्म वस कुंजे लहद तक दोस्ताना हो गया॥ ७॥

जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है।
उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है॥
भला मखलूक खालिक की सिफत समझे कहाँ कुदरत।
इसी से नेति नेति ऐ यार वेदों ने पुकारा है॥
न कुछ चारा चला लाचार चारो हारकर बैठे।
विचारे वेद ने प्यारे बहुत तुमको विचारा है॥
जो कुछ कहते हैं हम यह भी तेरा जल्वा है एक वरनः।
किसे ताकत जो मुँह खोले यहाँ हर शख्स हारा है॥
तेरा दम भरते हैं हिन्दू अगर नाकूस वजता है।
तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है॥
जो बुत पत्थर हैं तो काबे में क्या जुज़ खाको पत्थर है।
बहुत भूला है वह इस फ़र्क़ में सर जिसने मारा है॥
न होते जलवःगर तुमतो यह गिरजा कब का गिर जाता।
निसारा को भी तो आखिर तुम्हारा ही सहारा है॥
तुम्हारा नूर है हर शै में कह से कोह तक प्यारे।
इसी से कह के हर हर तुमको हिन्दू ने पुकारा है॥
गुनह बख्शो रसाई दो 'रसा' को अपने कदमों तक।
बुरा है या भला है जैसा है प्यारे तुम्हारा है॥ ८॥

उठा के नाज़ से दामन भला किधर को चले।
इधर तो देखिये बहरे खुदा किधर को चले॥
मेरी निगाहों में दोनों जहाँ हुए तारीक।
ये आप खोल के जुल्फें दोता किधर को चले॥
अभी तो आए हो जल्दी कहाँ है जाने की।
उठो न पहलू से ठहरो ज़रा किधर को चले॥
ख़फ़ा हो किसपै भँवें क्यों चढ़ी हैं खैर तो है।
ये आप तेग पै धर कर जिला किधर को चले॥
मुसाफ़िराने अदम कुछ तो अज़ीज़ों से कहो।
अभी तो बैठे थे है है भला किधर को चले॥
चढ़ी हैं त्योरियाँ कुछ है मिज़ाह भी जुम्बिश में।
खुदा ही जाने य तेगे अदा किधर को चले॥
गया जो मैं कहीं भूले से उनके कूचे में।
तो हँस के कहने लगे हैं 'रसा' किधर को चले॥ ९॥

असीराने कफ़स सहने चमन को याद करते हैं।
भला बुलबुल प यों भी जुल्म ऐ सैयाद करते हैं॥
कमर का तेरे जिस दम नक़्श हम ईजाद करते हैं।
तो जों क़ुर्बान आकर मानियो बिहज़ाद करते हैं॥
पसे मुर्दन तो रहने दे ज़मीं पर ऐ सबा मुझको।
कि मिट्टी ख़ाकसारों की नहीं बरबाद करते हैं॥
दमे रफ्तार आती है सदा पाज़ेब से तेरी।
लहद के खिस्तगाँ उट्ठो मसीहा याद करते हैं॥
क़फ़स में अब तो ऐ सैयाद अपना दिल तड़पता है।
बहार आई है मुरग़ाने-चमन फ़रियाद करते हैं॥
बता दे ऐ नसीमे सुबह शायद मर गया मजनूँ।
ये किसके फूल उठते हैं जो गुल फ़रयाद करते हैं॥

मसल सच है वशर की क़द्रे नेअमत वाद होती है।
सुना है आज तक हमको वहुत वह याद करते हैं ॥
लगाया वागवाँ क्या ज़ख्म कारी दिल प वुलवुल के।
गरेवाँ चाक गुंचे हैं तो गुल फरयाद करते हैं ॥
'रसा' आगे न लिख अव हाल अपनी वेक़रारी का।
वरंगे गुंचः लव मजनूँ तेरे फ़रयाद करते हैं ॥१०॥

दिल आतिशे हिजराँ से जलाना नहीं अच्छा।
अय शोलः-रुखो आग लगाना नहीं अच्छा ॥
किस गुल के तसव्वुर में है ए लालः जिगर-खूँ।
यह दाग़ कलेजे प उठाना नहीं अच्छा ॥
आया है अयादत को मसीहा सरे वालीं।
ऐ मर्ग, ठहर जा अभी आना नहीं अच्छा ॥
सोने दे शबे वस्ले गरीवाँ है अभी से।
ऐ मुर्गे-सहर शोर मचाना नहीं अच्छा ॥
तुम जाते हो क्या जान मेरी जाती है साहव।
अय जाने-जहाँ आपका जाना नहीं अच्छा ॥
आ जा शबे फ़ुर्क़त में क़सम तुझको खुदा की।
ऐ मौत वस अव देर लगाना नहीं अच्छा ॥
पहुँचा दे सवा कूचए जानाँ में पसे मर्ग।
जंगल में मेरी खाक उड़ाना नहीं अच्छा ॥
आ जाय न दिल आपका भी और किसी पर।
देखो मेरी जाँ आँख लड़ाना नहीं अच्छा ॥
कर दूँगा अभी हश्र वपा देखियो जल्लाद।
धव्वा य मेरे खूँ का छुड़ाना नहीं अच्छा ॥

ऐ फाख्तः उस सर्वसिही कद का हूँ शैदा ।
कू कू की सदा मुझको सुनाना नहीं अच्छा ॥
होगा हरेक आह से महशर बपा 'रसा' ।
आशिक़ का तेरे होश मे आना नहीं अच्छा ॥११॥
रहै न एक भी बेदादगर सितम बाकी ।
रुके न हाथ अभी तक है दम मे दम बाकी ॥
उठा दुई का जो परदा हमारी आँखो से ।
तो काबे मे भी रहा बस वही सनम बाकी ॥
बुला लो बालीं प हसरत न दिल में मेरे रहे ।
अभी तलक तो है तन में हमारे दम बाकी ॥
लहद प आएँगे और फूल भी उठाएँगे ।
ये रंज है कि न उस वक्त होंगे हम बाक़ी ॥
यह चार दिन के तमाशे हैं आह दुनिया के ।
रहा जहाँ में सिकन्दर न औ न जम बाकी ॥
तुम आओ तार से मरकद प हम कदम चूमें ।
फ़क़त यही है तमन्ना तेरी क़सम बाक़ी ॥
'रसा' ये रंज उठाया फ़िराक़ में तेरे ।
रहे जहाँ में न आखिर को आह हम बाकी ॥१२॥
बैठे जो शाम से तेरे दर पर सहर हुई ।
अफ़सोस अय क़मर कि न मुतलक़ खबर हुई ॥
अरमाने वस्ल यों ही रहा सो गए नसीब ।
जब आँख खुल गई तो यकायक सहर हुई ॥
दिल आशिकों के छिद गए तिरछी निगाह से ।
मिज़गाँ की नोक दुश्मने जानी जिगर हुई ॥
पछताता हूँ कि आँख अयस तुम से लड़ गई ।
बरछी हमारे हक़ में तुम्हारी नजर हुई ॥

छानी कहाँ न खाक, न पाया कहीं तुम्हें।
मिट्टी मेरी ख़राब अबस दर-बदर हुई॥
ध्यान आ गया जो शाम को उस जुल्फ का 'रसा'।
उलझन में सारी रात हमारी बसर हुई॥१३॥

बाल बिखेरे आज परी तुरबत पर मेरे आएगी।
मौत भी मेरी एक तमाशा आलम को दिखलाएगी॥
मह्वे अदा हो जाऊँगा गर वस्ल में वह शरमाएगी।
बारे खुदाया दिल की हसरत कैसे फिर बर आएगी॥
काहीदा ऐसा हूँ मैं भी ढूँढ़ा करे न पाएगी॥
मेरी ख़ातिर मौत भी मेरी बरसों सर टकराएगी।
इश्के बुताँ में जब दिल उलझा दीन कहाँ इसलाम कहाँ॥
वाअज़ काली जुल्फ की उल्फ़त सब को राम बनाएगी।
चंगा होगा जब न मरीज़े काकुले शबगूँ हज़रत से॥
आपकी उलफ़त ईसा की सब अज़मत आज मिटाएगी॥
वह्ले अयादत भी जो आएँगे न हमारे बालीं पर।
बरसों मेरे दिल की हसरत सिर पर ख़ाक उड़ाएगी॥
देखूँगा मिहराबे हरम याद आएगी अबरूए सनम।
मेरे जाने से मसजिद भी बुतखाना बन जाएगी॥
गाफ़िल इतना हुस्न प गर्रा ध्यान किधर है तौबा कर।
आख़िर इक दिन सूरत यह सब मिट्टी में मिल जाएगी॥
आरिफ़ जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा'।
जैसे वह गुज़री है यह भी किसी तरह निभ जाएगी॥१४॥

फसादे दुनिया मिटा चुके हैं हुसूले हस्ती उठा चुके हैं।
खुदाई अपने में पा चुके हैं मुझे गले वह लगा चुके हैं॥

नहीं नज़ाकत से हम में ताकत उठाएँ जो नाज़े हूरे जन्नत।
कि नाज़े शमशीर पुरनज़ाकत हम अपने सर पर उठा चुके हैं॥
नजात हो या सज़ा हो मेरी मिले जहन्नुम कि पाऊँ जन्नत।
हम अब तो उनके कदम प अपना गुनह भरा सिर झुका चुके हैं।
नहीं जबाँ में है इतनी ताकत जो शुक्र लाएँ बजा हम उनका।
कि दामे हस्ती से मुझको अपने इक हाथ मे वह छुड़ा चुके हैं॥
वजूद से हम अदम में आकर मकीं हुए ला-मकाँ के जाकर।
हम अपने को उनकी तेग़ खाकर मिटा मिटाकर बना चुके हैं॥
वही हैं अदना सी इक अदा से जिन्होंने बरहम है की खुदाई।
वही हैं अकसर कज़ा के जिनसे फ़रिश्ते भी जक उठा चुके हैं॥
य कहदो बस मौत से हो रुखसत क्यों नाहक़ आई है उसकी शामत।
कि दूर तलक वह मसीह खसलत मेरी अयादत को आ चुके हैं॥
जो बात माने तो ऐन शफ़कत न माने तो एन हुस्ने खूबी।
'रसा' भला हमको दख्ल क्या अब हम अपनी हालत सुना चुके हैं १५

दश्त्-पैमाई का गर कस्द मुकर्रर होगा।
हर सरे खार पए आबिला नश्तर होगा॥
मैकदे से तेरा दीवाना जो बाहर होगा।
एक में शीशा और इक हाथ में सागर होगा॥
हलकए चश्मे सनम लिख के य कहता है कलम।
बस कि मरकज़ से कदम अपना न बाहर होगा॥
दिल न देना कभी इन संग-दिलों को यारो।
चूर होवेगा जो शीशा तहे पत्थर होगा॥
देख लेगा व अगर रुख की तजल्ली तेरे।
आइना खानए सख्मी में सगदर होगा॥
चाक कर डालूँगा दामाने कफ़न वहशत से।
आस्ती से न मेरा हाथ जो बाहर होगा॥

ऐ 'रसा' जैसा है वरगश्ता ज़माना हमसे।
ऐसा वरगश्ता किसी का न मुक़द्दर होगा ॥१६॥

नींद आती ही नहीं धड़के की बस आवाज़ से।
तंग आया हूँ मैं इस पुरसोज़ दिल के साज़ से ॥
दिल पिसा जाता है उनकी चाल के अनदाज़ से।
हाथ में दामन लिए आते हैं वह किस नाज़ से ॥
सैंकड़ों मुरदे जिलाए ओ मसीहा नाज़ से।
मौत शरमिन्दा हुई क्या क्या तेरे ऐजाज़ से ॥
बागवाँ कुंजे कफस में मुद्दतों से हूँ असीर।
अव खुलें पर भी तो मैं वाक़िफ़ नहीं परवाज़ से ॥
कब्र में राहत से सोए थे न था महशर का खौफ़।
वाज़ आए ए मसीहा हम तेरे ऐजाज़ से ॥
वाए ग़फ़लत भी नहीं होती कि दम भर चैन हो।
चौंक पड़ता हूँ शिकस्तः होश की आवाज़ से ॥
नाज़े माशूकाना से खाली नहीं है कोइ बात।
मेरे लाशे को उठाए हैं व किस अन्दाज़ से ॥
कब्र में सोए हैं महशर का नहीं खटका 'रसा'।
चौंकनेवाले हैं कब हम सूर की आवाज़ से ॥१७॥

चाह जिसकी थी वही यूसुफे सानी निकला ॥१८॥

वख्त ने फिर मुझे इस साल दिखाई होली।
सोजे फुरक़त जेवस मुझको न भाई होली ॥
शोलए इश्क भड़कता है तो कहता हूँ 'रसा'।
दिल जलाने के लिए आह यह आई होली ॥१९॥

बुते काफ़िर जो तू मुझसे खफ़ा है।
नहीं कुछ खौफ़ मेरा भी खुदा है॥
यह दर परद सितारों की सदा है।
गली कूचः में गर कहिए बजा है॥
रक़ीबों में वह होंगे मुर्ख़रू आज।
हमारे क़त्ल का बीड़ा लिया है॥
यही है तार उस मुतरिब का हर रोज।
नया इक राग लाकर छेड़ता है॥
शुनीद के बुवद मानिंद दीद।
तुझे देखा है हूरों को सुना है॥
पहुँचता हूँ जो मैं हर रोज़ जाकर।
तो कहते हैं गज़ब तू भी 'रसा' है॥२०॥

रहमत का तेरे उम्मीदवार आया हूँ।
मुँह ढाँपे कफ़न में शर्मसार आया हूँ॥
आने न दिया बारे गुनह ने पैदल।
ताबूत में काँधों पै सवार आया हूँ॥२१॥

चंपई गरचे दुपट्टा है तो गुलदार है बेल।
मेरे गुलशन को चले आते हैं गुलशन होकर॥२२॥

फ़लक़ की गजल 'बाद अज़ फना तो रहने दे इस ख़ाकसार को' पर चार शेर कहे हैं—

अल्ला रे लुत्फ़े जबह कि कहता हूँ बार बार।
क़ातिल गले से खींच न ख़ंजर की धार को॥
तड़पा न कर दे जबह मुझे बानिए-जफ़ा।
क़ुरबाँ गले प फेर दे खंजर की धार को॥

दे दो जवाब साफ कि किस्सा तमाम हो।
दौड़ाते किस लिए हो इस उम्मीदवार को॥
होगी कशिश वहाँ से पस अज़ मर्ग जो 'रसा'।
पाएगी गर हवा मेरे मुश्ते-गुवार को॥२३॥

[बुलबुल को बाँधिए तो रगे गुल से बाँधिए—तरह]
ज़ुल्फ़ों को लेके हाथ में कहने लगा वह शोख़।
गर दिल को बाँधना हो तो काकुल से बाँधिए॥२४॥

जब कभी उसकी याद पड़ती है।
सोस आकर जिगर में पड़ती है॥
यादे मिज़गाँ जो मुझको है पैहम।
बरछी सी एक जिगर में गड़ती है॥
वक्ते तहरीर यह ज़मीने सखुन।
बात में आसमाँ पै चढ़ती है॥
है जो मद्दे नज़र विसाल उसे।
दम बदम मुझ पै आँख पड़ती है॥
वस्ल में भी नहीं है चैन मुझे।
ख़्वाहिशे दिल ज़ियादः बढ़ती है॥
है अजब उसके सुलहो-जंग में लुत्फ़।
दिल मिला जब तो आँख लड़ती है॥
देके आँखों में सुरमा वह बोले।
शान पर आज तेग़ चढ़ती है॥
सैरे गुलशन जो करता है वह माह।
बस गुलिस्ताँ पै ओस पड़ती है॥
वस्ल होगा नसीब आज 'रसा'।
चेहरए गुल पै ओस पड़ती है॥

सौ करो एक भी नहीं बनती।
आह तकदीर जब बिगड़ती है ॥२५॥

बर्कदम क्यों हाथ में शमशीर है।
आज किस के कत्ल की तदबीर है॥
खाक सर पर पाँओ मे जंजीर है।
तेरे चलते यह मेरी तौकीर है॥
पूछते हो क्या मेरी जरदी का हाल।
साहबो यह इश्क की तासीर है॥
कूचए लैली मे कहते हैं मुझे।
सिन अअन मजनूँ को बस तस्वीर है॥
दस्तो-पा सर्द आशिकों के होते हैं।
घर तेरा क्या खत्तए कश्मीर है॥
पोसता है माहरुओं को सदा।
कैसी कजफहमी पै चरखे मीर है॥
'पूछा मैंने एक दिन उस माह से।
मेह तुझको कुछ भी ऐ बेपीर है॥
रूठता है दम बदम बेवजह क्यों।
आशिको की क्या यही तौकीर है॥
है कसम तुझ को हमारे सर की जाँ।
क्या खता थी जिसकी यह ताजीर है॥
बोला हँस कर चुपके बस जाओ चले।
क्या तुम्हारी मौत दामनगीर है॥
फूल झड़ते हैं जुबाँ से बात में।
मिस्ले बुलबुल यार की तक्रीर है॥
क्यों रद करता हूँ आँख उसके लिए।
खाके-पा हक मे मेरे अकसीर है॥

ख्वाब में उस गुल को देखा ऐ 'रसा' ।
वस्ल होगा उसकी ये ताबीर है ॥
ऐ 'रसा' मिटती नहीं जुज ताव-मर्ग ।
खते किसमत की अजव तहरीर है ॥२६॥

है कमाँ अबरू तो मिज़गाँ तीर है ।
आफ़ते जाँ ग़मज़ए बे पीर है ॥२७॥

बाद में मिले हुए फुट कर पद

दीपन की वर माला सोभित ।
जगमग जोत जगति चारो दिसि सोभा बढ़ी है बिसाला ॥
घृत करपूर पूर करि राखी मेटि तिमिर की जाला ।
'हरीचंद' विहरत आनँद भरि राधा मदन-गोपाल ॥ १ ॥

हटरी सजि कै राधा रानी मोहन पिय कों लै बैठावत ।
फूल-माल पहिराइ विविध विधि भाँति भाँति के भोग लगावत ॥
बीरी देत आरती करि कै करत निछावर वसन लुटावत ।
इक टक निरखि प्रान-पिय मुख छवि जीवन जनम सुफल करि पावत ॥
जगमग दीप प्रकास वदन द्युति रतन अभूखन मिलि मन भावत ।
हाट लगाइ प्रेम की मोहन मन के बदले सौंज दिवावत ॥
पासा खेलत हँसत हँसावत जानि बूझि पिय अपुन हरावत ।
'हरीचंद' पिय प्यारी मिलि कै एहि विधि नित त्यौहार मनावत॥२॥

समस्या—'क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ।' की पूर्ति

कहा भयो मद है पीयौ कै गहिरी विजया छानी सी ।
लाल लाल दृग केस बिथुरि रहे सूरत भई निवानी सी ॥
झुक झुक झूमत अल-बल बोलत चाल मस्त बौरानी सी ।
काके रंग रंगी ऐसी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ॥ १ ॥

छूट्यौ केस खुलौ है अंचल पीक-छाप पहिचानो सी।
टूटी माल हार अरु पहुँची कुसुम-माल कुम्हिलानी सी॥
नैन लाल अधरा रस चूसे सूरतिहू अलसानी सी।
जानी जानी नेकु लाजु क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ २॥

बन बन पान पात करि डोलन बोलत कोकिल बानी सी।
मूँदि मूँदि दृग खोलि खोलि कै कहूँ रहत ठहरानी सी॥
उभकति भुकति जकी सी सब छिन मोहन हाथ बिकानी सी।
धीरज धरि चलि गई अरी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ ३॥

मौन रहत कबहूँ कबहूँ तू बोलत अलबल बानी सी।
ठगी डगी रस पगी स्याम रट लगी कबहुँ अकुलानी सी॥
तन की सुधि गुरु जन की भै बिनु 'हरीचंद' रस सानी सी।
काके मद माती डोलत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ ४॥

उभकत तरु चुभत चहुँ दिसि तें सोचत पथ कहुँ पानी सी।
बार बार नँद-द्वार जाइ कै ठाढी रहत बिकानी सी॥
तन की सुधि नहिं उघरत आँचर डोलत पथहि भुलानी सी।
मुख सों कहत गुपालहि लै क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ ५॥

नैहर सासुर बाहर भीतर सब थल की ह्वै रानी सी।
लाज मेटि अन-कही भई अपबादनहू न डरानी सी॥
कुलहि कलंक लगाय भली बिधि होइ गई मन-मानी सी।
अबहूँ तौ कछु सम्हरि अरी क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ ६॥

बिलखि बिलखि मति रोवै प्यारी है कै दुःख बौरानी सी।
सीस धुनत क्यों अभरन तोरत फारत अंचल तानो सी॥
गहिरी लेन उसास भरी दुख भई मीन बिनु पानी सी।
कहुँ बैठत कहुँ उठि धावत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी॥ ७॥

आजु कुंज मैं कौन मिल्यौ जिन लूटी सब रस खानी सी ।
चूसे अधर अँगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी ॥
बिथुरे बार सिंगार हार 'हरिचंद' माल कुम्हिलानी सी ।
धर धर छतिया क्यौं धरकत क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ॥ ८ ॥

बंसी झुकि झुकि कहाँ बजावत झूठहिं अंचल तानी सी ।
आपुहि आपु हँसत अरु रीझत यह गति अलख लखानी सी ॥
मेरे गल भुज दै दै लटकत मुख चूमत मन-मानी सी ।
नाम रटत अपुनो राधे क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ॥ ९ ॥

नन्द-भवन नहिं भान-भवन यह इत क्यौं रहत लजानी सी ।
घूँघट तानि बिलोकत केहि तू हिय हरषित रस-सानी सी ॥
मैं ही एक अरी तू केहि इत आदर देत बिकानी सी ।
सेज सजत क्यौं आँगन मैं क्यौं प्यारी फिरत दिवानी सी ॥१०॥

समस्या—'रोम मोम रूस फूस है ।' की पूर्ति

ज़ीते हैं गुराई सों अनेक अरमनी
जरमनी जरमनी मन रहत मसूस हैं ।
चित्र लिखे चीनी भए पारसी सिपारसी से
संग लगे डोलैं अँगरेज से जलूस हैं ॥
भौंह के हिलाये सों बिलात तेरे चेरे ऐसे
हेरे नित नित फरासीस और प्रूस हैं ।
जदपि कहावैं बल भारी पै तिहारी सौंह
प्यारी तेरे आगे रोम मोम रूस फूस हैं ॥१॥

हबसी गुलाम भये देखि करि केस तेरे
चीनी लखि गालन कों फोरत फनूस हैं ।

मिसरी सुनत मीठे बोल बिना दाम बिके
तन की सुबास रहे मलय भसूस हैं ॥
फरासीसी मद्य सीसी ढारि मतवारे भए
नैन पेखि काफरी हू होइ रहे हूस हैं।
बरमा हिये में काम धरमा चलायो प्यारी
तेरे रूप आगे रोम मोम रूस फूस है ॥२॥

भाजे से फिरत शत्रु इत उत दौरि दौरि
दबत जमानी जाको जोहत जलूस है।
ब्रह्म अस्त्र ऐसी तोपें तोपें एकै बार फौज
विमल बन्दूक गोली दारू कारतूस है ॥
ऐसो कौन जग मे विलोकि सकै जौन इन्हैं
देखि बल बैरी-दल रहत मसूस हैं।
प्रबल प्रताप भारतेश्वरी तिहारैं क्रोध
ज्वाल काल आगे रोम मोम रूस फूस है ॥३॥

जनम लियो है जाने मरनो अवस ताहि
राजा है कै रंक है चतुर है कि हूस है।
'हरीचंद' एक हरी नाम जग साँचो जानौ
बाकी सब झूठो चार दिन को जलूस है ॥
काफरी कपूर चरबी से अरबी हैं अँगरेज
आदि काठ तृन तूल भ्रूस भूस है।
साकला सी सकल सकल काल ज्वाल आगे
हिन्दू घृत-बिंदू रोम मोम रूस फूस है ॥४॥

समस्या—'राम बिना बे काम सभी' की पूर्त्ति

राज-पाट हय गज रथ प्यादे बहु विधि अन धन धाम सभी।
हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मकुट उर दाम सभी ॥

खाना-पीना नाच-तमाशा लाख ऐश-आराम सभी।
जैसे विंजन निमक विना त्यों राम विना वे-काम सभी ॥१॥

इक्कीस तोप सलामी की औअल दर्जे का काम सभी।
क्रास वाथ इस्टार हुए महराज वहादुर नाम सभी ॥
जग जस पाया मुलक कमाया किया ऐश-आराम सभी।
सार न जाना रहा भुलाना राम विना वे-काम सभी ॥२॥

यह जग मोह-जाल की फाँसी झूठे सुत धन-धाम सभी।
नाटक इसमें मर पच के करते हैं जीस्त हराम सभी ॥
जव तक दम में दम था झगड़े टण्टे रहे तमाम सभी।
आँख मुँदी तव यह सूझा है राम विना वे-काम सभी ॥३॥

ब्रह्म-ज्ञान विचार ध्यान धारना व प्रानायाम सभी।
षट दरसन की वक वक जप तप साधन आठो जाम सभी ॥
योग सिद्धि वैराग भक्ति पूजा पत्री परनाम सभी।
प्रेम विना सव व्यर्थ कृष्ण वलराम विना वे-काम सभी ॥४॥

समस्या—'ग्रीष्मै प्यारे हिमन्त वनाइये की पूर्ति

कीजिये राई सुमेर सरीखी सुमेरहि खीझि कै धूर मिलाइये।
राव सों रंक भिखारी सों भूपति सिंह सों स्वान के पाय पुजाइये ॥
दीजिए सींग ससै 'हरीचँद जू' सागर-नीर मिठाइ वहाइए।
कीजै हिमन्तहि ग्रीषम भीषम ग्रीपमै प्यारे हिमन्त वनाइये ॥१॥

पूरन ब्रह्म समर्थ सवै जिय मैं जोइ आवै सोई दरसाइये।
फेरिये सूरज चन्द गती छिन मैं जग लाख वनाइ नसाइये ॥
होनी न होनी सवै करिये 'हरीचंद जू' सीस की लीक मिटाइये।
कीजै हिमन्तहि ग्रीपम भीपम ग्रीपमै प्यारे हिमन्त वनाइये ॥२॥

प्रेम दै आपुनो मेटि दुखै जुग नैनन आँसू प्रवाह वहाइये।
लोभ पदारथ चारहू को अरु लोक को मोह दया कै छुड़ाइए॥
आपुनो ही 'हरीचँद जू' रूप दसो दिसि नैनन को दरसाइए।
भारी भवातप ताप तपे हिय ग्रीपमै प्यारे हिमन्त वनाइए॥३॥

दीनहूँ पै कबौं कीजे कृपा उजरी कुटी मेरिहू आइ वसाइए।
राखिए मान गरीबनीहू को दयानिधि नाम की लाज निभाइये॥
दै अधरामृत पान पिया 'हरीचंद जू' काम को ताप मिटाइये।
मेरे दुखै सुख कीजिये पीतम ग्रीपमै प्यारे हिमन्त वनाइये॥४॥

भोज मरे अरु विक्रमहू किनको अव रोई कै काव्य सुनाइये।
भाषा भई उरदू जग की अव तो इन ग्रन्थन नीर डुबाइये॥
राजा भये सब स्वारथ पीन अमीरहू हीन किन्हैं दरसाइये।
नाटक देनी समस्या अवै यह "ग्रीपमै प्यारे हिमन्त वनाइये" ॥५॥



अनुक्रमणिका

पद्यांश			पृष्ठ-संख्या

आ

पद्यांश			पृष्ठ-संख्या

ख

पद्यांश — पृष्ठ संख्या

ग

घ

पद्यांश पृष्ठ-संख्या

ज

पद्यांश	पृष्ठ-संख्या

पद्यांश पृष्ठ संख्या

पद्यांश			पृष्ठ-संख्या
तदपि सदा निज प्रेम पथ	...	...	२२६
तद्वंदे कनक प्रभं	...	...	७६६
तन तरु चढ़ि रस चूसि सब	...	...	८१८
तन पुलकित रोमांच करि	...	...	३७
तन पौरुष सब थाका मन नहिं थाका हो माधौ		...	६४९
तनया पद्मनाभदास की तुलसा वैष्णव रुचि रखी		...	२३७
तन्नमामि निज परम गुरु	...	...	२२५
तपत तरनि तिमि तेज अति	...	...	६२८
तब इनहीं की जगत बड़ाई	...	...	८०५
तब तौ बखानी निज वीरता प्रमानी कै कै		...	१४९
तब मोहन यह बुद्धि निकासी	...	...	६४०
तब ललिता इक बुद्धि उपाई	...	...	६३७
तब सखियन निज भेस बनायौ	...	...	६३८
तब हम भारत की प्रजा	...	...	६७६
तब हरि चरित अनेक विधि	...	...	७४८
तम पाखण्डहिं हरत करि	...	...	२२५
तरन मैं मोहिं लाभ कछु नाहीं	...	...	८३६
तरपन करि सुर पित्र नर	...	...	९०
तरल तरंगिनि भव भय भंगिनि जय जय देवि गंगे		...	८४५
तरसत स्रौन बिना सुने मीठे बैन तेरे		...	१६८
तरु तन मन अरपन सबै	...	...	२३
तर्जनि अग्र हिलाइ लखनऊ छिन महँ लीनौ		...	८०८
तलवा पाटल रंग के	...	...	२५
तल सौं जहँ लौं मध्यमा	...	...	३३
तहाँ तब आइ गए घनश्याम	...	...	६५८
ताकी उन्नति के लिये	...	...	७३३
ताके आगे कहाँ मिसिर का अरबी को बल		...	८०९
ताके ढिग है वलय को	...	...	३१
ताथेई ताथेई ताथेई नाचै री	...	...	५०५
ता पाछे अब लौं भए	...	...	२२६

थ

द

पद्यांश | पृष्ठ-संख्या

पद्यांश पृष्ठ-संख्या

प

फ

पद्यांश — पृष्ठ संख्या

ब

पद्यांश	पृष्ठ-संख्या

भ

श

पद्यांश			पृष्ठ-संख्या

पद्यांश		पृष्ठ-संख्या

स

पद्यांश			पृष्ठ-संख्या

पद्यांश | पृष्ठ-संख्या

पद्यांश	पृष्ठ-संख्या
	२४

पद्यांश | पृष्ठ संख्या

पद्यांश ... पृष्ठ-संख्या

पद्यांश पृष्ठ-संख्या

